KERAL KI STHANEEYA SABDAVALI KE HINDI ANUVAD KI SAMASYAYEM : KALA AUR SANSKRITI KE VISESH SANDARBH MEIN

Thesis
submitted to

Cochin University of Science and Technology

for the award of the degree of

Doctor of Philosophy

By
SAJEEV K VAVACHAN

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 22

DECEMBER - 2008

केरल की स्थानीय शब्दावली के हिन्दी अनुवाद की समस्याएँ : कला और संस्कृति के विशेष संदर्भ में

कोच्चिन विज्ञान और प्राद्यौगिकी विश्वविद्यालय की
पीएच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

शोधकर्ता

सजीव के वावच्चन

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान और प्राद्यौगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चि - 22

दिसंबर - 2008

“इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।”

परम पूज्य माता-पिता,
प्रिय पत्नी जीवा
एवं
प्यारी बेटियाँ इवलिन और इवांजलिन को
सप्रेम समर्पित..........

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled "**KERAL KI STHANEEYA SABDAVALI KE HINDI ANUVAD KI SAMASYAYEM : KALA AUR SANSKRITI KE VISESH SANDARBH MEIN**" is a bonafide record of work carried out by **Mr. Sajeev.K.Vavachan** under my supervision for the award of degree of Doctor of Philosophy and that no part of this thesis hitherto has been submitted for a degree in any other University.

Devaki 06-12-2008
Dr.N.G.Devaki
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 22

<u>DECLARATION</u>

I hereby declare that the thesis entitled **"KERAL KI STHANEEYA SABDAVALI KE HINDI ANUVAD KI SAMASYAYEM KALA AUR SANSKRITI KE VISESH SANDARBH MEIN"** has not previously formed the basis of any degree, associateship, fellowship or other similar title or recognition.

05/12/08

Sajeev. K.Vavachan
Research Scholar

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 22

आभार

प्रस्तुत शोध प्रबंध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्रो. एन.जी.देवकी जी के मार्ग निर्देशन में संपन्न हुआ है। उनके मन की विशालता तथा सौहार्दपूर्ण गंभीर व्यक्तित्व ने ही मुझे यहाँ तक पहुँचने को सक्षम बनाया है। हर मुश्किल वेलाओं में उन्होंने मेरा साथ दिया है और हौसला बढ़ाया है। उनके प्रति शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करना असंभव है। मैं ईश्वर से उनके मंगलमय जीवन की प्रार्थना करता हूँ।

हिन्दी विभाग के भूतपूर्व प्राचार्य प्रो.एस.शाहजहाँ जी को मैं कभी नहीं भूल पाऊँगा। वे शोध के प्रारंभ में मेरे विषय विशेषज्ञ भी रहे थे। उन्होंने विषय चयन से लेकर कई पहलुओं में मेरी काफी मदद की थी। उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्रोफेसर एवं भूतपूर्व अध्यक्षा षमीम् अलियार जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ। वे इस शोधकार्य में मेरे विषय विशेषज्ञ रही हैं। शोधकार्य से संबंधित महत्त्वपूर्ण सुझाओं एवं सलाहों के साथ-साथ स्नेह और वात्सल्य का संबल भी मुझे हमेशा इनसे प्राप्त होता रहा। मैं बडी विनम्रता के साथ उनका चरण श्पर्श करता हूँ।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं मानवीय संकाय के अध्यक्ष प्रो.ए.अरविंदाक्षन जी के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ। जिन्होंने समय-समय पर सही दिशा निर्देश प्रदान कर इस शोधकार्य को आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो.एन.मोहनन जी, प्रो.शशिधरन जी, प्रो.षण्मुखन जी आदि के प्रति तहे दिल से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। वे इस शोधकार्य को संपन्न करने में मुझे प्रोत्साहित करते रहे।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पुस्तकालय व कार्यालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ। उन्होंने इस शोधकार्य को सुगम बनाने हेतु काफी सहयोग दिए हैं।

जवाहर नवोदय विद्यालय, कालिकट के प्राचार्य श्री पी.के.नारायणन जी को मैं कभी भूल नहीं पाऊँगा जिन्होंने इस शोधकार्य को पूरा करने में प्रशासनिक तौर पर मेरी काफी मदद की थी। जवाहर नवोदय विद्यालय, कालिकट के शिक्षक बंधुओं व कर्मचारियों को इस समय कृतज्ञता के साथ स्मरण करता हूँ।

जवाहर नवोदय विद्यालय, इडुक्की के प्राचार्य श्री बेन्नी जोसफ, कार्यालय अधीक्षक

श्री.पी.जी.सुकुमारन, शिक्षक गण तथा अन्य कर्मचारियों को इस अवसर पर स्मरण करता हूँ वे हमेशा मुझे प्रोत्साहित करते रहे।

स्पाइसेस बोर्ड, कोच्ची की डॉ.जी.उषाराणी सहायक निदेशक (रा.भा.) तथा श्री.अनिलकुमार.एन, वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। वे सदैव मेरे प्रेरणास्रोत रहे।

मैं अपने सभी मित्रों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने इस शोधकार्य को संपन्न बनाने में हमेशा मेरा साथ दिया है। मेरे मित्र हेरमन पी.जे, इंदु.के.वी, संजीवकुमार.के, सोलजी.के.थामस, सजी कुरुपुं, राजन.टी.के, दीपक, प्रदीपकुमार, जोयस टोम, प्रदीप राज सभी को इस अवसर पर स्मरण कर रहा हूँ।

मेरे स्वर्गीय पिताजी श्री.के.जे वावच्चन तथा ससुर श्री.के.के.पौलोस को इस अवसर पर स्मरणांजलि अर्पित करता हूँ। उन्होंने मेरे इस शोधकार्य को संपन्न होते देखना चाहा था लेकिन अब वे मेरे साथ नहीं हैं।

मेरी प्रिय माताजी श्रीमती लिल्ली वावच्चन एवं सासजी श्रीमती रजीना पौलोस को इस अवसर पर आभार प्रकट करता हूँ जिनके असीम स्नेह और आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ रहे।

मेरे मामाजी श्री रोय आन्टणी, भाई श्री षैजू के वावच्चन, साला श्री जेयिन, जीजी श्रीमती जीन तथा उनके परिवारवालों के प्रति मैं आभारी हूँ। उनके प्रेम और प्रेरणा ने ही मुझे आगे बढ़ने की शक्ति दी। इनके अलावा अन्य सारे बंधु-मित्रों को भी इस समय याद करता हूँ जिनके सहयोग और प्रोत्साहन मुझे समय-समय पर मिलते रहे।

मैं अपनी प्रिय पत्नी जीवा और बेटियाँ इवलिन और इवांजलिन का सदा आभारी रहूँगा क्योंकि उनके असीमित प्यार, सहयोग एवं प्रेरणा के बिना यह शोधकार्य संपन्न नहीं हो पाता था।

इस शोध प्रबंध का टंकक श्रीमती जयन्ती टी आर के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने सही समय पर शोध प्रबंध को पूरा करने में मेरी मदद की।

05/12/08

सजीव के वावच्चन

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्ची - 22

पुरोवाक्

भारतीय संस्कृति की सबसे बडी विशेषता है कि उसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन कालक्रमानुसार हुआ करते है, किन्तु उसकी सत्ता सदैव अक्षुण्ण रहा करती है। इतिहास के उदयकाल से अब तक की भारतीय - संस्कृति की समालोचना करने से यह बात बहुत सरलता से स्पष्ट होती है कि संस्कृति मरती नहीं, मिटती नहीं।

संस्कृति के रूपायन में प्रकृति, समाज, कला, साहित्य, विज्ञान, नैतिकता, धर्म-भीरुता, आचार-विचार एवं रहन सहन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ऐसी अनेक पहलुओं के यथावत् मेल से ही भारतीय संस्कृति ने आज का महामहिम रूप धारण किया है। प्रत्येक प्रांत की सांस्कृतिक विशिष्टताएँ भारत की प्रोज्ज्वलता में चार चाँद लगाती हैं। इसलिए भारतीय संस्कृति की अतल गहराइयों में गोता लगाने के लिए हर प्रांत की संस्कृति एवं भाषा से परिचित होना नितांत आवश्यक है।

विज्ञान ने जहाँ आज विश्व को समेटकर छोटा बना दिया है, वहाँ अनुवाद की महत्ता और उपयोगिता को भी उसी अनुपात में बढ़ा दिया है। भारत जैसे विविधतावाले देश में राज्यों के बीच में भाषा रूपी दीवारें खड़ी हो गयी हैं। इन दीवारों को तोड़कर आपसी मिलाव का कार्य सिर्फ हिन्दी ही कर सकती है। इसके लिए हिन्दी को अन्य भाषाओं के करीब जाकर उनकी आत्मा को भली भाँति जानना पहचानना होगा ताकि उन भाषाओं से आवश्यक मदद लेकर हिन्दी शब्द भण्डार की श्रीवृद्धि की जाए और हिन्दी अखिल भारतीय स्तर पर बोली और समझी जाए ।

भारतीय संस्कृति को रूपायित करने में विभिन्न भाषाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। फिर भी प्रत्येक प्रांत और पुर की भाषाओं का प्रभाव उस इलाके में ज़्यादा होता है जहाँ वह व्यवहृत एवं प्रचलित होती है। यद्यपि राज्यों की भौगोलिक सीमा-रेखा खींची जा सकती है फिर भी भाषा की नहीं। भाषा का स्वरूप ऐसा है जो किसी क्षेत्र के अंतर्गत सिमट नहीं सकती।

राजभाषा की हैसियत मिलने के बाद हिन्दी भाषा को अखिल भारतीय स्तर प्रदाव करने का प्रयास ज़ारी है। इसके लिए अनुवाद की सहायता विशेष रूप से माँगी जाती है। लेकिन यह अनुवाद कार्य साहित्य की विभिन्न विधाओं तथा ज्ञान-विज्ञान के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों तक सीमित है। भाषा की आत्मा रूपी संस्कृति को पूर्ण रूप से छूने का प्रयास किसी ओर से नहीं हुआ है, यदि हुआ तो भी है, वह अपने आप में पूर्ण न होकर आंशिक या नाममात्र रह गया।

आर्य-द्रविड भाषा परिवार की भाषाएँ होने के नाते मलयालम से हिन्दी में सामान्य अनुवाद काफी कठिन है, जबकि कला और संस्कृति से जुडी हुई शब्दावली के अनुवाद का और कठिन हो जाना स्वाभाविक मात्र है। इससे पूर्व मलयालम की कला-सांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद संबंधी विषय में शोधकार्य बहुत कम या न के बराबर होने के कारण शोधार्थी के लिए उपयुक्त संदर्भ ग्रंथों का अभाव महसूस हुआ। प्रस्तुत शोध का विषय चुना गया है - "केरल की स्थानीय शब्दावली के हिन्दी अनुवाद की समस्याएँ : कला और संस्कृति के विशेष संदर्भ में।" इस अध्ययन के दौरान केरल की संस्कृति एवं कलाओं से जुडी हुई शब्दावली का सामान्य परिचय, हिन्दी से तुलना तथा अनुवाद की व्यावहारिक समस्याओं का विश्लेषण आदि करने का प्रयास हुआ है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है, उनके शीर्षक इस प्रकार हैं:-

पहला अध्याय	हिन्दी और मलयालम की भाषिक विशेषताएँ
दूसरा अध्याय	केरल की स्थानीय शब्दावली - एक विश्लेषण
तीसरा अध्याय	- कला संबंधी शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ
चौथा अध्याय	- केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ (खंड क & ख)
पाँचवाँ अध्याय	मलयालम-हिन्दी अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ

पहले अध्याय में हिन्दी और मलयालम की भाषिक विशेषताओं को समग्र रूप से आंकने का प्रयास किया गया है। दोनों भाषाओं के इतिहास का संक्षिप्त परिचय देने के बाद इनकी वर्णमाला, ध्वनि-प्रक्रिया, संज्ञा के स्तर पर शब्दावली का चयन, व्याकरणिक स्तर पर हिन्दी और मलयालम की तुलना आदि को स्थान दिया गया है। व्याकरणिक विशेषताओं का विश्लेषण लिंग, वचन, कारक, विभक्तियाँ, क्रिया, वाच्य तथा प्रयोग आदि पहलुओं को आधार बनाकर किया गया है। अध्ययन के दौरान यह तथ्य उभर कर सामने आ गया कि आर्य-द्रविड परिवार की भाषाएँ होने के नाते इन दोनों भाषाओं में व्याकरण के स्तर पर मूलभूत अंतर तो है फिर भी भारतीय भाषाएँ होने के नाते वाक्य संरचना का क्रम - कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रम - एक ही है। लिंग, वचन, विशेषण और कारक के प्रयोग में भिन्नता कुछ ज़्यादा ही दिखाई देती है।

"केरल की स्थानीय शब्दावली - एक विश्लेषण" नामक दूसरे अध्याय में केरल की स्थानीयता को रूपायित करनेवाले तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। इसके अंतर्गत केरल का इतिहास, भौगोलिक विशेषताएँ, धार्मिक विचारधारा, जाति-व्यवस्था, खान-पान, वेश-भूषा, कर्मकांड, त्योहार-पर्व, कलाएँ,

लोकनृत्य एवं लोकनाट्य, लोकगीत, मुहावरे, कहावतें, पहेलियाँ तथा अंदविश्वास एवं अनाचारों का संक्षिप्त सर्वेक्षण किया गया है। उपर्युक्त विवेचन सेयह स्पष्ट हो जाता है कि केरल में उत्तर भारत से पृथक एक विशिष्ट स्थानीयता का विकास हुआ है।

तीसरे अध्याय में कलासंबंधी शब्दावली के अनुवाद संबंधी समस्याओं के बारे में विवेचना हुई है। कलां से जुडी हुई शब्दावली का हरेक भाषा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ की कलाओं को मंदिर से जुडी हुई कलाओं व शास्त्रीय कलाओं तथा अनुष्ठान प्रधान कलाओं के रूप में वर्गीकृत करके उनसे जुडी हुई शब्दावली का विश्लेषण किया गया है। कला संबंधी शब्दावली का अनुवाद सबसे जटिल होता है। यहाँ शब्दानुवाद या भावानुवाद दोनों पूर्णतः सफल नहीं हो पाते। स्रोत भाषा में प्रयुक्त शब्द के लिए एक समान या समानार्थक शब्द लक्ष्य भाषा में गठित करने से अनुवाद कार्य पूर्ण नहीं होता क्योंकि कलाओं का मुख्य उद्देश्य आस्वादन है इसलिए अन्य भाषा-भाषी लोगों को आस्वादन के स्तर पर इन कलाओं का परिचय दिलाना ही अनुवादक का परम कर्तव्य बन जाता है।

“केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ ” नामक चौथे अध्याय को दो खंडों में विभक्त किया गया है। प्रथम खंड में केरल के प्रमुख लोकनृत्यों व लोकनाट्यों का विश्लेषण तथा हिन्दी प्रदेशों से तुलना प्रस्तुत की गई है। साथ ही साथ मुहावरों, कहावतों तथा पहेलियों का अध्ययन विश्लेषण भी हुआ है। केरल में प्रचलित ज़्यादातर लोकनृत्यों पर धार्मिक विचारधाराओं और धार्मिक अनुष्ठानों का प्रभाव दर्शनीय है। केरल में प्रचलित लोकनृत्यों में धार्मिक विचारधारा का जितना प्रभाव है उतना लोकनाट्यों में नज़र नहीं आता। ग्रामीण परिवेश में खेले जानेवाले इन नाट्यों में सरसता, सरलता एवं सहजता ही नज़र आती हैं। इसके साथ मलयालम के मुहावरों, कहावतों तथा पहेलियों के अनुवाद से जुडी हुई समस्याओं का भी आकलन हुआ है।

इस अध्याय के दूसरे खंड में लोकगीतों का विश्लेषण तथा अनुवाद संबंधी समस्याओं का विवेचन किया गया है। मलयालम तथा हिन्दी लोकगीत जीवन के समस्त तत्त्वों को उभारने में समर्थ हैं। ये लोकजीवन की सीधी, सत्य एवं सरस भावनाओं पर प्रकाश डालते हैं। इन गीतों को कई वर्गों में - धर्मपरक गीत, जातिपरक गीत, त्योहार-पर्वों से संबंधित गीत, कृषि गीत,ऋतुगीत, विविध गीत विभाजित करके अध्ययन किया गया है। लोकसंस्कृति-समाज, इतिहास, दर्शन एवं साहित्यिक प्रदेय की दृष्टि से मलयालम -हिन्दी लोकगीतों का विशेष महत्त्व एवं स्थान है। दोनों में साहित्यिकता, रसमयता, विचारात्मकता और मार्मिकता हैं। प्रांतीय भिन्नता, सांस्कृतिक विविधता एवं भाषापरक जटिलताओं को नज़र अंदाज़ करें तो दोनों की धाराएँ एक ही दिशा में बहने लगती हैं।

पाँचवें अध्याय में मलयालम-हिन्दी अनुवाद परंपरा, स्थानीय शब्दावली, कला संबंधी शब्दावली, लोकनृत्यों एवं लोकनाट्यों से संबंधित शब्दावली, मुहावरों, कहावतों, पहेलियों एवं लोकगीतों के अनुवाद

संबंधी व्यावहारिक समस्याओं का विश्लेषण किया गया है। उपर्युक्त सभी विषयों से जुड़े हुए अनुवाद संबंधी सभी पक्षों की चर्चा की गई है। केरल की स्थानीय शब्दावली के हिन्दी अनुवाद पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मलयालम शब्दावली का सामान्य अर्थ, प्रयोग वैशिष्ट्य से उद्भूत विशिष्ट अर्थ, प्रयोग एवं शैली की विविधता, विषयवस्तु तथा उससे जुडे केरल प्रदेश की सांस्कृतिक विशिष्टता आदि को सुरक्षित रखने का बडा दायित्व अनुवादक के ऊपर आ जाता है।

उपसंहार में इस शोधकार्य से उद्भूत निष्कर्षों एवं सुझावों को संक्षिप्त रूप से समाहित किया गया है।

नमूने के तौर पर केरल की स्थानीय शब्दावली के कुछ उदाहरण परिशिष्ट में दिए गए हैं।

यह शोध प्रबंध बडी विनम्रता के साथ विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसकी कमियों तथा गलतियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

05/12/08

सजीव के वावच्चन

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्ची - 22

विषयानुक्रमणिका

**विषय - केरल की स्थानीय शब्दावली के हिन्दी अनुवाद की समस्याएँ :
कला और संस्कृति के विशेष संदर्भ में**

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1 - 69

हिन्दी और मलयालम की भाषिक विशेषताएँ

हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास केरल की भौगोलिक एवं भाषिक विशेषताएँ मलयालम: उत्पत्ति एवं विकास - लिपि - मलयालम की ध्वनि प्रक्रिया वर्णमाला - मलयालम व्यंजन स्वनिम - हिन्दी की ध्वनि प्रक्रिया - संज्ञा के स्तर पर मलयालम शब्दावली का चयन संज्ञा के स्तर पर हिन्दी शब्दावली का चयन - व्याकरणिक संरचना के आधार पर हिन्दी और मलयालम की तुलना मलयालम की लिंग संरचना वचन - विभक्ति और कारक मलयालम की विभक्तियाँ क्रिया - मूल क्रिया तथा प्रेरणार्थक क्रिया - संयुक्त क्रिया - वाच्य और प्रयोग निष्कर्ष ।

दूसरा अध्याय 71 - 128

केरल की स्थानीय शब्दावली - एक विश्लेषण

स्थानीयता से तात्पर्य स्थानीयता को रूपायित करनेवाले तत्व -स्थानीयता और भूगोल - पहाड़ - नदियाँ झील (कायल्) - सागर - वनस्पति - मौसम - मिट्टी - सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ - केरल इतिहास - धार्मिक विचारधारा - जाति व्यवस्था - हिन्दू धर्म - 'अम्बलवासी' - क्षत्रिय - 'नायर' 'ईष़्वर' - ईसाई - इस्लाम - खान-पान - वेशभूषा - कर्मकाण्ड - त्योहार - पर्व - केरल की कलाएँ - मन्दिर से जुडी हुई कलाएँ - केरल की लोकनाट्य परंपरा - केरल के लोकगीत व लोक साहित्य - अंधविश्वास और अनाचार - लोकोक्तियाँ - मुहावरे पहेलियाँ - निष्कर्ष ।

तीसरा अध्याय 129 - 206

कला संबंधी शब्दों के अनुवाद की समस्याएँ

कलाओं का वर्गीकरण केरल की कला परंपरा केरल के प्रमुख वाद्य उपकरण - मंदिर से जुडी हुई कलाएँ व शास्त्रीय कलाएँ - कथकळि - कूत्तु - कूटियाट्टम् कृष्णनाट्टम् रामनाट्टम् कथकळि साहित्य अभिनय हस्तमुद्राएँ - वाचिक अभिनय - आहार्य अभिनय - वेश भूषा -कथकळि संगीत- कथकळि के वाद्य - रंग-मंच - प्रारंभिक कार्यक्रम - तुळ्ळल - मोहिनियाट्टम् - अनुष्ठान प्रधान कलाएँ - तेय्यम् -चेहरे व शरीर की सजावट - तेय्यम् के गीत - तेय्यम् के प्रकार - भगवतिप्पाट्टु - मुटियेर्‌रु - पटयणि - अय्यप्पन तीयाट्टु - पांपुम् तुळ्ळल - पाना तुळ्ळल - पूरक्कळि - हिन्दी प्रदेश के वाद्य उपकरण शास्त्रीय नृत्य- कला संबंधी शब्दावली का विश्लेषण अनुवाद संबंधी जटिलताएँ -निष्कर्ष।

चौथा अध्याय 207 - 271

केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ : खण्ड -क

केरल के लोक नृत्य - कणियान कळि - कूत्तु - कोल कळि - परिचमुट्टु कळि - मार्गम् कळि - ओप्पना - दप्पु मुट्टु कळि - तिरुवातिरा कळि/ कैकोट्टिक्कळि - हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोकनृत्यों का परिचय - पांडव नृत्य - नागर्जी नृत्य - देवी नृत्य - ऋतुविशेष के नृत्य - अछरी नृत्य - मेले के नृत्य - झोड़ा नृत्य चाँचरी नृत्य - छपेली नृत्य - छोलिया नृत्य - विदेशिया नृत्य - केरल तथा हिन्दी प्रदेश के लोकनृत्यों की तुलना - केरल के लोकनाट्य - चविट्टु नाटकम् - काक्कारशी नाटकम् - तोलप्पावक्कूत्तु - कोतमूरियाट्टम् - पोराट्टु नाटकम् - यक्षगानम् - पुलिकळि या कादुवा कळि - कुरत्तियाट्टम् हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोकनाट्य - लीलाएँ - रामलीला - कृष्णलीला - रासलीला - स्वाँग - खोड़िया - कठपुतली का तमासा - डिरामा- ढ़ोला- नौटंकी-केरल और हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोकनाट्यों की तुलना - मलयालम और हिन्दी के मुहावरे मलयालम मुहावरों की परंपरा - हिन्दी मुहावरों की परंपरा मुहावरों के प्रकार या आधार - दिनचर्या - खान-पान वेश-भूषा - शरीर के अंग और

जानवरों के नाम- स्थान संबंधी मुहावरे - कला संबंधी मुहावरे - त्योहार-पर्व संबंधी मुहावरे - हिन्दी और मलयालम की लोकोक्तियाँ/कहावतें - मलयालम और हिन्दी कहावतों की तुलना हिन्दी और मलयालम की पहेलियाँ पहेलियों का वर्गीकरण - पशुपक्षी संबंधी पहेलियाँ - पेड़-पौधे तथा फल-फूल संबंधी पहेलियाँ प्रकृति संबंधी पहेलियाँ शरीर संबंधी पहेलियाँ खाद्य वस्तुओं से संबंधित पहेलियाँ - घर-गृहस्थी संबंधी पहेलियाँ - विज्ञान-गणित-पुराण संबंधी पहेलियाँ - मलयालम-हिन्दी पहेलियों की तुलना - लोक-सांस्कृतिक शब्दावली के हिन्दी अनुवाद की समस्याएँ - निष्कर्ष ।

चौथा अध्याय 273 - 396

केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ : खंड-ख

केरल के लोकगीत - लोकगीत के प्रकार - धर्मपरक गीत - तोऱ्ऱम् पाट्टुकळ - भद्रकाली तोऱ्ऱम् - अय्यप्पन पाट्टुं - गंधर्वन पाट्टुं - नागप्पाट्टुं - गोदावरी तोऱ्ऱम् - केरल के जातिगीत - वेलन पाट्टुं-पाणन पाट्टुं कुऱवर पाट्टुं पुलयर पाट्टुं - मार्गम् कळि पाट्टुकळ - माप्पिळ पाट्टुं - बाल-गीत - त्योहार तथा पर्वों से संबंधित गीत - ओणप्पाट्टुंकळ - तिरुवातिर पाट्टुं - विविध गीत कृषिप्पाट्टुकळ - रोपनी के गीत सिंचाई के गीत सोहनी के गीत वटक्कन पाट्टुकळ - वंचिप्पाट्टुं - हिन्दी प्रदेश के लोकगीत - संस्कार संबंधी गीत -सोहर के गीत - मुंडन के गीत - यज्ञोपवीत के गीत - विवाह के गीत - गवना के गीत - मृत्यु संबंधी गीत - ॠतु संबंधी लोकगीत - सावन के गीत - बारहमासा गीत वसंत ॠतु संबंधी लोकगीत पुरुषों के होली गीत महिलाओं के होली गीत- व्रत-त्योहार संबंधी लोकगीत- राम नवमी - जन्माष्टमी महाशिवरात्री - तीज ते गीत जातिपरक गीत - अहीरों के गीत - कहारों के गीत - धोबियों के गीत - चमारों के गीत -देवी- देवताओं से संबंधित गीत - हनुमान के गीत - गंगा माता के गीत - शिव के गीत - चेचक मैया के गीत विविध गीत - श्रमगीत - पुरुषों के श्रमगीत - बालगीत - बालकों के गीत

बालिकाओं के गीत - मलयालम्- हिन्दी लोकगीतों की तुलना - लोकगीतों के अनुवाद संबंधी समस्याएँ - निष्कर्ष ।

पाँचवाँ अध्याय 397 - 453

मलयालम-हिन्दी अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ

मलयालम हिन्दी अनुवाद-परंपरा स्थानीय शब्दावली का अनुवाद कला संबंधी शब्दावली का अनुवाद- लोकनृत्यों एवं लोकनाट्यों से संबंधित शब्दावली का अनुवाद-मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद- पहेलियों का अनुवाद- लोकगीतों का अनुवाद- अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ- भौगोलिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नताएँ- व्याकरण की दृष्टि से भाषापरक भिन्नताएँ - सांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद का अभाव- शब्दावली के लिप्यंतरण का समस्याएँ- अनुवादक का दायित्व निष्कर्ष

उपसंहार 455 - 457

परिशिष्ट - केरल की स्थानीय शब्दावली 459 - 467

संदर्भ ग्रंथ सूची 469 - 486

पहला अध्याय

हिन्दी और मलयालम की भाषिक विशेषताएँ

पहला अध्याय

हिन्दी और मलयालम की भाषिक विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति को रूपायित करने में विभिन्न भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। फिर भी प्रत्येक प्रान्त और पुर की भाषाओं का प्रभाव उस इलाके में ज़्यादा होता है जहाँ वे व्यवहृत एवं प्रचलित होती है। यद्यपि राज्यों की भौगोलिक सीमारेखा खींची जा सकती है फिर भी भाषा की नहीं। भाषा का स्वरूप ऐसा है जो किसी क्षेत्र के अन्तर्गत सिमट नहीं सकती। इस अध्ययन में हिन्दी और मलयालम भाषाओं को लिया जाता है, फलतः दोनों के कार्यक्षेत्र और इतिहास पर विचार करना बहुत ज़रूरी है। यहाँ दिए हुए मानचित्र से हिन्दी और मलयालम के कार्य क्षेत्र का सामान्य ज्ञान मिल सकता है।

1.1 हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास

सबसे पहले हिन्दी पर विचार करें। हिन्दी उत्तर भारत के विशाल भूभाग में व्यवहृत भाषा है। विद्वानों ने पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी एवं पहाडी हिन्दी के व्यवहृत प्रदेशों को हिन्दी क्षेत्र माना है। इन सभी क्षेत्रों में हिन्दी ही शासन, शिक्षा एवं साहित्य की भाषा है अतः इस संपूर्ण क्षेत्र को ही हिन्दी क्षेत्र मान लेना सर्वथा उचित है। इस दृष्टि से हिन्दी क्षेत्र के अन्तर्गत बिहार, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, झारखंड, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा दिल्ली राज्यों का विस्तृत भू भाग आ जाता है। कुछ लोग अन्दमान द्वीप समूह को भी इसके अंतर्गत रखने के पक्षधर हैं।

आज भाषा के प्रति हम विशेष रूप से जागरूक हो गए हैं। प्रत्येक भाषाई क्षेत्र अपनी भाषा और बोली के प्रति विशेष रूप से सजग होता जा रहा है। हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) हिन्दी क्षेत्र (ख) अन्य भाषा क्षेत्र (ग) भारतेतर क्षेत्र

(क). हिन्दी क्षेत्र में मुख्यतः हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तरप्रदेश, झारखण्ड, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़ तथा बिहार आते हैं। गौणतः पंजाब के कुछ भाग तथा महाराष्ट्र के कुछ भाग भी इसमें आते हैं।

(ख) इसमें कर्नाटक तथा आंध्रा के दक्खिनी हिन्दीवाले भाग एवं कलकत्ता, शिलांग, मुम्बई तथा अहम्मदाबाद आदि भारत के अहिन्दी भाषी क्षेत्र के बड़े नगरों में बिखरे हुए कुछ क्षेत्र आते हैं।

(ग) भारत के बाहर भी कई देशों में हिन्दी भाषी लोग काफी बडी संख्या में बसे हैं जैसे मारिशम, फिजी, सूरिनाम, ट्रिनिडाड तथा नेपाल के सीमावर्ती इलाकों में हिन्दी भाषी हैं। इसके अतिरिक्त कई देशों में जैसे यूरोप, अमेरिका तथा एशिया के कुछ देशों के कुछ नगरों में हिन्दी भाषा बोली जाती है।[1]

हिन्दी शब्द

'हिन्दी' शब्द फारस और ईरान निवासियों की देन है। भारत का सर्व प्रथम नाम सिंधु प्रदेश था।[2] भाषा वैज्ञानिकों का अभिमत है कि भारत में जिन शब्दों में आदि और मध्य में 'स' मिलता है, फारसी में उन्हीं शब्दों में वहाँ पर 'ह' होता है। अतः नियम बना कि 'स' का फारसी में 'ह' आदेश

1.डॉ भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा - पृ. 27

2.डॉ जगदीश प्रसाद कौशिक,भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास - पृ. 316.

हो जाता है। इसी नियम के अधीन भारतीय 'सिन्धु' शब्द फारसी में 'हिन्दु' हो गया और 'हिन्द' भी हुआ। हिन्द में रहनेवालों को 'हिन्दी' कहा जाने लगा इस प्रकार सर्वप्रथम इस शब्द का उद्भव ईरान अथवा फारस में हुआ। प्रमाण में तर्क उपस्थित किया जाता है कि ग्रीक में इसका पर्यायवाची 'इन्दिके' मिलता है तथा निवासियों के लिए 'इन्दोई' मिलता है जो लैटिन में जाकर 'इण्डिया' या 'इन्डियन' शब्द बने। यह भारतीय आर्य परिवार के लिए ज्ञात किए गए विकास के नियमों के अधीन सही उतरता है। अतः 'हिन्दी' शब्द सिन्धी का ही फारसी रूपांतर है जो यहाँ के निवासियों के लिए प्रयोग में लाया जाता था।

डॉ कैलाशचन्द्र भाटिया के अनुसार - "शब्दार्थ की दृष्टि से हिन्दी का अर्थ है 'हिन्द का'। इस अर्थ में हिन्दी शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत। हिन्दुस्तान में बोली जानेवाली किसी आर्य या अनार्य भाषा के लिए किया जा सकता है किन्तु व्यवहार में हिन्दी उस बडे भूभाग की भाषा मानी जाती है जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाडी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिणी पूर्वी भाग में रायपुर तथा दक्षिण पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है। इस भूभाग के निवासियों के साहित्य, पत्र-पत्रिका, शिक्षा-दीक्षा, बोलचाल आदि की भाषा हिन्दी ही है।"[1]

1.1.1 हिन्दी भाषा का इतिहास

भारतीय आर्यभाषा का मध्ययुग 10 वीं शताब्दी के निकट समाप्त होता है। आधुनिक आर्य भाषाओं का प्रारंभ भी 1000 ई ही माना जाता है। इस बीच एक संक्रांति कालीन भाषा भी अस्तित्व में रही तो अवहट्ट या पुरानी हिन्दी कही जाती है। फलतः विगत हज़ार वर्ष के हिन्दी भाषा के इतिहास को निम्नरूप में समयबद्ध किया जा सकता है।

1. हिन्दी भाषा का प्राचीनकाल - 1000 - 1500 ई.
2. हिन्दी भाषा का मध्यकाल - 1500 - 1800 ई.
3. हिन्दी भाषा का आधुनिक काल 1800 - अब तक [2]

1.1.1.1 प्राचीन काल

प्राचीन काल को आदिकाल भी कहा जाता है। राजनैतिक दृष्टि से यह समय उथल-पुथल, धार्मिक दृष्टि से रूढ़िग्रस्त तथा पंगु एवं सामाजिक दृष्टि से शक्तिहीन था। हिन्दी भाषा के आदिकाल के

1. डॉ.कैलाशचन्द्र भाटिया, हिन्दी भाषा, पृ. 1 (खण्ड-II)
2. डॉ.कैलासनाथ पाँडेय, हिन्दी भाषा विकासात्मक परिदृश्य- पृ.11

पूर्व ही मुसलमानों के क्रूर आक्रमण का सिलसिला ज़ारी था। मुसलमानों के साथ भाषा के रूप में फारसी फैल रही थी। ऐसे व्यवस्थापित उठापटक में भी भारतीयों के साथ व्यवहार की भाषा शौरसेनी अपभ्रंश और उसका विकसित रूप पुरानी हिन्दी बनी। उस संदर्भ में डिंगल या पिंगल नामक भाषाओं को लिया जाता है। धार्मिक आन्दोलनों के कारण इस युग में हिन्दी भाषा को काफी महत्त्व मिला। जैन, सिद्ध और नाथ संप्रदायों के धार्मिक साहित्य, शिलालेख, ताम्रपत्र, अपभ्रंश काव्य, चारण काव्य आदि में पुरानी हिन्दी की बदलती रूप संरचना के उदाहरण मिलते हैं।

विद्वानों के मतानुसार जैन साहित्य, पश्चिमी अपभ्रंश प्रसूत है। 'हेम व्याकरण' तथा 'शब्दानुशासन' आदि में हिन्दी के प्रारंभिक स्वरूप दृष्टिगत होते हैं तो सिद्ध साहित्य के प्रमाण चर्या गीत और दोहा में उपलब्ध हैं। सिद्धों द्वारा अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषा का ही प्रयोग हुआ है। वास्तव में नाथपंथियों ने ही पुरानी हिन्दी का सच्चे अर्थ में प्रयोग किया जिन्होंने आगे चलकर कबीर जैसे कवियों को प्रेरणा दी।

प्राचीनकाल की भाषा के उदाहरण चारण काव्यों में भी मिलते हैं। नरपतिनाल्ह का 'बीसलदेव रासो' राजस्थानी भाषा से प्रभावित होते हुए भी इसमें कहीं कहीं खडीबोली के रूप भी पाए जाते हैं। चन्दबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता संदेहास्पद है फिर भी इसकी भाषा से हिन्दी के उत्थान का एक बिंदु अवश्य स्थिर होता है। हिन्दी भाषा के प्राचीनकाल के विकास के संबंध में अमीर खुसरो का नाम स्तुत्य है। इनकी भाषा आधुनिक हिन्दी के अनुरूप प्राचीन खडीबोली थी। ऐसा लगता है कि खुसरो के समय में ही हिन्दी भाषा का जन-व्यावहारिक रूप संपन्न होने लगा था।

संक्षेप में कहे तो आदिकालीन हिन्दी पर अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। इस काल में निम्नलिखित भाषाई विशेषताएँ दिखाई देती है -

क. 'ऐ' एवं 'ओ' संयुक्त स्वरों का ग्रहण।

ख. 'ढ़' 'ड़' ध्वनियों का उद्गम।

ग. 'न्ह','म्ह','ल्ह', जो पहले संयुक्त व्यंजन थे अब वे क्रमशः 'न','म','ल' के महाप्राण रूप में उभरकर आए, अर्थात् ये संयुक्त व्यंजन न रहकर मूल व्यंजन माने जाने लगे।

घ. तत्सम शब्दावली का अधिक प्रयोग।

ङ. मुसलमानों के आगमन से पश्तो, अरबी, फारसी व तुर्की शब्दों का भाषा में आगमन ।

च. अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप कम होते गए और हिन्दी के अपने रूपों का विकास होता गया।

छ. वियोगात्मक रूपों का प्रारंभ हुआ, सहायक क्रिया तथा परसर्गों का विकास भी यहीं से माना जा सकता है।

ज. वचन तीन के स्थान पर दो रह गए।

झ. नपुंसक लिंग समाप्त हो गया।

ञ. सहायक क्रियाओं का सूत्रपात।

1.1.1.2 मध्यकाल

इस युग को हिन्दी का स्वर्ण काल कहा जाता है। जब तक देश की परिस्थितियों में व्यापक परिवर्तन हो चुका था और तुर्की सम्राटों के हाथों से शासन सूत्र खिसककर मुगलों के हाथ में आ गया। मुगल-शासन की ओर से भाषा गत साहित्य सृजन किंवा संवर्धन में प्रशासनिक नीतियों में नमनीयता थी। फलतः इस युग की दो प्रमुख बोलियाँ ब्रज तथा अवधी का विकास हुआ। साहित्यिक स्तर पर ब्रज तथा अवधी प्रतिष्ठित हुई। किन्तु आम बोलचाल में खडीबोली भी गतिशील रही।

मध्ययुगीन कवियों के द्वारा ब्रज तथा अवधी का काफी प्रयोग हुआ। सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों ने पश्चिमी अपभ्रंश प्रसूत ब्रजभाषा को संपन्न बनाया। ब्रजभाषा की ख्याति का मुख्य कारण धार्मिक रहा। ब्रज का मुख्य व्यवहार केन्द्र मथुरा-वृंदावन था। कृष्णेतर कवियों ने भी ब्रजभाषा में रचनाएँ की। तुलसीदास ने ब्रजभाषा में ही 'विनयपत्रिका' तथा 'गीतावली' लिखीं।

मध्ययुगीन हिन्दी भाषा में एक ओर ब्रजभाषा में साहित्य प्रणयन हो रहा था तो दूसरी ओर अवधी भाषा पीछे नहीं थी। जायसी का 'पद्मावत' तथा तुलसीदास का 'रामचरितमानस' आदि अवधी की महान कृतियाँ हैं। ब्रजभाषा तथा अवधी के प्रभाव से खडीबोली को साहित्यिक हैसियत प्राप्त होने में विलंब हुआ। मध्यकालीन भाषा की प्रमुख विशेषताएँ यों हैं -

क. फारसी के प्रभाव से 'क़','ख़','ग़','फ़' आदि नए व्यंजन हिन्दी में आए।

ख. अरबी, फारसी, पश्तो, तुर्की व तत्सम शब्दों में वृद्धि हुई।

ग. यूरोप से संपर्क स्थापित हो जाने के कारण पुर्त्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी शब्द भी भाषा में आने लगे।

घ. अपभ्रंश का प्रभाव समाप्त हो गया।

ङ. भाषा में संयोगात्मकता कम रह गई। सहायक क्रिया या परसर्ग की संख्या पहले से अधिक हो गई।

च. अधिक तक पडना, सकना, जाना, बैठना, लगना, लेना, रहना, चढ़ना, माना, चलना, उठना जैसी सहयोगी क्रियाएँ प्रयोग में आने लगीं।

1.1.1.3 आधुनिक काल

मुगल सम्राट के निर्बल हो जाने पर बक्सर के स्थान पर 1764 में अंग्रेज़ों के साथ युद्ध के पश्चात् गंगाघाटी का पश्चिम भाग खुल गया। मध्यकाल की अपेक्षा आधुनिक काल में हिन्दी का विकास अधिक हुआ। अंग्रेज़ों ने सत्ता के विस्तार को ध्यान में रखकर अंग्रेज़ी भाषा के प्रचार बढ़ाया फलस्वरूप अंग्रेज़ी साहित्य का भी प्रभाव भारतीय समाज में पडा। यद्यपि गद्य साहित्य में खडीबोली का प्रयोग होता रहा तथा पद्य में ब्रजभाषा का प्रभाव ज़ारी रहा।

भाषाई विशेषताएँ

क. हिन्दी भाषा का पूर्ण विकास हुआ।

ख. अंग्रेज़ी के प्रभाव के कारण 'ऑ' स्वर का आगमान।

ग. हिन्दी में अंग्रेज़ी शब्दों के आगमन से ड़, ड पहले एक ही स्वनिम के संस्वन थे अब विपरीत स्थिति में आ गए - 'रेडियो' 'रोड'।

घ. आदिकाल में आए 'ऐ' और 'औ' पश्चिमी हिन्दी में मूल स्वर व पूर्वी हिन्दी में संयुक्त स्वर मान गए।

ङ. बोलचाल व साहित्यिक भाषा में अंग्रेज़ी का प्रभाव बढ़ने लगा।

च. कई बोलियों का विकास हुआ।

छ. प्रेस, दूरदर्शन, रेडियो, शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप व्याकरण का मानक रूप निश्चित हो गया।

ज. हिन्दी पूर्णतः वियोगात्मक भाषा बन गई।[1]

इस प्रकार देख सकते हैं कि आधुनिक काल में हिन्दी का सुव्यवस्थित तथा मानक रूप प्रयोग में आने लगा। संचार माध्यमों के प्रचार से भी हिन्दी को काफी मदद मिली। हिन्दी को राजभाषा का स्थान प्राप्त होने लगी हिन्दी तथा हिन्दीतर प्रदेशों में भी इसका प्रचार दिन व दिन बढता जा रहा है। अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण की प्रवृत्ति को अपनाते हुए अपने शब्द भण्डार की वृद्धि करने में भी अपनी रुचि दर्शाई गई।

1.2 केरल की भौगोलिक एवं भाषिक विशेषताएँ

प्राचीन काल से लेकर केरल भारत का अभिन्न अंग है। इसी वजह से भारतीय इतिहास में केरल की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति को रूपायित करनेवाली अनेक सांस्कृतिक सरिताओं में अपनी अलग पहचान रखनेवाली सांस्कृतिक धारा केरल की है। भौगोलिक दृष्टि से देखें तो केरल भारत के दक्षिण पश्चिम भाग में पूरब में पश्चिम घाटी कहनेवाले सह्याद्री पंक्तियाँ रूपी ताज धारण कर और पश्चिम में अरब सागर की लहरों रूपी घूँघरू बाँधकर स्थित है।[2] इसके पडोसी राज्य है तमिलनाडु तथा कर्नाटक। शायद इस विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण ही अन्य राज्यों से एकदम अलग एक खास प्रकार का राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण यहाँ रूपायित हुआ होगा। भारत के अन्य राज्यों से थोड़ी दूरी रखते हुए भी विदेशी देशों से दृढ़ संबंध स्थापित

1.डॉ भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान - पृ. 209-210

2. श्रीधर मेनोन , केरल चरित्रम - पृ. 9

करने में केरल ने अपूर्व सफलता दिखाई है। विदेशी यात्रियों के आगमन की सूचना इसका समर्थन कर रही है।

1.2.1 केरल शब्द की व्युत्पत्ति

प्राचीन केरल के विभिन्न ख्याति प्राप्त ग्रंथों में केरल का उल्लेख कई नामों से मिलता है। 'ऋग्वेद', वाल्मीकी कृत 'रामायण' 'महाभारत' 'वायूपुराण', अशोक के शिलालेख आदि में केरल का उल्लेख विभिन्न नामों से हुआ है।[1] विद्वानों के मतानुसार ये सभी कृतियाँ केरल की ओर संकेत देनेवाली हैं।

'केरल' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर भी काफी मतभेद है। नारियल के पेड को मलयालम में 'केरवृक्ष' कहते हैं। आम प्रचलित धारणा यह है कि नारियल के पेडों को प्रचुरता के कारण ही इस प्रांत का नाम केरल पडा है।[2] अतः 'केर' शब्द से केरल नाम की उत्पत्ति हुई है। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'चेरलन्' नामक राजा यहाँ शासन करता था, जिनके नाम पर राज्य का नाम 'चेरल' पडा। 'चेरल' शब्द कालान्तर में केरल बन गया होगा।[3] फिर भी 'केर' से 'केरल' शब्द की व्युत्पत्ति मानना ही अधिक सार्थक प्रतीत होती है।

1.2.2 भौगोलिक परिचय

मानचित्र से स्पष्ट हो जाता है कि केरल 48^{0} 18^{1}., $12^{0}.48^{1}$ उत्तर अक्षांशों (Axis) तथा 70^{0} 24^{1} पूर्वी देशांतर रेखाओं के बीच स्थित है। केरल का क्षेत्रफल लगभग 15000 वर्ग मील हैं (38855 वर्ग कि.मी) इसके समुद्र तट की लंबाई 360 मील तक है। निराले प्राकृतिक देश होने के कारण भौगोलिक ग्रंथों ने केरल की भू-प्रकृति को तीन खंडों में विभाजित किया है - पूर्व की पहाडी भूमि (मलनाट्टुं)[4] मध्यतल भूमि (इटनाट्टुं)[5] तथा समुद्र तट की भूमि (समतल [6])[7] पूर्वी देश की सह्यादि श्रृंखलाओं से युक्त पहाडी प्रदेश को मलनाट्टुं कहते हैं। इन पहाडियों के ऊँचे प्रदेश घने जंगलों से आवृत

1.डॉ तंकमणि अम्मा, संस्कृति के स्वर - पृ. 5

2.पूत्तेष़त्तु रामन मेनोन, केरलत्तिल - पृ. 188

3.डॉ तंकमणि अम्मा, संस्कृति के स्वर - पृ.-7

4.मलनाट्टुं - पर्वत के लिए मलयालम में 'मला' शब्द प्रचलित है। इसलिए पर्वतों का प्रदेश 'मलनाट्टुं' बन गया।

5. इटनाट्टुं - मलनाट्टुं और समतल के बीच की भूमि 'इटनाट्टुं' है।

6. समतल - समुद्र तट के मैदानी प्रदेश 'समतल'कहलाते हैं।

7. डॉ एन ई विश्वनाथ अय्यर, केरल - पृ. 11

है और अन्य भागों में चाय, कॉफी, रबड़ तथा इलायची आदि के हरे भरे बागान दर्शनीय है। पश्चिम भाग में सागर के तटीय प्रदेश को समुद्र तट की भूमि कही जाती है। यहाँ की मिट्टी रेत से भरी हुई है। यहाँ नारियल पेड़ों की जो बहुलता है इसके कारण हर मौसम में हर कहीं हरियाली की अनुपम सुन्दरता दिखाई देने लगती है। इस प्रदेश की दूसरी प्रमुख फसल चावल है। पहाडी भूमि और तटीय प्रदेश के बीच मध्यतल भूमि का स्थान है। लाल रंगवाली मिट्टी इस प्रदेश की विशेषता है। छोटे-छोटे पहाड और लंबी-लंबी घाटियों में मुख्य रूप से चावल, रबड़, 'कप्पा' (Tapioca) काली मिर्च, अदरक, हल्दी तथा अन्य मसालेदार पौधों की खेती की जाती है।

केरल की भौगोलिक स्थिति और अनोखी संस्कृति में बहुत गहरा संबंध है। भारत के दक्षिण सीमा में सह्याद्रि चोटियों तथा पश्चिम के अरब सागर की चौकसी में रहने के कारण केरल उत्तर भारत की कई भयंकर लडाइयों तथा आन्दोलनों से बचता रहा। इसी कारण उत्तर से आये आर्य और जैनों के केरल आगमन में बहुत देरी हो गई। इसलिए अन्य संस्कृतियों से अछूत एवं अप्रभावित एक अनोखी संस्कृति का निर्माण यहाँ हुआ। उदाहरण के तौर पर देखिए,ब्राह्मण तथा मुसलमान 'मक्कत्तायम'[1] का पालन करनेवाले हैं। लेकिन केरल में उन लोगों के बीच में भी 'मरुमक्कत्तायम्'[2] काफी मात्रा में प्रचलित है। पय्यन्नूर गाँव के नंपूतिरी (केरल के ब्राह्मण) तथा मलबार के माप्पिला (उत्तर केरल के मुसलमान लोग) आदि जातियों का उल्लेख इस संदर्भ में लिया जा सकता है। केरल के साहित्य, कला और वास्तु कला के विकास में भी प्राकृतिक एवं भौगोलिक विशेषताओं का प्रभाव देख सकते हैं। केरल की 'कथकळि','चाक्यार कूत्तु', :'ओट्टम तुळ्ळल','मोहिनियाट्टम्' आदि कलाओं का विकास भी इस वातावरण में ही हुआ है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि केरल बाहरी संपर्क से बिलकुल अलग रहा था। केरल के पुत्र अद्वैत के महान आचार्य आदि शंकर के भारत भ्रमण में इन भौगोलिक स्थितियों के कारण कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई थी। प्राचीन काल में चालूक्यर, राष्ट्रकूटर, पांड्यर, चोळर आदि राजवंशों के कई आक्रमण यहाँ हुए। इसके बाद विजयनगर तथा मैसूर के राजाओं ने भी अपनी सेना को लेकर यहाँ पर चढ़ाई की।[3] मैसूर (कर्नाटक) तथा तमिलनाडु से केरल का जो संबंध रहा है इसके कारण यहाँ की भाषा और संस्कृति में उन राज्यों की भाषा और सस्कृति का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है। दक्षिण केरल की भाषा में तमिल तथा उत्तर केरल की भाषा में कन्नड का प्रभाव इसका दृष्टांत है। इतना ही नहीं केरल के उत्तर और दक्षिण इलाकों के खान-पान, रहन-सहन और उत्सव-त्योहार में भी इसका असर दिखाई देता है।

1.मक्कात्तायम - Patriarchal Society - पितृ संपत्ति पुत्र को देने की परंपरा।
2.मरुमक्कत्तायम - Matriarchal Society - बहन की संतान को उत्तराधिकार देने की पृथा।
3.ए श्रीधर मेनोन - केरल चरित्रम् - पृ. 14-15

विदेशी लोगों से मिलते-जुलते रहने के कारण भी यहाँ की संस्कृति बहुत अधिक प्रभावित हुई है। मध्य केरल के कोच्ची बहुत समय तक यहूदी, डच्च्, फिरंगी तथा अंग्रेज़ लोगों के संपर्क में रहा। इसी वजह से यहाँ के जीवन में इन संस्कृतियों का असरदार प्रभाव देखा जा सकता है। इस दृष्टि से देखें तो निसंकोच रूप से यह कह सकते हैं कि यहाँ की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों से उद्भूत आदान-प्रदान की भावना ही केरल की सबसे बडी विशेषता है।

1.3. मलयालम : उत्पत्ति एवं विकास

मलयालम भाषा की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न मत प्रचलित है जिनमें से मुख्य ये है -

क. मलयालम का जन्म संस्कृत से हुआ है।

ख. बोलचाल की संस्कृत से, जिसे प्राकृत भी कहा जाता है, मलयालम की उत्पत्ति हुई है।

ग. मलयालम तमिल की पुत्री है।

घ. संस्कृत और तमिल के सम्मिलन से मलयालम का जन्म हुआ।[1]

ङ. मलयालम मूल द्रविड की पुत्री तथा तमिल की भगिनी है।[2]

लेकिन आधुनिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि मलयालम की व्युत्पत्ति अन्य द्रविड भाषाओं के समान मूल द्रविड से हुई है। कुछ शोध कार्यो ने यह स्थापित किया कि मूल द्रविड़ परिवार से पहले मलयालम अलग हुई और तमिल बाद में। मूल द्रविड भाषा के शब्द 'अ' अंतवाले थे और उसी के समान मलयालम शब्द 'अ' अंतवाले हैं। इतना ही नहीं मलयालम में क्रियाओं के साथ लिंग-वचन प्रत्ययों के प्रयोग का नितांत अभाव, उसके समान तमिल में अप्रचलित कई शब्दों का प्रयोग मलयालम में सामान्य रूप से हो जाना आदि बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मलयालम मूल द्रविड परिवार की भाषा है।[3]

तमिल या मूल द्रविड परिवार की भाषा से विकसित होने पर भी मलयालम के विकास के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है

केरल की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति

क. केरल पूर्वी दिशा के पर्वत शृंखलाओं की वजह से तमिलनाडु से बिलकुल अलग रहे इसलिए तमिलनाडु तथा तमिल भाषा के साथ केरलवालों के संबंध में कमी आ गई। जब तक केरल तमिल

---

1. श्री इळम् कुळम् कुञ्ञन पिल्लै, केरल भाषयुटे विकास परिणामङ्ङल - पृ. 23

2. श्री ए के पिषारडी, मलयालम भाषयुम् साहित्यवुम् - पृ. 33-36

3. श्री पी के पिल्लै, हिस्टरी ऑफ मलयालम लिटरेचर - पृ. 6

राजाओं के शासन के अधीन रहे तब तक तमिल तथा मलयालम एकसाथ चलती थी।[1] लेकिन ऐसे शासन समाप्ति के बाद पूर्वी पहाडी शृंखलाएँ पारकर केरल आनेवालों तथा यहाँ से तमिलनाडु जानेवालों की संख्या बहुत कम हो गई। जब ऐसा संपर्क कम हो गया तब भाषाओं में भिन्नता बढ़ती गई।

ख. केरल के लोगों की विशिष्ट सांस्कृतिक परंपरा

पहले ही बताया जा चुका है कि केरल की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपरा है 'मरुमक्कत्तायम' धोती का पहनाव जैसी रीति-रिवाज़ों की वजह से केरल तमिलनाडु से अलग हो गया तद्वारा तमिल भाषा से भी।

ग. ब्राह्मणों (नंपूतिरि) का प्रभाव एवं आर्य-द्रविड संस्कृति

शताब्दि के पहले ही ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन जैसे आर्य लोग दक्षिण भारत आये थे। इनमें से ब्राह्मण लोगों का केरल आगमन ६ वीं शती से प्रारंभ हुआ था। केरल के इतिहास से पता चलता है कि यहाँ के शासकों ने समय-समय पर ब्राह्मण लोगों की सुख सुविधा एवं मान-सम्मान के लिए बहुत कुछ किया था[2]। इनका अनुचित लाभ उठाकर ब्राह्मण लोगों ने अपना प्रभाव केरल समाज में जमाया। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कई नियमों का निर्माण किया और प्रचलित नियमों में परिवर्तन लाया। फलतः आर्य-द्रविड संस्कृति का मिलन केरल में हुआ। इसका प्रभाव भाषा में पडना स्वाभाविक ही था। भिन्न वर्गवाले लोगों के मिलन के समान विभिन्न भाषाओं का भी मिलन हो गया। इस प्रकार तमिल परिवार से संस्कृत की ओर झुकी हुई मलयालम विकसित हुई। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मूल द्रविड परिवार की भाषा होने के नाते केरल के विशिष्ट वातावरण में संस्कृत, प्राकृत और तमिल भाषाओं के प्रभाव और दबाव में आकर भी अपने अलग व्यक्तित्व को कायम रखकर ही मलयालम भाषा विकसित हुई है।

1.3.1. मलयालम शब्द की व्युत्पत्ति

मलयालम भाषा के नाम की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। ऐसा कहा जाता है कि पहले मलयालम शब्द भाषा सूचक नहीं रहा बल्कि देशसूचक था और भाषा सूचक शब्द था'मलयाण्मा'। आजकल 'मलयालम' देश की भाषा के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।[3] 'मलयाण्मा' शब्द अभी पुरानी मलयालम भाषा के लिए प्रयुक्त होता है।

1.श्री ए आर राज राज वर्मा, केरल पाणिनीयम - पृ. 37
2.श्री ए आर राज राज वर्मा, केरल पाणिनीयम - पृ. 38-39
3.श्री ए आर राज राज वर्मा, केरल पाणिनीयम - पृ. 25

मलयालम शब्द की उत्पत्ति के संबंध में दो मत मुख्य रूप से प्रचलित है। पहले मत के अनुसार 'मला' (पहाड) और 'आलम्' (सागर) के बीच में स्थित प्रदेश होने के कारण इस देश का नाम मलयालम पडा।[1] दूसरा मत है 'मला' का मतलब है पहाड और 'अलम्' का अर्थ है देश अर्थात् मलयालम शब्द का अर्थ है पहाडों का देश। इस प्रकार देश का नाम मलयालम बन गया और बाद में देशीवाचक शब्द भाषावाचक बन गया।

मलयालम भाषा की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। इसकी व्युत्पत्ति को लेकर चार मत प्रचलित है।

(क) संस्कृत से उद्भूत

(ख) तमिल से उद्भूत

(ग) तमिल व संस्कृत के मेल से उद्भूत

(घ) स्वतंत्र रूप से विकसित

यदि इन बातों पर विचार करें तो सबसे पहले प्रथम मत का खंडन करना पडेगा क्योंकि लिपि एवं व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत तथा मलयालम में काफी अंतर पाए जाते हैं। लेकिन इससे तात्पर्य यह नहीं है कि दोनों भाषाओं में कोई संबंध नहीं है। शब्द भण्डार की दृष्टि से देखें तो मलयालम में काफी संस्कृत शब्द पाए जाते हैं। दूसरा मत है कि तमिल से मलयालम की व्युत्पत्ति हुई है। किन्तु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों भिन्न भिन्न भाषा होने के कारण तमिल से मलयालम की उत्पत्ति मानना उचित नहीं हैं। परन्तु यह स्वीकार करना पडता है कि प्राचीन मलयालम तमिल भाषा से काफी प्रभावित रही थी। 9 वीं शताब्दी के बाद दोनों भाषाएँ एक दूसरे से पृथक हो गई।[2] तीसरे मत के अनुसार संस्कृत-तमिल भाषाएँ मिलकर मलयालम बनी है। संस्कृत तथा तमिल भाषाओं के शब्द भण्डार तथा व्याकरण से मलयालम को काफी कुछ मिला है लेकिन इस लेन-देन की प्रवृत्ति को पूर्णतः स्वीकार करते हुए भी इन दोनों भाषाओं के मिश्रण ही मलयालम है ऐसा कहना असमीचीन प्रतीत होता है। पंडितों की

1.श्री इळम् कुळम् कुञ्ञन पिलै, केरल भाषयुटे विकास परिणामड्डळ - पृ. 108
2.टी एम चुम्मार, भाषा गद्य साहित्य चरित्रम् पृ. 5-6

विचारधाराओं के विश्लेषण तथा भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार मलयालम द्रविड परिवार की स्वतंत्र भाषा है। समय की गति के अनुसार मलयालम द्रविड भाषा से क्रमशः पृथक होती गई और केरल के निजी परिवेश में रूपायित एवं विकासप्राप्त स्वतंत्र भाषा बन गई।

1.3.2. मलयालम भाषा का विकास

एक द्रविड भाषा होने के नाते मलयालम में इस परिवार की विशेषताएँ परिलक्षित होती है। मलयालम का तमिल से घनिष्ठ संबंध रहा था। 'केरल पाणिनीयम' के रचयिता श्री ए आर राजराजवर्मा के अनुसार केरल की आदिम भाषा तमिल थी [1] और विभिन्न परिस्थितियों से गुज़रकर, अन्य भाषाओं के प्रभाव में आकर तथा परिवर्तन की सीढ़ियाँ पार करके ही आधुनिक मलयालम बन गई है। उनके अनुसार मलयालम भाषा के विकास के इतिहास का निम्नलिखित काल विभाजन संभव है।

क. प्रथम चरण - किशोरावस्था (करिंतमिष़ काल) 825 ई. 1325 ई.
ख. द्वितीय चरण बाल्यावस्था (मलयाण्मा काल) 1325 ई. 1625 ई.
ग. आधुनिक काल - यौवनावस्था - 1625 ई. से अब तक [2]

प्रथम चरण में मलयालम पूर्ण रूप से तमिल के पंजे में रही। इस समय संस्कृत का प्रभाव प्रारंभ हो गया था लेकिन तमिल भाषा के स्वामित्व के सामने उसका कोई अस्तित्व नहीं था। तमिल भाषा की प्रबलता के कारण ही इस काल को 'करिंतमिष़' काल कहते हैं। वास्तव में यह मलयालम की किशोरावस्था ही है। द्वितीय चरण में तमिल से बढ़कर संस्कृत का प्रभाव बढता गया और इतना बढ गया कि 'मणिप्रवाळम्'[3] नामक एक शैली भी विकसित हो गई। तमिल काव्यों का प्रचार होने के साथ-साथ 'चेन्तमिष़' का अर्थग्रहण करना कठिन हो गया फलतः स्थानीय भाषाओं का प्रचार भी बढ़ता गया। लेकिन पंडित ब्राह्मण लोग तथा संस्कृतप्रिय शासकों ने स्थानीय भाषाओं को उतना महत्व नहीं दिया जितना संस्कृत को दिया जाता था। फिर भी स्थानीय भाषा का तिरस्कार करके पूर्णतः संस्कृत में लिखी जानेवाली रचनाओं का आम जनता के बीच ज़्यादा प्रचार न मिलने की वजह से संस्कृत मिश्रित भाषा की ओर ध्यान देना पडा। फलस्वरूप दोनों पक्षों को एक हद तक तुष्ट कर सका। तृतीय चरण मलयालम भाषा के पूर्ण विकास का काल है। संस्कृत तथा तमिल का सहारा लेते हुए भी अपने पैरों पर खडे रहने

1.ए. आर राज राजवर्मा, केरल पाणिनीयम् - पृ. 40-58
2.ए. आर राज राजवर्मा, केरल पाणिनीयम् - पृ. 59-60
3.कविता रचने की एक भाषा शैली जिसमें संस्कृत और मलयालम के मिश्रित रूप का प्रयोग किया जाता है।

की क्षमता इस युग में ही मलयालम को प्राप्त हुई। मलयालम की अपनी लिपि एवं वर्णमाला विकसित हुई।[1] 'आर्य लिपि' को अपनाने की वजह से इस प्रांतीय भाषा की सुन्दरता और मौलिकता बढ़ती गई। वर्णमाला के विकास के कारण इसका बाह्यरूप भी एकदम बदल गया।

आगे मलयालम और हिन्दी की ध्वनि प्रक्रिया पर विचार करेंगे।

1.4. लिपि

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अपने विचारों को अन्य लोगों तक पहुँचाना चाहता है। प्राचीन काल में भाषा का ज्ञान न होने पर मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति हाव-भाव, ध्वनि संकेतों एवं इशारों से करता रहा होगा। वाक्शक्ति के विकसित होने पर मानव ने भाषा के मौखिक रूप को अपनाया। भाषा विकास के साथ दूर स्थित मनुष्यों तक अपने विचार प्रेषित करने तथा आनेवाली पीढ़ि के लिए अपने विचार सुरक्षित रखने की समस्या आई। मानव ने इस समस्या का समाधान लिपि के आविष्कार से किया। इससे प्रतीत होता है कि भाषा-विकास के पश्चात् ही लिपि का विकास हुआ होगा। विद्वानों ने भाषा की तरह ही लिपि की भी अनेक परिभाषाएँ दी हैं

'व्यक्ति अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग करता है, उसे लिपि कहते है।'[2]
'लिपि वह माध्यम है जिसके सहारे भाषा काल तथा स्थान की सीमा के बन्धन को पार कर जाती है।'[3]
'मानव भाषा के अस्तित्व को स्थिर रखने के लिए जिन चित्रों या चिह्नों का सहारा लेता है, उसे लिपि कहते हैं।'[4]

सिंधु घाटी की लिपि को दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि ई.पू.4000 तक लेखन कला का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। इससे यह ज्ञात होता है कि लगभग 10000 ई.पू. में लेखन कला का उद्भव हुआ होगा और 4000 ई.पू. तक धीरे धीरे लिपि का विकास होता रहा होगा। ऐसे देखें तो 6000 वर्षों में लिपि स्वरूप बदलता रहा होगा। इस विकास यात्रा को संक्षिप्त रूप में डॉ भोलानाथ तिवारी ने यों व्यक्त किया ।

1. चित्र लिपि
2. सूत्र लिपि
3. प्रतीकात्मक लिपि
4. भावमूलक लिपि
5. भाव-ध्वनिमूलक चित्र लिपि
6. ध्वनिमूलक लिपि[5]

1.ए. आर राज राजवर्मा, केरल पाणिनीयम् पृ. 59-60
2. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान - पृ. 461
3.वही
4.डॉ अम्बा प्रसाद सुमन, हिन्दी भाषा - पृ. 217
5. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान - पृ. 462

भाषा वैज्ञानिकों ने ध्वनिमूलक लिपि को सबसे परिमार्जित लिपि माना है क्योंकि इसमें प्रत्येक ध्वनि को अंकित करने का सामर्थ्य है। इस लिपि की सबसे बडी विशेषता यह है कि वस्तु या भाव को न व्यक्त कर, ध्वनिमूलक चिह्नों के आधार पर वस्तु या भाव के नाम को अंकित किया जाता है। ध्वनिमूलक लिपि का और विभाजन हो सकता है जैसे

1. अक्षरात्मक लिपि 2. वर्णनात्मक लिपि

दुनिया की सभी भाषाओं को लें,लिपि की दृष्टि से एक ही भाषा परिवार की भाषाओं में समानताएँ हैं तो कुछ में विषमताएँ पाई जाती है। कुछ ऐसी भाषाएँ और बोलियाँ हैं जिनकी लिपि नहीं हैं। हिन्दी भारोपीय परिवार की भाषा है और आगे उसकी लिपि पर विचार करेंगे।

जिस लिपि में हिन्दी लिखी जाती है उसका नाम नागरी लिपि है। इसके लिए देवनागरी शब्द भी प्रयुक्त है। नागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है जो भारत की प्राचीनतम लिपि है। प्राचीनतम होने के साथ यह सरलता और निर्दोषता की दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ है।

आधुनिक नागरी के विकास का समय 15-16 शताब्दी माना जाता है। आजकल इसी लिपि में हिन्दी, संस्कृत, मराठी आदि भाषाओं के लेखन-मुद्रण का कार्य हो रहा है। नागरी लिपि अक्षरात्मक है और उसकी वर्णमाला सर्वाधिक वैज्ञानिक है। यदि विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखें तो अच्छी एवं वैज्ञानिक लिपि के लिए आवश्यक सारे प्रमुख गुण जैसे-स्वर या व्यंजनों में विभाजन, स्थान तथा प्रयत्न के अनुकूल प्रत्येक ध्वनि के लिए पृथक ध्वनि चिह्न, एक ध्वनि चिह्न से एक ही ध्वनि का ज्ञान, ध्वनियों की संपूर्णता, हस्वता तथा दीर्घता का स्पष्ट उल्लेख क्रमानुसारिता, सुन्दरता, सरलता, शीघ्रलेखता नागरी लिपि में विद्यमान है। दुनिया की सबसे वैज्ञानिक लिपियों के रूप में नागरी को भी स्थान प्राप्त है।

1.4.1 मलयालम लिपि

पहले ही बताया जा चुका है कि मूल द्रविड भाषा से ही मलयालम का विकास हुआ है। लिपि के विकास के संबंध में विचार करें तो सबसे पहले 'वट्टेषुत्तुं' नामक वर्णमाला की चर्चा करनी होगी।[1] इसका प्रचार चेर-पाण्ड्य देशों में था और 15 वीं शताब्दी से इन देशों से 'वट्टेषुत्तुं' लुप्त होने लगा। लेकिन केरल में 18 वीं शताब्दी तक इसके प्रचार और प्रयोग होते रहे। पत्राचार, ग्रंथ रचना तथा शिलालेखों के लिए वट्टेषुत्तुं का ज़्यादातर प्रयोग होता था।

1. पी के परमेश्वरन नायर, मलयालम साहित्य चरित्रमम् - पृ. 9-10

कालान्तर में 'वट्टेषुत्तु' से 'कोलेषुत्तु' नामक लिपि का विकास हुआ। 'कोल' (बडी सूई के समान बनाए गए लकडी या लोहे के टुकडे जिनसे सूखे ताड़ के पत्तों में या ताम्र पत्रों में लिखे जाते हैं) से लिखने कारण ही शायद इस लिपि को यह नाम मिला होगा। 'कोलेषुत्तु' 'वट्टेषुत्तु' से ज़्यादा भिन्न नहीं है। 'कोलेषुत्तु' के समय में 'ओ' 'ऐ' आदि के लिए लिपि चिह्नों का आविर्भाव हुआ। इस लिपि का ज़्यादा प्रचार कोच्ची तथा मलबार में था और तिरुवनन्तपुरम से दक्षिण की ओर 'मलयाण्म' नामक लिपि का प्रचार था, जिसका विकास भी 'वट्टेषुत्तु' से हुआ था।

उपर्युक्त तीनों लिपियों के प्रयोगकाल में लिपि का काफी परिवर्तन हुआ फिर भी इनका वाचन उतना सुकर नहीं था। इन तीनों में से बेहतर 'वट्टेषुत्तु' ही था। उसका प्रयोग केरल भर में था और लिपि के प्रयोग में प्रादेशिक भिन्नता नहीं थी। लेकिन संयुक्ताक्षर, ऐ ओ आदि का अभाव, चिह्नों के लिए संकेतों की कमी आदि कई प्रकार की कमज़ोरियाँ इसमें थीं। 'कोलेषुत्तु' में भी ऐसी कमज़ोरियाँ बहुत थीं और प्रादेशिकता का प्रभाव बहुत था। मलयालम में वर्णों के जटिल आकार, तमिल रूपों की अधिकता, पदों के संकुचित रूप आदि को लेकर कई कठिनाइयाँ थीं। इन कारणों से ही होगा कि उपर्युक्त लिपियाँ लुप्त होती गई और आज की लिपि की मूल लिपि, 'ग्रंथ लिपि' का विकास होता रहा। ग्रंथ लिपि में ऐसी कठिनाइयाँ बहुत कम थी इसलिए इसे सभी प्रदेशों में काफी मान्यता मिली।

दक्षिण भारत में 7 वीं शताब्दी से लेकर ग्रंथ लिपि का प्रचार माना जाता है। मलयालम में इसका आविर्भाव 'मणिप्रवालम्' साहित्य शैली के साथ हुआ होगा। बाद में इस लिपि का परिमार्जित रूप 'आर्य' लिपि का विकास हुआ। वही आज भी प्रचलित है।

वैज्ञानिकता की दृष्टि से देखें तो मलयालम की आर्य लिपि काफी वैज्ञानिक मानी जाती है। वैज्ञानिकता के प्रसंग में 'नागरी' के जितने भी गुण बताए गए हैं वे मलयालम में भी विद्यमान है। संस्कृत से हिन्दी और मलयालम में प्रयुक्त शब्दावली की वजह से दोनों भाषाएँ काफी निकट आ गई है। लेकिन लिपि की दृष्टि से दोनों में कोई समानता नहीं है।

1.5 मलयालम की ध्वनि-प्रक्रिया

ध्वनि प्रक्रिया पर विचार करने से पहले 'ध्वनि' शब्द का विश्लेषण अनिवार्यतः आवश्यक है। शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से समझना चाहें तो कह सकते हैं कि "ध्वनि वायु मंडलीय दबाव में परिवर्तन या उतार चढ़ाव का नाम है। यह परिवर्तन वायु-कणों के दबाव तथा विरलन के कारण होता है।" [1] इतनी

1. भोलानाथ तिवारी , हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण - पृ. 11

गहराई और सटीकता में न जाकर, व्यावहारिक रूप में भाषा के प्रसंग में इतना कहना भी पर्याप्त होगा कि जो कुछ हम कान से सुनते हैं, ध्वनि है। किन्तु ध्वनि का यह रूप काफी विस्तृत है। हमें न मालूम कि हम कितनी प्रकार की ध्वनियाँ सुनते हैं। वस्तुतः ध्वनि शब्द से बोधित होनेवाली अनन्त प्रकार की ध्वनियों में प्रत्येक ध्वनि से भाषा का संबंध नहीं है। इसलिए ध्वनि के इस सामान्य और अत्यंत व्यापक रूप से अलगाने के लिए भाषा में प्रयुक्त ध्वनि को प्रायः 'भाषा ध्वनि' कहते हैं। व्याकरण और भाषा शास्त्र आदि में प्रायः ध्वनि शब्द का प्रयोग इस भाषा ध्वनि के लिए ही होता है। भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि है। भाषा की इन ध्वनियों को लिखित रूप देते समय वर्ण कहते हैं। उन वर्णों का प्रयोग ध्वनि और ध्वनि चिह्न दोनों के लिए होता है।

1.5.1. **मलयालम की वर्णमाला**

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऎ (ह्रस्व) ए (दीर्घ) ऐ ऒ (ह्रस्व) ओ (दीर्घ) औ अं।

व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ			
च	छ	ज	झ	ञ			
ट	ठ	ड	ढ	ण			
त	थ	द	ध	न			
प	फ	ब	भ	म			
य	र (as in Ram)	ल	व	श	ष	स	ह

मलयालम के विशेष व्यंजन

ळ ऴ ऱ (as in Rose) ऱ्ऱ (as in cattle)

ऩ (दंत्य अनुनासिक)

प्रायः सभी भाषाओं में ध्वनियाँ दो प्रकार की होती है : स्वर और व्यंजन। ध्वनियों को स्वर और व्यंजन इन दो वर्गों में किस आधार पर बाँटा जाय या स्वर और व्यंजन में क्या अंतर है, या इनकी एक दूसरे से भेदक परिभाषा क्या हो, इन सबके संबंध में काफी मतभेद है। भारत में परंपरागत धारणा यह रही है कि "स्वर उन ध्वनियों को कहते हैं, जिनका उच्चारण अपने आप हो सके, इसके विपरीत व्यंजन उन ध्वनियों को कहते हैं जिनका उच्चारण स्वरों की सहायता के बिना न हो सके।"[1] व्यावहारिक

1. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण - पृ. 15

दृष्टि से यह परिभाषा ठीक लगती है लेकिन आधुनिक भाषाशास्त्र में स्वर-व्यंजन के अन्तर या उनकी भेदक परिभाषा के संबंध में कई मत हैं। कुछ लोगों के अनुसार स्वर उन ध्वनियों को कहते है, जिनके उच्चारण में हवा मुख विवर से बिना रुकावट के निकल जाती है, इसके विपरीत व्यंजन उन ध्वनियों को कहते है, जिनके उच्चारण में मुख-विवर में हवा के रास्ते में पूर्ण अथवा अपूर्ण रुकावट अवश्य उपस्थित होती है। तीसरा मुख्य मत यह भी है कि व्यंजन का उच्चारण स्थान विशेष से होता है, जबकि स्वर उस प्रकार की स्थानीकृत ध्वनि न होकर पूरे मुख विवर में होनेवाली गूँज है और वह गूँज मुख-विवर के स्वरूप पर निर्भर करती है। कुछ लोग स्वर को आक्षरिक और व्यंजन को अनाक्षरिक मानते हैं।

वस्तुतः सभी भाषाओं में स्वर वव्यंजन की आक्षरिकता अनाक्षरिकता तथा औच्चारणिक अन्तर आदि सभी बातों को दृष्टि में रखते हुए कोई ऐसी परिभाषा देना संभव नहीं है। कामचलाऊ परिभाषा कुछ इस प्रकार दी जा सकती है"स्वर उन ध्वनियों को कहते हैं, जिनका उच्चारण मुँह में किसी एक निश्चित स्थान से नहीं होता, बल्कि जो पूरे मुख-विवर में हवा बिना प्रायः किसी प्रकार की रुकावट से निकल जाती है। इसके विपरीत व्यंजन उन ध्वनियों को कहते हैं, जिनका उच्चारण मुँह में किसी निश्चित स्थान से होता है तथा उस स्थान पर वायु मार्ग में पूर्ण या अपूर्ण रुकावट होती है या हवा को बीच के रास्ते को छोड़कर बगल से निकलना पडता है।"[1]

यों उपर्युक्त बातों के बावजूद व्यावहारिक दृष्टि से मलयालम ध्वनियों के स्वर तथा व्यंजन के दो भेद माने जा सकते हैं।

1.5.2 स्वर

मलयालम भाषा में बारह मूल स्वर और दो संयुक्त स्वर प्रचलित हैं। इन ग्यारह स्वरों में से सात ह्रस्व और पाँच दीर्घ स्वर माने गये हैं -

ह्रस्व स्वर - इ, ऎ, अ, ऒ, उ, ऋ

दीर्घ स्वर - ई, ए, आ, ओ, ऊ

मलयालम में दीर्घता स्वनिमिक है और इस प्रकार ह्रस्व-दीर्घ विभाजन के निम्नलिखित कारण माने जाते हैं[2]

1. मध्य, अगोलाकार ह्रस्व । ˘ । का कोई दीर्घ रूप प्रयुक्त नहीं होता।

2. ह्रस्व और दीर्घ स्वरों में मात्रा भेद के अलावा गुणात्मक अन्तर भी पाया जाता है।

---

1. भोलानाथ तिवारी , हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण पृ. 16

2. टी के नारायण पिल्लै, हिन्दी और मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली - पृ. 26

3. ऋ - का प्रयोग हमेशा ह्रस्व के रूप में होता है और केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ ही होता है।

स्वरों की उच्चारणिक प्रक्रिया के आधार पर निम्न प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है -

क. जिह्वा का व्यवहृत भाग

ख. जिह्वा की ऊँचाई

ग. ओष्ठों की स्थिति

क. जिह्वा का व्यवहृत भाग - जिह्वा के व्यवहृत होने के आधार पर स्वरों को तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है - जैसे अग्र, मध्य और पश्च। इ, ई, ऎ, ए आदि अग्र स्वर है, अ, आ, ˘ आदि मध्य स्वर है और उ, ऊ, ऒ, ओ पश्च स्वर है।

ख. जिह्वा की ऊँचाई - स्वरों के उच्चारण करते समय जिह्वा ऊपर की ओर उठती है। विभिन्न स्वरों के उच्चारण में इस ऊँचाई में बदलाव आता है। इसलिए जिह्वा की ऊँचाई के आधार पर स्वर तीन प्रकार के होते हैं जैसे उच्च, मध्य तथा निम्न। इ, ई, उ, ऊ, ˘ आदि उच्च स्वर माने जाते हैं। ऎ, ए, ऒ, ओ मध्य स्वर हैं तो अ, आ निम्न स्वर हैं।

ग. ओष्ठों की स्थिति - ध्वनियों के उच्चारण में ओष्ठों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इनके गोलित या अगोलित होने की वजह से स्वरों के उच्चारण में भिन्नता आती है। वैयाकरणों ने ओष्ठों की स्थिति के आधार पर स्वरों का विभाजन यों किया है - अगोलित, गोलित तथा उदासीन। इ, ई, ऎ, ए आदि अगोलित स्वर हैं और ऒ, ओ, उ, ऊ आदि गोलित स्वर हैं। अ, आ, ˘ आदि उदासीन स्वर माने जाते हैं।

1.5.6. संयुक्त स्वर

उच्चारण की दृष्टि से देखें तो मलयालम में दो संयुक्त स्वर प्रयुक्त किये जाते हैं - ऐ और औ। उच्चारण को स्पष्ट करने के लिए इन्हें यों लिपिबद्ध किया जा सकता है।

ऐ - अइ   औ - अउ

इनके उच्चारण में पहला स्वर घटक ‘अ’ अधिक मुखरित होता है। इसलिए इन दोनों को अवरोही संयुक्त स्वर कहा जा सकता है।

‘ऐ’ का उच्चारण जिह्वा के मध्य भाग से अग्र भाग की तरफ होता है। जिह्वा की ऊँचाई भी निम्न से उच्च की ओर जाती है। ओष्ठ उदासीन स्थिति से अगोलित स्थिति में रहते हैं।

‘ओ’ का उच्चारण भी जिह्वा के मध्य भाग से प्रारंभ होता है, लेकिन ‘ऐ’ का उच्चारण जिस स्थान से प्रारंभ होता है, उस स्थान से थोडा और पश्च भाग से। औ मध्य से पश्च की तरफ उच्चरित होता है। ‘ऐ’ के उच्चारण के समान ‘औ’ के उच्चारण में भी जिह्वा की ऊँचाई निम्न से उच्च की ओर बढ़ती है।

ओठों की स्थिति उदासीन से गोलित हो जाती है।

1.5.7 मलयालम स्वर स्वनिमों का विश्लेषण

जिह्वा का व्यवहृत भाग, उसकी ऊँचाई गोलित-अगोलित आदि के आधार पर मलयालम के स्वनिमों का परिचय निम्न तालिका में दिया जाता है।

मलयालम स्वर स्वनिमों की तालिका[1]

जिहवा का व्यवहृत भाग		**अग्र**		**मध्य**		**पश्च**	
व्यवहृत भाग की ऊँचाई		**अगो ***	**गो**	**अगो**	**गो**	**अगो**	**गो**
मूल स्वर							
उच्च	ह्रस्व	इ					उ
	दीर्घ	ई					ऊ
मध्य	ह्रस्व	ऐ					ऑ
	दीर्घ	ए					ओ
निम्न	ह्रस्व			अ *			
	दीर्घ			आ			
							औ
संयुक्त स्वर		ऐ					

*** अगो - अगोलित   गो - गोलित**

***अ**, आ उदासीन है अतः उन्हें अगोलित और गोलित के बीच में दर्शाया गया है।

उपर्युक्त तालिका के अनुसार विश्लेषण करें तो निम्नलिखित तथ्य सामने आ जायेंगे। '˘' के अलावा सभी ह्रस्व और दीर्घ स्वर शब्द की आदि और मध्य स्थितियों में प्रयुक्त होते हैं।

ओ, ई, ए शब्दांत में नहीं आते। आ और ओ भी आज्ञार्थक क्रिया रूपों में ही शब्दांत में प्रयुक्त होते है।

जैसे वा (आ)

पो (जा) आदि ।

'˘' का प्रयोग केवल शब्दांत में ही होता है

जैसे पूवॅ (फूल)

पितावॅ (पिता) आदि।

1. टी के नारायण पिल्लै, हिन्दी और मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली, व्यतिरेकी अध्ययन - पृ. 28

1.5.8. मलयालम व्यंजन स्वनिम

व्यंजन ध्वनियाँ, जैसे कि पहले ही विवेचन किया जा चुका है, स्थानीकृत होती है और उनके उच्चारण में स्थान विशेष पर वायुमार्ग में पूर्ण या अपूर्ण रुकावट होती है। उनका उच्चारण स्थान, प्रयत्न, कौए की स्थिति, हवा की कमीबेशी तथा स्वर तंत्रियों की स्थिति पर निर्भर करता है।

यद्यपि मलयालम में तमिल भाषा का काफी प्रभाव रहा है फिर भी व्यंजन स्वनिमों की संख्या की दृष्टि से देखें तो मलयालम में तमिल की तुलना में काफी व्यंजन प्रचलित हैं। मलयालम व्यंजनों की तालिका नीचे दी जा रही है। तालिका में स्पर्श व्यंजनों के महाप्राण रूपों को कोष्ठक के अंदर रखा गया है।

मलयालम व्यंजनों की तालिका[1]

स्थान / प्रयत्न	द्वयोष्ठ्य	दंतोष्ठ्य	दंत्य	दंत्य वर्त्स्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयंत्रमुखी
	अ घो	अ घो	अ घो	अ घो	अ घो	अ घो	अ घो	अ घो	अ घो
स्पर्श	प ब		त द			ट ड	च ज	क ग	
	(फ) (भ)		(थ) (ध)			(ठ)(ढ)	(छ) (झ)	(ख) (घ)	
नासिक्य	म		ऩ		न	ण		ङ	
पार्श्विक					ल	ळ			
लुंठित				ऱ्					
उत्क्षिप्त				र					
संघर्षी			स			ष़ ष			ह
अर्धस्वर		व					य		

अ- अघोष, घो- घोष, ( ) स्पर्श व्यंजनों का महाप्राण

1.5.9 व्यंजन स्वनिम

क. शब्दांत में म, न, ल, ळ,ण और ऱ् व्यंजन ही मिलते हैं।

ख. कंठ्य नासिक्य ङ का प्रयोग केवल शब्दों के मध्य में होता है।

1. टी के नारायण पिल्लै, हिन्दी और मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली, व्यतिरेकी अध्ययन - पृ. 30

ग. मूर्धन्य पार्श्विक 'ळ' का प्रयोग शब्द के प्रारंभ में नहीं मिलता।

घ. ष़ जो मूर्धन्य, संघर्षी grooved व्यंजन है, केवल मलयालम मूल के शब्दों में ही मिलता है, वह भी केवल शब्द मध्य या शब्दांत में।

ङ. दंत्य नासिक्य 'ऩ' और वर्त्स्य नासिक्य 'न' का वितरण मलयालम में जटिल है। दंत्य नासिक्य 'ऩ' का प्रयोग निम्न स्थितियों में होता है -

(i) शब्द की आदि में सारे स्वरों तथा ऋ के पहले जैसे -

ऩिन्नु (खडा हुआ)

नृपन (राजा) आदि।

(ii) शब्द के मध्य में दंत्य त और द के पहले म, प, त, ग और स के बाद में।

उदाः- वेन्तु (पक गया)

वन्दऩम् (नमस्कार)

रत्ऩम् (रत्न)

स्वप्ऩम् (सपना)

शब्द के अन्त में ऩ का प्रयोग नहीं होता।

वर्त्स्य नासिक्य न का वितरण निम्न प्रकार है।

(iii) शब्द की आदि स्थिति में य के पहले

जैसे - न्यायम् (न्याय)

(iv) शब्द की मध्य स्थिति में थ, म और व के पहले

जैसे - ग्रन्थम् (पुस्तक) तिन्म (बुराई), तन्वि (युवती) आदि।

(v) शब्दांत में सभी स्वरों के बाद

जैसे - पिन् (पीछे)

वन् (बडा)

पोन् (सोना) आदि ।

च. मलयालम भाषी अपने उच्चारण में दो स्वरों के बीच में आनेवाले अघोष स्पर्श व्यंजनों को सघोष कर देते हैं।

छ. मलयालम में व, ष, ह, र आदि व्यंजनों के द्वित्व रूप नहीं मिलते।

ज. शब्दारंभ में य, र, ल से प्रारंभ होनेवाला व्यंजन गुच्छ नहीं मिलता।

झ. मलयालम में दो से लेकर चार तक के घटकों से बननेवाले व्यंजन गुच्छ प्राप्त होते हैं।

1.5.10 खण्ड्येतर स्वनिम

मलयालम में दीर्घता, विकृति और अनुतान खंडेतर स्वनिम है। अन्य भारतीय भाषाओं के समान आरोही, अवरोही और निर्लंबित ये तीन प्रकार के अनुतान मलयालम में भी प्रयुक्त है।

अक्षर - भाषा के उच्चारण प्रवाह में एक स्वर अथवा स्वरयुक्त व्यंजन की स्पष्टता पृथक सुनाई देना ही अक्षर है। अक्षर केवल स्वर, स्वर तथा व्यंजन अथवा अनुनासिक स्वर युक्त व्यंजन हो सकता है।

आक्षरिक संरचना

मलयालम में निम्न प्रकार की संरचनावाले अक्षर पाए जाते हैं।

क. स्वर   आ (वह) ई (यह) आदि

ख. स्वर + व्यंजन - आळ् (पुरुष) आल् (बरगद) आदि

ग. व्यंजन + स्वर - वा (आ) पो (जा) आदि

घ. व्यंजन + स्वर + व्यंजन - वन् (बडा) पोन (स्वर्णिम) ञान (मैं) आदि

ड़. व्यंजन + व्यंजन + स्वर + व्यंजन - प्राणन् (प्राण)

च. स्वर + व्यंजन + व्यंजन - एऱ्ऱ् (फेंकना)

छ. व्यंजन + स्वर + व्यंजन + व्यंजन - चाम्प (कुम्हलाना)

ज. व्यंजन + व्यंजन + स्वर + व्यंजन - स्कूल, प्राक् (शाप)

झ. व्यंजन + व्यंजन + स्वर + व्यंजन + व्यंजन - प्राञ्च (लडखडाना)

ञ.व्यंजन + व्यंजन + व्यंजन + स्वर - स्त्री आदि।[1]

1.6 हिन्दी की ध्वनि प्रक्रिया

ध्वनि की परिभाषा एवं स्वरूप के संबंध में विस्तृत रूप से विचार किया गया है। आगे हिन्दी की मानक देवनागरी वर्णनाला का परिचय दिया जाएगा।

स्वर   अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ.

व्यंजन   क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण (ढ़ ड़)
त थ द ध न

1. टी के नारायण पिल्लै, हिन्दी और मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली, व्यतिरेकी अध्ययन - पृ. 32

प फ ब भ म
य र ल व
श ष स ह
अनुस्वार: अं (ं)
विसर्ग अः (:)
संयुक्त व्यंजन क्ष (क् + ष) त्र (त् + र्)
ज्ञ (ज् + ञ) श्र (श् + र)
गृहीत ध्वनियाँ स्वर (ऑ) अंग्रेज़ी के आगत शब्दों में प्रयुक्त होता है जैसे डॉक्टर, बॉल, ऑफ
व्यंजन क़, ख़, ग़ अरबी के आगत शब्दों में प्रयुक्त होता है।
हल् चिह्न (्) सभी व्यंजन वर्णों के लिए चिह्नों में 'अ' स्वर रहता है जैसे क - क् + अ। जब स्वर रहित व्यंजन का प्रयोग करना है तो उस वर्ण में हल् चिह्न (्) का प्रयोग किया जाता है जैसे क् ख् ग्
ह्रस्व 'ऋ' का उच्चारण 'रि' के समान होता है।

स्वरों में केवल अ, इ, उ स्वर ह्रस्व है शेष सभी स्वर आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ दीर्घ है। यह भी उल्लेखनीय है कि अ, इ, उ और आ, ई, ऊ में क्रमशः दीर्घता के अतिरिक्त गुणीय (स्थानगत) भेद भी है। स्वर के उच्चारण में जिह्वा के स्थान परिवर्तन से गुण भेद होता है।
ऋ - का दीर्घ रूप हिन्दी लेखन में भी नहीं है। ह्रस्व ऋ का प्रयोग लेखन में केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों में होता है जैसे ऋषि, ऋतु। जिस प्रकार अन्य स्वरों का मात्राएँ हैं आ (ा - का) इ (ि - कि), ई (ी - की) उ (ु - कु) ऊ (ू - कू) ए (े - के) ऐ (ै - कै) ओ (ो - को) औ (ौ - कौ) उसी प्रकार ऋ का मात्रा रूप (ृ कृ) है जैसे कृषि, कृपा, तृप्ति आदि।
अंग्रेज़ी के डॉक्टर, बॉल, कॉल, ऑफ आदि शब्दों में 'आ' और 'ओ' ध्वनियों के मध्यवर्ती दीर्घ स्वर 'ऑ' का उच्चारण होता है। हिन्दी में शुद्ध उच्चारण के अनुरूप इसके लिखने का प्रचलन हो गया है।
हिन्दी के स्वरों को ओठों की आकृति के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जाता है -
क. वृत्तमुखी ख अवृत्तमुखी
क. वृत्तमुखी - जिन स्वरों के उच्चारण में होठ वृत्ताकार रहते हैं उन्हें वृत्तमुखी स्वर कहते हैं - उ, ऊ, ओ, औ और ऑ

ख. अवृत्तमुखी - जिन स्वरों के उच्चारण में होठ वृत्ताकार न होकर मात्र फैले रहते हैं, उन्हें अवृत्तमुखी स्वर कहते हैं - अ, आ, इ, ई,ए और ऐ ।

अनुनासिकता सभी स्वरों के उच्चारण दो प्रकार से हो सकते हैं -

1. केवल मुख से - निरनुनासिक

2. मुख व नासिका दोनों से - अनुनासिक

अनुनासिक स्वर और अनुस्वार में भी भेद मिलता है अतएव चन्द्रबिन्दु (ँ) और अनुस्वार (ं) के शुद्ध प्रयोग पर ध्यान देना है

अनुस्वार के साथ - हंस

अनुनासिकता के साथ - हँस (ना)

1.5.2. व्यंजन ध्वनियाँ या व्यंजन स्वनिम

जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायु रुकावट के साथ बाहर आती है उन्हें व्यंजन कहते है। वर्णमाला में सभी व्यंजन ध्वनियाँ दी गई हैं। वायु की रुकावट कई प्रकार की हो सकती है। इस दृष्टि से हिन्दी की व्यंजन ध्वनियाँ इस प्रकार हैः-

	अघोष		सघोष		नासिक्य
	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण
स्पर्श कंठ्य	क	ख	ग	घ	ङ
” मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ	ण
” दंत्य	त	थ	द	ध	न
” ओष्ठ्य	प	फ	ब	भ	म
स्पर्श-संघर्षी-तालव्य	च	छ	ज	झ	ञ

शेष ध्वनियाँ

अंतःस्थ:-

अर्द्ध स्वर य, व

लुंठित र

पार्श्विक ल

ऊष्म (संघर्षी) - श, ष, स ह

आगत संघर्षी - फ़, ज़, ख़, ग़

उत्क्षिप्त - ड़ (अल्पप्राण) ढ़ (महाप्राण)

अयोगवाह अनुस्वार (....) विसर्ग ( )

अनुस्वार - स्वरों के बाद अनुनासिक ध्वनि अनुस्वार(ं) है जो परिवेश से नियंत्रित है। संस्कृत की दृष्टि से य र ल व श ष स ह से पहले अनुस्वार का प्रयोग होता है। जैसे - संयम, संरक्षक, संलाप, संवाद, संशय, संसार, संहार।

जब हिन्दी वर्तनी में सभी वर्ग (स्पर्श ध्वनियाँ) के पंचमाक्षरों के - ङ् ञ् ण् न् म् के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है, जिसको अब मानकता प्रदान की गई है। जैसे -

सङ्कल्प	- संकल्प
कण्टक	कंटक
सन्ताप	संताप
सम्बोधन	संबोधन

जिन शब्दों में भिन्न नासिक्य व्यंजन हो अथवा पंचमाक्षर का द्वित्व हो तो अनुस्वार का प्रयोग न कर मूल नासिक्य व्यंजन ही लिखे जाते हैं।

उदाः-	भिन्न नासिक्य	जन्म, निम्न
	द्वित्व नासिक्य	अन्न, सम्मान

कुछ शब्दों में मूलतः प्रयुक्त नासिक्य व्यंजनों को वर्तनी में लिखना आवश्यक है जैसे

पुण्य, वाङ्मय ।

विसर्ग - विसर्ग ( ) किसी वर्ण के दाईं ओर लगाया जाता है जिसका उच्चारण अघोष 'ह' व्यंजन के समान होता है जैसे-

स्वतः - स्वतह्, अतः - अतह्

विसर्ग का सधि रूपों में विशेष महत्व है जैसे मनः + कामना - मनोकामना

विसर्ग का प्रयोग अधिकतर उन्हीं शब्दों में होता है जो संस्कृत से तत्सम रूप में गृहीत है, जैसे -

मनःस्थिति, अतः, प्रायः, दुःख आदि ।

व्यंजन गुच्छ तथा व्यंजन संयोग

व्यंजन गुच्छ जब दो या दो से अधिक वव्यंजन एक साथ, एक श्वास के झटके में उच्चरित होते हैं तो उन्हें व्यंजन गुच्छ कहते हैं जैसे - प्यास - प् + य् + आस

अन्त - अन् + त्

व्यंजन संयोग

जब एक व्यंजन के साथ दूसरा व्यंजन आता है तो गुच्छ की स्थिति संभव है और संयोग की

स्थिति भी।

गुच्छ - जब दोनों व्यंजन एक साथ, एक अक्षर में एक श्वास में उच्चरित हो।

संयोग - जब दोनों व्यंजनों का उच्चारण अलग अलग किया जाए अर्थात् एक व्यंजन एक अक्षर में और दूसरा वव्यंजन दूसरे अक्षर में, जैसे -

उल्टा - उल् - टा

गमला - गम् - ला

जनता - जन् - ता

अक्षर भाषा के उच्चारण प्रवाह में एक स्वर या स्वरयुक्त व्यंजन की स्पष्टता पृथक सुनाई देना ही अक्षर है। अक्षर केवल स्वर, स्वर तथा व्यंजन और अनुनासिक स्वरयुक्त व्यंजन हो सकता है।

आक्षरिक संरचना

हिन्दी में मुख्यतः अक्षर निम्नलिखित संरचना की हैं -

1. केवल स्वर - ओ, आ
2. स्वर + व्यंजन अब्, आज्, आँख्
3. व्यंजन + स्वर न, खा, हाँ
4. व्यंजन + स्वर +व्यंजन घर, देर, सांप
5. व्यंजन + व्यंजन + स्वर - क्या, क्यों
6. व्यंजन + व्यंजन + व्यंजन + स्वर स्त्री
7. स्वर + व्यंजन + व्यंजन - अन्त्
8. व्यंजन + व्यंजन + स्वर + व्यंजन प्यास
9. व्यंजन + स्वर + व्यंजन + व्यंजन सन्त्, शान्त्
10. व्यंजन + व्यंजन + स्वर + व्यंजन + व्यंजन - स्वर्ग, प्राप्त।

आक्षरिक स्वरूप

एकाक्षरी शब्द खा, आ, पी, हाँ

दो अक्षरों का शब्द आओ, चला, खाया

तीन अक्षरों का शब्द आइए, महिला, खाइए

चार अक्षरों का शब्द आइएगा, चलिएगा

पाँच अक्षरों का शब्द अध्यापिकाएँ।

ध्वनिगुण- कोई भी भाषा मात्र स्वर और व्यंजन का योग ही नहीं है बल्कि उसमें मात्रा, सुर, बलाघात भी महत्वपूर्ण है। इनके कारण स्वर व्यंजन की प्रकृति या गुण में अन्तर आता है। इसको ही ध्वनि लक्षण या रागात्मक तत्त्व कहते हैं। अधि खण्डात्मक अभिलक्षण के अन्तर्गत मात्रा, बलाघात और संहिता सम्बद्ध अभिलक्षण स्वीकार किए गए हैं। कुछ ध्वनिशास्त्री अनुनासिकता को भी ध्वनिगुण में सम्मिलित करते हैं।

1.6. संज्ञा के स्तर पर मलयालम शब्दावली का चयन

भाषाओं की मुख्य संपत्ति शब्दावली है। भाषाओं को शब्द कई स्रोतों से प्राप्त होता है। विश्व भर की भाषाओं की शब्दावली पर संपूर्ण मनुष्यजाति का अधिकार है। हर भाषा अपनी आवश्यकता के अनुसार दूसरी भाषाओं से शब्दावली को स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है और ऐसे करती भी है। जैसे कि एक बालक खाली हाथों से इस दुनिया में जन्म लेता है और बडे होने के साथ जीवन में आनेवाले शब्द अपने माता-पिता तथा बडों से सीखता है। एक बडी मात्रा में वह सामान्य शब्दावली का प्रयोग करता है। परंपरा से मिली शब्दावली ही उसकी निजी बिरासत है जिसमें वह निरंतर वृद्धि करता रहता है।

हर भाषा की संरचना तो उसकी अपनी होती है, लेकिन शब्दावली ऐसी नहीं होती। विश्व भर की समस्त भाषाओं ने यह साबित कर दिया है कि भाषा से शब्दों को स्वीकार करने से उस भाषा का विकास होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अन्य भाषाओं की शब्दावली एक भाषा को धनी बनाती है, निर्धन नहीं। अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भाषाओं के बीच शब्दावली का आदान-प्रदान मुक्त रूप से होता है। भारत जैसे बहु-भाषी देश में भावात्मक और राष्ट्रीय एकता को दृष्टि में रखकर यह आदान-प्रदान परम आवश्यक है।

यदि मलयालम की बात को लें तो देखा जा सकता है कि इसका विकास संस्कृत, तमिल भाषाओं तथा अन्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की शब्दावली गृहीत करने के फलस्वरूप हुआ है। श्री ए आर राजराजवर्मा, उत्पत्ति के आधार पर मलयालम शब्दों को दो वर्गों में विभाजित करते है - आभ्यंतर और बाह्य। आभ्यंतर के अन्तर्गत मूल द्रविड परिवार से या तमिल, तेलेगु, कन्नड, तुळु जैसे अन्य द्रविड परिवार की भाषाओं के शब्द आते हैं। बाह्य वर्ग से तात्पर्य अन्य परिवारों की संस्कृत, हिन्दुस्तानी जैसी भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेज़ी, फिरंगी, पुर्तुगाली, अरबी, फारसी जैसी विदेशी भाषाओं से हैं।[1]

अध्ययन की सुविधा के लिए आभ्यंतर और बाह्य वर्गों को निम्न प्रकार के उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

1. ए आर राजराजवर्मा - केरल पाणिनीयम् - पृ. 203

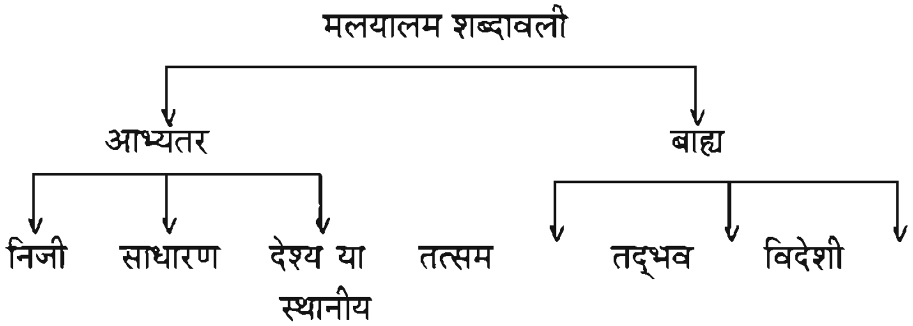

1.6.1. आभ्यंतर शब्दावली

यहाँ देखा जा सकता है कि आभ्यन्तर वर्ग को तीन उपवर्गों में विभाजित किया है। इसमें पहला है 'निजी' शब्द जिसमें अन्य द्रविड भाषाओं में अप्रयुक्त मलयालम में प्रयुक्त अपने शब्द आते हैं। सभी द्रविड भाषाओं में समान रूप से प्रयुक्त शब्द दूसरे उपवर्ग में आते हैं जिसे साधारण उपवर्ग कहलाते हैं। अन्तिम उपवर्ग देश्य या स्थानीय के अन्तर्गत उन द्रविड मूल के मलयालम शब्द आते हैं जिनका केवल क्षेत्रीय प्रयोग ही मिलता है।

1.6.2. बाह्य शब्दावली

बाह्य के भी तीन उपवर्ग माने गए हैं - तत्सम, तद्भव और विदेशी। दूसरी भाषाओं से बिना किसी परिवर्तन से मलयालम में स्वीकृत शब्दों को तत्सम शब्द कहलाते हैं। किसी भी प्रकार के ध्वनि परिवर्तनों के साथ मलयालम में आए शब्द तद्भव कहलाते हैं। केरल का संबंध विभिन्न विदेशी लोगों के साथ कई सदियों तक रहा है। इसी कारण विदेशी भाषाओं के शब्द भी मलयालम में आ गए हैं।

मलयालम में पर्याप्त मात्रा में बाहर से आए हुए शब्द विद्यमान है। इनमें प्रमुख स्थान संस्कृत को है। संस्कृत शब्दों के आधिक्य के कारण ही कुछ विद्वानों ने संस्कृत को मलयालम की जननी मानी है। संस्कृत के अलावा हिन्दुस्तानी, उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगाली, सिंहली जैसी भारतीय आर्यभाषाओं तथा पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ी, डच आदि विदेशी भाषाओं से भी मलयालम ने शब्दों को ग्रहण किया है। इन्हें छोड़कर, अरबी, हीब्रू, चीनी तथा तिबती, फारसी, तुर्की, मलय, आदि ने भी मलयालम शब्दावली को समृद्ध बनाया।

पहले ही बताया जा चुका है कि समुद्र-तटवर्ती प्रदेश होने के कारण पुराने ज़माने से लेकर ही विश्व के विभिन्न देशों के साथ केरल का व्यापारिक संबंध रहा। भारत के हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्मों का ही नहीं बल्कि विदेशों के ईसाई एवं मुसलमान धर्मों का भी प्रचार केरल में हुआ। इतना ही नहीं

समाजवाद, साम्यवाद जैसी राजनैतिक एवं सामाजिक विचारधाराओं से भी केरल की जनता जल्दी प्रभावित हो गई थी। इन सभी कारणों से मलयालम भाषा में काफी प्रभाव पडा। फलतः देश-विदेश की अनेक भाषाओं की शब्दावली की सहायता से मलयालम को आगे की ओर बढ़ने की राह मिल गई।

1.6.2.1 अरबी फारसी शब्द

केरल चाय, कॉफी, कालीमिर्च, अदरक, इलायची आदि वस्तुओं का प्रमुख उत्पादक राज्य रहा। फलस्वरूप व्यापार के लिए काफी अरबी लोग केरल आए। बाद में भारत के कई प्रदेश मुगल शासन के अधीन रहे। इन दो कारणों से मलयालम में कई अरबी, फारसी तथा तुर्की शब्द आ गए। केरल के मुसलमानों की भाषा में उपर्युक्त भाषाओं के शब्द बडी संख्या में प्रयुक्त किए जाते हैं। ये शब्द मुख्य रूप से प्रशासन, न्यायालय, धर्म, वेशभूषा, खान-पान आदि क्षेत्रों में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणः-

शिपायि (चपरासी) जामादार, करार, मुनसिप्प (मुन्सिफ), मुंशी, खजनावॅ (खज़ाना) जप्ति (जब्त) रद्दॅ (रद्द), माप्पॅ (माफी) शुपार्श (सिफारिश) हर्ज्जि (हर्जा) कच्चेरि (कछहरी) राजि (राजिनामा) [प्रशासन एवं न्यायालय] ईद, कुरान, निस्कारम् (नमाज़ पढ़ना), हाजियार , मौलवी [धर्म] पैजामा, उरुमाल, लुंकी (रंगीन धोती), सालवार, कमीज़, अत्तर सुरुमा [वेश-भूषा] किसमिस, बदाम, हलवा, मसाला, सरबत्त (शरबत), नारङ्ङा (नींबू) (खान-पान) निक्काह (विवाह) तलाक्कॅ (तलाकनामा), बीबि (पत्नी), मय्यत्तुॅ(लाश) [आचार विचार][1]

उपर्युक्त उदाहरणों में मलयालम में प्रयुक्त वर्तनी दी गयी हैं जिनके हिन्दी उच्चारण या अर्थ कोष्ठक में दिए गए हैं।

1.6.2.2 अंग्रेज़ी शब्द

अंग्रेज़ों के केरल आगमन के बाद शिक्षा एवं व्यवहार के क्षेत्रों में अंग्रेज़ी को काफी बढ़ावा मिला। अब भी शिक्षा का प्रथम माध्यम अंग्रेज़ी ही है। फलस्वरूप मलयालम में अंग्रेज़ी शब्दों का भरमार है। मनुष्य के सामान्य जीवन, प्रशासन, शिक्षा, विज्ञान, खान-पान, वेशभूषा आदि से संबंधित शब्दावली में काफी अंग्रेज़ी शब्द आ गए। आश्चर्य की बात यह है कि आम व्यक्ति भी इन शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से करता है। नीचे कुछ अंग्रेज़ी शब्द दिए गए हैं जिनका प्रयोग परिवर्तन या बिना परिवर्तन से मलयालम में प्रयुक्त है। कोष्ठक में अंग्रेज़ी वर्तनी दी गई है।

कोर्ट्ट (court) अड्वोक्केटॅ (Advocate) रिपोर्ट्ट (Report) नोट्टीस (Notice) डिमाण्डॅ (Demand)

1. टी के नारायण पिल्लै, हिन्दी और मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली, व्यतिरेकी अध्ययन - पृ. 50

जड्जि (Judge) सिक्रट्टरि (Secretary) गसट्ट (Gezette)[प्रशासन] कोळेजॅ (College) स्कूल (School), यूणिवेर्सिरि (University) लक्चरर (Lecturer) प्रोफस्सर (Professor) डिग्रि (Degree) डिप्लोमा (Diploma) फीसॅ (Fees) डिस्टिंक्शन् (Distinction)[शिक्षा] टेलिफोण (Telephone) टेलिग्राम (Telegram) इलक्ट्रिसिरि(Electricity) एन्जिन (Engine) सिनिमा (Cinema)ओप्परेशन् (Operation) [विज्ञान] टोस्ट्र (Toast) ब्रेड्डॅ (Bread) ओमलट्ट (Omlet) मट्टण (Mutton) चिकन् (Chicken) सोडा (Soda) वेजिटेरियन (Vegitarian) [खानपान] टेर्लिन (Terline) पोप्लिन् (Poplin) गौण् (Gown) सूट्टॅ (Suit) टै (Tie) सोक्सॅ (Soacks) कोट्टॅ (Coat) पान्ट्स (Pants) सोप्पॅ (Soap) क्रीम (Cream) वासलिन् (Vasaline) [वेशभूषा] [1]

1.6.2.3 **अन्य विदेशी शब्द**

अंग्रेज़ी को छोड़कर यूरोपीय तथा अन्य भाषाओं के शब्द भी मलयालम में प्रचलित है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित है

फ्रांसीसी - टाब्लो (Tableau) डीलक्स (Delux) कफे (Cafe) बूर्ष्वा(Bourgeois) कार्टूण (Cartoon) मेयर (Mayor) कूपण् (Coupon) बेसिन् (Basin)

डच लन्तक्कार, कक्कूस

रूसी - सोवियट्ट, बोळ्षेविकॅ, स्पुट्निक

चीन - चीनवला, चाय, चाम्प्राणि

आफ्रीकी - चिंपान्सी

आस्त्रेलिया - कंगारू, युकालिप्टस्स

इनके अलावा भारत की अन्य भाषाओं के शब्द भी बडी संख्या में मलयालम में पाये जाते है। ज्ञान-विज्ञान के बढ़ते प्रचार के कारण इस आदान की प्रवृत्ति दिन व दिन बढ़ती जा रही है।

1.7 संज्ञा के स्तर पर हिन्दी शब्दावली का चयन

मलयालम भाषा के समान यदि हिन्दी की बात लें तो देखा जा सकता है कि वैदिक संस्कृत से लेकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से आधुनिक हिन्दी का विकास हुआ है। इस विकास क्रम को दृष्टि में रखकर हिन्दी शब्दावली का भी विश्लेषण करना होगा। प्रत्येक काल में प्रत्येक भाषा का प्रभाव हिन्दी भाषा पर काफी पडा है। वैसे तो हिन्दी शब्दावली का वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से किया है।

1. टी के नारायण पिल्लै, हिन्दी और मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली, व्यतिरेकी अध्ययन - पृ. 50-51

व्युत्पत्ति या स्रोत के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण सबसे पहले भारत में डॉ भोलानाथ तिवारी के अनुसार भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में शब्दों का विभाजन समान, विभ्रष्ट तथा देशीमत इन तीनों भागों में किया है।[1] ये ही भेद आगे चलकर तत्सम, तद्भव तथा देशी या देशज कहलाए। बाद में एक और 'विदेशी' इसके साथ जुड गया और शब्द चार प्रकार के माने लगे।

आचार्य कामता प्रसाद गुरु ने हिन्दी शब्दों को पाँच भागों में वर्गीकृत किया है - तत्सम, तद्भव, अर्द्ध तत्सम, देशज और विदेशी। उन्होंने तत्सम और तद्भव के बीच एक और वर्ग को प्रस्तुत किया जो अर्द्ध तत्सम कहलाता है।[2]

डॉ भोलानाथ तिवारी इस सन्दर्भ में यह याद दिलाते हैं कि तत्सम कहे जानेवाले सभी शब्द मूलतः संस्कृत के नहीं हैं। अनेक शब्द अन्य भाषाओं से भी आकर संस्कृत में ज्यों के त्यों या परिवर्तन के साथ गृहीत हुए। बाद में वे संस्कृत के ही मान लिए गए और आज वे तत्सम ही माने जाते हैं।[3]

तत्सम-तद्भव वाला परंपरागत वर्गीकरण आजकल काफी पर्याप्त नहीं माने जाते। विश्व भर में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं वैज्ञानिक परिवर्तन आते ही रहते हैं। नित्य प्रति नए-नए वैज्ञानिक आविष्कार होते रहते हैं। ऐसी स्थिति में नई वस्तुओं, नई धारणाओं एवं नए क्षेत्रों को सूचित करने केलिए नए शब्दों की आवश्यकता होती है। जब किसी नई वस्तु का आविष्कार होता है तो आविष्कर्ता उन सब केलिए संज्ञाओं को बना लेता है। तब इन नई वस्तुओं तथा नए सिद्धांतों का भी स्वीकरण होता है। अन्यथा अपनी भाषा में उनके लिए पर्याय बनाना पडेगा जो आसान नहीं है। इस प्रवृत्ति को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शब्दों का स्वीकरण कहा जाता है। अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी, जैसी विदेशी भाषाओं से स्वीकृत शब्द इसके उदाहरण है।

किसी भूभाग में प्राप्त वस्तु, जानवर आदि किसी दूसरी भूभाग में प्राप्त नहीं है तो वहाँ की भाषा में उन सब के लिए शब्द नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में भी हम उन भाषाओं से ऐसे शब्दों को उधार लेते हैं। आस्ट्रेलिया भाषा का 'कंगारू' तथा अरबी भाषा का 'ज़ीब्रा' शब्द विश्व भर में प्रसिद्ध होने का यही कारण है।

संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं से स्वीकृत तत्सम शब्दों के साथ तद्भव व विदेशी या देशज शब्दों का सहारा पाकर ही हिन्दी शब्द भण्डार का निर्माण हुआ है। इसके अलावा हिन्दी शब्दावली को

1. डा.भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा - पृ. 13-14
2. पं.कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण -पृ. 21
3. डा.भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा - पृ. 14

वैज्ञानिक, पारिभाषिक, साहित्यिक, शिक्षित- सामान्य स्तर और स्थानीय तथा ग्राम्य कोटियों में बाँटा जा सकता है। लेकिन स्रोत की दृष्टि से हिन्दी शब्दावली के निम्नलिखित भेद मान सकते हैं । आगे शब्दावली के संबंध में विस्तार से विचार करें।

1.7.1. **तत्सम**

'तत्सम' का शाब्दिक अर्थ है उसके समान। तत्सम वे संस्कृत शब्द हैं जो अपने असली स्वरूप में हिन्दी में प्रचलित है जैसे - राजा, पिता, माता, कवि, वायु आदि। संस्कृत के शब्द जब हिन्दी में तत्सम रूप में आते हैं तब उसमें पूर्ण समानता नहीं रह जाती। यह हिन्दी के सन्दर्भ में नहीं बल्कि सभी भाषाओं के सन्दर्भ में सही है। कहने का तात्पर्य यह है कि तत्सम रूप केवल संस्कृत शब्दों का ही नहीं, वह अरबी, फारसी या अंग्रेज़ी किसी अन्य भाषा का हो सकता है। "जब भी कोई शब्द किसी अन्य भाषा से आ जाता है तो स्वीकृत करनेवाली भाषा उसे अपनाती है। 'अपनाने' की इस प्रक्रिया में उस शब्द में थोडा बहुत रूपात्मक परिवर्तन हो जाता है। कभी कभी अर्थ संबंधी परिवर्तन भी दिखाई देता है। भाषा वैज्ञानिकों ने इस परिवर्तन को 'स्वांशीकरण' की प्रक्रिया का फल माना है। अतः इस प्रक्रिया के कारण आए हुए परिवर्तनों को गौण मानकर हम उनको तत्सम शब्द की संज्ञा दे सकते हैं।"[1] तत्सम के समान कई शब्द प्रचलित थे। उनमें कुछ इसप्रकार है -

संस्कृत सम	जो शब्द संस्कृत के समान हो
तत्तुल्य	वाग्भटालंकार में प्रयुक्त
समान	भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त

यहाँ स्पष्ट सूचित करना उचित होगा। अर्थ की दृष्टि से 'संस्कृत सम' शब्द सर्वाधिक उपयुक्त है। संस्कृत के अलावा अन्य भाषाओं से भी शब्द स्वीकृत होने के कारण ही डॉ भोलानाथ तिवारी ने परंपरागत गृहीत तथा निर्मित शब्दों को पुनः तत्सम तथा तद्‌भव दो वर्गों में बाँटा है। लेकिन इस संकल्पना का अधिक प्रचलन न हो सका अतएव केवल संस्कृत के शब्दों के संदर्भ में हही ' तत्सम' का प्रयोग किया जाता है और मान्य समझा जाता है।[2]

तत्सम शब्दावली को दो भागों में बाँटा जा सकता है -

अ - परंपरागत आ - निर्मित

परंपरागत - इस कोटि में वे शब्द आते हैं जो संस्कृत बाषा और वाङमय से प्राप्त होते हैं। उदा - देवी, देवता, अग्नि, ज्योति,यज्ञ आदि।

1. टी के नारायण पिल्लै, हिन्दी और मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली, व्यतिरेकी अध्ययन - पृ. 43
2. डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, हिन्दी भाषा, खण्ड - 2 -पृ. 25

निर्मित - इस कोटि में वे शब्द आते हैं जो संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार समय-समय पर माँग के अनुसार गढ़ लिए गए हैं प्रत्येक काल में कुछ न कुछ ऐसे शब्द गढ़े गए हैं पर आधुनिक काल में ज्ञान विज्ञान का माध्यम होने के कारण और राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने के कारण पर्याप्त मात्रा में शब्द बनाए गए। जैसे - स्कूल, कॉलेज, स्टेशन, टेलेफोण । बंगला तथा मराठी भाषाओं में निर्मित कुछ शब्द भी हिन्दी ने अपना लिए हैं। जैसे गल्प, उपन्यास, संभ्रांत, भद्र आदि।

1.7.1.1 हिन्दी शब्दावली में तत्सम शब्दावली का बढ़ता प्रभाव और उसके कारण

आजकल हम देख सकते हैं कि हिन्दी भाषा दूसरी भाषाओं से गृहीत शब्दों से अपने शब्द भण्डार की वृद्धि कराने में हमेशा इच्छुक रहती है। वह अपने स्वाभिमान को क्षति पहुँचाए बिना स्वीकरण का कार्य कर रही है। इसी वजह से विज्ञान, तकनीकी व प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में भी हिन्दी अन्य विकसित भाषाओं के समकक्ष खडी रहने का सक्षम बन गई है।

हिन्दी में तत्सम शब्दावली बड़ी तेज़ी से बढ़ती जा रही है। इसके कुछ कारण ये हैं -

i. नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी को महत्त्व मिल रहा है। हिन्दी को राजभाषा की हैसियत प्राप्त हो गई है।

ii. लगभग सभी आर्यभाषाएँ संस्कृत से प्रभावित हैं। साथ ही दक्षिण की द्रविड परिवार की भाषाएँ - मलयालम, तेलुगु, कन्नड में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य होने के कारण समस्त भारत में तत्समयता की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और इसका प्रभाव हिन्दी में भी देखा जा सकता है।

iii. स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज के प्रचार से संस्कृत का प्रचार-प्रसार बढ़ा, फलतः तत्सम शब्दों के प्रयोग की ओर रुझान बढ़ा।

iv. अध्यापकीय हिन्दी में तत्समता अधिक होती है।

v. राजनैतिक जागृति तथा सांस्कृतिक उत्थान के कारण संस्कृत गर्भित भाषा की ओर अभिरुचि बढ़ी।

vi भारतीय संस्कृति का सीधा संबंध संस्कृत भाषा से मान लिया गया।

vii. संविधान के अनुच्छेद 351 में स्पष्ट रूप से यह लिखा गया है कि जब आवश्यकता हो पहले शब्द संस्कृत से लिया जाए।

viii. हिन्दी समस्त भारत की भाषा बन जाने के बाद यह समझ लिया गया कि हिन्दी में अपेक्षाकृत संस्कृत की शब्दावली अधिक हो जिससे समस्त भारतीय आर्य भाषाएँ जुडी हुई हैं।

ix. हिन्दी की अपनी बोलियाँ तथा उपभाषाओं के कोशों का अभाव।

1.7.2 तद्‌भव शब्दावली

तद्‌भव शब्द वे हैं जो 'तत्' अर्थात् संस्कृत से 'भव' यानि उत्पन्न या विकसित है। संस्कृत शब्दों की प्राकृत, पालि और अपभ्रंशों से होकर जो यात्रा हुई, उसी के परिणाम स्वरूप तद्‌भव शब्द विकसित हुए। दूसरे शब्दों में अनेक कारणों से संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के शब्द घिसपिट कर बदलते हुए आधुनिक आर्यभाषाओं में धुलमिल गए हैं, वे सब तद्‌भव हैं।

तद्‌भव के लिए अन्य शब्द भी चलते रहे हैं जैसे संस्कृत भवः, साध्यमान संस्कृत भवा, सिद्धसंस्कृत भवा, संस्कृत योनी, तज्ज विभ्रष्ट आदि। इन शब्दों के होते हुए भी प्रायः सभी भाषाविदों तथा अलंकार शास्त्रियों ने 'तद्‌भव' नाम स्वीकार किया क्योंकि यही अधिक सार्थक तथा अर्थगर्भित जान पडा इसलिए यही नाम अधिक चल पडा। आचार्य कामताप्रसाद गुरु ने 'हिन्दी व्याकरण' में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है "तद्‌भव वे शब्द हैं जो सीधे प्राकृत से हिन्दी भाषा में आ गए हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं जैसे राय, खेत, दाहिना, किसान, सूक्ष्म, पत्ता आदि।" [1]

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि 'तद्‌भव' रूप किसी भी मूल शब्द का हो सकता है पर हिन्दी में केवल संस्कृत से विकसित शब्दों को ही तद्‌भव कहा गया है। दूसरी दृष्टि से देखें तो यह हिन्दी की निजी शब्दावली है । हिन्दी शब्द समूह में सबसे अधिक संख्या उन शब्दों की है जो प्राचीन आर्य भाषाओं से मध्यकालीन भाषाओं - पालि, प्राकृत, अपभ्रंश - होते हुए चले आ रहे हैं।

एक तथ्य पर विचार करना ज़रूरी है कि यह आवश्यक नहीं, सभी शब्दों का मूल संस्कृत में प्राप्त हो। काफी शब्द ऐसे भी है जो वैदिक काल से बोलचाल की भाषा में चलते रहे, साहित्यिक संस्कृत में उन्हें मान्यता न मिली। इसकी ओर संकेत करते हुए डॉ धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है - "इस श्रेणी के शब्द प्रायः मद्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं से होकर हिन्दी तक पहुँचे हैं। अतः इनमें से अधिकांश रूपों में बहुत परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है। जनता की बोलियों में तद्‌भव शब्द बडी संख्या में पाये जाते हैं। साहित्यिक हिन्दी में इनकी संख्या कम होती जाती है, क्योंकि यह गंवारू समझे जाते हैं। वास्तव में ये असली हिन्दी शब्द हैं और इनके प्रति विशेष ममता होनी चाहिए। 'कृष्ण' की अपेक्षा कान्ह या कन्हैया हिन्दी का अधिक सच्चा शब्द है।"[2]

डा. हरदेव बाहरी के अनुसार हिन्दी प्रदेश की उपभाषाओं और बोलियों में सर्वाधिक संख्या तद्‌भव शब्दावली की है। तद्‌भव शब्दावली जनता के अधिक निकट होती है। देखा जाय तो तद्‌भव शब्द ही हिन्दी के मेरुदण्ड है। हिन्दी के सभी सर्वनाम तद्‌भव हैं। विशेषणों तथा अव्ययों में तद्‌भव पर्याप्त

1. पं.कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण -पृ. 21
2. डॉ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास -पृ. 68-69

मात्रा में हैं केवल संज्ञा पद ही ऐसा है जिनमें तत्समता बढ़ रही है। उन्होंने कुछ उदाहरण भी हमारे सामने प्रस्तुत किए है -

उदा - ओढ़ना, कपडा, काका, कान, खाट

अव्यय यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ, अब,जब, कब आदि।[1]

हिन्दी में कुछ तद्भव रूप तत्सम रूपों के साथ चलते हैं। इन रूपों का व्यवहार शैली की विविधता के लिए किया जाता है। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके तत्सम तथा तद्भव रूपों में अर्थभेद हो गया है जैसे

तत्सम	तद्भव
आत्मा	आप
गर्भिणी	गाभिन
वामन	बौना
वंश	बाँस
रश्नि	रस्सी

अर्थ भेद के अलावा भी दोनों रूप चलाया जा रहा है जैसे -

तत्सम	तद्भव
निमंत्रण	नौता
स्नेह	नेह
अक्षि	आँख
कर्ण	कान
नासिका	नाक
सूर्य	सूरज

1.7.3. अर्द्ध तत्सम

अर्द्ध तत्सम रूप सभी भाषा पंडित स्वीकार नहीं करते । इस वर्ण को स्वीकार करने में उठनेवाली कठिनाइयों की ओर इशारा करते हुए डॉ भोलानाथ तिवारी का कहना है कि "अर्द्ध तत्सम शब्दों का सिद्धाँत सुनिश्चित और दो टूक न होने से भाषा से इस वर्ग के शब्दों का निश्चय के साथ निकाल पाना तो प्रायः असंभव सा है। इसी कारण अन्य वर्गों के तो कई सौ उदाहरण दिए जा सकते हैं और दिए जाते हैं किन्तु इसमें एक-दो उदाहरणों को ही बार-बार उद्धृत किया जाता है। अतएव जो शुद्ध संस्कृत हैं उन्हें तत्सम और जो उनसे विकृत या निकाले हुए हैं उन्हें तद्भव कहा जाना चाहिए।

1. डॉ हरदेव बाहरी, हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप -पृ. 185-200

½, $^1/_3$, ¼ या $^1/_5$ तत्समता या तद्भवता की नाप करना निरर्थक और असंभव हैं।"[1] उदाहरण के लिए कृष्ण के कान्ह, कान्हा, कन्हैया आदि को तद्भव के रूप में स्वीकार करते हैं और किसन-किशन रूप को अर्द्ध तत्सम के रूप में वास्तव में पंजाबी भाषा के रूप में ही अर्द्धतत्सम शब्द अधिक रूप से प्रचार में आए हैं। अर्द्ध तत्सम की परिभाषा देते हुए डॉ धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है - "जो संस्कृत शब्द आधुनिक काल में विकृत हुए हैं वे अर्द्ध तत्सम कहलाते हैं जैसे कान्हा तद्भव है, किन्तु किशन अर्द्ध तत्सम रूप है। क्योंकि संस्कृत के कृष्ण को इस आधुनिक समय में अधिक बिगाडकर बनाया गया है। इन शब्दों की दूसरी विशेषता है ऐसे शब्द प्रायः धार्मिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में अधिक प्रयोग में लाए जाते हैं जैसे ग्यान, धरम, करम, भगत, भगती, सुरग, परिणाम, बरत आदि।"[2]

कामताप्रसाद गुरु ने एक साथ तत्सम, अर्द्ध तत्सम और तद्भव की सूची दी है -

तत्सम	अर्द्ध तत्सम	तद्भव
आज्ञा	आग्या	आन
राजा	—	राय
वत्स	बच्छ	बच्चा
अग्नि	अगिनी-अगिन	आग
कार्य	कारज	काज[3]

लेकिन तत्सम और तद्भव के बीच, अर्द्ध तत्सम की कोटि मानने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि तद्भव शब्द भी इसी प्रक्रिया से ही बनते हैं। अतः शब्दों के रूप परिवर्तन की मात्रा को आधार बनाना अधिक युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता।

1.7.4. देशज शब्दावली

'देशज' शब्द 'देश' व 'ज' के मिलन से हुआ है जिसका अर्थ है देश से उत्पन्न या देश से जन्मा हुआ। ये शब्द देश की बोलियों तथा भाषाओं से आए या जन समाज द्वारा आवश्यकतानुसार बना लिए गए हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जो शब्द तत्सम या तद्भव न होकर देश और काल की आवश्यकतानुसार दूसरी भाषाओं से अपना लिए या बना लिए जाते हैं, उन्हें देशज या देशी शब्द कहते हैं। देशी/देशज शब्दों को लेकर एक तर्क भी सामने आ सकता है इनमें कौन सा शब्द सही है। देशी का अर्थ है देश का। देशी

1. डा. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान कोश पृ. 639

2. डा. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास - पृ. 24

3. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 21

अथवा देशज प्रायः दोनों शब्द शब्दार्थ की दृष्टि से किंचित् भिन्न होते हुए भी हिन्दी में समानार्थक है और जिसके अंतर्गत वही शब्दावली आती है जो प्रायः स्वीकृत कोटियों में नहीं आती। बोलचाल में विकसित स्थानीय, अनुकरणात्मक शब्दों को भी देशज या देशी कहा जाता है।

1.7.5. विदेशी या आगत शब्दावली

विदेशी शब्दों या आगत शब्दों का हिन्दी में पाया जाना निरन्तर पाँच-सात सौ वर्षों तक की विदेशी सत्ता तथा दिन-प्रतिदिन बढ़ते विदेशी संपर्क का परिणाम है। निरंतर बढ़ते विदेशी संपर्क के कारण अंग्रेज़ी, तुर्की, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के वे शब्द जो हिन्दी में प्रयुक्त हैं, वे विदेशी या आगत शब्द कहलाते हैं।

विदेशी शब्दावली को दो वर्गों में बांट सकते है

1. अरबी-फारसी-तुर्की की शब्दावली
2. अंग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं की शब्दावली

1.7.5.1. अरबी - फारसी - तुर्की की शब्दावली

हिन्दी में आर्य भाषा की शब्दावली के बाद संख्या की दृष्टि से अरबी-फारसी के शब्दों की प्रमुखता है। अरबी तथा फारसी की शब्दावली फारसी के माध्यम से हिन्दी में गृहीत हुई है। हिन्दी भाषा को मुगल शासन की सबसे बडी देन प्रशासनिक शब्दावली ही है। आजकल तकनीकी एवं प्रशासनिक शब्दावली में इन शब्दों को मान्यता मिली है। कुछ उदाहरण यहाँ दि जा रहे हैं कि जिनका प्रयोग आम तौर पर होता है।

अदालत	मुंशी	बादशाह	कागज़
मिसिल	कानून	दरोगा	दफ्तर
कबाब	पुलाव	पिस्ता	पुदीना
प्याज	तरबूज	जलेबी	कुरसी
परदा	चित्र	शीशा	सुरमा

इस प्रकार बर्तन, आभूषण, पेशे, विज्ञान, कला, शिक्षा, खेलकूद, जानवर आदि से संबंधित काफी अरबी, फारसी शब्द हिन्दी में हैं।

आगा, उर्दू, काबु, गलीचा, चाकू, बहादूर, बेगम, सौगात, लाश, चील आदि बहुत शब्द तुर्की के भी हैं।

1.7.5.2.अंग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं की शब्दावली

काफी बडी संख्या में अंग्रेज़ी शब्दावली को हिन्दी ने अपनाया है। खासकर साहित्य के क्षेत्र में अंग्रेज़ी शब्दों का काफी प्रयोग मिलता है। अंग्रेज़ी शब्दों की सूची इतनी लंबी है कि पूरी सूची देना मुमकिन नहीं है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं।

प्रतिदिन व्यवहार में आनेवाले शब्द

लिनन	साटिन	सिल्क	फाइन
जाकेट	सूट	कोट	क्लॉक
टिफिन	पॉलिश	लिपस्टिक	फैशन
चाप्स	टोस्ट	कटलेट	सलाड
डिनर	स्टूल	कोच	कार्पेट

इस प्रकार व्यापार, विज्ञान, कला तथा धर्म संबंधी काफी शब्द गृहीत किए जा चुके हैं। प्रशासन के क्षेत्र में भी बहुत सारे शब्द प्रचलित हैं।

पुर्तगाली के कुछ शब्दों का भी हिन्दी में काफी प्रचार है। कुछ उदाहरण देखिए -

फिरंगी	अनन्नास	अलमारी	इस्त्री	कफ्तान
साबून	बाल्टी	कमरा	पिस्तौल	चाबी

नीलाम आदि।

केवल पुर्तगाली भाषा के शब्दों को छोड़कर अन्य भाषाओं के शब्द अंगेज़ी भाषा के माध्यम से ही हिन्दी में गृहीत हुए हैं।

फ्राँसीसी - कांर्तूस, कार्बन, बुफे, केफे, रिपोर्ताज, रेस्तराँ ।

डच - चिडिया, तुरुप, बम, ताँगा ।

जर्मन   किंटर गार्डन, नात्सी, नाज़ी।

1.7.5.3. संकर शब्दावली

जो शब्द दो अलग-अलग भाषाओं के शब्दों के मेल से बनकर प्रयोग में आते हैं उन्हें संकर शब्द कहते हैं। दो या दो से अधिक भाषाओं के शब्दों के मेल से बनने के कारण आगत शब्दों के साथ इनकी गणना नहीं की गई है। इसलिए एक अन्य वर्ग के अन्तर्गत ही इन्हें मान लेना चाहिए। गठन के आधार पर संकर शब्दों के कई भेद किए जा सकते हैं जैसे -

1. जिसका अन्तिम भाग हिन्दी शब्द हो
2. जिसका अन्तिम भाग फारसी शब्द हो

3. जिसका अन्तिम भाग अरबी शब्द हो

4. जिसका अन्तिम भाग अंग्रेज़ी शब्द हो

आगे इन भेदों के अन्तर्गत आनेवाले कुछ शब्दों का विश्लेषण करें

1.7.5.3.1. जिसका अंतिम भाग हिन्दी शब्द हो

यद्यपि इन शब्दों का अंतिम भाग हिन्दी हो तथापि पूर्व भाग अन्य भाषाओं के हो सकता है। इसी दृष्टि से इस वर्ग के शब्दों में निम्नलिखित विश्लेषण संभव है।

क. फारसी + हिन्दी	खून-पसीना, बेड़ौल, बेधड़क
ख. अरबी + हिन्दी	अजायबघर, कलमचोर, मालगाडी
ग. अंग्रेज़ी + हिन्दी	टिकटघर, डबलरोटी, रेलगाडी, फैशनवाला
घ. तुर्की + हिन्दी	तोपगाडी, तोप-तलवार

1.7.5.3.2. जिसका अंतिम भाग फारसी शब्द हो

क. हिन्दी +फारसी	कटोरदान, पानदान, फूलदान, छायादार, चमकदार, लोकसाही
ख. अरबी + फारसी	कलमबंद, गोताखोर, तहसीलदार, फिज़ूलखर्च
ग. अंग्रेज़ी + फारसी	जेलखाना, पॉलिशदार, सीलबंद
घ. तुर्की + फारसी	तोपखाना

1.7.5.3.3. जिसका अंतिम भाग अरबी शब्द हो

क. हिन्दी + अरबी	धन-दौलत, भेंट-मुलाकात
ख. फारसी + अरबी	खुश-किसमत, नमकहराम
ग. अंग्रेज़ी + अरबी	पॉकटखर्च

1.7.5.3.4. जिसका अन्तिम भाग अंग्रेज़ी शब्द हो

क. हिन्दी + अंग्रेज़ी	कपडा-मिल, लाठीचार्ज
ख. फारसी + अंग्रेज़ी	शक्कर-मिल

संकर शब्दावली की कई निर्माण पद्धतियाँ भी हो सकती हैं। कभी कभी दो भाषाओं के पूरे-पूरे शब्द या, कभी आंशिक शब्दों के योग से भी संकर शब्द बनते हैं।

उदा:- खेल-तमाशा, रीति-रिवाज़, बेधडक, थानेदार आदि।

इसी प्रकार प्रयुक्त 'दार' व 'बाज' जैसे प्रत्ययों के प्रयोग से भी कई संकर शब्द बनते हैं, जैसे चौकीदार, फूलदार,रसदार, तहसीलदार, धोखेबाज, पतंगबाज, हवाबाज आदि।

हिन्दी शब्दावली के क्षेत्र स्रोत की दृष्टि से बहुत व्यापक है जहाँ एक ओर ऐतिहासिक सन्दर्भ की काफी पुरानी दीर्घ परंपरा है। वहाँ समकालीन अन्य भाषाओं से समय समय पर काफी शब्द आते रहते हैं। ज्यों -ज्यों भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी का संबंध बढ़ेगा और कामकाज के रूप में हिन्दी तथा अन्य भाषाओं को भी सभी क्षेत्रों में प्रतिष्ठा मिलेगी, शब्दावली बढती जाएगी और कई राहें खुलती जाएँगी।

1.8. व्याकरणिक संरचना के आधार पर हिन्दी और मलयालम की तुलना

दो भाषाओं की शैलीगत भिन्नता का एक प्रमुख कारण उनकी रूप-रचना की असमानता है। हिन्दी और मलयालम का तुलनात्मक अध्ययन करते समय इन दोनों भाषाओं की रूप प्रक्रिया की भिन्नता के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है। प्रमुख रूप से इन दोनों भाषाओं के लिंग, वचन, कारक, विशेषण, सर्वनाम, अव्यय तथा क्रिया के प्रयोग में जहाँ वैषम्य अधिक होता है वहीं ये समस्याएँ अधिक मात्रा से पायी जाती हैं।

आगे हिन्दी की लिंग रचना के संबंध में विचार करेंगे

1.8.1 हिन्दी की लिंग रचना

संज्ञा के जिस रूप से वस्तु की (पुरुष व स्त्री) जाति का बोध होता है उसे लिंग कहते हैं।[1] हिन्दी में दो लिंग होते हैं - 1. पुल्लिंग 2. स्त्रीलिंग।

सृष्टि की संपूर्ण वस्तुओं की मुख्य दो जातियाँ - चेतन और जड - हैं। चेतन वस्तुओं में पुरुष और स्त्री जाति का भेद होता है, परन्तु जड पदार्थों में यह भेद नहीं होता। इसलिए संपूर्ण वस्तुओं की एकत्र तीन जातियाँ होती है पुरुष, स्त्री और जड। इन तीनों जातियों के विचार से व्याकरण में उनके वाचक शब्दों को तीन लिंगों में बाँटते हैं - 1. पुल्लिंग, 2. स्त्रीलिंग, ३.नपुंसक लिंग। जिन पदार्थों में कठोरता, बल, श्रेष्ठता आदि गुण दिखते हैं उनमें पुरुषत्व की कल्पना करके उनके वाचक शब्दों को पुल्लिंग और जिनमें नम्रता, कोमलता, सुन्दरता आदि गुण दिखाई देते हैं, उनमें स्त्रीत्व की कल्पना करके उनके वाचक शब्दों को स्त्रीलिंग कहते हैं। शेष अप्राणिवाचक शब्दों को बहुधा नपुंसक लिंग कहते हैं। हिन्दी में लिंग के विचार से सब जड पदार्थों को सचेतन मानते हैं, इसलिए इसमें नपुंसक लिंग नहीं है। यह लिंग न होने के कारण हिन्दी की लिंग व्यवस्था संस्कृत, मराठी, मलयालम आदि भाषाओं की अपेक्षा कुछ सहज है, परन्तु जड पदार्थों में पुरुषत्व व स्त्रीत्व की कल्पना के लिए कुछ शब्दों के रूपों को तथा

1. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 160.

दूसरी भाषाओं के शब्दों के मूल लिंगों को छोड़कर और कोई आधार नहीं है।

जिस संज्ञा से (यथार्थ व कल्पित) पुरुषत्व का बोध होता है उसे पुल्लिंग कहते है जैसे लडका, बैल, पेड, नगर आदि। इन उदाहरणों में 'लडका' और 'बैल' यथार्थ पुरुषत्व सूचित करते हैं और 'पेड' तथा 'नगर' से कल्पित पुरुषत्व का बोध होता है।[1]

जिस संज्ञा से (यथार्थ व कल्पित) स्त्रीत्व का बोध होता है उसे स्त्रीलिंग कहते है जैसे लडकी, गाय, लता, रात आदि। इन उदाहरणों में 'लडकी' और 'गाय' से यथार्थ स्त्रीत्व का और'लता'और 'रात' से कल्पित स्त्रीत्व का बोध होता है।[2]

हिन्दी में लिंगों की संख्या दो होने के कारण शब्दों का लिंग निर्णय करना कठिन है। अप्राणिवाचक शब्दों के संबंध में यह समस्या और बढ़ जाती है। इसके लिए व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते, क्योंकि इनके लिए भाषा के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं है। तथापि हिन्दी में लिंग निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है - 1. शब्द के अर्थ से और 2. शब्द के रूप से। बहुधा प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार और अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप के अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दों का लिंग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है, और इसके लिए व्याकरण से पूर्ण सहायता नहीं मिल सकती। हिन्दी शब्दों के लिंग निर्णय पर विस्तृत रूप से विचार करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह इस अध्ययन से बाहर है।

1.8.2. मलयालम की लिंग रचना

यदि लिंग निर्णय के सन्दर्भ में हिन्दी और मलयालम की तुलना करें तो सबसे बडा अन्तर यह पायेगा कि हिन्दी के दो लिंगों के स्थान पर मलयालम में तीन लिंग - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग - पाये जाते हैं।

मलयालम में पुरुषवाचक संज्ञा पुल्लिंग और स्त्रीवाचक संज्ञा स्त्रीलिंग माने जाते हैं। इन्हें छोडकर आनेवाले लिंग भेदहीन संज्ञाएँ नपुंसक लिंग माने जाते हैं।

उदाः- आण् (नर) मनुष्यन (मनुष्य)* - पुल्लिंग
पेण् (नारी) स्त्री स्त्रीलिंग
मरम् (पेड़) वळ्ळि (बेल) ऊण् (खाना) उऱक्कम् (नींद) - नपुंसक लिंग

1. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 161.

2. वही

मलयालम में व्यक्तिवाचक संज्ञा, जातिवाचक संज्ञा तथा अन्यपुरुष सर्वनाम आदि में लिंग भेद होता है। जैसे -

व्यक्तिवाचक संज्ञा- नारयाणन् नारायणी, माधवन माधवी

जातिवाचक संज्ञा- पणक्कारण् पणक्कारी, मलयन मलयी, परयन् - परयी

सर्वनाम अवन् - अवळ्, एवन् - एवळ्, यावन् - यावळ्

लेकिन पुरुषवाचक सर्वनामों में यह लिंग भेद नहीं होता। किन्तु इनके साथ जोडनेवाले विशेषणों में यह लिंग भेद संभव है।

उदाः- 'ञान राजावुॅ' (मैं राजा हूँ), 'ञान राज्ञी' (मैं राणी हूँ), 'नी सुन्दरन्'(तुम सुन्दर हो), 'नी सुन्दरी'(तुम सुन्दर हो (स्त्री))

मलयालम व्याकरण के अनुसार लिंग निर्णय के तीन प्रकार हैं -

1. अलग - अलग शब्दों के ज़रिए
2. समास शब्दों के जोडने से
3. प्रत्ययों के प्रयोग से।[1]

उपर्युक्त भेदों में सबसे पहले आता है अलग-अलग शब्दों के ज़रिए लिंग निर्णय। इसमें स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के लिए अलग अलग शब्दों का प्रयोग होता है। यही रीति हिन्दी में भी प्रचलित है।

उदाः- अच्छन् (पिता) अम्मा (माता)

आण् (पुरुष) - पेण् (स्त्री)

मातावुॅ (माता) पितावुॅ (पिता)

वरन (दुल्हा) वधु (दुल्हन)

सहोदरन (भाई) सहोदरी (बहन)

दूसरे भेद में शब्दों के आदि या अंत में लिंग सूचक शब्द जोडकर लिंग बदल दिया जाता है।

उदाः- क. जिनका पूर्वपद लिंग वाचक हो

अणकुट्टि (लडका) पेणकुट्टि (लड़की)

पुरुषप्रजा स्त्रीप्रजा

---

* हिन्दी के समानार्थक शब्द कोष्ठक में दिए गए हैं।

1. एम शेषगिरि प्रभु, व्याकरण मित्रम् - पृ. 102

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः अण, पेण, पुरुष तथा स्त्रीलिंग सूचक शब्द हैं।

उदाः- ख. जिनका उत्तरपद लिंगवाचक हो

शूद्रन (शूद्र) शूद्रस्त्री

गंधर्वन (गंधर्व) - गंधर्व स्त्री

नागन (नाग) नागकन्या

राक्षसन् (राक्षस) राक्षस तरुणी

किन्नरन (किन्नर)- किन्नर नारी

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः स्त्री, कन्या, तरुणी तथा नारी लिंगसूचक के रूप में काम करते हैं।

तीसरे भेद में पुल्लिंग रूपों के साथ स्त्री प्रत्यय जोडकर स्त्रीलिंग रूप बनाए जाते हैं। मलयालम में 'अवन्','अन','आन','ओन' आदि पुल्लिंग प्रत्यय है जबकि 'अवळ','अळ','आळ' 'ओळ','इ' 'ती' आदि स्त्रीलिंग प्रत्यय हैं। 'इन' 'अं' आदि नपुंसक हैं।

उदाः- अवन् - अवळ

परञ्ञवन(बोलनेवाला) परञ्ञवळ (बोलनेवाली)

किष़वन (बूढा) किष़वि (बूढी)

पुलयन (पुलय जाति का पुरुष) पुलयि (पुलय जाति की औरत)

प्रत्यय जोडकर स्त्रीलिंग बनाने के कई नियम प्रचलित हैं उनमें से प्रमुख निम्नलिखित है -[1]

(क) 'अन्' प्रत्यय में अन्त होनेवाले शब्दों के साथ 'इ' या 'ति' प्रत्यय जुड जाते है लेकिन संधि के कारण 'ति' प्रत्यय की वृद्धि हो जाती है।

कुल्लन (बौना) - कुल्लत्ति

कुशवन (कुम्हार) कुशवत्ति

चोकिटन (बहरा) चेकिटत्ति

विल्लन (खलनायक) विल्लत्ति

उपर्युक्त उदाहरणों में 'अन' का लोप होकर 'ति' प्रत्यय आ गया है लेकिन संधि के कारण वृद्धि होकर 'त्ति' बन गया है।

तोष़न (साथी) तोषि़ (सहेली)

1. एम शेषगिरि प्रभु, व्याकरण मात्रम् - पृ. 104

कूनन (कुबडा) - कूनी (कुबडी)
मलयन (मलय पुरुष) - मलयी (मलय स्त्री)

इन उदाहरणों में 'अन' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय आ गया है।

कुछ स्त्रीलिंग शब्दों में 'इ' तथा 'ति' विकल्प के रूप में प्रयुक्त होता है।

उदाः- कळ्ळन (चोर) - कळ्ळत्ति, कळ्ळि
किषवन (बूढा) किषवत्ति, किषवि
पोट्टन (बहरा) पोट्टत्ति, पोट्टि
कुशवन (कुम्हार) कुशवत्ति, कुशवि

कुछ स्थानों में 'इ' के साथ 'च्चि' का भी प्रयोग होता है या 'ई' स्थान पर 'च्चि' आ जाता है।

उदाः- कुरुटन (अंधा) - कुरुटि, कुरुटिच्चि
कूनन (कुबडा) कूनि, कूनिच्चि
तोण्णन (पोपले मुँह का) तोण्णि, तोण्णिच्चि
परयन (परय जाति का पुरुष) परयि, परच्चि
पुलयन (पुलय जाति का पुरुष) पुलयी, पुलच्चि

'ति' प्रत्यय मूर्धन्य के आगम से 'टि' तथा तालव्य के आगम से 'चि' बन जाता है। यदि सवर्ण का आगम है तो क्रमशः त्ति, च्चि तथा 'ट्टि' के रूप में बदल जाएँगे।

उदाः- ईषवन (ईषव जाति का पुरुष) ईषवत्ति
तट्टान (सुनार) तट्टात्ति
इटयन (चरवाहा) इटयत्ति
कोतियन (लालची) कोतिच्चि
तटियन (मोटा आदमी) तटिच्चि
तम्पुरान (मालिक, प्रभु) तम्पुराट्टि
मणवाळन (दुल्हा) मणवाट्टि[1]

उपर्युक्त विवेचन अत्यंत संक्षिप्त और सीमित है। इसका लक्ष्य मात्र दोनों भाषाओं की लिंग व्यवस्था की सामान्य जानकारी देना है।

1. एम शेषगिरि प्रभु, व्याकरण मात्रम् - पृ. 104-106

हिन्दी और मलयालम की लिंग व्यवस्था की तुलना करें तो हिन्दी में दो ही लिंग है- पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। जबकि मलयालम में तीन लिंगों की गणना होती है - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग। मलयालम का यह लिंग-विधान प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा के समान होते हुए भी उससे भिन्न है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में अप्राणिवाचक शब्दों का भी लिंग निश्चित होता था यथा नदी, अग्नि आदि। परन्तु मलयालम का लिंग-विधान पूर्ण रूप से प्राकृतिक है, उसमें अप्राणिवाचक सभी शब्दों को नपुंसक लिंग के अन्तर्गत रखा गया है। लिंग-व्यवस्था के इस मूलभूत अन्तर के कारण भाषा-शिक्षण, अनुवाद तथा भाषा के अन्य व्यवहार में अनेक टेढी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अनुवाद के सन्दर्भ में लिंग की सबसे बडी समस्या संकल्पनाओं के अन्तर से उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए मलयालम में जिन शब्दों को नपुंसक लिंग के रूप में माना जाता है, उन्हें हिन्दी में स्त्रीलिंग या पुल्लिंग में रखने के कारण उन शब्दों में कोमलता या परुषता का अतिरिक्त तत्त्व जुड जाता है जो मलयालम में संभव नहीं।[1]

मलयालम और हिन्दी में लिंग सूचक प्रत्ययों के कारण भी समस्याएँ आती हैं। जैसे स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय लगाकर हिन्दी में छोटे-मोटे अथवा कडा और कोमल के अन्तर को व्यक्त किया जाता है।

उदाः-	रस्सा	- रस्सी	डोरा	डोरी
	डिब्बा	डिबिया	लोटा	लुटिया

यह प्रवृत्ति मलयालम में नहीं मिलती और इस कारण शब्दों के अनुवाद में लिंग की यह सूक्ष्म कल्पना बिलकुल ही नष्ट हो जाती है।

हिन्दी में अक्सर 'आ' प्रत्यय और 'इ' प्रत्यय पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के सूचक होते हैं। उदाः-

	पु	स्त्री
क.	गन्ना	नदी
	पैसा	टोपी
	कपडा	रोटी
	चारा	नाली
ख.	दादा	दादी
	बेटा	बेटी
	घोडा	घोडी

1. डॉ जी गोपीनाथन, हिन्दी और भारतीय भाषाएँ, संपा.भोलानाथ तिवारी -पृ. 161

चाचा चाची

इस प्रकार के प्रत्ययों का भेद मलयालम में नहीं है।

हिन्दी में 'इन' 'आनी' 'आइन' 'नी' आदि प्रत्यय जोडकर जो एकल स्त्रीलिंग बनाए जाते हैं वैसी बनावट मलयालम में संभव नहीं है परन्तु जहाँ मलयालम के अपने प्राणिवाचक शब्द आते हैं वहाँ पर मलयालम के अपने प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंगवाची शब्द बनाये जा सकते हैं।

स्त्रीलिंग शब्दों से पुल्लिंग बनाने की प्रवृत्ति हिन्दी में विशेष रूप से पायी जाती है, यह प्रवृत्ति मलयालम में नहीं मिलेगी।

उदाः-

हिन्दी	**समान मलयालम शब्द**
भैंस भैंसा	एरुम पोत्तुँ
बहन बहनोई	सहोदरी सहोदरी भर्त्तावुँ
ननद ननदोई	नात्तून नात्तून्टे भर्त्तावुँ

मलयालम में तीनों लिंगों के सूचक अलग-अलग प्रत्यय होते हैं - जो हिन्दी में नहीं मिलेंगे। उदाहरणस्वरूप पुल्लिंगवाची शब्दों के साथ 'अन्' प्रत्यय, स्त्रीलिंगवाची शब्दों के साथ 'इ' तथा नपुंसक लिंगवाची शब्दों के साथ 'अं' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**	**नपुंसक लिंग**
ग्रंथकारन्	ग्रंथकारि	ग्रंथम्
चित्रकारन्	चित्रकारि	चित्रम्
कळ्ळन (चोर)	कळ्ळी (स्त्री चोर)	कळ्ळम् (चोरी)

कभी कभी मलयालम के कई शब्द दोनों लिंगों में (पुल्लिंग - स्त्रीलिंग) आ सकते हैं।

उदाः-

पट्टि (कुत्ता - कुत्तिया)

कुट्टि (लडका - लडकी)

कोषि़ (मुर्गा मुर्गी)

आन (हाथी - हथिनी)

पूच्च (बिलाव - बिल्ली)

उपर्युक्त प्रकार के शब्दों के लिंग-भेदों को स्पष्ट करने के लिए मलयालम में शब्द के पहले स्त्री-पुरुष सूचक शब्द या रूप ग्राम लगते हैं जबकि हिन्दी में लिंग भेद को सूचित करने के लिए शब्दों में

लिंगवाची प्रत्यय जोडते हैं जैसे -

मलयालम	**हिन्दी**
आण्-पट्टि	कुत्ता
पेण्-पट्टि	कुत्तिया
आण्-कुट्टि	लडका
पेण्-कुट्टि	लडकी
पूवन-कोषि	मुर्गा
पिट-कोषि	मुर्गी
कोंपन-आन	हाथी
पिटि-आन	हथिनि
कन्टन-पूच्च	बिलाव
चक्कि-पूच्च	बिल्ली

मलयालम में अक्सर उपर्युक्त प्रकार लिंग-सूचक शब्दों के बिना ही उन मूल शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो दोनों लिंगों में आते हैं। इनका अनुवाद प्रसंगानुसार किसी न किसी लिंग में करना पडेगा।

सर्वनामों के प्रयोगों में मलयालम में तीनों लिंगों के लिए अलग-अलग रूप मिलते हैं जबकि हिन्दी में सभी लिंगों के लिए एक ही सर्वनाम प्रयुक्त है। जैसे

	मलयालम		**हिन्दी**
लिंग	प्रत्यय	सर्वनाम	
पु.	अन्	अवन्	वह
स्त्री	अळ्	अवळ्	
नपुं	तुं	अतुं	

वह, यह, वे, ये, कौन आदि सर्वनामों में भी उक्त प्रकार की भिन्नता पायी जाती है। यद्यपि यह उतनी टेढ़ी समस्या नहीं है, तो भी हिन्दी के सर्वनामों द्वारा अक्सर मलयालम में प्रकट होनेवाली लिंग की इस भिन्नता को अभिव्यक्त करना संभव नहीं हो पाता है।

विशेषणों के लिंग-विधान में भी उल्लेखनीय समस्याएँ हमारे सामने आ जाती हैं। पहली समस्या यह है कि मलयालम में तीनों लिंगों में विशेषणों के साथ अलग-अलग प्रत्यय लगते हैं, जबकि हिन्दी

में कई विशेषणों का लिंग भेद नहीं किया जाता, विशेषकर संस्कृत के विशेषणों में ।

उदाः-	**मलयालम**	**हिन्दी**
	पु. सुन्दरनाय पुरुषन्	सुन्दर पुरुष
	स्त्री. सुन्दरियाय पेण्णु	सुन्दर नारी
	नपुं. सुन्दरमाय पुस्तकम्	सुन्दर पुस्तक
	पु. सरसनाय कवि	सरस कवि
	स्त्री. सरसयाय पेण्णु	सरस नारी (लडकी)
	नपुं. सरसमाय वाक्कु	सरस वाणी
	पु. महानाय व्यक्ति	महान व्यक्ति
	स्त्री. महितयाय स्त्री	महान स्त्री
	नपुं.महत्ताय कार्य	महान कार्य
	पु. चतुरनाय आळ्	चतुर व्यक्ति
	स्त्री. चतुरयाय पेण्णु	चतुर नारी (लडकी)
	नपुं.चतुरमाय वाक्कु	चतुर बात

उपर्युक्त उदाहरणों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं -

(क) मलयालम में तीनों लिंगों में विशेषणों की स्पष्ट अवधारणा प्रकट होती है जबकि स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में (अकारान्त को छोड़कर) एक ही विशेषण बिना किसी परिवर्तन के प्रयुक्त होता है। नपुंसक लिंग की सूचना हिन्दी के विशेषणों में संभव नहीं है।

(ख) मलयालम के तीनों लिंग सूचक प्रत्ययों के अलावा विशेषणों के साथ 'आय' शब्द भी जुडता है जो हिन्दी में नहीं पाया जाता। परन्तु मलयालम में संस्कृत के विशेषण जहाँ संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होते हैं, वहाँ 'आय' लगाने की आवश्यकता नहीं पडती है। जैसे -

मलयालम		**हिन्दी**	
पु.	**स्त्री**	**पु.**	**स्त्री**
स्नेहितन	स्नेहिता	मित्र	मित्र
बुद्धिमान	बुद्धिमति	बुद्धिमान	बुद्धिमान
कामुकन्	कामुकि	कामुक	कामुक

विद्वान	विदुषी	विद्वान	विद्वान
महान	महति	महान	महान
चतुरन	चतुरा	चतुर	चतुर[1]

उपर्युक्त प्रकार से भिन्न प्रवृत्ति हिन्दी के आकारान्त गुणसूचक विशेषणों में पायी जाती है। इसमें पुल्लिग और स्त्रीलिंग के लिए अक्सर विशेषणों में अलग अलग प्रत्यय लगते हैं, जबकि मलयालम में तीनों लिंगों में विशेषण विकार रहित रहता है जैसे

हिन्दी	**मलयालम्**
पु. मोटा आदमी	पु. तटिच्च मनुष्यन्
स्त्री. मोटी औरत	स्त्री. तटिच्च पेण्णॅु
स्त्री. मोटी किताब	नपुं. तटिच्च पुस्तकम्
पु. छोटा लडका	पु. चेऱिय आण्कुट्टि
स्त्री. छोटी लडकी	स्त्री. चेऱिय पेण्कुट्टि
स्त्री.छोटी किताब	नपुं. चेऱिय पुस्तकम्
पु. काला बैल	पु. करुत्त काळ
स्त्री. काली गाय	स्त्री. करुत्त पशु
पु. काला कपडा	नपुं. करुत्त वस्त्रम्

इसी प्रकार देखें तो कह सकते है कि मलयालम से हिन्दी में अनुवाद करते समय अप्राणिवाचक शब्दों का विशेषण लिंग के अनुसार निर्धारित करने में कठिनाई होती है।

मलयालम और हिन्दी की लिंगगत विशेषताओं की झाँकी दी गई है। दोनों भाषाओं की ऐसी विशेषताएँ बनी रहेंगी और एक दूसरे को प्रभावित करती रहेंगी। जब भारत के विभिन्न भाषा-भाषी लोग बडी मात्रा में अपनी-अपनी भाषाओं की कृतियों का अनुवाद हिन्दी में करें तब हिन्दी पर उन स्रोत भाषाओं का बहुमुखी प्रभाव अनिवार्यतः पडेगा।

1.8.3 वचन

1. डॉ जी गोपीनाथन, हिन्दी और मलयालम की लिंग संबंधी समस्याएँ (लेख) हिन्दी और भारतीय भाषाएँ, संपा. भोलानाथ तिवारी - पृ. 162
2. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 174.

संज्ञा (और दूसरे विकारी शब्दों) के जिस रूप से संख्या का बोध होता है उसे वचन कहते हैं।[1] हिन्दी में दो वचन होते है

क. एकवचन ख. बहुवचन

(क) संज्ञा के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है, उसे एकवचन कहते है, जैसे लडका, कपडा, टोपी, रंग, रूप।

(ख) संज्ञा के जिस रूप से अधिक वस्तुओं का बोध होता है उसे बहुवचन कहते हैं, जैसे लडके, कपडे, टोपियाँ, रंगों में, रूपों से इत्यादि।

कभी कभी आदर के लिए भी बहुवचन आता है जैसे, राजा के बड़े बेटे आए हैं। कण्व ऋषि तो ब्रह्मचारी हैं।

यद्यपि संस्कृत का पूरा प्रभाव हिन्दी में है तथापि संस्कृत वचन पद्धति को हिन्दी ने नहीं अपनाया है। अर्थात् संस्कृत का 'द्विवचन' हिन्दी में नहीं है।

हिन्दी के समान मलयालम में भी दो ही वचन प्रयुक्त हैं एकवचन और बहुवचन। लेकिन मलयालम वैयाकरणों ने बहुवचन के तीन उपभेद प्रस्तुत किए हैं -

1. अलिंग बहुवचन
2. सलिंग बहुवचन
3. पूजक बहुवचन (आदर) [1]

1.8.3.1. पुरुष और स्त्री मिलकर जो बहुवचन रूप बनता है उसे अलिंग बहुवचन कहते हैं।

एकवचन	बहुवचन	अलिंग बहुवचन
पु. मिटुक्कन (होशियार लड़का)	मिटुक्कन्मार	मिटुक्कर
स्त्री. मिटुक्कि (होशियार लडकी)	मिटुक्किकळ्	
पु. शूद्रन (शूद्र पुरुष)	शूद्रन्मार	शूद्रर
स्त्री. शूद्रत्ति, शूद्रा(शूद्र स्त्री)	शूद्रत्तिमार	
पु. वेलक्कारन (नौकर)	वेलक्कारन्मार	वेलक्कार
स्त्री. वेलक्कारि (नौकरानी)	वेलक्कारिकळ्	

उपर्युक्त उदाहरणों में पुरुष और स्त्री मिलकर बहुवचन बनाने के लिए 'अर' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।

1.8.3.2. पुरुष और स्त्री लिंग अलग-अलग से मिलकर जो बहुवचन रूप बनता है उसे सलिंग बहुवचन

1. ए आर राज राजवर्मा, केरल पाणिनीयम् - पृ. 132-133

कहते हैं। सामान्य रूप से सलिंग बहुवचन का प्रत्यय 'मार' है।

उदाः- रामन रामनमार भार्य (पत्नी) भार्यमार

अम्म - अम्ममार तट्टान (सुनार) तट्टान्मार

नपुंसकों के बहुवचन रूप बनाने के लिए 'कळ' प्रत्यय का प्रयोग होता है।

उदाः- मल (पहाड) - मलकळ्

आन (हाथी) आनकळ्

मरम् (पेड) - मरङ्ङळ्

इल (पत्ता) - इलकळ्

कभी कभी अनादर या निम्न अवस्था को सूचित करने के लिए स्त्रीलिंग या पुल्लिंग शब्दों के साथ भी 'कळ्' प्रत्यय प्रयुक्त होता है।

उदाः- उण्णिकळ् (छोटे बच्चे)

कुट्टिकळ् (बच्चे)

वेलक्कारत्तिकळ् (नौकरानियाँ)

1.8.3.3. आदर को सूचित करने के लिए उपर्युक्त तीनों प्रत्ययों का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया जाता है।

एकवचन	बहुवचन	प्रत्यय
भट्टन	भट्टर	अर
नी	निङ्ङळ	अळ्
तट्टान	तट्टार	अर

तम्पुरान (मालिक) तम्पुराक्कळ्, तम्पुराक्कन्मार अळ्, मार

राजावुँ (राजा) राजाक्कळ्, राजाक्कन्मार अळ्, मार

पितावुँ (पिता) पिताक्कळ्, पिताक्कन्मार अळ्, मार

देवतकळ् (देवता) शिष्यरकळ् (शिष्य) कळ्

गुरुक्कन्मार (गुरु) पिताक्कन्मार (पिता) मार

'अ', 'इ','ए' आदि सर्वनामों के बहुवचन रूप 'अ' प्रत्यय लगने से बनते है ।

उदाः- अ (वह) + अ ——अव (वे)

इ (यह) +अ —— इव (ये)

ए + अ —— एव

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो शब्दों के रूप के अनुसार बहुवचन बनाने के कुछ नियम निम्नलिखित है -

I. तालव्य या संवृत में अन्त होनेवाली संज्ञाओं के बहुवचन रूप बनाने के लिए संज्ञा के साथ ' ळ्'जुडना

चाहिए।

उदा:-	ए.व	ब.व
	आन (हाथी)	आनकळ्
	अरि (चावल)	अरिकळ्
	कण्णुॅ (आँख)	कण्णुकळ्
	आटुॅ (बकरा)	आटुकळ्

II. ओष्ठ्य स्वरांत संज्ञाओं में 'कळ्' प्रत्यय 'क्कळ्' बन जाएगा।

उदा:-	भू	भूक्कळ्
	पूवुॅ (फूल)	पूक्कळ्
	गोवुॅ (गाय)	गोक्कळ्
	साधु (गरीब)	साधुक्कळ्

III. आकारान्त और ऋकारान्त संज्ञाओं के बहुवचन बनाने के लिए भी 'क्कळ्' का प्रयोग होता है।

उदा:-	राजा (राजावुॅ)	राजाक्कळ्
	पिता (पितावुॅ)	पिताक्कळ्
	दाता (दातावुॅ)	दाताक्कळ्

उपर्युक्त उदाहरणों में उच्चारण की सुविधा के लिए आकारान्त संस्कृत प्रथमा रूप जुडने के कारण बहुवचन में संवृत का लोप होता है।

IV.अनुनासिकांत उभयादेश के कारण 'कळ्' का रूप 'ङ्ङळ्' हो जाएगा।

उदा:-	मरम् (पेड) + कळ्	मरङ्ङळ्
	निन् (तुम) + कळ्	निङ्ङळ्
	पेण् (बहन) + कळ्	पेङ्ङळ्
	ञान् (मैं) + कळ्	ञङ्ङळ्

कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका एकवचन तथा बहुवचन में समान रूप से प्रयोग होता है।

i. माप-तोल को सूचित करनेवाली संज्ञाओं का बहुवचन रूप प्रयुक्त नहीं होता।

उदा:- अंचुॅ किलो नेल्लुॅ (पाँच किलो चावल)

मून्नुॅ सेर अरि (तीन सेर चावल)

ii. संख्या के बाद आनेवाली संज्ञाओं के लिए बहुवचन रूप की आवश्यकता नहीं है।

उदा:- रन्टुॅ आळ् (दो आदमी)

पत्तु सहस्रम (दस हज़ार)

नूरु रूपा (सौ रुपए)

नूरु पेर (सौ लोग)

इसके समान सिक्कों के नाम भी एकवचन में ही प्रयुक्त किया जाता है।

iii. एक ही गुण को सूचित करनेवाले गुणवाचक संज्ञाओं का बहुवचन नहीं होता -

उदाः-	नीळम् (लंबाई)	सन्तोषम् (खुशी)
	करुप्पु (काला)	धैर्यम् (धैर्य)

लेकिन कई गुणों को सूचित करनेवाली संज्ञाएँ जातिवाचक होने के कारण उनके बहुवचन रूप प्रयुक्त होते हैं -

उदाः-	गुणम् (गुण)	गुणङ्ङळ्
	दोषम् (दोष)	दोषङ्ङळ्
	अळवु (माप)	अळवुकळ्
	निऱम् (रंग)	निऱङ्ङळ्

वचन के संबंध में सामान्य परिचय देने का प्रयास किया गया है। सभी भेदों, उप भेदों तथा अपवादों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है क्योंकि वह इस अध्ययन के बाहर है। वचन की दृष्टि से देखें तो हिन्दी और मलयालम भाषापरक रूप संरचना के कारण उत्पन्न होनेवाली असमानताएँ पायी जाती हैं। क्रिया के संबंध में मलयालम की वचन और लिंग व्यवस्था हिन्दी की तुलना में काफी सरल प्रतीत होती है क्योंकि मलयालम दोनों लिंग और दोनों वचनों में केवल एक ही रूप स्वीकार करती है।

1.8.4. विभक्ति और कारक

संज्ञा (या सर्वनाम) के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य की किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है उस रूप को कारक कहते हैं।[1] जैसे

'रामचन्द्रजी ने खरी जल के समुद्र पर बन्दरों से पुल बँधवा दिया'।

इस वाक्य में 'रामचन्द्रजी ने' 'समुद्र पर','बन्दरों से' और 'पुल' संज्ञाओं के रूपान्तर है जिनके द्वारा इन संज्ञाओं का संबंध 'बँधवा दिया' क्रिया के साथ सूचित होता है।'जल के' 'जल' संज्ञा का रूपांतर है और उससे जल का संबंध समुद्र से जाना जाता है। इसलिए 'रामचन्द्रजी','ने' 'समुद्र पर','जल के','बन्दरों से'और 'पुल' संज्ञाओं के कारक कहलाते हैं। कारक सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय लगाए जाते हैं उन्हें विभक्तियाँ कहते हैं। विभक्ति के योग से बने हुए रूप विभक्त्यंत शब्द या पद कहलाते हैं।

1. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 184.

हिन्दी में आठ कारक हैं। इनके नाम विभक्तियाँ और लक्षण नीचे दिये जाते हैं।[1]

	कारक	विभक्तियाँ
1.	कर्ता	०, ने
2.	कर्म	को
3	करण	से
4.	संप्रदान	को, के लिए
5.	अपादान	से
6.	संबंध	का, के, की
7	अधिकरण	में, पर
8.	संबोधन	हे, अजी, अहो, अरे

1.8.4.1. कर्ता कारक क्रिया से जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को कर्ता कारक कहते है, जैसे -

1.लडका सोता है।

2. नौकर ने दरवाज़ा खोला।

3. चिट्ठी भेजी जाएगी।

1.8.4.2. कर्म कारक जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पडता है उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को कर्म कारक कहते हैं, जैसे -

1. लडका पत्थर फेंकता है।

2. मालिक ने नौकर को बुलाया।

1.8.4.3. करण कारक - करण कारक संज्ञा के उस रूप को कहते है जिससे क्रिया के साधन का बोध होता है, जैसे -

1. सिपाही चोर को रस्सी से बाँधता है।

2.लडके ने हाथ से फल तोडा।

3.मनुष्य आँखों से देखता है।

1. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 187

1.8.4.4. संप्रदान कारक - जिस वस्तु के लिए कोई क्रिया की जाती है उसके वाचक संज्ञा के रूप को संप्रदान कारक कहते है। जैसे -

1. राजा ने ब्राह्मण को धन दिया।

2. लडका नहाने को गया है।

1.8.4.5. अपादान कारक- अपादान कारक संज्ञा के उस रूप को कहते हैं जिससे क्रिया के विभाग की अवधि सूचित होती है, जैसे

1. पेड से फल गिरा।

2. गंगा हिमालय से निकलती है।

1.8.4.6. संबंध कारक - संज्ञा के जिस रूप से उसकी वाच्य वस्तु का संबंध किसी दूसरी वस्तु के साथ सूचित होता है, उस रूप को संबंध कारक कहते हैं, जैसे,

1. राजा का महल
2. लडके की पुस्तक
3. पत्थर के टुकडे ।

1.8.4.7. अधिकरण-कारक- संज्ञा का वह रूप जिससे क्रिया के आधार का बोध होता है अधिकरण कारक कहलाते हैं, जैसे,

1. सिंह वन में रहता है।
2. बंदर पेड पर चढ़ रहे हैं।

1.8.4.8. संबोधन कारक - संज्ञा के जिस रूप से किसी को चिढ़ाना व पुकारना सूचित होता है उसे संबोधन-कारक कहते हैं, जैसे,

1. हे नाथ! मेरे अपराधों को क्षमा करना।
2.अरे लडके, इधर आ।

विभक्तियों के योग से पहले संज्ञाओं का जो रूपांतर होता है उसे विकृत रूप कहते हैं, जैसे 'घोडा' शब्द के 'ने' विभक्ति के योग से एकवचन में 'घोडे' और बहुवचन में 'धोडों' हो जाता है। इसलिए 'घोडे' और 'घोडों' विकृत रूप है। विभक्ति रहित कर्ता और कर्म को छोड़कर शेष कारक जिनमें संज्ञा व सर्वनाम का विकृत रूप आता है, विकृत कारक कहलाते हैं।

1.8.5. मलयालम की विभक्तियाँ

मलयालम द्रविड परिवार की भाषा है। उसके संज्ञा शब्द तथा अन्य शब्दों के साथ लगनेवाले प्रत्यय आदि द्रविड प्रवृत्ति के रहे हैं। बाद में संस्कृत भाषा के प्रभाव में आ जाने से मलयालम में तत्सम शब्द बडी संख्या में आ गए। संस्कृत की विभक्तियाँ भी मलयालम में प्रयुक्त होने लगीं। फलतः विभक्तियों के प्रयोग में समानताएँ आने लगीं और कुछ लोग समझते हैं कि मलयालम संस्कृत की ही उत्तराधिकारिणी है। लेकिन मलयालम के व्याकरणाचार्य श्री ए आर राजराजवर्मा ने इसका खण्डन यों किया है।

i. संस्कृत में एक रूप के कई अर्थ होते हैं जबकि मलयालम में अर्थ-परिवर्तन के साथ रूप परिवर्तन भी होता है। इसलिए कई अर्थों के लिए एक सामान्य विभक्ति का उल्लेख करना अनुचित है।

ii. संस्कृत में जहाँ दो प्रत्यय प्रयुक्त हो वहाँ मलयालम में एक ही प्रत्यय से काम चलेगा। मगर भाषा में जहाँ दो प्रत्यय दरकरार होते हैं वहां संस्कृत में एक प्रत्यय काफी है।

iii. संस्कृत में प्रत्यय जोडकर विभक्तियाँ रचते हैं। भाषा में उन विभक्तियों को सूचित करने के लिए प्रत्यय, गति कहलानेवाले अव्यय (कर्म प्रवचनीय), समास- तीनों का उपयोग किया जा सकता है।

iv. विभक्ति प्रत्ययों की संख्या दोनों भाषाओं में सात ही है तो भी अर्थ में वे परस्पर मेल नहीं खातीं। निम्नलिखित तालिका से मलयालम और संस्कृत विभक्ति प्रत्ययों की जानकारी मिल सकती है।

विभक्ति	प्रत्यय	मलयालम के उदाहरण	संस्कृत के उदाहरण
प्रथमा	शब्द स्वरूप	अतुँ	तत्
द्वितीया	ए	अतिने	तम्
	ओटुँ	अतिनोटुँ	
तृतीया	हेतु	अतुँ हेतुवाई	तेन
	आयि	अतायि	
	कोण्टुँ	अतुँ कोण्टुँ	
	आल	अतिनाल	
	ओटुँ	अतिनोटुँ	
	ऊटे	अतिलूटे	
चतुर्थी	आइकोण्टुँ	अतिनाइकोण्टुँ	तस्मै
पंचमी	इलनिन्नुँ	अतिलनिन्नुँ	तस्मात्
	कलनिन्नुँ	अतिकलनिन्नुँ	
	इनपोक्के	अतिन्पोक्के	
	काळ्	अतिनेक्काळ्	

	हेतुवाइट्टुँ	अतुँ हेतुवाइट्टुँ	
षष्ठी	क्कुँ उँ	अतिनुँ	तस्य
	उटे-टे	अतिनुटे अतिन्टे	
	इलवेच्चुँ	अतिलवेच्चुँ	
सप्तमी	इलवेच्चुँ	अतिलवेच्चुँ	तस्मिन
	इल	अतिल	
	इंकल	अतिंकल	
	विषयमायि	अतु विषयमायि[1]	

इस तालिका से पता चलता हैं कि एक संस्कृत रूप के कई अर्थ होने पर भी मलयालम में प्रत्येक अर्थ का प्रत्येक रूप भी होता है। उदाहरण के लिए तृतीया विभक्ति को लीजिए। 'तेन' के लिए मलयालम में 'अतुँ हेतुवायिकोण्टुँ', 'अतायि' 'अतुकोण्टुँ' 'अतिनाल','अतिनोटुँ' 'अतिलूटे'आदि छः रूप प्रयुक्त है। अर्थात् भाषा में प्रत्येक अर्थ को सूचित करने के लिए प्रत्येक रूप भी विद्यमान है जो संस्कृत में नहीं है।

आगे प्रत्येक विभक्ति का विश्लेषण और हिन्दी से उसकी तुलना करेंगे।

1.8.5.1. प्रथमा विभक्ति

मलयालम में इसका कारक कर्ता है और विभक्ति का नाम निर्देशिका है। इसको सूचित करनेवाला खास प्रत्यय नहीं लगता, चाहे कर्ता चेतन भी हो। मलायलम में कर्ता के लिंग-वचन का कोई प्रभाव क्रिया पर किसी भी काल में नहीं दिखाई देता। लेकिन हिन्दी में वर्तमान व भविष्य में कर्ता के लिंग वचन का प्रयोग क्रिया को प्रभावित करता है। भूतकाल की सकर्मक क्रियाओं में 'ने' का प्रयोग करना पडता है इसलिए क्रिया कर्म के अनुसार बदलती है।

1.8.5.2. द्वितिया विभक्ति

मलयालम में द्वितिया विभक्ति का नाम प्रतिग्राहिका है। इसका मूल प्रत्यय 'ए' है। कभी कभी 'ओटुँ' का भी प्रयोग होता है। मलयालम के कर्मकारक के विषय में अप्राणिवाचक और प्राणिवाचक का अन्तर होता है। प्राणिवाचक के साथ द्वितिया प्रत्यय लगता है। अप्राणिवाचक शब्द वैसे ही बिना किसी प्रत्यय के कर्मार्थ में प्रयुक्त होता है।

उदाः- **अप्रा.** मल. राधा कथा केळ्क्कुन्नु
हि. राधा कथा सुनती है।

1. ए आर राजराजवर्मा, केरल पाणिनीयम् - पृ. 141-143

मल. गोपालन नाटकम् काणुम्
हि. गोपालन नाटक देखेगा।
प्रा.मल. यजमानन भृत्यने अटिक्कुन्नु
हि. मालिक नौकर को मारता है।
मल. अध्यापकन कुट्टिये पठिप्पिच्चु
हि. अध्यापक ने लडके को सिखाया।
मल. रवि गिरिशनोटु कळ्ळम् परञ्ञु
हि. रवि ने गिरिश से झूठ कहा।

मलयालम में द्वितिया विभक्ति का प्रयोग होता है, पर हिन्दी का मुहावरा अन्य प्रत्ययों पर बल देता है। इसका एक कारण हिन्दी की अर्थ-संकल्पना और मलयालम की अर्थ-संकल्पना का अन्तर है। दूसरा कारण यह है कि जहाँ मलयालम में सीधे क्रिया धातुओं का प्रयोग किया जाता है, वहाँ हिन्दी में कृदन्त के साथ 'हो' या 'कर' जोडकर क्रियापद रचे जाते है। अतः कृदन्त के और उससे पूर्व के शब्द के संबंध के अनुसार प्रत्यय जोडा जाता है।

1.8.5.3. तृतीया विभक्ति

मलयालम में तृतीया विभक्ति का नाम 'संयोजिका' है। इसका मूल प्रत्यय 'ओटुं' है। 'ओटुं' की जगह अन्य निपात भी मुहावरेदार प्रयोग में आते है। जैसे - 'हेतुवायि' 'कोण्टुं','आल','ओटुं' 'उटे'।

हिन्दी में करण कारक का तृतीया विभक्ति प्रत्यय 'से' है। पर वह अपादान कारक की पंचमी विभक्ति का प्रत्यय भी है। अतः 'से' देखकर बताया नहीं जा सकता कि यह तृतीया है। हिन्दी में कई जगह 'से' की जगह भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है जैसे, के ज़रिए, से होकर, के बिना आदि।

उदाः- गंगा यमुनयोटुं चेरुन्नु
गंगा यमुना से सम्मिलित होती है।
नाम् मरम् कोण्टुं कसेर उण्टाक्कुन्नु
हम लकडी से कुरसी बनाते हैं।
अवनुं एन्नोटु पिणक्कमाणु
वह मुझसे नाराज़ है।

1.8.5.4 चतुर्थी विभक्ति

मलयालम में चतुर्थी विभक्ति का नाम 'उद्देशिका' है। उद्देशिका का कारक 'स्वामी' है। इसका

प्रत्यय 'क्कु' अथवा उसका अवशेष 'उ' है। व्याकरण विधि में जो कारक उद्देश्य के रूप में स्थित है वही स्वामी है।

उदा लीलक्कु सारी इष्टमायि

लीला को साड़ी पसन्द आई।

मलयालम में शुद्ध उद्देशिका विभक्ति के उदाहरण कम है।

उदा रामनु पुत्रन उण्डायि

राम का एक बेटा हुआ।

यहाँ हिन्दी का प्रयोग खास तरह का और मुहावरेदार है।

अच्छनु मरुन्नु कोटुक्कू

पिताजी को दवा दे दो।

अंग्रेज़ी में 'टू' (To),'फोर' (For) ये दोनों इस विभक्ति की जगह सामान्यतः प्रयुक्त होते हैं।

1.8 .5.5. पंचमी विभक्ति

मलयालम में इसका नाम प्रयोजिका है। प्रयोजिका का अर्थ करण और कारण माना गया है। इसका मूल प्रत्यय 'आल्' है।

हिन्दी की पंचमी विभक्ति का प्रत्यय 'से' है। इसका प्रयोग मलयालम के पंचमी प्रयोग से मिलता जुलता है। कहीं कहीं 'से' की जगह पर 'से लेकर' 'की अपेक्षा' 'के कारण' आदि प्रयोग मिलते हैं। अंग्रेज़ी में यह प्रयोग than, from, for, due, to आदि भिन्न भिन्न शब्दों से भी किया जाता है। स्पष्ट है कि प्रसंगों के अनुसार ये शब्द बदलते हैं। मगर हिन्दी में सबके लिए एक ही 'से' प्रत्यय प्रयुक्त है। मलयालम के कुछ मुहावरेदार पंचमीयुक्त प्रयोग और उनके हिन्दी अनुवाद दिए जाते हैं -

जोसफ कंपनियिल निन्नु वरुन्नु

जोसफ कंपनी से आता है।

मरत्तिल निन्नु इल पोषियुन्नु

पेड से पत्ता झडता है।

'आल' प्रत्यय के कुछ प्रयोग देखिए।

वण्डिक्कारन काळये वटियाल अटिक्कुन्नु

गाडीवाला बैल को छडी से पीटता है।

कृष्णनाल कंसनु मरणम संभविक्कुम्

कृष्ण से कंस को (की) मृत्यु होगी।

कुशवन मण्णु कोण्डु कुटम् उण्डाक्कुन्नु

कुम्हार मिट्‌टी से घडा बनाता है।

1.8.5.6. षष्ठी विभक्ति

मलयालम में इस विभक्ति का नाम 'संबंधिका' है। इसका अर्थ है स्वामित्व या मालिकपन। इसका प्रत्यय 'उटे' है। यह मूल शब्द के अनुसार 'ऱ्ऱे' हो जाता है।

उदाः- सीतयुटे, रामन्ऱ्ऱे (रामन्टे)

मलयालम और हिन्दी का अन्तर दर्शनीय है। हिन्दी में 'को' प्रत्यय का प्रयोग संप्रदान व संबंध दोनों कारक में किया जाता है। मलयालम में 'क्कु','न्नु' दोनों प्रत्यय कभी संप्रदानार्थ में आते हैं, कभी संबंध के अर्थ में।

उदाः- गीतक्कु सम्मानम् किट्टी
गीता को पुरस्कार मिला।
राजनु संगीतम इष्टमाणु
राजन को संगीत प्रिय है।
सूरदासिंऱ्ऱे कविता श्रेष्ठमाणु
सूरदास की कविता श्रेष्ठ है।

संबंध कारक के का, के, की के प्रयोग में मलयालम के प्रयोग से जो अतिरिक्त अन्तर है वह यहाँ उल्लेखनीय है। मलयालम 'उटे' 'न्ऱे', अव्यय जैसे होते हैं। इसलिए बाद में आनेवाले संज्ञा-शब्दों के विषय में कोई चिन्ता नहीं रहती, चाहे वे एक हों, अनेक हों, स्त्रीलिंग हो कि पुल्लिंग, विभक्ति सहित हो अथवा विभक्ति रहित।

उदाः- राजुविन्ऱ्ऱे ज्येष्ठन्ऱ्ऱे भार्ययुटे वीटु कोल्लत्ताणु
राजा के बडे भाई की पत्नी का घर कोल्लम पर है।
मोहन्ऱ्ऱे पुस्तकत्तिल देशत्तिले वलिय नेताक्कन्मारुटे कथकळ उण्डु।
मोहन की किताब में देश के बडे नेताओं की कहानियाँ हैं।

1.8.5.7 सप्तमी विभक्ति

मलयालम सप्तमी विभक्ति 'आधारिका' कहलाती है। इसका कारक है अधिकरण। इसके दो प्रत्यय हैं - 'इल' 'कळ' इसके प्रयोग में थोडा सा अन्तर है।

उदाः- मेत्तयिल किटक्कुन्नु
बिस्तर पर लेटता है।
पटिक्कल निल्कुन्नु
दरवाज़े पर खडा है।

मलयालम में या तो सप्तमी विभक्ति प्रत्यय लिखा जाता है या उसके साथ 'गति' कहलानेवाले

अव्यय जोडे जाते हैं। अंग्रेज़ी में प्रत्ययों के अनुसार कई अधिकरण सूचक अव्यय प्रयुक्त होते हैं - in, on, at, upon आदि। सप्तमी के कुछ और उदाहरण निम्नलिखित हैं

चाययिल पंचसार इल्ल
चाय में चीनी नहीं हैं।
कुट्टी पाययिल उरङङुन्नु
बच्चा चटाई पर सोता है।
जोलिक्कारन समयत्तिनु वन्निल्ल
नौकर समय पर नहीं आया।

सात विभक्तियों की सरसरी परिक्रमा के बाद भी हम ऐसे कई मुहावरेदार प्रयोग मलयालम व हिन्दी में पाएँगे जो व्यवहार से सही किए गए हैं। ए आर राजराजवर्मा के अनुसार इसके कारण ये हैं - "कुछ विभक्ति प्रत्यय सभी संज्ञा शब्दों के साथ नहीं लगते। अन्य विभक्ति प्रत्ययों में प्रत्यय लुप्त होते हैं, केवल अंग रह जाते हैं। अन्यत्र एक विभक्ति प्रत्यय के अतिरिक्त और एक विभक्ति प्रत्यय होता है। इसे विभक्त्याभास कहा जा सकता है।"[1] इतना ही नहीं हिन्दी और मलयालम के विभक्ति प्रयोग में कई प्रकार की भिन्नताएँ पायी जाती हैं। प्रसंगानुकूल विभक्ति का सही प्रयोग समझ लेना ही करणीय है।

1.8.6. क्रिया

आचार्य कामताप्रसाद गुरु ने "हिन्दी व्याकरण के छठे अध्याय में क्रिया का विस्तृत विश्लेषण किया है। उन्होंने क्रिया के विकास के छः कारण बताए हैं - वाच्य, काल, अर्थ, पुरुष, लिंग और वचन।"[2] मलयालम और हिन्दी में क्रियाधातुओं के प्रयोग पर जब तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना है तो इन दोनों भाषाओं में उपर्युक्त छः घटकों की संकल्पना और प्रयोग पर विचार करना ज़रूरी है। लिंग वचन और पुरुष पर विश्लेषण किया जा चुका है। आगे अर्थ और वाच्य पर विचार किया जा रहा है।

अर्थ

कामताप्रसाद गुरु ने 'अर्थ' की परिभाषा यों दी है "क्रिया के रूपों से केवल समय की पूर्ण अथवा अपूर्ण अवस्था ही का बोध नहीं होता किन्तु निश्चय, सन्देह, संभावना, आज्ञा, संकेत आदि का भी बोध होता है, इसलिए इन रूपों का भी व्याकरण में संग्रह किया जाता है। इन रूपों से काल की भी बोध होता है और अर्थ का भी, और किसी रूप में ये दोनों इतने मिले रहते है कि अलग-अलग करके बताना कठिन हो जाता है।"[3]

---

1. ए आर राज राजवर्मा, केरल पाणिनीयम् - पृ. 153
2. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 217
3. वही- पृ. 224

व्यावहारिक दृष्टि से विचार विदित होता है कि भाषा में क्रिया मुख्य शब्द भेद है। वाक्य के अन्य शब्द क्रिया शब्दों के पीछे आकांक्षा संबंध से बनते हैं - उदा- 'आया' क्रियारूप सुनने पर प्रश्न उठता है - 'कौन आया?' आगे आनुषंगिक प्रश्न उठता है - 'कहाँ आया?' 'क्यों आया?' ' कैसे आया?' आदि। लेकिन आंचलिक भेद और मुहावरेदार शैली के अनुसार कभी कभी इन प्रयोगों में बदलाव भी आते है जैसे 'आ रहा है' 'आ गया' 'अभी आया', 'आ चुका' आदि।

मलयालम के व्याकरणाचार्य ने "केरल पाणिनीयम" में क्रिया धातु के अर्थ सूचित करने 'अर्थ' को 'प्रकार' संज्ञा दी है। प्रकार चार है - नियोजक, विधायक, अनुज्ञायक और निर्देशक। नियोजक में अनुरोध या नियोग सुनाया जाता है, विधायक में आज्ञा दी जाती है। अनुज्ञायक अनुमति का बोधक है। निर्देशक क्रिया के काल आदि को सूचित करता है।[1] अर्थ की अभिव्यक्ति में भाषा की प्रयोग प्रणालियाँ अपनी अपनी प्रविधि रखती है। प्रत्येक भाषा की गठन अलग होती है अतएव भाषा की परंपरागत प्रवृत्ति को समझने के बाद ही क्रिया रूपों का चयन एवं प्रयोग करना पडता है।

मलयालम और हिन्दी के विषय में भी प्रयोगों की भिन्न भिन्न शैलियाँ स्पष्ट दिखाई पडती है।

उदाः- मल. रामन वन्निरिक्कुन्नु (सूचना) हि. राम आया है
राम वन्निट्टुण्डॅ (इष्ट सूचना)

मल. कृष्णन इविटे वरणम् (विधायक) कृष्ण इधर आओ
कृष्णन इविटे वरट्टे (नियोजक) कृष्ण इधर आये

मल. कृष्णन इविटे वरारुण्डुँ (अभ्यास बोधक)
कृष्ण यहाँ आया करता है।
कृष्ण यहाँ आता रहता है।
कृष्ण यहाँ आता है।
कृष्ण यहाँ आता रहा है।

तुलनात्मक दृष्टि से मलयालम और हिन्दी में अर्थ और क्रियारूप की स्थिति की तालिका निम्नलिखित हैः-

मलयालम प्रकार	अर्थ (भाव)	हिन्दी क्रिया रूप
निर्देशक	निर्देशक	निर्देशक, वर्तमान आदि
नियोजक	विधि	विधिरूप
विधायक	आज्ञा	संभाव्य भविष्यत

1. ए आर राज राजवर्मा, केरल पाणिनीयम् - पृ. 248-249

इच्छा संभाव्य भविष्य
प्रार्थना
शुभकामना
अनुमति

यहाँ दो बातें दृष्टव्य हैं मलयालम में आज्ञा केलिए विधायक का रूप ही प्रयुक्त होता है। हिन्दी में आज्ञा के विशेष प्रयोग में संभाव्य भविष्यत् का प्रयोग होता है। मूल मलयालम में विधायक और अनुज्ञायक में जो ज़ोर या आग्रह है वह हिन्दी में संभाव्य भविष्यत् से समझाना पडता है। यों मलयालम में इच्छा, प्रार्थना और अनुमति सूचित करनेवाले अलग-अलग प्रत्यय होते हैं किन्तु हिन्दी में ये सभी भाव एक ही संभाव्य भविष्यत से बताने पडते हैं और प्रसंग के अनुसार व्याख्या करनी पडती हैं।

उदाः-	मल.	हि.
इच्छा	एनिक्कु काप्पि कुटिक्कणम्	मैं काफी पिऊँ, मुझे काफी पीना है।
प्रार्थना -	ञान काप्पि कुटिच्चोट्टे	मैं काफी पिऊँ
अनुमति -	कृष्णन काप्पि कुटिच्चोट्टे	कृष्णन काफी पिए ।

नियोजक

केरल पाणिनीयम में नियोजक प्रकार के उदाहरण में अन्यपुरुष, उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष तीनों के उदाहरण दिए हैं। मलयालम में इसके निम्नलिखित प्रयोग मिलते हैं -

	मल.	हि.
अन्य पुरुष		
	अवन/अवळ/अवर-पोकट्टे	वह जावें (जाए) वे जावें (जाएं)
मध्यम पुरुष		
	नी पो (ए.व)	तू जा
	निङ्ङळ पोकू/पोकुविन/पोविन	तुम जाओ
उत्तम पुरुष		
ञान/ञङ्ङळ पोकट्टे		मैं जाऊँ/हम जावें (जाएं)

हिन्दी में अन्य पुरुष के रूप संभाव्य भविष्य के रूपों से गढे जाते हैं और मध्यम पुरुष के नियोजक रूप आज्ञार्थ विधियों से रचे जाते हैं।

मध्यम पुरुष आदरबोधक बहुवचन की व्यवस्था हिन्दी के समान मलयालम में भी है। मलयालम का यह रूप क्रिया के भूतकालिक रूप के साथ 'आलुम्' प्रत्यय जोडकर बनाया जाता है।

उदा:-	मल.	हि.
	तांकळ पोयालुम्	आप जाइए
	तांकळ पठिच्चालुम्	आप सीखिए
	तांकळ इरुन्नालुम्	आप बैठिए

दोनों भाषाओं की प्रवृत्ति में यह अंतर है कि हिन्दी में आदरार्थ बहुवचन रूप सहज है तो मलयालम में कृत्रिम और केवल काव्य सहज माना जाता है।

विधायक

अब मलयालम विधायक प्रकार को लीजिए। यह विधि या आज्ञा का बोधक है। इसकी गठन क्रियाधातु के साथ 'अणम्' प्रत्यय जोडकर की जाती है। क्रिया के क्रियार्थक संज्ञारूप के साथ 'अणम्' जुडता है। संधि के प्रभाव से नया संक्षिप्त रूप निष्पन्न होता है।

उदा-

मल. निङ्ङळ ओटणम् (ओटुक + वेणम्, ओटु + अणम्)

हि. तुम दौडो

मल. अवर पाटणम्

हि. वे गावें (गाएं)

यहाँ मलयालम संरचना का अर्थकल्पना यथाक्रम 'तुम्हें दौडना चाहिए' और 'गाना चाहिए' है। लेकिन हिन्दी की अर्थकल्पना में आश की अपेक्षा वक्ता की इच्छा ही अधिक उभर आती है।

विधायक रूपों का प्रयोग किसी प्रसंग पर आदेश के रूप में होता है तो किसी प्रसंग पर इच्छा के रूप में -

उदा-	अवनु काप्पि कुटिक्कणम् -	उसे काफी पीने की इच्छा है।
	अवनु काप्पि कुटिक्कणम्	उसे काफी पीना चाहिए।

अनुज्ञायक

अनुज्ञायक प्रकार मलयालम में क्रियाधातु के साथ 'आम्' जोडकर रचा जाता है -

उदा-	मल.	अवनु पोकाम्	हि.	वह जावे (वह जा सकता है)
		कुट्टिक्कु कळिक्काम्		बच्चा खेले।
		निनक्कु पठिक्काम्		तू पढ़े।

जहाँ विधायक में मलयालम में कर्ता के बाद कोई प्रत्यय नहीं लगता वहाँ हिन्दी में 'चाहिए' वाले प्रयोग में को प्रत्यय लगता है। परन्तु मलयालम में अनुज्ञायक में 'को' अर्थवाले प्रत्यय लगता है, पर हिन्दी में यह नहीं लगता।

1.8.6.1. मूल क्रिया तथा प्रेरणार्थक क्रिया

आचार्य कामताप्रसाद गुरु ने क्रियाधातुओं की चर्चा के सन्दर्भ में प्रेरणार्थक की सोदाहरण व्याख्या करते हुए यों कहा है -"आना, जाना, सकना, होना, पाना आदि धातुओं से अन्य प्रकार के धातुशब्द नहीं बनते। शेष सब धातुओं से दो-दो प्रकार के प्रेरणार्थक धातु बनते हैं जिनके पहले रूप बहुधा सकर्मक क्रिया के अर्थ में आते हैं और दूसरे रूप में यथार्थ प्रेरणा साझी जाती हैं।"[1]

उदाः- लोग कथा सुनते हैं।
पंडित लोगों को कथा सुनाते हैं।
पंडित शिष्य से श्रोताओं को कथा सुनवाते हैं।

सुन	सुना	सुनवा
गिर	गिरा	गिरवा
काट	कटा	कटवा

मलयालम में प्रेरणार्थक के लिए 'प्रयोजक' शब्द का प्रयोग किया जाता है।[2] केरल पाणिनीयम इसके रूप विधान के विषय में बताता है -"यथाक्रम 'इ' 'प्पि' या 'तु' प्रत्यय मूलधातु से लगाकर प्रयोजक रूप बनाए जाते हैं। तीनों प्रत्यय वैकल्पिक है और धातु की ध्वनि-प्रवृत्ति के अनुसार लगते हैं।"[3]

उदाः-

मल.	हि.
आशारी वीटु पणियुन्नु	बढई घर बनाता है।
अम्मावन वीटु पणियिक्कुन्नु	मामाजी घर बनवाते हैं।
लीला पाट्टु केळ्क्कुन्नु	लीला गाना सुनती है।
गोमती लीलये पाट्टु केळिप्पक्कुन्नु	गोमती लीला को गीत सुनाती है।
कुट्टि तऱयिल इरिक्कुन्नु	बच्चा ज़मीन पर बैठता है।
अम्म कुट्टियें मटियिल इरुत्तुन्नु	माँ बच्चे को गोद में बिठाती है।

1. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 264
2. ए आर राज राज वर्मा ,केरल पाणिनीयम - पृ. 202
3. वही

मलयालम में धातु और कालप्रत्यय में संयुक्त व्यंजन प्रायः मिलता है। इसलिए उसमें द्वितीय प्रेरणार्थक प्रत्यय जोडने का नियम नहीं है। कृत्रिमता की संभावना और उच्चारण की समस्या इसके कारण हैं। मलयालम में या तो एक ही प्रेरणार्थक का प्रयोग कर प्रसंगानुसार प्रथम या द्वितीय प्रेरणार्थक का भाव ग्रहण किया जाता है या अर्थ की स्पष्टता और किसी ढंग से लाते हैं।

'इ' 'प्पि','तु' के प्रयोग के संबंध में ए आर राजराज वर्मा ने बडे विस्तार से केरलपाणिनीयम में विचार किया है (पृ. 202 से 208 तक) लेकिन विस्तार भय से इस शीर्षक को यहाँ समाप्त करना संगत है।

1.8.6.2. मूल क्रिया और संयुक्त क्रिया

आचार्य कामताप्रसाद गुरु के अनुसार - "धातुओं के कुछ विशेष कृदन्तों के आगे विशेष अर्थ में कोई-कोई क्रियाएँ जोडने से जो क्रियाएँ बनती हैं उन्हें संयुक्त क्रिया कहते हैं।"[1] संयुक्त क्रिया में मुख्य क्रिया का शब्द प्रारंभ में आता है और सहकारी धातु के ही काल के रूप में लगते हैं। कुछ व्याकरणिक ग्रंथों में सहकारी की जगह सहायक शब्द मिलता है। हिन्दी में होना, आना, उठना, करना, चाहना, जाना, डालना, देना, रहना, लगना, लेना, पाना, सकना, बनना, बैठना और पडना ये सब सहकारी क्रिया धातु के रूप में प्रायः आते हैं। इनमें अन्य प्रसंगों के समान धातु विकृत नहीं होते।

उदा - बच्चा पेड़ से गिर पडा।
नौकर काम करने लगा।
वह बात न हो सकी।
रामू ने सांप को मार डाला। वीट्टु

ए आर राजराज वर्मा ने सहकारी क्रिया को 'अनुप्रयोग' नाम दिया है। अनुप्रयोग धातुओं को उपसर्ग धातु भी कहा जाता है। मलयालम में प्रयुक्त मुख्य अनुप्रयोग (सहायक क्रियाएँ) निम्नलिखित हैं। 1. 'कोळ' 2. 'इट्टु-ईट्टु' 3. 'ए-वेय्कुक' 4. 'विट्टु, वीट्टु' 5. 'कळ' 6. 'कोट्टु' 7. 'तरुँ' 8. 'अरुलुँ' 9. 'इरि' 10. 'पो' 11. 'वरुँ' 12. 'पोरुँ' 13. 'कूट्टु' 14. 'कषि' 15.'तीरुँ' 16. 'चम' [2]

दोनों भाषाओं में सहायक क्रियाओं का प्रयोग होता है किन्तु ये परस्पर पर्यायवाची नहीं है। मुख्य क्रियाओं की अपूर्णता को दूर करने के लिए कुछ सहायक क्रियाओं को जोडना भी मनोवैज्ञानिक ज़रूरत

1. आचार्य कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण - पृ. 263
2. ए आर राजराजवर्मा, केरल पाणिनीयम् - पृ. 210-211

है। इस दृष्टि से सहकारी क्रिया हर भाषा के लिए ज़रूरी है। परन्तु धातु के रूपांतरों की व्युत्पत्ति की परंपरा भिन्न-भिन्न होती है।

उदाः- मल. लीलय्कुँ पाटान कषियुम्
(शब्दानुवाद - लीला को गाने सकती है।)
हि. लीला गा सकती है।
मल. रामन पठिच्चु कषिञ्ञु
(शब्दानुवाद - राम पढा (पूरा हुआ) चुका)
हि. राम पढ़ चुका।

मलयालम में प्रत्येक सहकारी क्रिया कई अर्थ विशेष सूचित करती है। पाठक को प्रसंगानुसार अर्थ समझना पडता है। हिन्दी की सहकारी क्रियाएँ प्रायः नियत अर्थ की है और संख्या में सीमित हैं। ये या तो धातु के साथ लगती है या क्रियार्थक संज्ञा के विकृत अथवा अविकृत रूप के साथ।

मलयालम व हिन्दी की सहकारी क्रियाओं की तुलना करते समय सबसे बडी समस्या 'ने' के प्रयोग की है। हिन्दी में भूतकाल में 'ने' नियम है और यह सहकारी क्रिया की सकर्मकता या अकर्मकता पर निर्भर है। मलयालम में कर्तरि प्रयोग में क्रिया हमेशा कर्ता के अनुसार चलती है। क्रियाशब्द में लिंग-वचन का तत्त्व न होना मलयालम की विशेषता भी है।

1.8.7. वाच्य और प्रयोग

वाच्य क्रिया की मुख्य विशेषता है। हिन्दी क्रिया संरचना वाच्य पर आधारित होती है। हिन्दी में तीन प्रकार के वाच्य प्रयुक्त होते है -कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाव वाच्य। आचार्य कामताप्रसाद गुरु ने "हिन्दी व्याकरण" [1] में इसके प्रयोग के संबंध में विस्तृत वर्णन किया है। कर्तरि, कर्मणि और भावे प्रयोग का विधान संस्कृत व्याकरण से भारत की अन्य भाषाओं में पहुँचा है।

गुरु के अनुसार वाच्य क्रिया में उस रूपानन्तर को कहते है, जिससे जाना जाता है कि वाक्य में कर्ता के विषय में विधान किया गया है या कर्म के विषय में अथवा केवल भाव के विषय में, [2]

स्त्री कपडा सीती है (कर्ता)
कपडा सिया जाता है (कर्म)
यहाँ बैठा नहीं जाता (भाव)

कर्तृवाच्य अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं में है, कर्मवाच्य केवल सकर्मक

---

1. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण -पृ. 217 से
2. वही - पृ. 217

क्रियाओं में और भाववाच्य केवल अकर्मक क्रियाओं में होता है।

मलयालम में कर्तरि, कर्मणि तथा भावे प्रयोग के संबंध में ए आर राजराज वर्मा का कहना है - "एक धातु का उपयोग करते समय जिस कारक की प्रधानता विवक्षित हो, उस कारण में उस धातु का प्रयोग होता है। जितने कारक हो उतने ही प्रयोग हो सकते हैं। फिर भी कर्तरि और कर्मणि प्रयोग ही स्वीकृत है। कारण यह है कि कर्मणि प्रयोग में ही धातु का रूप भेद होता है। करणे प्रयोग आदि दुर्लभ है। कर्तरि प्रयोग से इनमें कोई खास अन्तर भी नहीं है। इन दोनों के अलावा भावे प्रयोग नामक तीसरे प्रयोग को भी स्वीकार कर सकते हैं। मगर वहाँ संस्कृत प्रणाली से बिलकुल भिन्न है। किसी कारक को विशेष महत्त्व दिए बिना साक्षात् क्रिया का याने भाव का ही मुख्य उपयोग करना भावे प्रयोग है।"[1]

रूप पर प्रभाव डालनेवाला अर्थ भेद ही व्याकरण का प्रत्यक्ष विषय होता है। इस आधार पर व्याकरणकार भावे प्रयोग आदि पर ध्यान नहीं देते। वे रूप पर प्रभाव डालनेवाले कर्मणि प्रयोग का ही विश्लेषण करते हैं। मलयालम के भावे प्रयोग के उदाहरण -

मल.	हि.
एनिक्कु विशक्कुन्नु	मुझे भूख लगी है।
कायम् मण्क्कुन्नु	हींग महकता है।
एनिक्कुँ पोकणम्	मुझे जाना है।
सीतय्क्कु सम्मानम् किट्टि	सीता को इनाम मिला।

खडीबोली के प्रयोग और वाच्य की गठन अन्य भाषा-भाषियों के लिए जटिल है। हिन्दी ने इस विषय में संस्कृत का अनुसरण किया है। खासकर भावे प्रयोग में यह बात देखी जा सकती है -

उदा - यहाँ कैसे बैठा जाएगा ?

धूप में चला नहीं जाता।

हिन्दी में व्याकरणकार भी कर्मवाच्य को बहुत पसन्द नहीं करते। कामता प्रसाद गुरु ने इस प्रसंग पर विस्तृत व्याख्या दी है -हिन्दी कर्मवाच्य क्रिया का उपयोग सर्वत्र नहीं होता, वह बहुधा नीचे लिखे स्थानों में आती हैं -

(i) जब क्रिया का कर्ता अज्ञात हो अथवा उसको व्यक्त करने की आवश्यकता न हो।

उदा आज हुकम सुनाया जाएगा।

चोर पकडा गया है।

1. ए आर राज राजवर्मा, केरल पाणिनीयम् पृ. 182

(ii) कानूनी भाषा और सरकारी कागज़ पत्रों में प्रभुता जताने केलिए -

उदा- इत्तला दी जाती है।

तुमको यह लिखा जाता है।

सख्त कार्रवाई की जाएगी।

(iii) अशक्तता के अर्थ में -

उदा - रोगी से अन्न नहीं खाया जाता।

(iV) किंचित अभिमान में -

उदा- नौकर बुलाए गए हैं।[1]

मलयालम व्याकरणकार ने भी माना है कि कर्मणि प्रयोग मलयालम भाषा की शैली के अनुकूल नहीं है। विलक्षणता और शंका निवारण आदि के लिए ही कर्मणि प्रयोग करना चाहिए। कर्मणि प्रयोग तत्सम क्रियाशब्दों के प्रसंग पर अधिक उचित है। द्रविड क्रियाशब्दों के विषय में इससे बचना बेहतर माना गया है।

निष्कर्ष

हिन्दी और मलयालम की भाषाई विशेषताओं की ओर ध्यान दिया गया है। दोनों भाषाओं के भाषा क्षेत्र और इतिहास,उनकी ध्वनि-प्रक्रिया, संज्ञा के स्तर पर शब्दावली का चयन, व्याकरणिक संरचना के आधार पर तुलना आदि बातों का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन के दौरान यह तथ्य उभरकर सामने आ गया कि भिन्न भाषा परिवार के होते हुए भी दोनों भाषाओं के इतिहास और भाषा विकास के क्षेत्र में कहीं - कहीं समानताएँ पाई जाती हैं। शब्दावली का विकास इसका उदाहरण है। आर्य-द्रविड परिवार की भाषाएँ होने के नाते इन दोनों में व्याकरण के स्तर पर मूलभूत अन्तर तो है फिर भी भारतीय भाषाएँ होने की वजह से आधारभूत संरचना यानी कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रम समान ही है। लिंग, कारक और क्रिया के प्रयोग में भिन्नता कुछ ज़्यादा ही दिखाई देती है। लेकिन विदेशी भाषाओं के हिन्दी अनुवाद में जितनी समस्याएँ आ सकती, उतनी मलयालम - हिन्दी अनुवाद में नहीं आयेगी। दोनों भाषाओं की क्षेत्रगत और भाषागत समानताओं व असमानताओं से अवगत होने के बाद अनुवाद करें तो निश्चय ही सफलता हाज़िल होगी।

---

1. पं. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण -पृ. 220 से

दूसरा अध्याय

केरल की स्थानीय शब्दावली - एक विश्लेषण

दूसरा अध्याय

केरल की स्थानीय शब्दावली - एक विश्लेषण

प्रत्येक प्रदेश को एक इकाई के रूप में देखने का अर्थ अपनी दृष्टि को सीमित करना नहीं है। किसी प्रदेश की स्थानीयता एवं प्रांतगत विशेषताओं को जानने के लिए यह ज़रूरी है कि व्यक्ति उस स्थान विशेष के भीतर तक उतरे, विभिन्न व्यक्तियों, वर्गों, संप्रदायों, धर्मों और संस्कृतियों के संपूर्ण स्वरूप को जानने के लिए उनके अन्दर तक झांके। विश्लेषण की दृष्टि से समाज को देखने का अर्थ अपनी परंपराओं, इतिहास, रीति-रिवाज़, लोकाचार, धार्मिक विचारधारा, कला, लोकनाट्य एवं लोक साहित्य, धार्मिक विचारधारा तथा सांस्कृतिक विशेषताओं को सही रूप में जानना-समझना है। आज जबकि पाश्चात्य सभ्यता हमारे समाज और संस्कृति को विकृत कर रही है, हमारी मान्यताएँ और परंपराएँ बदल रही हैं, भौतिकवाद अपने पॉव तेज़ी से पधार रहा है, टेलीविज़न गाँव-गाँव पहुँचकर लोक मानस को उद्वेलित कर रहा है, हल और बैलों का स्थान ट्रैक्टर ले रहे हैं, धोती, कमीज़ और पगडी लुप्त हो रहे हैं, परंपरागत व्यंजनों को विस्मृत कर ग्रामीण अब ब्रेड, बिस्कुट आदि की ओर आकृष्ट हो रहा है, खान-पान बदल रहा है, लोकगीतों में फिल्मी गीतों की छाप छलकने लगी है - ऐसे में हमारी ज़िन्दगी से नदारद स्थानीय विशेषताओं का अध्ययन तथा विश्लेषण का महत्त्व और बढ़ जाता है। सामाजिक एवं पारिवारिक संबंधों, सामाजिक संस्कारों, व्रत-पर्वो, त्योहारों, समाज की महत्वपूर्ण घटनाओं तथा खान-पान, रहन-सहन,अंधविश्वास, शकुन-अपशकुन आदि का विश्लेषण बदलते परिवेश के आधार नहीं बल्कि समाज में रूढ़ एवं प्रतिष्ठित स्थानीय विचारधारा के आधार पर किया जाना चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखकर ही इस अध्याय में केरल की स्थानीय शब्दावली का विश्लेषण या परिचयात्मक अध्ययन किया जा रहा है।

2.1 स्थानीयता से तात्पर्य

प्रत्येक देश के रीति-रिवाज़ उस क्षेत्र की संस्कृति के अंग होते हैं और ये रीति-रिवाज़ भी अनेक भाषिक अभिव्यक्तियों के आधार होते हैं। स्थानीयता का संबंध स्थान या प्रदेश से है। स्थानीयता तब रूपायित होती है जब अन्य स्थान या प्रदेश से भिन्न एक विशिष्ट प्रकार की भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक कला एवं साहित्यिक तथा भाषिक परिस्थिति का विकास हो। जनता के रीति-रिवाज़ से ही वहाँ की स्थानीयता की सही पहचान संभव होती है। इन रीति-रिवाज़ों पर प्रभाव डालनेवाले कई तत्त्व होते हैं जैसे भूगोल, धर्म, जाति-व्यवस्था, परंपरा, काम-काज, शिक्षा आदि। इन सारी बातों के समन्वित प्रभाव से ही जन-जीवन रूपायित होता है। जन-जीवन से तात्पर्य लोगों के सामान्य जीवन, रहन-सहन, खान-पान, कपडा-पहनावा, आचार-विचार, कर्मकांड आदि से है। प्रत्येक व्यक्ति के बोलने

की, समाज में बर्ताव करने की व्यवहार की अलग-अलग शैलियाँ होती हैं। जब ये विभिन्न शैलियाँ मिलकर एक स्थान विशेष की एकात्मक विशेषता बन जाती है तब उसे स्थानीयता कहने लगेगी। इसलिए स्थानीयता का विश्लेषण भी भूगोल, इतिहास, वनस्पति, धर्म, पुराण, रीति-रिवाज़, कपड़े-लत्ते, कला-साहित्य, विश्वास आदि निर्णायक तत्त्वों के संदर्भ में किया जाना चाहिए।

2.2 स्थानीयता को रूपायित करनेवाले तत्त्व -

अब यह प्रश्न उठता है कि स्थानीयता की पहचान किन-किन चीज़ों से होती है? दूसरे शब्दों में मानव जीवन, उसकी परंपरा तथा उसके परिवेश आदि की कौन-कौन सी चीज़ें हैं जो प्रत्यक्षतः या परोक्षतः स्थानीयता से जुड़ी है? अतः एक ओर वे स्थानीयता को रूपायित करती हैं और दूसरी ओर स्थानीयता से अवसरानुसार रूपायित होती चलती हैं। यदि गहराई से और विस्तार से देखें तो एक ओर तो भाषा, कला, साहित्य और विज्ञान से संबद्ध है तो दूसरी ओर परिवेश संबद्ध है, जिसमें समाज, वनस्पति भूगोल आदि आते हैं। तीसरी ओर धर्म, दर्शन, अंधविश्वास, टोना-टोटका तथा पौराणिक मान्यताएँ आदि स्थानीयता से जुड़े हैं तो चौथी ओर परंपरा, इतिहास, रीति-रिवाज़, खान-पान, कपड़े-लत्ते आदि। यों कुछ अन्य संबद्ध बातें भी इन्हीं में से एक में या दूसरी में या एकाधिक में आती हैं। स्थानीयता से संबद्ध ये सारी बातें कहीं न कहीं भाषा से भी जुडी हुई हैं क्योंकि भाषा और स्थानीयता का अटूट और स्थायी संबंध है। इसलिए आगे इन तत्त्वों के बारे में विश्लेषण करेंगे।

2.3 स्थानीयता और भूगोल

हर भाषा का अपनी एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र होता है। उस क्षेत्र की या उसकी भौगोलिक विशेषताओं की वहाँ की भाषाओं पर स्पष्ट छाप होती है। जिस क्षेत्र में जैसी भौगोलिक परिस्थिति होगी उसी के अनुरूप पहाड़, रेगिस्तान, मैदान, नदी, समुद्र, वनस्पति, पशु-पक्षी आदि होंगे और उस क्षेत्र की भाषा में उन्हीं केलिए नाम भी होंगे। स्थानीयता को रूपायित करने में भौगोलिक परिस्थितियों का विशिष्ट योगदान है। पहाड़ी इलाकों में रहनेवाले लोग जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वैसी भाषा समतल में रहनेवाले लोग नहीं बोल पाएँगे। यद्यपि जानबूझकर प्रयास करें तो भी भाषा का तैसे के वैसा प्रयोग संभव नहीं है।

प्राकृतिक सुन्दरता से भरपूर इलाका होने के कारण ही लोग इसे 'गॉड्स ऑन कंट्रि' (God's own country) कहते हैं।[1] हिन्दी भाषा प्रदेशों के क्षेत्रफल की तुलना में केरल बहुत छोटा है। इसलिए मलयालम में मानक बोलियों की संख्या न के बराबर है। लेकिन प्रांतीयता के अनुसार भाषा के उच्चारण में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। किन्तु हिन्दी की वैसी स्थिति नहीं है। बोलियों में इतनी भिन्नता आ गई

1. एन ई विश्वनाथ अय्यर, केरल - पृ. 06

कि एक बोली बोलने-समझनेवाला व्यक्ति दूसरी बोली समझ नहीं पाता है।

विश्वभर के पर्यटक केरल की प्राकृतिक सुन्दरता के मोहजाल में फँस जाते हैं। यहाँ की जलवायु मनभावन है। केरल में सबको उजाडनेवाला जाडा या झुलसानेवाली चिल-चिलाती धूप अधिक कष्ट नहीं देती।[1] इसे मद्धिम तापमान का भू-भाग कहा जा सकता है। इसी जलवायु के कारण यहाँ प्रायः पानी का अकाल नहीं पडता। पहाडी इलाकों पर कभी-कभी जल दुर्लभ रहता है। केरल की हरियाली बारहों महीने बनी रहती है। आगे केरल प्रांत की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों का विश्लेषण करेंगे।

2.3.1 पहाड

केरल का पुराना नाम 'मलनाट्टु' है जिसका शाब्दिक अर्थ है पहाड़ों का देश। 'मला' अर्थात् पहाड़ और 'नाट्टु' मतलब देश। इस नाम से ही पता चलता है कि केरल पहाड़ों का देश है। सह्याचल-श्रेणी का उत्तरी भाग मुम्बई प्रांत से शुरू होता है। दक्षिण कैनरा, कूर्ग और केरल के पूर्वी भागों से होकर यह कन्याकुमारी तक पहुँचता है।[2] मलबार में 16 मील लंबा एक पहाडी दर्रा पडता है, जिसे छोड़कर और कोई बाधा इस पर्वत पंक्ति के सिलसिले को नहीं तोड़ती। इस पर्वतमाला की ऊँचाई उत्तरतम खण्ड से दक्षिणतम खण्ड तक एक सी नहीं है, दक्षिणतम दिशा में पर्वत की ऊँचाई कम रहती है। कहीं-कहीं इस पहाडी धारा का सिलसिला छूट भी जाता है। इस दक्षिण खण्ड का एक पहाड़ी स्थान 'पोम्मुटि' (स्वर्ण शृंग) बड़ा रमणीय पर्यटन स्थान है। मध्य केरल की पूर्वी दिशा में थोड़ी दूर तक यह पर्वतधारा उतनी चौडी नहीं होती। मगर इसके उत्तर में केरल की उच्चतम पर्वत भूमि बसी है जिसे 'हाईरेन्ज' (Highrange) नाम दिया है। इस पर्वतधारा का उच्चतम खण्ड 'आनमला' (गज पर्वत) कहलाता है जिसकी चोटी 'आनमुटि' (गज शृंग) केरल की ही नहीं दक्षिण भारत की सबसे बड़ी पहाडी चोटी है। दुनिया भर में मशहूर 'मून्नार' (Munnar) हिल स्टेशन, 'पेरियार' राष्ट्रीय उद्यान आदि 'हाइरेन्ज' में स्थित है।

'हाइरेन्ज' और उसके उत्तर की पर्वतीय भूमि में चाय, कॉफी, इलायची व रबड़ के बागान मिलते हैं। 'हाइरेन्ज' के उत्तर की पर्वत धारा की ऊँचाई कम है। बागानों से भरे इन इलाकों में आबादी घनी नहीं रहती। वास्तव में ये पर्वत मालाएँ, हरे-भरे चाय के बागान, चोटियों से निकलनेवाली स्वच्छ सरिताएँ आदि केरल की प्राकृतिक सुन्दरता पर चार चाँद लगाते हैं। 'हाइरेन्ज' के समान दूसरा पहाड़ी इलाका 'वयनाड्डु' जिले में कर्नाटक राज्य के सीमा प्राँत में है। यहाँ से 'पालक्काट्टु'(Palghat) तक लम्बी वनभूमि में ही 'साइलेंटवाली' राष्ट्रीय उद्यान स्थित है। तटीय प्रदेशों को छोड़कर केरल में बहुत सारे छोटे बड़े पहाड और पर्वत दर्शनीय हैं। पहाड़ों की इस बहुलता ने केरल के 'मलनाट्टु' नाम को सार्थक बना दिया है।

1. एन ई विश्वनाथ अय्यर, केरल - पृ. 14
2. वही - पृ. 12- 13

2.3.2 नदियाँ [1]

केरल की नदियाँ उत्तर भारत की महानदियाँ की अपेक्षा बहुत छोटी होती हैं। सबसे उत्तरी दिशा पर 'चन्द्रगिरि' नदी है और दक्षिणतम पर बहती है। इनके बीच छोटी छोटी नदियों का जाल बिछा हुआ है। केरल के हर इलाकों में नदियाँ, झरने, नहर आदि दिखाई देती हैं। इन बहुसंख्यक छोटी बड़ी नदियों की वजह से केरल में सिंचाई तथा पीने के पानी का प्रबंध ठीक ठाक से हो जाता है। यातायात तथा क्रय-विक्रय की वस्तुओं का परिवहन के लिए भी इन नदियों तथा नहरों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। लोगों के धार्मिक विचार भी नदियों से ओतप्रोत रहता है। ऐसा देखा जा सकता है कि सभी धर्मों के आराधना स्थल प्रायः नदियों के किनारे पर बसे हुए हैं। ऐसे कई तीर्थ स्थान है जिनका महत्त्व नदी के कारण बना हुआ है। केरल की नदियाँ भी इस दृष्टि से सुसमृद्ध है। 'भारतपुषा' 'पेरियार' जैसी प्रमुख नदियों के किनारे ऐसे कई तीर्थ हैं जिनका धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व है। अद्वैत के मनीषी शंकराचार्य का जन्म भी 'पेरियार' के किनारे 'कालटि' (कालडी) नामक स्थान में हुआ था और उनका मठ वहाँ अब भी विराजमान है।

केरल की अधिकांश नदियाँ अरब सागर में मिलती है। केरल की सबसे बड़ी नदी भारतपुषा[2] है जिसकी लम्बाई 156 मील है। यह धार्मिक दृष्टि से भी पवित्र कही जाती है। इस नदी के किनारे 'तिरुनावाया'नामक गाँव है। इस ऐतिहासिक गाँव पर प्रत्येक बारह वर्षी युग के अंत में एक महामख हुआ करता था जिसे मलयालम में 'मामांकम्' [3] कहते हैं। भारतपुषा तमिलनाडु के कोयबंत्तूर जिले के निकट 'आनमुटि' से उत्पन्न होकर 'पोन्नानी'के पास सागर से मिलती है। लंबाई में भारतपुषा के बाद 'पेरियार 'या 'पूर्णा नदी' आती है। केरल के बहुत मशहूर कारखाने इसी नदी के किनारे पर बसे हुए हैं। इसी नदी में 'मुल्लपेरियार','इडुक्की आर्च बाँध' (Idukki Arch Dam) आदि बने हुए हैं जो दुनिया भर में मशहूर हैं। 'मुल्लपेरियार' के किनारे जंगली जानवरों खासकर बाघों का सुरक्षा केन्द्र-'तेक्कडी' स्थित है । विख्यात सांस्कृतिक केन्द्र 'आलुवा' जहाँ शिवरात्री का महोत्सव मनाया जाता है पूर्णा नदी के तट पर है। शबरिमला, एडत्वा, मरामण आदि धार्मिक केन्द्र मध्यकेरल की नदी पम्पा के किनारे स्थित हैं।

एक कृषि प्रधान राज्य होने के नाते केरल राज्य में नदियों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

---

1. ए श्रीधर मेनोन, ए सर्वे ऑफ केरल हिस्टरी - पृ. 7-8
2. 'पुषा','आर' आदि शब्द नदी के लिए प्रयुक्त है जैसे - भारतपुषा, पेरियार
3. मामांकम् - एक ऐसा शारीरिक-बल प्रदर्शन और वीरता का पर्व है जिसमें वीर अपने बाहुबल, आयोधन कला आदि के अनोखे मिसाल प्रस्तुत करते हैं। कभी यह युद्ध का रूप धारण कर लेता है।

आधुनिक काल में बिजली उत्पादन से लेकर कई महत्वपूर्ण कार्यों के लिए भी नदी का पानी इस्तेमाल किया जाता है। केरल के उद्योगों के विकास में भी इन नदियों की देन सराहनीय है। पुनलूर, एलूर, वळपट्टणम आदि प्रौद्योगिक केन्द्रों का निर्माण भी नदियों के तटीय प्रदेशों में ही हुआ। केरल की प्रमुख नदियाँ तथा उनकी लम्बाई निम्नलिखित है।

1. भारतपुष़ा (156 मील)
2. पेरियार (142 मील)
3. पम्पा नदी (110 मील)
4. चालियार (105 मील)
5. चालक्कुडी पुष़ा (90 मील)
6. कडलुंडी नदी (81 मील)
7. अच्चन कोविलार (80 मील)
8. मुवाट्टुपुष़यार (75 मील)
9. वळपट्टणम् नदी (70 मील)
10. कल्लडयार (75 मील) [1]

इनके अलावा अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ केरल भर में बहती हैं। इस तरह देखें तो केरल के सभी प्रकार की प्रगति में नदियों की भूमिका सराहनीय रही है। हर संस्कृति के रूपायन एवं विकास में नदियों का योगदान हमेशा महत्त्वपूर्ण रहा है। केरल की विशिष्ट स्थानीयता के सृजन में भी नदियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

2.3.3. कायल् (झील)

उपर्युक्त नदियों के अलावा नदियों और झीलों की शृंखला सागर के समानान्तर होकर दृष्टव्य है। नदियों का पानी इन झीलों को भराता है। इन्हें अंग्रेज़ी में 'बैकवाटर्स'(Backwaters) कहते हैं जो मलयालम में 'कायल' नाम से पुकारा जाता है। इनमें से ज़्यादातर झीलें सागर से संबंधित हैं।[2] केरल का सबसे बड़ा झील 'वेम्पनाट्टु कायल' है जिसका क्षेत्र फल 76 वर्ग मील है। इसे छोड़कर 'अष्टमुटि', 'वेलि','अञ्चुतेङ्ङु' 'परवूर' 'कायंकुलम्' प्रमुख झील हैं। सिर्फ़ प्राकृतिक सुन्दरता की दृष्टि से नहीं बल्कि यातायात के लिए भी इन झीलों का उपयोग किया जाता है।[3] लोगों का आवागमन तथा क्रय-विक्रय की वस्तुओं का परिवहन इन जलाशयों से होकर सुगमता से चलता है। जिन दिनों में रेल-मोटर के नए वैज्ञानिक साधन सुलभ नहीं थे उन दिनों व्यापार के क्षेत्र में इन्हीं जलाशयों तथा नदियों से सभी लोगों को काम लेना पडता था। अब भी इनका महत्त्व कम नहीं हुआ है। पर्यटन की दृष्टि से इन झीलों के जलमार्ग बहुत मशहूर हैं।

1. इटमरुकुँ,केरल संस्कारम् - पृ. 14-16
2. वही - पृ. 16
3. ए श्रीधर मेनोन, केरल चरित्रम् - पृ. 18-19

2.3.4 सागर

सागर केरल के इतिहास का स्थिर एवं निर्णायक अंग है। केरल की अपनी अलग नौ (नाविक) परंपरा रहीं है।[1] केरल की स्थानीय विशेषताओं में एक है सागर की निकटता। अरब सागर के लम्बा तटीय प्रदेश केरल की अपनी विशिष्टता है। तटीय प्रदेशों के मछुवारे लोगों की सभ्यता और संस्कृति केरल की अलग पहचान है। इनकी भाषा और बोली भी आम जनता से बिल्कुल भिन्न है। वास्तव में सागर की निकटता के कारण ही बहुत सारे विदेशी व्यापारी और यात्री जहाज़ के ज़रिये केरल आए थे और यहाँ की विशिष्ट संस्कृति को रूपायित करने में सफल हुए थे। पहले अध्याय में 'संज्ञा के स्तर पर शब्दावली का चयन' के संदर्भ में मलयालम में आगत अंग्रेज़ी, अरबी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा फारसी शब्दों के बारे में विशद वर्णन किया गया है। यह वास्तव में इन तटीय रास्तों से होकर केरल पहुँचनेवाले विदेशियों का केरल संस्कृति में प्रभाव डालने का नतीजा है।

आज भी केरल की तटीय सीमा विदेशियों के लिए खुली रहती है। जहाज़ निर्माण तथा आयात-निर्यात के क्षेत्रों में केरल को काफी प्रगति मिली है। कोच्ची बन्दरगाह तथा पोत प्रांगण (Shipyard) दक्षिण भारत में श्रेष्ठ माने जाते हैं। मत्स्यकी संपत्ति की दृष्टि से केरल के तटीय प्रदेश संपन्न हैं। मत्स्यकी निर्यात में केरल दुनिया भर में मशहूर है। केरल के मत्स्यकी उत्पादों की विश्वभर में काफी माँग है। इतिहास साक्षी है कि देशों की सागर से निकटता उनके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास की राहें जल्दी खोल देती है। केरल की बात भी इसका प्रमाण है कि यहाँ उच्च संस्कृति को रूपायित करने में सागर की भूमिका सुस्पष्ट है। भौगोलिक दृष्टि से देखें तो एक ओर सह्य पर्वत से घिरे रहने के कारण बाहरी संबंधों को बनाए रखने में जो बाधा उठ खडी हुई थी उसे एक हद तक दूर करने में विस्तृत समुद्र तट ने बड़ी सक्षम भूमिका अदा की।

2.3.5. वनस्पति

वनस्पतियों से भी स्थानीयता का अटूट संबंध होता है। प्रत्येक देश या राज्य की स्थानीय विशेषताओं को रूपायित करने में वहाँ के पेड पौधों, जडी-बूटियों व लताओं से जुडे हुए शब्द भण्डार का भी योगदान होता है। भाषाओं में पेड, पौधे, तना, ठंडल, पत्ती, अंकुर, कली, फूल, फल और जड जैसे बहु प्रयुक्त शब्द वनस्पतियों के आधार पर ही प्रचलित हुए हैं और इनमें कई शब्दों का भाषाएँ आलंकारिक रूप में व्यापक प्रयोग भी करती हैं जिससे एक स्थानीय विशेष का परिचय मिलता है।[2] जिस देश में जो-जो पेड-पौधे होते हैं प्रायः वहाँ की भाषा में उनके लिए शब्द भी अवश्य होते हैं। यूरोपीय

1. ए श्रीधर मेनोन, केरल चरित्रम् - पृ. 17
2. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति - पृ. 50

भाषाओं में 'आम' के लिए कोई शब्द नहीं था, क्योंकि वहाँ आम नहीं होता। बहुत बाद में पुर्तगाली मलय देश में गए तथा यह फल यूरोप में लाए तथा इसके लिए मलय 'माँगा'(Mangaa) भी ले आए यही शब्द विभिन्न रूपों में कई यूरोपीय भाषाओं में प्रचलित हुआ, जैसे अंग्रेज़ी में 'मैंगो'(Mango) पुर्तगाली मैंगा (Manga) आदि। इसके विपरीत भारत के लोग इस फल से बहुत पहले से परिचित थे, अतः 'आम्र' तथा 'रसाल' जैसे एकाधिक शब्द यहाँ बहुत पहले से प्रचलित होते रहे हैं। तो विभिन्न वनस्पतियों या पेड पौधों के नामों के लिए भाषाओं द्वारा प्रयुक्त शब्दों के लिए आधार वनस्पति जगत से ही प्राप्त होता है।

केरल वनस्पतियों से संपन्न राज्य है। वनस्पतियों की विविधता एवं बहुलता से केरल हर मौसम में हरिताभ दिखाई देता है। यहाँ के मसाले दुनिया भर में मशहूर है इसलिए पुराने ज़माने से लेकर बहुत सारे विदेशी व्यापारी केरल आए थे। मसालों के निर्यात में भी केरल विख्यात है। इलायची, अदरक, काली मिर्च आदि मसालों के निर्यात से भी केरल को बहुत विदेशी मुद्रा प्राप्त होते हैं। खेती की जानेवाली वनस्पतियों में भी बहुत विविधता विद्यमान है। आयुर्वेद से जुड़ी हुई बहुत सारी जडी-बूटियाँ केरल में पायी जाती हैं। आज एक विख्यात आयुर्वेद चिकित्सा केन्द्र के रूप में भी केरल की ख्याति दुनिया भर में है।

जहाँ तक केरल का सवाल है, यह एक ऐसा प्रदेश है जहाँ-तहाँ देखे सब कहीं हरियाली ही हरियाली नज़र आती है। घने जंगल, पेड-पौधों से ढके हुए पर्वतीय प्रदेश, कॉफी, चाय तथा रबड़ की बागानें, लह-लहाते खेत, नारियल के बाग, जडी-बूटियों से भरपूर तराइयाँ आदि इस बात की गवाही दे रही हैं कि केरल वनस्पतियों से संपन्न एक सुन्दर प्रांत है। यदि प्रांतीय विशेषताओं के आधार पर केरल की वनस्पति का विश्लेषण करना है तो कई बातों की ओर ध्यान देना पडेगा। यहाँ के पेड-पौधों में कुछ देशज, कुछ विदेशी और कुछ केरल के अपने विरासत में मिले हैं। कुछ जंगली हैं तो कुछ उगाए जाते हैं। कुछ भोज्य हैं तो कुछ अभोज्य हैं। कुछ वनस्पतियों की वाणिज्यपरक महत्ता है। ऐसी जडी-बूटियों की भी कमी नहीं जो औषधीय गुणों से संपन्न हो। इनमें स्थलीय पौधे हैं और जल में पाए जानेवाले पौधे भी हैं।

एक समय था जब मनुष्य वनस्पतियों के प्रति विशेष ध्यान नहीं देता था। धीरे-धीरे अपनी आवश्यकताओं (लकडी के लिए, पत्तों के लिए, दवा के लिए, फल के लिए, फूल के लिए)के कारण उसका ध्यान पौधों की ओर जाने लगा और उसने पेड-पौधों के तथा उनके अंगों के नाम रखे तथा इस प्रकार हज़ारों नामों के रूप में भाषा ने नए-नए शब्द प्राप्त किए। कुछ इस प्रकार की संज्ञाओं से क्रियाएँ बनी, विशेषणों से भी ऐसा ही हुआ और भाषा अपनी अभिव्यक्ति में संपन्न होती गई।[1]

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति - पृ. 53

आधुनिक काल में आकर वनस्पति विज्ञान में ज्ञान के लिए ज्ञात, अज्ञात, जीवित, लुप्त सभी पेड-पौधों का अध्ययन हुआ और नाम तथा संबद्ध शब्दों के रूप में हज़ारों नए शब्द बनते रहे और भाषा समृद्ध से समृद्धतर होती गई। सच पूछा जाए तो दैनिक भाषा की सर्वाधिक शब्द चाहे सामान्य हो या पारिभाषिक, वनस्पति-जगत की ही देन होती है। यही भाषा स्थानीयता का प्रमुख अंग है तो स्थानीयता और वनस्पति का सम्बन्ध और बढ़ जाता है। इसी दृष्टि से देखें तो केरल की विशिष्ट वनस्पति संपत्ति ने ही स्थानीय शब्दावली के रूपायन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

2.3.6 जंगल

पुराने ज़माने में केरल के ज़्यादातर भाग घने जंगलों से आच्छादित थे। बढ़ती आबादी एवं प्रौद्योगिकरण के फलस्वरूप जंगलों का क्षेत्रफल कम होने लगा। निर्माण कार्य के लिए जंगलों की अनियंत्रित कटाई का भी बुरा असर हुआ। समृद्ध वर्षा एवं प्राकृतिक परिस्थितियाँ ही केरल में जंगलों के विस्तार के कारण बनी हैं। केरल में तीन प्रकार के जंगल पाये जाते हैं। पश्चिमी क्षेत्र के पहाड़ी प्रदेश झाड़ियों से भरपूर है। अन्दर की ओर बड़े-बड़े छायादार वृक्ष पाए जाते हैं। लेकिन कुछ इलाकों को छोड़कर घने जंगलों का अभाव है। कुछ प्रदेश ऐसे हैं जिन्हें नाम के वास्ते ही वन कह सकते हैं। सरकारी [illegible] 30 प्रतिशत प्रदेश जंगल है। लेकिन सच्चाई इससे कोसों दूर है। फिर भी इडुक्की, वयनाडुं तथा पालघाट जिलों में प्राकृतिक सुन्दरता से भरपूर घने जंगल मिलते हैं। 'पेरियार' व 'साइलेंटवाली' राष्ट्रीय उद्यान विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुओं व दुर्लभ पेड-पौधों से संपन्न है। ये दुनिया के मशहूर पर्यटन केन्द्र भी है। 'सागन'(Teak) 'ईट्टी' (Rosewood) तथा 'चन्दन' (कुछ इलाकों में) आदि कीमती लकडियाँ इन वनों में काफी मात्रा में पायी जाती हैं। शहद, दाँत, बाँस जैसी जंगली वस्तुएँ भी केरल के जंगलों में बहुतायत में हैं।[1]

2.3.7 मौसम

भौगेलिक परिस्थितियों का प्रभाव केरल के मौसम पर भी दिखाई देता है। यहाँ के ऊँचे पर्वतीय इलाकों में ठंडा मौसम है। लेकिन समतल प्रदेशों में गर्मी का अहसास होता है। यहाँ 70^0 से 80^0 फैरनहीट तक का तापमान है। यदि नमी बढ़ गई तो 90^0 फैरनहीट तक तापमान बढ़ जाता है। लेकिन सर्दी के दिनों में भी 50^0 से कम नहीं होता। पर्वतीय इलाकों जैसे 'इडुक्की' जिला के मून्नार में सर्दियों का तापमान बहुत कम हो जाता है।

1. इटमरुकुं, केरल संस्कारम् पृ. 16-17

जून से लेकर अगस्त तक की दक्षिण-पश्चिम हवा तथा अक्तूबर से दिसंबर तक की उत्तर पूर्वी हवा ही केरल के मौसम को नियंत्रित करती हैं। इसी समय में ही 90% प्रतिशत वर्षा उपलब्ध होती है। दिसंबर से मई तक के समय में बाकि 10 प्रतिशत वर्षा प्राप्त होती हैं। पूर्वी पहाड़ी इलाकों में ज्यादा वर्षा मिलती है। वहाँ 200 इंच तक की वर्षा प्राप्त होती है। लेकिन 'पालघाट' की पूर्वी इलाकों- तथा ट्रावणकोर में 60 इंच से ज़्यादा वर्षा नहीं मिलती। अन्य दक्षिणी राज्यों की तुलना में वर्षा की दृष्टि से केरल सबसे समृद्ध राज्य है। इसलिए ही दक्षिण का सबसे सुहावना मौसम केरल में पाया जाता है।

2.3.8 मिट्टी

कृषिप्रधान राज्य केरल की मिट्टी का वर्ण स्तर सारे प्रदशों में एक सा नहीं रहता। पहाड़ी भूमि पर एक तरह की काली मिट्टी होती है। ईंटों से मिली हुई इस मिट्टी में जंगली पेड़ों के पत्ते सडकर मिल जाते हैं और इसे उपजाऊ बनाते हैं। ऐसी ज़मीन चाय, कॉफी व इलायची वगैरह के लिए अच्छी है। मध्य केरल में एक प्रकार की कंकड-भरी लाल मिट्टी होती है जो उर्वरता के कारण काली मिर्च, अदरक, रतालू आदि की खेती के अनुकूल रहती है। समुद्र के किनारे की भूमि नारियल व धान की खेती के लिए योग्य है। मध्य केरल के कुछ गाँवों में नदी जल मौसमी जमाव के कारण मिट्टी तलछट से मिली, लसदार व काले रंग की होती है जो धान तथा नारियल की खेती में विशेष उपयोगी है। किसी - किसी इलाकों में एकदम रतीली ज़मीन पड़ती है। ऐसे जगहों पर कई विरले धातु मिश्रित रजगण होते हैं। 'कोल्लम' जिले के समुद्र तट पर 'मोणोसाइट','इलमनाइट' 'रूटैल','सिरकोण','सिलमनाइट' आदि से मिश्रित रेत मिलते हैं। 'नेय्याट्टिनकरा', 'नेडुमड्ड़ाटुं'आदि तहसीलों में 'ग्राफाइट' काफी मात्रा में पाए जाते हैं। 'कोट्टयम','तृश्शूर' व 'कोल्लम' जिलों में ईंट तथा 'टाइलस' का निर्माण बड़ी मात्रा में किया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से केरल की भौगोलिक विशेषताओं का सामान्य परिचय मिल जाता है। इससे यह पता चलता है कि भूगोल भाषा को अनेक रूपों में समृद्धि प्रदान करता है। यहाँ केरल की भौगोलिक विशेषताओं का सामान्य परिचय दिया गया है। इनसे जुडी शब्दावली का विश्लेषण आगामी अध्यायों में किया जाएगा।

2.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

स्थानीयता को रूपायित करने में सामाजिक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भाषा समाज में पैदा होती है, समाज में पनपती है और बढ़ती है, और यही समाज और भाषा का संबंध स्थानीयता से है। एक समाज को रूपायित करने में वहाँ रहनेवाले लोगों के रीति-रिवाज़, वेश-भूषा,

खान-पान, कर्मकाण्ड, त्योहार-पर्व, कला, संगीत व साहित्य,जाति और धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन सामाजिक विशेषताओं के संयोग से एक संस्कृति का भी रूपायन होता है।

संस्कृति शब्द मूलतः 'कृ' धातु से संबद्ध है जिसका अर्थ है 'करना'। इसके पूर्व सम् उपसर्ग तथा 'घञ्'(ति) प्रत्यय लगाने से 'संस्कार' शब्द बनता है जिसके अर्थ पूरा करना, सुधारना, सज्जित करना, मांजकर चमकाना, शृंगार, सजावट आदि हैं। इसी से संबद्ध शब्द संस्कृत है जो सम् + कृ + क्त से बना है तथा जिसके अर्थ पूरा किया हुआ, माँजकर चमकाया हुआ, सुधारा हुआ, व्याकरण नियमों के अनुसार सिद्ध (शब्द, रूप आदि) सुनिर्मित तथा अलंकृत आदि हैं। इसी विशेषण की संज्ञा 'संस्कृति' है।[1] वस्तुतः आज जिस अर्थ में संस्कृति का प्रयोग करते हैं यह शब्द संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। आधुनिक काल में सबसे पहले मराठी भाषा में अंग्रेज़ी 'कल्चर' (Culture) शब्द के प्रतिशब्द के रूप में यह शब्द प्रयुक्त हुआ और वहीं से हिन्दी ने उसे उसी अर्थ में ग्रहण किया। मानव के सामाजिक और वैचारिक व्यवहार तथा उनसे विकसित चीज़ें जैसे- विचार, साहित्य, कला, कानून, नैतिकता, जाति, धर्म, दर्शन, विश्वास, रीति-रिवाज़ आदि के समवेत रूप को संस्कृति कहते हैं, जो तरह-तरह के परिवेशों तथा परंपराओं का परिणाम होती है। संस्कृति की व्याख्या तरह-तरह से की जा सकती है। मोटे रूप से संस्कृति उन मूल्यों,विचारों, दृष्टियों तथा नियमों आदि का सामूहिक रूप है जिससे समाज विशेष के लोग नियंत्रित होते हैं। तो सन्देह आएगा क्या संस्कृति समाज के लिए बंधन है ? एक समय ऐसा था जब मनुष्य अपनी आदिमावस्था में पशु की जिन्दी बिताता था। धीरे-धीरे पशु के स्तर से ऊपर उठने लगा और भाषा के विकास के साथ-साथ उसके जीवन में भी कई तरह के बदलाव आने लगे। इसी तरह भाषा न होती तो संस्कृति का विकास न होता। किन्तु दूसरी तरफ संस्कृति के विकास ने भी भाषा को और विकसित होने का अवसर दिया। इस तरह दोनों की एक दूसरे के विकास में सक्रिय साझीदारी रही है। एक के बिना दूसरे का विकास संभव नहीं है, एक के बिना दूसरे की सत्ता भी शायद संभव नहीं है।

पहले ही बताया जा चुका है कि स्थानीयता का संबंध समाज और संस्कृति से है इसलिए सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को अलग करके विश्लेषण असंभव है। अतः समाज और संस्कृति के बीच एक सीमा रेखा खींचे बिना ही इन परिस्थितियों का विश्लेषण करना है जिससे एक विशेष स्थानीयता का रूपायन होता है।

समाज का अविभाज्य अंग भाषा है। भाषा विहीन समाज और समाज विहीन भाषा अस्तित्वहीन है। भाषा दैनंदिन जीवन में पारस्परिक सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। सामान्य भाषा

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति - पृ. 30-31

ही समाज की मूल संपत्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। प्रत्येक समाज अपने में स्वतंत्र होता है। उसकी कुछ अपनी मान्यताएँ होती हैं जिनके कारण वह दूसरे समाज से भिन्न होता है। इसी वैविध्य के आधार पर समाज की संरचना निर्भर होती है। प्रत्येक समाज का अपना रहन सहन होता है, रीति-रिवाज़ होते हैं, परंपराएँ होती हैं, विश्वास होते हैं, जीवन मूल्य होते हैं, धारणाएँ होती हैं तथा सामाजिक मान्यताएँ होती हैं। इन्हीं का समन्वित रूप ही स्थानीयता है। केरल की स्थानीयता के निर्धारण में इतिहास, धार्मिक विचार धारा, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, त्योहार-पर्व, कला-साहित्य आदि की भूमिका पर भी विचार करना होगा।

2.4.1 केरल का इतिहास

भूतकाल का लेखा-जोखा ही इतिहास है। यह इतिहास का भौतिक दृष्टिकोण है। समाज और सृष्टि में भूतकाल का लेखा-जोखा रहता है। वास्तव में भूतकाल की वे घटनाएँ जो समाज को राष्ट्रीयता की ओर, देशभक्ति की ओर, विशुद्ध मानव धर्म की ओर तथा नैतिक, सदाचार, सन्मार्ग पर चलने को विवश करें वही इतिहास है। शेष घटनाओं का इतिहास की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं। समाज की युगीन परंपराओं, मान्यताओं, रूढ़ियों तथा बदलते हुए परिवेश का अध्ययन करने में इतिहास विशेष रूप से सहायक है।

भाषा का इतिहास से भी कई दृष्टियों से सम्बन्ध है। इतिहास अनादिकाल से अब तक का इतिवृत्त है। विकास उसकी प्रकृति है। उसी के साथ-साथ भाषा में भी विकास होता है। सबसे पहले शब्द निर्माण की बात लें। भाषा की इमारत शब्दों की ईंट पर खडी है, इसलिए शब्द भण्डार का भाषा की व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। ऐतिहासिक घटनाओं तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों के आधार पर प्रत्येक भाषा में कुछ न कुछ शब्द बने होते हैं, और वे सारे के सारे शब्द भाषा को इतिहास की देन होते हैं।[1] ऐतिहासिक घटनाएँ कभी-कभी विचित्र भाषिक परिस्थितियों को जन्म देती हैं।

केरल के एक संपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना अब तक नहीं हुई है। इसका मतलब यह नहीं है कि किसी ने केरल इतिहास नहीं लिखा है या इतिहास शोध केरल में नहीं हुआ है, ऐसा नहीं। कई सदियों से अनेक पंडितों ने इस विषय में उपलब्ध ताम्र पत्रों, शिलालेखों तथा अन्य सामग्रियों का शोध अध्ययन करते रहे लेकिन इसमें पूर्ण सफलता उन्हें नहीं मिली।[2] केरल की उत्पत्ति के संबंध में एक रूढ़ कथा प्रचलित है जिसके अनुसार केरल परशुराम द्वारा आविष्कृत राज्य है। कहा जाता है कि इक्कीस बार क्षत्रियों की सामूहिक हत्या के बाद परशुरामजी बड़े भारी पाप से ग्रस्त हुए। पाप से मुक्ति पाने के

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति - पृ. 64
2. इटमरुकुँ, केरल संस्कारम् - पृ. 18

लिए उन्होंने कठिन तप किया। वरुण और पृथ्वी देवी उन पर प्रसन्न हुए। परशुराम भूदान द्वारा अपने पाप से छुटकारा पाना चाहते थे। देवताओं के आदेशानुसार उन्होंने उत्तर में 'गोकर्ण' नामक स्थान पर खडे होकर पूरी शक्ति से अपना फरसा समुद्र की ओर फेंका। फरसा कन्याकुमारी पर गिरा और वहाँ तक का समुद्र जल पीछे हट गया और जिससे रहने योग्य ज़मीन नज़र आई। इस भूमि को कुछ ब्राह्मणों में बाँटकर उन्होंने पाप से मुक्ति पा ली।[1] यद्यपि यह एक दंतकथा है फिर भी भूगर्भ विज्ञान के तथ्य इस कथा का समर्थन करता है कि केरल किसी समय समुद्रान्तर्गत भू-भाग था।

केरल का पहला इतिहास ग्रंथ श्री.पाच्चु मूत्तर्तु द्वारा रचित 'तिरुवतांकूर चरित्रम्'[2] (तिरुवतांकूर का इतिहास) है। इसका प्रकाशन सन् 1868 में हुआ था। लेकिन इसे मलयालम की प्रामाणिक ऐतिहासिक रचना की हैसियत प्राप्त नहीं हुई। 1868 में श्री हेर्मन गुंडर्ट द्वारा प्रकाशित 'केरलप्पषमा' ही पहला प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ माना जाता है। 1878 में श्री शंकुण्णी मेनोन द्वारा अंग्रेज़ी में रचित 'तिरुवतांकूर चरित्रम' (History of Travancore) प्रकाशित हुआ। इसमें केरल की ऐतिहासिक यात्रा का परिचय मिलता है। आगे कुछ ऐतिहासिक ग्रंथ व ग्रंथकारों की सूची दी जा रही है जिन्होंने केरल इतिहास की झाँकी प्रस्तुत की है।

1. श्री. के.पी.पद्मनाभ मेनोन	केरल चरित्रम् (चार भाग) (1929-37, अंग्रेज़ी)
2. श्री. आऱ्रूर कृष्ण पिषारडी	केरल चरित्रम् (मलयालम)
3. श्री. पी.जे.थॉमस	केरल चरित्रम् (मलयालम)
4. श्री. ए.श्रीधर मेनोन	- केरल चरित्रम् (मलयालम) 1968
5. श्री. के.वी.कृष्णय्यर	History of Kerala (अंग्रेज़ी) 1967[3]

इनके अलावा विभिन्न कालों में केरल के इतिहास को विभाजित करके कई ग्रंथ लिखे गए। ऐसे ग्रंथ लिखनेवालों में श्री.इळमकुळम कुञ्ञन पिल्लै, श्री.के.एम.पणिक्कर, श्री.टी.एम.पुन्नन, डॉ. पी.सी. अलक्सांडर आदि प्रमुख हैं।

ऐतिहासिक ग्रंथों के अलावा मलयालम भाषा की व्युत्पत्ति एवं विकास के संबंध में भी कई ग्रंथों की रचना हुई हैं जिनका इतिहास से भी घनिष्ठ संबंध है। श्री पी गोविन्द पिल्लै द्वारा रचित तथा 1881

1. इटमरुकुँ, केरल संस्कारम् - पृ. 27-30
2. केरल पहले तिरुवितांकूर, तिरुक्कोच्ची, मलबारऐसे तीन भागों में विभाजित था। तिरुवितांकूर अंग्रेज़ी में Travancore है।
3. इटमरुकुँ, केरल संस्कारम् - पृ. 18-23

में प्रकाशित 'भाषा चरित्रम्' (भाषा का इतिहास) ऐसे ग्रंथों में सबसे प्रथम है। इसके बाद प्रकाशित ग्रंथों की सूची नीचे दी जा रही है-

1. श्री.आर.नारायण पणिक्कर	केरल भाषा चरित्रम् (7 भाग)
2. श्री.उल्लूर. एस.परमेश्वरय्यर	केरल साहित्य चरित्रम्
3. श्री.काल्ट व्हेल	- कम्पारिटीव ग्रामर (Comparative grammer)
4. श्री चट्टंबी स्वामिकळ	प्राचीन मलयालम [1]

भाषा इतिहास से बढ़कर योगदान विभिन्न धर्मों के इतिहासों ने दिया है। 17 वीं सदी में ही यूरोप में केरल के ईसाइयों के संबंध में ऐतिहासिक ग्रंथों का प्रकाशन हुआ था। इस क्षेत्र में काम करनेवालों में श्री. इट्टूप राइटर, फादर बर्णाद, श्री.ई एम.फिलिप. श्री.के.ई.जोब, श्री.इज़ड.एम.परेट्टु आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ईसाइ धर्म के अलावा इस्लाम धर्म से संबंधित ग्रंथों का भी केरल इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। श्री. पी.ए.सयिद मुहम्मद द्वारा रचित 'केरल मुस्लिम चरित्रम्' तथा 'मुस्लिम डायरक्टरी' बहुचर्चित रचनाएँ हैं। श्री.के.दामोदरन द्वारा रचित'ईषव चरित्रम्' व श्री.कुञ्ञुकृष्ण नाटार द्वारा रचित 'नाटार चरित्रम्'आदि इस कोटि में आनेवाले ग्रंथ हैं। इनके अलावा तमिल, संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं एवं पुर्तुगाली, डच, लैटिन, अरबी, ग्रीक आदि विदेशी भाषाओं में केरल इतिहास से संबंधित सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। प्राचीन केरल से संबंधित बहुत सारी सामग्रियाँ 'पतिरुप्पत्तुं', 'अकनानूरुं','पुरनानूरुं' 'चिलप्पतिकारम्', 'पेरुमाल तिरुमोषि','पेरिय पुराणम्' आदि तमिल ग्रंथों में उपलब्ध हैं।[2]

चीन, अरब, पुर्तगल तथा डच से केरल आए यात्रियों के यात्रावृत्त भी केरल इतिहास के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। अरब यात्रियों में प्रमुख हैं - सुलाइमान (9 वीं सदी), इबन खुदोबी (9 वीं सदी), मसूदी (10 वीं सदी), अल बिरूनी (11 वीं सदी), अल इद्रीसी (12 वीं सदी), रषीदुद्दीन (13 वीं सदी), अबुलहिद (14 वीं सदी), इब्न बत्तूत (15 वीं सदी) आदि। इनकी रचनाओं में मध्यकालीन केरल के इतिहास की झाँकी मिलती है। रब्बी बेन्जमिन नामक स्पैनीश यहूदी तथा मार्को पॉलो नामक वेनीस यात्रियों के नाम भी उल्लेखनीय है। इस यात्रियों ने किसी- किसी स्थान का अधूरा विवरण दिया है जिससे हमें संतुष्ट रहना पडता है।

1. इटमरुकुं, केरल संस्कारम् - पृ. 25
2. वही - पृ. 24

पहली सदी में केरल 'चेर' नामक सत्ताधारी और प्रतापी राजवंश के शासन में था। दूसरी सदी से नवम सदी तक 'पेरुमाळ' राजाओं का उल्लेख मिलता है। इतिहास में इक्कीस 'पेरुमाळों' का विवरण है जिनमें से 'केयप्पेरुमाळ' 'हरिश्चन्द्र पेरुमाळ' और 'कुलशेखरप्पेरुमाळ' आदि अधिक विख्यात हुए।

'पेरुमाळ' शासन के समाप्त होने पर केरल कई छोटे-छोटे शासकों के हाथों में विभक्त हो गया। राजाओं ने राजनीति के शतरंज का खेल कई बार खेला। उन दिनों केरल उत्तर में नेत्रावती नदी से दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला था। यह राज्य कई छोटी-छोटी रियासतों में विभक्त रहा था। कण्णूर के 'कोलत्तिरि' राजा, कोषिक्कोड के 'सामूतिरी' नरेश तथा वेणाटु के राजा 'तिरुवडि' ही प्रमुख थे। इनके अलावा कोच्ची, इडप्पलळ्ळि, वडक्कंकूर, कायंकुळम आदि छोटी रियासतें थीं।

पश्चिमी देशों से व्यापारिक संबंध स्थापित करने में कालिकट (कोषिक्कोडु) सबसे प्रथम था। इन्हीं दिनों पुर्तगल के महानाविक वास्को डे गामा ने कालिकट के निकट 'काप्पाडु' नामक बन्दरगाह पर पाँव रखे। इन नए आगन्तुकों के पास व्यापार कला के साथ शस्त्र संचय भी था। कूटनीति-कुशलता में ये काफी मंजे हुए थे। इसलिए इन्हें केरल के राजनीतिक उथल-पुथल से लाभ उठाने का अवसर मिला। फिरंगी लोगों से सामूतिरी ने बड़ी शिष्टता से व्यवहार किया लेकिन वे उनके चाल में फँसने को तैयार नहीं थे। साहसी मुसलमान सैनिकों की सहायता से सामूतिरी ने फिरंगियों को पराजित किया। युद्ध में पराजित फिरंगियों ने कालिकट के शत्रु कोच्ची के शासक का साथ दिया। उनकी प्रेरणा और सहायता के भरोसे कोच्ची वर्षों तक कालिकट से उलझता रहा। परन्तु इस अरसे में पुर्तगाली व्यापारी संस्था भीतर ही भीतर कमज़ोर होती गई।

पुर्तगल को भारत जाकर मालामाल होते देखने के बाद डच शासकों ने अपना एक व्यापारी दल हिन्दुस्तान भेज दिया। डच व्यापारियों के पीछे फ्राँसीसी और अंग्रेज़ी व्यापारी भारत आए। केरल में डच लोगों के बस जाने के समय फ्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी व्यापारी कम्पनियों ने भी केरल में अपनी बस्ती बना ली। डच, फ्राँसीसी और अंग्रेज़ी व्यापारी संस्थाओं में परस्पर प्रतियोगिता रही थी कि केरल से अधिक संबंध पहले कौन स्थापित करें। ये युद्धकुशल तथा व्यापार चतुर विदेशी बारी-बारी से देशी नरेशों की सहायता करते अपने कारखानों की संख्या एवं खजाने की संपत्ति बढ़ाते गए।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में केरल पर मैसूर रियासत के हैदर अली और उनके पुत्र टीपु सुलतान का प्रभाव जमा गया था। पालघाट के छोटा राजा ने प्रतापी सामूतिरी के दबाव से बचने के लिए हैदर अली की सहायता माँगी थी। उनके आदेश से घुडसवारों और पैदल सिपाहियों की सशक्त सेना केरल चली। केरल के सैनिकों ने घुडसवार सिपाहियों का मुकाबला तब तक नहीं किया था इसलिए हैदर की सेना विजयी निकली। हैदर का केरल आक्रमण अत्यंत निर्दय और सर्वनाशकारी था। उन्होंने दुश्मनों को

खोज-खोजकर निकाला और जान से मार डाला। केरल नरेशों ने अब अंग्रेज़ कंपनी के अधिकारियों से मित्रता कर ली अतएव हैदर अली को आगे अंग्रेज़ों से सीधे मोर्चा लेना पडा। लडाई में हारने से उत्तेजित होकर हैदर ने अपने पुत्र टीपू के नेतृत्व में एक सशक्त सेना केरल भेजी। थोड़ी सी सफलता उन्हें मिली परन्तु कंपनी की सैनिक सहायता लेकर केरल नरेशों ने टीपू को भगा दिया।[1]

उन दिनों केरल नरेशों ने नहीं पहचाना कि अंग्रेज व्यापारी संस्था से मित्रता कर लेना अपने को गुलामी की जंजीरों से बाँधना है। केरल के प्रायः सभी राजाओं ने अंग्रेज़ों से मित्रता का संधि पत्र लिखा और मित्रता के मूल्य के तौर पर प्रतिवर्ष बहुत बड़ी धनराशि कंपनी को देना मंजूर किया। धीरे-धीरे व्यापारी संस्था शासक संस्था बन गई और देशी नरेशों की शक्ति क्षीण होती चली। संपूर्ण भारत के समान केरल में भी स्वतंत्रता संग्राम की लहरें उठने लगी। बहुत सारे वीर देशप्रेमियों ने स्वतंत्रता संग्राम की रणभूमि में अपने को समर्पित किया। फलतः अंग्रेज़ी-गुलामी से भारत हमेशा के लिए स्वतंत्र हो गया।

आज़दी के बाद केरल के दो प्रमुख खण्ड ट्रावनकोर और कोच्ची मिलकर ट्रावनकोर-कोच्ची (तिरु-कोच्ची) राज्य की स्थापना हुई। नौ सालों के बाद राज्य पुनर्गठन समिति की रिपोर्ट के आधार भारत भर के प्रांतों का भाषा के आधार पर पुनर्गठन किया गया। तिरु कोच्ची - मलबार प्रांतों के मिलन के फलस्वरूप 1 नवंबर 1956 को केरल राज्य की स्थापना हुई। मद्रास राज्य के कुछ मलयालम भाषी इलाके केरल से मिलाए गए और कन्याकुमारी प्रांत के तमिल भाषी प्रदेश मद्रास से मिलाए गए। अब मानचित्र में केरल का जो स्वरूप दर्शनीय है वह 1956 के बाद का है। यद्यपि भाषाई तौर पर केरल का रूपायन हुआ फिर भी केरल की प्रांतीय भाषाएँ जैसी कन्नड, तुलु, तमिल आदि बोलनेवाले बहुसंख्यक लोग केरल के सीमा प्रांतों में हैं।

2.4.2 धार्मिक विचारधारा

धर्म विभिन्न संस्कृतियों का अभिन्न अंग रहा है और बहुत सी संस्कृतियों का तो आज भी। जिन संस्कृतियों का यह अभिन्न अंग रहा है (जैसे भारत) वहाँ के लोगों का चिंतन इससे बहुत अधिक प्रभावित रहा है और इसलिए वहाँ के लोगों की अभिव्यक्ति भी अनेक रूपों में धर्म से सम्बद्ध रही है।[2] इसके विपरीत जहाँ धर्म का आज बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है, वहाँ, यदि पहले कभी भी धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा था, तो उससे सम्बद्ध अभिव्यक्ति वहाँ की भाषा में अवश्य विद्यमान मिलेगी। उदाहरण स्वरूप आज अंग्रेज़ों के जीवन और उनकी संस्कृति में धर्म की महत्त्वपूर्ण स्थिति नहीं है, किन्तु उनकी अनेक

1. ए श्रीधर मेनोन, ए सर्वे ऑफ केरल हिस्टरी - पृ. 307-311

2. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति - पृ. 68

भाषिक अभिव्यक्तियाँ पूरी तरह धर्म से सम्बद्ध हैं। किसी भी देश या संस्कृति में सर्वाधिक प्रयुक्त शब्दों में अभिवादन के शब्द भी आते हैं। अंग्रेज़ी शब्द भण्डार में इस दृष्टि से 'गुड मॉर्निंग' 'गुड नून' 'गुड आफ्टर नून' 'गुड नाइट' तथा 'गुड बाइ' महत्त्वपूर्ण हैं। गुड का अर्थ सामान्यतः 'अच्छा','सु' या 'शुभ' समझा जाता है। 'सु' या 'शुभ' मानकर ही कुछ लोगों ने 'गुड मॉर्निंग' का हिन्दी अनुवाद 'सुप्रभातम्' किया 'गुड नाइट' का अनुवाद 'शुभरात्रि'। वस्तुतः यह 'गुड' अच्छा का पर्याय 'गुड' न होकर 'गॉड' अर्थात् ईश्वर का द्योतक 'गुड' है। इसका इतिहास बहुत विचित्र है। पहले जब लोग अपने से अलग होते थे तो कहा जाता था - 'गॉड बी विथ यू' अर्थात् भगवान तुम्हारे साथ हो। यानि भगवान तुम्हारी रक्षा करें। यह वही है जो उर्दू में 'खुदा हाफिस' है और जिसका अर्थ है 'खुदा तुम्हारी हिफाज़त करें'।[1] इससे पता चलता है कि हमारे जीवन में सामान्य से सामान्य बात को लेकर भी धर्म या धार्मिक भावना के सख्त प्रभाव है।

किसी भी राज्य के धर्म और धार्मिक विचारधारा के संबंध में विचार विमर्श करते समय दुहरी सावधानी बर्तनी पडेगी। धर्म प्रेम कभी कभी भडकनेवाली आग की भयंकर लपटों के समान विध्वंसकारी साबित हो सकता है। सभी धर्मों का निष्पक्ष परिचय देते समय किसी किसी छोटे तथ्य का छूट जाना संभव है। केरल के धार्मिक विचारों की परंपरा इसके लिखित इतिहास से कहीं पुरानी है। आर्यों के आगमन से पूर्व केरल में पूर्ण रूप से द्रविड संस्कृति का बोलबाला था। द्रविड देवी-देवताओं के संबंध में मलयालम के प्रमुख इतिहासकार उल्लूर एस परमेश्वर अय्यर का निम्नलिखित कथन ध्यान देने योग्य है -"द्रविडों ने अपने देश के पाँच भेद बनाए थे - पहाडी, रेतीली, समतल, समुद्रतट और वृक्षभरी भूमि। पहाडी भूमि के देवता सुब्रह्मण्य थे। दुर्गा रेतीले तट की देवी थी। कृष्ण घनी बस्ती से भरे समतल के देवता थे।"[2] इस प्रकार प्रत्येक इलाके के अनुसार उपास्य देवता का स्वरूप बदलता रहा। फलतः अनेक प्रकार के धर्म और उप धर्म केरल में पाए जाते हैं। संख्या की दृष्टि से देखें तो सबसे बड़ा धर्म हिन्दु धर्म ही है। दूसरा स्थान ईसाई व तीसरा स्थान इस्लाम धर्म को मिलता है। सभी धर्मों में विभिन्न प्रकार के भेद और उप भेद दिखाई देते हैं। हिन्दु धर्म में अनेक जाति और वर्गों का बोलबाला है। फलस्वरूप जाति व्यवस्था और विचार धाराओं का प्रभाव जीवन के सभी क्षेत्रों में दर्शनीय है। राजनीति, कला, साहित्य, जहाँ तक कि शिक्षा भी इससे प्रभावित है। क्या सभी कालों में केरल की ऐसी स्थिति रही है ? इतिहासकारों की मान्यता है कि सभी समय ऐसी स्थिति नहीं थी। केरल की ऐसी विशेषता थी कि सभी धर्मों और विचारधाराओं का सहर्ष स्वागत इस प्रदेश ने किया। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ईसाई धर्म व इस्लाम धर्म जैसे

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति - पृ. 70
3. उल्लूर, केरल साहित्य चरित्रम्, भाग एक - पृ. 27

ज़्यादातर धर्म अपनी किशोरावस्था में ही केरल में अवतरित हुए थे। लेकिन उनमें से कुछ धर्मों ने ही स्थायी रूप से केरल में अपनी जड़ें जमाई थीं। इतिहास साक्षी है कि केरल में भी धर्म और जाति के नाम पर भयंकर लडाइयाँ होती रहती थीं। बौद्ध और जैन धर्मों के लुप्त होने का कारण भी इन सांप्रदायिक दंगों को मानते हैं।

बौद्ध और जैन धर्मों के नाश के बाद ही केरल में वैदिक धर्म का प्रचार हुआ था। इन सभी धर्मों के कई अच्छे तत्त्वों को केरलवासियों ने आत्मसात किया था। केरल के ब्राह्मण शाकाहारी है, वास्तव में उन्हें ये रिवाज़ बौद्ध धर्म से ही मिला था। द्राविडों की धार्मिक विचारधाराओं का प्रभाव भी यहाँ के लोगों पर पडा। भारत के अन्य इलाकों के समान केरल में भी शैव और वैष्णव धर्मवालों के बीच की लडाइयों की सूचनाएँ कई इतिहास ग्रंथों में मिलती हैं। लेकिन उत्तर भारत में घोर संघर्ष हुआ था उतनी भयंकर लडाइयाँ केरल में नहीं हुई थीं। 10 वीं सदी के बाद ही ऐसे संघर्ष समाप्त होने लगे।

प्रथम शतक से लेकर ही केरल में ईसाई मशनरियों का आगमन हुआ। कुछ बातों में बौद्ध धर्म से समानता के कारण ही होगा, केरल में बहुत जल्द ही इस धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। उस समय में केरल में द्राविड़, जैन और बौद्ध धर्मों का काफी प्रचार था न कि हिन्दू धर्म का। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री.आई.सी. चाक्को इसकी ओर इशारा करते हुए कहते हैं - "केरल में सबसे पहले बौद्ध धर्मवालों ने ही ईसाई धर्म को स्वीकारा था इस का प्रमुख कारण ईसाई देवालयों को 'पळ्ळि'[1] संज्ञा का मिलना ही है। उस ज़माने के ईसाई यदि हिन्दू होते तो अपने देवालयों के लिए कोई हिन्दू संज्ञा दी होगी नहीं तो सेन्ट थॉमस की भाषा 'सिरियन' से शब्द चुने होंगे। हिन्दू या सिरियन से संबंध हीन तथा बौद्ध धर्म संबंध रखनेवाली 'पळ्ळि' शब्द को चुनना आदिम ईसाईयों का बौद्ध धर्म के साथ घनिष्ठ संबंध को स्पष्ट करता है।"[2]

अरब देशों में इस्लाम धर्म के प्रबल होने के साथ केरल में भी इस्लाम धर्म का प्रचार बढ़ने लगा क्योंकि अरब देशों के साथ केरल का अच्छा व्यापारिक संबंध था। इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए भी कई मिशनरी केरल आए। उन्हें ऐसी सभी सुविधाएँ प्रदान की गईं जो ईसाई मिशनरियों को प्रदान की जाती थी। यहूदी लोग भी केरल में आए और यहाँ के राजाओं ने उन्हें भी आश्रय दिया। यहूदियों ने धर्म परिवर्तन केलिए प्रयास नहीं किया फलतः अन्य धर्मवालों से संघर्ष न के बराबर रहा। लेकिन ईसाई और इस्लाम धर्मवालों के बीच 'कोडुड़ड़ल्लूर' में कई लडाइयाँ हुई थीं। ऐसे संघर्ष के बाद ईसाई लोग वहाँ से भाग गए। बहुत कम संख्या में हिन्दु-इस्लाम लडाइयाँ भी यहाँ हुई थी।

1. पळ्ळि - गिरिजाघर के लिए मलयालम शब्द
2. इटमरुकुं, केरल संस्कारम् - पृ. 448

उपर्युक्त धर्मों को छोड़कर सिक्ख, सारस्वत, यूयोमय,आनन्द मत आदि धर्मों पर विश्वास रखनेवाले लोग भी केरल में रहते हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है। आगे प्रत्येक धर्म और उसके उपभेदों का विश्लेषण किया जाएगा।

2.4.3 केरल की जाति व्यवस्था

जातियों और उप जातियों की भरमार जितनी भारत में है उतनी अन्य देशों में दर्शनीय नहीं है। केरल में भी जाति व्यवस्था विद्यमान है। इसलिए प्रत्येक जाति के लोगों के जीवन में उनके धार्मिक विश्वास और परंपरागत विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। केरल की ऐसी रीति रही है कि धार्मिक विश्वास के परे पेशों के आधार पर भी यहाँ की जातियों का विभाजन हुआ है।

2.4.3.1 हिन्दू धर्म

हिन्दू धर्म का अर्थ है 'हिन्द का' अर्थात् हिन्द या भारत का धर्म। ईसाई या इस्लाम धर्म के समान हिन्दू धर्म का कोई निश्चित विश्वास संहिता नहीं है। भारत में जन्मे सभी धर्मों व विचार तत्त्वों को इसमें शामिल किया गया है। आदिम निवासियों को लेकर इक्कीसवीं सदी के सभ्य मानव तक के भावनाओं व विचारों को शामिल किया गया विशाल धर्म है हिन्दू धर्म। वैदिक धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म आदि सभी पुरातन व नवीन धर्मों को हिन्दू धर्म की संज्ञा दी जाती है।

केरल के हिन्दू धर्म के इतिहास को छः खण्डों में विभाजित कर सकते हैं, जैसे -

(क) प्रगैतिहासिक काल — (ख) द्राविड काल

(ग) बौद्ध-जैन काल — (घ) अद्वैत धर्मकाल

(ङ) ब्राह्मण प्रभाव काल — (च) उत्तर-ब्राह्मण काल

क. प्रगैतिहासिक काल -

'निग्रिट्टो' 'प्रोटी - अस्त्रलोइड' आदि आदिम निवासियों की प्राकृतिक भावनाएँ ही इस युग की विशेषता है। इस समय में पहाड, पेड और पत्थर की पूजा की जाती थी।

ख. द्राविड काल [1]

यूफ्रटीस-टाइग्रीस नदियों के किनारे जन्मे और एशिया भर में फैले यह धर्म आचारों पर अधिष्ठित

1. ए श्रीधर मेनोन, ए सर्वे ऑफ केरल हिस्टरी - पृ. 94-95

है न कि सिद्धाँतों पर। ये भी प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे। इनकी पूजा प्रणालियों में पितृ पूजा, नाग पूजा तथा लिंग पूजा आदि प्रमुख हैं। 'कोट्टवै'नामक एक देवी की विशेष पूजा की जाती थी। गाना, नृत्य और अर्चना से ईश्वर प्रसन्न होंगे, यह उनका विश्वास था।

ग. बौद्ध - जैन काल [1]

अहिंसा का सन्देश लेकर केरल में आविर्भूत बौद्ध धर्म का केरल में प्रचार काफी आसान था। आदिम निवासियों व द्रविड धर्मवालों के साथ बौद्ध-जैन रीति-रिवाज़ मिल जुल गए। इन्होंने भी आधुनिक हिन्दू धर्म को रूपायित करने में अपनी भूमिका निभाई।

घ. अद्वैत धर्मकाल

आठवीं सदी से लेकर ब्राह्मणों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त होने लगे। उस समय 'कालडी' में जन्मे शंकराचार्य ने अद्वैत सिद्धाँत का प्रचार किया। इस प्रकार केरल के हिन्दू धर्म को एक सैद्धाँतिक आधार प्राप्त हुआ। 12 वीं सदी के रामानुचार्य ने इस सिद्धांत को कुछ परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया जिसे 'विशिष्टाद्वैत' कहते हैं। माध्वाचार्य ने 'द्वैत' सिद्धाँत का प्रचार इसी ही काल में किया था। लेकिन उपर्युक्त दोनों सिद्धाँतों का केरल जनता पर उतना प्रभाव नहीं पडा जितना उत्तर भारतीयों पर पडा था।

ङ. ब्राह्मण प्रभाव काल

शंकराचार्य के समय से नवीकृत हिन्दू धर्म लगभग दो सदियों के बाद कई परिवर्तनों से गुज़रा। केरल के राजनीतिक क्षेत्र में आए बदलाव के फलस्वरूप ब्राह्मणों में समाज में ऊँचे स्थान प्राप्त हुए। सांप्रदायिकता एवं जाति भेद का सबसे भयंकर रूप इस समय में सामने आया। निम्न जातियों को मंदिरों से भगाया गया। सड़कों से गुज़रने तक की अनुमति उन्हें नहीं दी गई।

च. उत्तर ब्राह्मण काल

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जातिभेद एवं छुआछूत के खिलाफ केरल में आन्दोलन प्रारंभ हो गया था। ब्राह्मणों को छोड़कर सभी हिन्दू धर्मवालों ने इन आन्दोलनों में भाग लिया। ब्रह्म समाज, आर्यसमाज, श्रीरामकृष्ण मिशन, एस.एन.डी.पी आदि संगठनों की ओर से किए गए प्रयासों के फलस्वरूप स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया। 12 नवंबर 1936 में तिरुवतांकूर राजा श्री. चित्तिर तिरुनाळ ने एक महत्वपूर्ण घोषणा द्वारा सभी हिन्दुओं के लिए मंदिरों के द्वार खुलवा दिए। ऐसे निर्णय लेने में श्री.नारायण गुरु, महात्मा गांधी, चटंबी स्वामी जैसे महापुरुषों के विचारों की भूमिका असंदिग्ध है।

1. ए श्रीधर मेनोन, ए सर्वे ऑफ केरल हिस्टरी - पृ. 94-95

आर्यों के केरल पदार्पण के पहले यहाँ जाति व्यवस्था के ठोस प्रमाण नहीं मिलते। किए जानेवाले काम-धंधों के आधार पर ही लोगों का विभाजन किया जाता था। इसी कारण लोगों के बीच में उच्च-नीच व छुआछूत की भावना बिलकुल नहीं थी। ऐसे अवसर पर उत्तर भारत से ब्राह्मणों का आगमन हुआ और यहाँ 'चातुर्वर्ण्य' [1] का प्रचार किया। फलस्वरूप केरल में जातिव्यवस्था का श्रीगणेश हुआ लेकिन उत्तर भारत के समान एक जाति व्यवस्था का सृजन संभव नहीं था। उसके स्थान पर सैकड़ों शाखोंवाली एक जातिव्यवस्था का आविर्भाव हुआ। केरल की ऐसी कुछ जातियों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

2.4.3.1.1. ब्राह्मण [2]

चातुरवर्ण्य व्यवस्था में सबसे श्रेष्ठ जाति के रूप में ब्राह्मण लोग गिने जाते हैं। लेकिन इस जाति में भी ऊँच-नीच भाव के साथ अनेक भेद पाए जाते हैं। 'मलयाळ ब्राह्मण' 'पंचद्रविड ब्राह्मण','पंच गौड ब्राह्मण'आदि प्रमुख तीन भेद है फिर भी इनके अन्तर्गत लगभग 30 उपजातियाँ पायी जाती हैं। इन विभिन्न जातियों के बीच वैवाहिक संबंध व अन्य किसी प्रकार का संबंध न के बराबर है। ब्राह्मणों की प्रमुख उपजातियाँ निम्नलिखित हैं।

2.4.3.1.1.1 नंपूतिरि [3]

ये लोग केरल के सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण विभाग माने जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि परशुराम [4] इस वर्ग को केरल लाए थे। केरल के साँस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में इन लोगों का बहुत बड़ा प्रभाव था। इनके भी कुलमिलाकर आठ भेद माने जाते हैं 'तंब्राक्कल' 'आढ्यन्मार'','विशिष्ट नंपूतिरि','सामान्यर्.','जाति मात्रर्' 'शापग्रस्तर्' 'पापिष्ठर' एवं 'संहोतिक्कर्'।

2.4.3.1.1.2 पोट्टी

नंपूतिरि के बाद इसका स्थान है। केरल में पहुँचनेवाले समय और रहनेवाले स्थान के आधार पर इनके मुख्य तीन भेद है -

2.4.3.1.1.3 स्थान में पोट्टी - तिरुवनन्तपुरम के श्री पद्मनाभस्वामी मंदिर के परंपरागत पूजारियों को यह संज्ञा दी जाती है।

1. चातुर्वर्ण्य - ब्राह्माण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्गीकरण
2. केरल हिस्टरी एसोसियेशन, केरल चरित्रम् , खण्ड-1 - पृ. 912
3. वही - पृ. 880-883
4. परशुराम - केरल उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह कहानी बताई गई है।

2.4.3.1.1.4 तिरुवल्ला निवासी - कैनरा से आनेवाले ये लोग नंपूतिरियों के रीति-रिवाज़ों का पालन करनेवाले होते हैं। वेण्मणी व तिरुवल्ला में काफी संख्या में है।

2.4.3.1.1.5 एंब्रान - दक्षिण कैनरा से आनेवाले पोऱ्ऱियों को एंब्रान कहते हैं।

अन्य कुछ नंपूतिरि लोग निम्नलिखित हैं

'आर्यपट्टर' 'तुळु ब्राह्मण' 'नंप्यातिरि' 'इळयतुं','मूत्ततुं' आदि।

2.4.3.1.1.6 पंचद्राविड ब्राह्मण [1]

भारत के विभिन्न प्रांतों से विविध कालों में इनका केरल आगमन हुआ। **'चेर'** राजाओं की सहायता प्राप्त करने के लिए उत्तर भारत के गंगातट से भी ब्राह्मण केरल आए थे। मूल स्थान के आधार पर इनके चार भेद हैं।

क. तेलुगु ब्राह्मण

विजयनगर साम्राज्य के प्रभावकाल में ये लोग केरल आए थे। आंध्रप्रदेश के इन ब्राह्मणों के रीति-रिवाज़ तमिल ब्राह्मणों से काफी मिलते जुलते हैं।

ख.तमिल ब्राह्मण

ये लोग तमिलनाडु से केरल पहुँचे। वेदों का पालन करने की रीति के अनुसार इन्हें ऋग्वेदी, सामवेदी, यजुर्वेदी भी कहते हैं। शंकराचार्य और रामानुचार्य के सिद्धाँतों का पालन करने के आधार पर भी इनके क्रमशः दो भेद हैं - 'स्मार्तन' व 'वैष्णव' ।

ग. कर्नाटक ब्राह्मण

कर्नाटक से आनेवाले तथा माध्वाचार्य के सिद्धाँतों के अनुसरण करनेवालों को कर्नाटक ब्राह्मण कहते हैं।

घ. महाराष्ट्र ब्राह्मण

मुम्बई, मैसूर, ताञ्जूर आदि स्थानों से आनेवाले ब्राह्मणों को महाराष्ट्र ब्राह्मण कहते हैं।

2.4.3.1.1.7 पंचगौड ब्राह्मण [2]

इन्हें कोंकण ब्राह्मण या सारस्वत ब्राह्मण भी कहते हैं। शोधार्थियों के अनुसार इनका मूलस्थान

1. इटमरुकुं, केरल संस्कारम् - पृ. 460
2. वही - पृ. 460

बिहार का त्रिहोत्रपुरम् है। वहाँ से प्रवासित ये लोग गोवा, यचक्रोश, कुशस्थली आदि जगहों पर रहें। व्यापार आदि के विभिन्न स्थानों से ये लोग केरल आए। लेकिन मुख्य रूप से पुर्तगलों के केरल आगमन के बाद ही इन लोगों का केरल आगमन हुआ। प्रभु, षेणाई, कमत्त, मल्लन, रावु आदि पाँच गोत्र इसके अंतर्गत है।

2.4.3.1.2 अम्बलवासी

अम्बलवासी का अर्थ है मंदिर में रहनेवाले। ये लोग मन्दिर से जुडे हुए कार्यों में,जैसे माला बनाना, वाद्य बजाना, शंख बजाना, मंदिर की सफाई करना, व्यापृत हैं। इनके कुलमिलाकर 24 भेद माने जाते हैं। प्रमुख अंबलवासियों का विवरण निम्नलिखित है।

2.4.3.1.2.1 अटिकल

इन लोगों का दावा है कि ये भी असल ब्राह्मण थे। काली मंदिरों में पूजा के कार्यों में व्यापृत होने के कारण इन्हें जाति में निम्न मानने लगे।

2.4.3.1.2.2 कुरुक्कळ

ये लोग इने-गिने मंदिरों में पूजा के कार्य भी करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि तिरुवतांकूर में वार्यारों के अभाव में मंदिरों की ज़रूरतों को निभाने के लिए तमिलनाडु से 20 परिवारों को केरल लाए थे, वे ही कुरुक्कळ है। इनकी मातृभाषा भी तमिल है।

2.4.3.1.2.3 चाक्यार्

इन लोगों के जन्म के संबंध में कहा जाता है कि क्षत्रिय पुरुषों के द्वारा ब्राह्मण स्त्रियों से इनका जन्म हुआ था। चाक्यार पुराने ज़माने से लेकर नाट्य कलाओं के संपर्क में रहनेवाले थे। इनका मुख्य पेशा पौराणिक कथाओं का कथावाचन 'पाठकम्', 'कूत्तुं'* जैसी कलाओं के माध्यम से प्रस्तुत करना है।

2.4.3.1.2.4 नंप्यार/नंब्यार

ये भी मंदिर सेवी जाति के अंतर्गत आते हैं । इनके चार भेद हैं।

क. चाक्यार नंप्यार - इनका मुख्य काम चाक्यार 'कूत्तुं' प्रस्तुत करते समय 'मिषावुं'[1] नामक वाद्य बजाना है।

---

* 'पाठकम्','कूत्तुं '- इनका विश्लेषण 'केरल की कलाओं' के संदर्भ में किया जाएगा।

1. मिषावुं - एक वाद्य

ख.तीयाट्टु नंप्यार -'तीयाट्टुं'[1] नामक धार्मिक कर्म करनेवाले नंप्यारों को 'तीयाट्टु नंप्यार' पुकारते हैं।

ग.नंप्यार - ये दक्षिण ट्रावनकोर में रहनेवाले हैं। पहले ब्राह्मण थे लेकिन शिव मंदिरों में पूजा करने की वजह से ब्राह्मण जाति से नीचे करा दिया। नंप्यार की स्त्रियाँ 'नंग्यार' नाम से जानी जाती है।

घ.पुष्पक नंप्यार - मंदिरों की पूजा के लिए पुष्पों की माला बनानेवाले नंप्यारों को 'पुष्पक नंप्यार' कहते हैं।

2.4.3.1.2.5 मारान

मंदिरों में 'चेण्डा','इटक्का' 'शंख' जैसे वाद्य बजानेवाले लोगों को मारान कहते हैं। इस जाति के लोग 'कुरुप्पुं' या 'पणिक्कर' आदि नामों से भी जाने जाते हैं। 'माराकुरुप्पों'(मारान् + कुरुप्पु) का मुख्य काम काली मंदिरों में पूजा करना तथा 'कळम'[2] बनाना है।

2.4.3.1.2.6 पट्टरुण्णि

इन्हें 'नाट्टु पट्टर' (देशी पट्टर) भी कहते हैं। कहा जाता है कि ये एक तमिल ब्राह्मण और नंपूरी स्त्री की वंश परंपरा में आनेवाले हैं। ये लोग शिखा सूत्र धारण करते हैं और 'गायत्री'का जप भी करते हैं। कभी कभी मंदिरों में पूजा का कार्य भी करते हैं।

इन्हें छोड़कर 'प्लाप्पिळ्ळि' 'पिषारडी' 'पोतुवाळ','पुष्पकर' 'नेय्यंपाडी कुरुप्पुं','कारो पणिक्कर' 'नम्पिडी' आदि कई उपजातियाँ भी 'अंबलवासी' के अंतर्गत आती हैं।

2.4.3.1.3 क्षत्रिय (क्षत्रियर) [3]

चातुवर्ण्य व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण के बाद क्षत्रियों का स्थान है। जनता की रक्षा, शासन संभालना, वेदों का अध्ययन तथा शस्त्रों का प्रयोग आदि इनके धर्म माने जाते हैं। केरल की क्षत्रिय जाति को मुख्यतः तीन वर्गों में बांट सकते हैं 'मलयाल क्षत्रिय' 'परदेशी क्षत्रिय' और 'ब्राह्मण क्षत्रिय' आदि। 'चेम्पकश्शेरी','तृक्काकरा' आदि रियासतों का शासन संभालनेवाले क्षत्रियों को 'ब्राह्मण क्षत्रिय' कहते हैं। पून्आर, पन्तलम जैसे छोटे राज्यों का शासन संभालनेवाले तमिल क्षत्रियों को परदेश क्षत्रिय तथा केरल के शासक व सामन्तों को 'मलयाल क्षत्रियर' कहते हैं।

1. तीयाट्टु एक लोकनृत्य
2. कळम् - 'भगवतिप्पाट्टुं' के संदर्भ में काळी माँ का जो चित्र रंगीन चूर्णों से बनाया जाता है, उसे कळम कहते हैं।
3. इटमरुकुं, केरल संस्कारम् - पृ. 463-464

2.4.3.1.4 नायर [1]

ये केरल के प्रबल और सशक्त जातियों में एक है। ब्राह्मण लोग 'मलयाल शूद्र' कहकर इन्हें नीचे करने का प्रयत्न करते थे। ब्राह्मण पुरुष नायर स्त्रियों से शादी करने की रीति थी फलतः नायर को ब्राह्मणों की एक मिश्रित जाति भी कह सकते हैं। केरल इतिहास और संस्कृति में नायरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। राजाओं के शासनकाल में ये सैनिकों का काम करते थे। नायर जाति के कई मशहूर सैनिक हुए हैं। इन्हें प्रशिक्षण 'कळरि'[2] में दिया जाता था। प्रशिक्षण देनेवाले आचार्य को 'आशान' 'कुरुप्पॅु','पणिक्कर' आदि नामों से पुकारते हैं। नायर के 18 उपजातियाँ थी लेकिन आजकल मुख्य रूप से पाँच उपभेद हैं - 1'किरियत्तिल नायर', 2. 'इल्लक्कार(इटश्शेरी नायर)', 3. 'स्वरूपक्कार' 4. 'पटमंगलक्कार' तथा 5. 'तमिल पटक्कार'। ये लोग सामान्यतः नायर नाम से जाने जाते हैं। 'पिल्लै' 'तम्पि' 'चेम्पकरामन' 'उण्णित्तान' 'वलियत्तान' 'कर्तावुं', 'कैमळ' 'कुरुप्पॅु' 'पणिक्कर' 'मेनोन' आदि भिन्न -भिन्न नाम भी प्रचलित है। ये भेद जाति में उच्च-नीच भाव भी लाते हैं।

2.4.3.1.5 ईष़वर [3]

कुछ दशकों पूर्व इस जाति के लोग अछूत माने जाते थे। हिन्दू होने पर भी इन्हें मंदिरों में प्रवेश नहीं मिलता था। लेकिन श्री.नारायण गुरु के नेतृत्व में 20 वीं सदी में एक प्रबल वर्ग बन गया। कुछ लोगों के अनुसार 'ईष़म' यानि श्रीलंका से आने की वजह से इनका नाम 'ईष़वर' पडा। मलबार इलाकों में इन्हें 'तीयर' कहते हैं। 'तीवर' (द्वीपवासी) शब्द से तीयर बना है। इनके श्रीलंका से संबंध की भी कुछ सूचनाएँ मिली हैं। इनमें से कुछ लोग शराब से संबंधित व्यवसाय में व्यापृत है। ट्रावनकोर में 'चोवर' 'चोकोर' नामों से पुकारा जाता है। हँसी-मज़ाकमें इन्हें 'कोट्टिकळ' भी कहते हैं।

आगे कुछ ऐसी जातियों का विश्लेषण करेंगे जो पेशे के आधार पर बनी है।

2.4.3.1.6 अरयऱ [4]

केरल के मछुवारों को अरयऱ कहते हैं। ये लोग मुख्य रूप से हिन्दू धर्म पर विश्वास करनेवाले है लेकिन ईसाई और इस्लाम धर्म के लोग भी मछुवारों का काम करते हैं। कुछ प्रांतों में इन्हें 'मुक्कुवर' भी कहते हैं। ये लोग 'धीवर' वंश में आनेवाले होते हैं। इनकी उपजातियों में 'वालन्मार' 'मुकयर'

1. केरल हिस्टरी एसोसियेशन, केरल चरित्रम्, खण्ड-1- पृ. 931-941
2. कळरि - कळरिप्पयट्टु का प्रशिक्षण देनेवाला केन्द्र।
3. केरल हिस्टरी एसोसियेशन, केरल चरित्रम्, खण्ड-1- पृ. 961-974
4. वही - पृ. 992-1000

'नुळयर' 'परवन्मार' 'मरक्कान्मार' 'अमुक्कुवन्मार' आदि आते हैं।

2.4.3.1.7 अंबट्टन

केरल के नाई लोग 'अंबट्टन' नाम से जाने जाते हैं। वास्तव में 'अंबट्टन' तमिल शब्द है और धीरे धीरे केरल में प्रचलित हो गया। मालयलम में इसके लिए 'क्षुरकन' 'क्षौरकन' 'क्षौरक्कारन' आदि शब्द भी प्रचलित है। कोल्लम से दक्षिण की ओर 'विळक्कित्तल नायर' शब्द भी प्रयुक्त है।

2.4.3.1.8 आशारी

केरल में लकडी के कामों में व्यापृत लोगों को 'आशारी' (बढई) कहा जाता है। ये लोग 'तच्चन' नाम से भी जाने जाते हैं। पत्थर के कामों में व्यापृत लोगों को 'कल्लाशारी' पुकारते हैं। जिसमें 'कल्लुँ'का अर्थ है पत्थर। इनके लिए 'पणिक्कन' शब्द भी प्रचलित है।

2.4.3.1.9 कोल्लन

केरल में लोहे के काम करनेवालों को कोल्लन (लोहार) नाम दिया गया है। इनका मुख्य काम लोहे के तरह-तरह के औजार एवं हथियार बनाना है। इन्हें 'पणिक्कन' भी कहते हैं।

2.4.3.1.10 कणियान

इस जाति के लोगों का मुख्य पेशा ज्योतिष तथा चिकित्सा है। ये जन्मकुंडलियाँ लिखना, शादी के लिए मुहूर्त निकालना आदि कार्य करते हैं। इनके उपजाति के लोगों को 'तिन्तु कणियान' कहते हैं। वे लोग मंत्र-तंत्र तथा 'कोलम तुळ्ळल'[1] आदि कार्यों में संलग्न रहते हैं।

2.4.3.1.11 पळ्ळुवन

'पुळ्ळुवन' या 'पुळ्ळोन' सर्प पूजा करनेवाले लोग हैं। 'सर्प पाट्टुँ' या सर्प गीत के गायन करने के लिए या 'कावों'[2] में पूजा करने के लिए ये लोग हिन्दू घरानों में आते हैं।

2.4.3.1.12 तट्टान

तट्टान (सुनार) जाति के लोग मुख्य रूप से आभूषण बनाने के कार्यों में व्यापृत रहते हैं। केरल में दो प्रकार के 'तट्टान' या सुनार हैं। 'मलयाम् तट्टान' व 'पाण्डि तट्टान'। इनमें 'पाण्डि तट्टान' का आगमन तमिलनाडु से माना जाता है और तमिल उनकी मातृभाषा है। मलयालम मातृभाषा होने के

1. कोलम तुळ्ळल - एक अनुष्ठान प्रधान धार्मिक कला रूप

2. कावुं - हिन्दू लोगों का एक आराधना स्थल जो प्रत्येक घर के निकट ही होता है।

कारण केरल के तट्टानों को 'मलयाम् तट्टान' नाम मिला।

2.4.3.1.13 वेळुत्तेडन

यह केरल की एक पुरानी जाति है। ये धोबी हैं और इनका मुख्य पेशा कपडा धोना है। इन्हें 'वेलक्कित्तल नायर' भी कहते हैं।

आगे समाज में अछूत समझे जानेवाली कुछ जातियों का विश्लेषण करेंगे।

2.4.3.1.14 कुरुवर् [1]

ये दलित लोग हैं। लेकिन ऐसा कहा जाता है कि 700 वर्ष पूर्व 'नांचिनाडुं' में इस जाति के लोग राज करते थे। उनकी निम्नलिखित उपजातियाँ हैं -

'मलक्कुर्वन' 'कुतक्कुर्वन' 'काक्ककुर्वन' 'पाण्डिक्कुर्वन' ।

2.4.3.1.15 परवन

नारियल पेड़ों पर चढ़ना आदि इनके मुख्य पेशे हैं। इस जाति की स्त्रियाँ कपड़े धोने का काम करती हैं। यह केरल भर में फैली हुई जाति है। तिरुवल्ला जैसे प्रदेशों में ये लोग 'चाक्कन्मार' नाम से जाने जाते ।

2.4.3.1.16 परयर्

कहा जाता है कि ये सवर्ण वर्ग थे लेकिन माँस खाने की वजह से निम्न मानने लगे। आजकल 'सांबवर' नाम से जाने जाते हैं।

2.4.3.1.17 पुलयर [2]

ये द्राविड गोत्र में आनेवाले लोग है। (इस विषय को लेकर आज भी वादविवाद है) ये ब्राह्मण और नायर जाति के लोगों के खेतों में काम करते थे। 'पुल' यानि खेतों में काम करने की वजह से इन्हें पुलयर नाम मिला।

2.4.3.1.18 तण्डान

इनका मुख्य पेशा पेड़ों पर चढ़ना है। ये लोग 'ऊराळी' नाम से भी जाना जाता है।

---

1. केरल हिस्टरी एसोसियेशन, केरल चरित्रम्, खण्ड-1- पृ. 1022

2. वही - पृ. 1015-1019

2.4.3.1.19 वण्णान

तमिल बोलनेवाले धोबी लोगों को 'वण्णान' कहते हैं। इनमें मलयालम बोलनेवाले भी शामिल है। पुरुषों ने पेड़ों पर चढ़ना अपना पेशा स्वीकार किया है।

2.4.3.1.20 चेम्मान

'चेम्मान' (मोची) मुख्य रुप से चमड़ी के कामों से जुड़े हुए होते हैं। जूते बनाना और उनका मरमत करना इनके पेशे हैं। तमिल इनकी मातृभाषा है। इनमें से कुछ लोगों ने ईसाई धर्म को अपना लिया है।

अन्य अनेक जाति और उपजाति भी केरल में हैं, उनका विशद वर्णन आगामी अध्यायों में किया जाएगा।

केरल में प्रचलित दो विदेशी धर्म है ईसाई और इस्लाम। केरल के विदेशी देशों से हुए व्यापारिक संबंधों के फलस्वरूप ही केरल में इन धर्मों का प्रचार हुआ। लेकिन आजकल केरल के सामाजिक,राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

2.4.3.2 ईसाई धर्म [1]

भारत में ईसाई धर्म के सबसे सशक्त केन्द्र हैं केरल और नागालैंड। नागलैंड में धर्म परिवर्तन हाल ही में हुआ था। लेकिन केरल में ईसाई धर्म का इतिहास बहुत पुराना है। 50 ईसवीं में ईसा मसीह का शिष्य सेन्ट थॉमस के केरल आगमन के पश्चात् ही केरल में ईसाई धर्म का आविर्भाव हुआ। इनके बाद पुर्तगाली, फिरंगी, डच्च तथा अंग्रेज़ लोग व्यापार करने के लिए केरल आए। इन लोगों ने व्यापार के साथ-साथ धर्म परिवर्तन पर भी बल दिया। फलतः ईसाई धर्म का काफी प्रचार हुआ। ईसाई धर्म पर विश्वास रखनेवालों को 'क्रैस्तवर' या 'क्रिस्त्यानिकळ' कहते हैं। 'नस्राणी' व 'माप्पिळ' आदि शब्द ट्रावनकोर, कोच्ची प्रदेशों में ईसाई लोगों के लिए प्रयुक्त हैं। इनकी कई उपजातियाँ केरल में प्रचलित हैं। जैसे - 'रोमन कत्तोलिक्कर'(Roman Catholic) 'लत्तीन कत्तोलिक्कर' (Latin Catholic),'रोमन सिरियन क्रिस्त्यानिकळ'(Roman Syrian Christians), 'याकोबया' (Jacobite), 'मारत्तोमा क्रिस्त्यानिकळ' (Marthoma Christians), 'सी.एस.आई क्रिस्त्यानिकळ' (C.S.I Christians), 'क्नानाया' (Knayaya) आदि। आजकल 'पेन्तकोस्तु'(Pental costal) चर्चो की भी स्थापना हुई है।

1. ईसाई धर्म - ए श्रीधर मेनोन , ए सर्वे ऑफ केरल हिस्टरी- पृ. 106-109

2.4.3.3 इस्लाम धर्म [1]

मुस्लीम इतिहासकारों के अनुसार 642 ई में इस्लाम धर्म प्रचारक मालिक इब्नुदीनार अपने 10 पुत्रों, 5 पुत्रियों तथा 20 धर्म पंडितों के साथ केरल पहूँचे। उन्हें केरल में दस मस्जिदों की स्थापना की, वे हैं-[2]

1. कोडुङ्ङल्लूर	2. दक्षिण कोल्लम
3. एषिमला	4. श्रीकण्ठपुरम्
5. धर्मडम्	6. पन्तलायिनिकोल्लम
7. चालियम्	8. बरकूर
9. मंगलापुरम	10. कासरगोडुं

केरल के मुसलमानों में ज़्यादातर लोग 'माप्पिळा' नाम से जाने जाते हैं। अरब पुरुषों के केरल महिलाओं के साथ हुए वैवाहिक संबंधों से जिस इस्लाम वंश परंपरा का आविर्भाव हुआ, उसे 'माप्पिळा' कहते हैं। 'माप्पिळा' में 'सुन्नी' और 'षिया'[3] वर्ग के लोग शामिल हैं। इनकी मातृभाषा मलयालम है और ये भारत के अन्य इलाकों के मुसलमानों से भिन्न एक संस्कृति का पालन करते हैं।

'माप्पिळों' के अलावा पठाण कहनेवाले दक्खनी मुसलमानों को एकाध संख्या में केरल में देख सकते हैं। ये लोग बीजापुर, ढक्काण, कर्नाटक आदि भारत के विभिन्न भागों से केरल आए हैं। तमिलनाडुं से आकर पालघाट तथा दक्षिण केरल में जो मुसलमान रहते हैं उन्हें 'रावुत्तर' कहते हैं। 'भटकली' तथा 'कच्चिम्मेन' कहनेवाले गुजराती मुसलमान भी बहुत कम संख्या में केरल के विभिन्न प्रांतों में रहते हैं।[4] आजकल मलबार प्रांत मुसलमानों का केन्द्र है। मुसलमानों की सबसे अधिक आबादी मलप्पुरम जिले में है। कोषिक्कोडुं, कण्णूर तथा पालघाट आदि जिलों में इनकी आबादी गणनीय है। लेकिन अन्य प्रदेशों में इनकी संख्या कम है।

पुर्तगलियों के केरल आगमन तक केरल में इस्लाम धर्म का काफी प्रचार हुआ था। वे उस समय के सबसे धनी व्यापारी वर्ग थे। इस्लाम धर्मावलंबियों को मलयालम में 'मुस्लीङ्ङळ' कहते हैं। उत्तर केरल में मुसलमान 'माप्पिळा' नाम से जाने जाते हैं। कई स्थानों में 'मेत्तन' नाम भी प्रचलित है।

1.ए श्रीधर मेनोन , ए सर्वे ऑफ़ केरल हिस्टरी- पृ. 110- 112

2. इटमरुकुं -केरल संस्कारम् - पृ. 512- 513

3. इस्लाम के प्रमुख भेद

4.केरल हिस्टरी एसोसियेशन, केरल चरित्रम् - पृ. 523

SAJ

2.4.4 आराधना स्थल

जाति एवं धार्मिक विश्वास के आधार पर आराधना स्थानों के नामों में भी भिन्नता है। हिन्दू लोग मुख्यतः अंबलम् (मन्दिर) 'कावुं' या 'कोविल' में जाकर पूजा करते हैं। ईसाई और इस्लाम धर्मों के लोग अपने आराधना स्थल को 'पळ्ळि' कहते हैं। यहां ईसाई धर्मवालों की 'पळ्ळि' गिरिजाघर है तो मुसलमानों की 'पळ्ळि' मस्जिद है।

2.4.5 खान-पान

किसी देश, क्षेत्र या जाति आदि का खान-पान उसकी अपनी संस्कृति का अंग है। यही कारण है कि अलग अलग संस्कृतियों के लोग अपने खान-पान में भी पूर्णतः समान नहीं होते। उनकी संस्कृतियों में जितना अधिक अन्तर होता है, उनके खान-पान में उतना ही अधिक अन्तर पाया जाता है। इसके विपरीत उसके खान-पान की समानता और अन्तर की मात्रा इस बात की सांकेतिकता होती है कि उनकी संस्कृतियों में कितनी समानताएँ या असमानताएँ हैं।[1] वस्तुतः किसी भाषा-भाषी समाज के किसी भी काल के शब्द भण्डार में से खान-पान विषयक शब्दों के आधार पर यह जाना जा सकता है कि उस संस्कृति के लोग क्या कुछ खाते पीते थे। दूसरी ओर किसी भी समाज के खान-पान के आधार पर यह अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है कि उनकी भाषा के शब्द भण्डार में किन-किन खाद्यों और पेयों के लिए नाम या शब्द रहे होंगे।

लोगों के जीवन क्रम का अन्तर मुख्य रूप से उनके खान-पान में झलकता है। खान-पान के किसी नियत क्रम के चालू हो जाने पर वही आगे बराबर चलता है। इसका स्वरूप भूभाग की खेती पर निर्भर करता है। जहाँ जो अनाज बडी मात्रा में पैदा होता और इसलिए सस्ता रहता है। वही उस स्थान के लोगों की खाद्य वस्तुओं में पहला स्थान पाता है। चालू हो जाने के बाद उस अनाज की खेती ज़ोरों से बढ़ती है। इसी दृष्टि से देखें तो केरल की मुख्य खेती चावल ही है। बाहर से केरल आनेवाले पर्यटक यहाँ फैले हुए धान के खेतों को जब देखता है तब उसे मालूम हो जाता है कि यहाँ के लोग चावल ज़्यादा खाते हैं। दूसरे प्रांतो में गरीब-अमीर का फरक खाने के अनाज में ही दीखता है। अमीर लोग गेहूँ खाते हैं तो गरीब लोगों को ज्वार, बाजरे की रोटी से संतुष्ट होना पडता है। लेकिन केरल में धनी व दरिद्र समान रूप से भोजन में चावल का ही उपयोग करते हैं।

आगे केरल के कुछ खाद्यों का सामान्य परिचय दिया जा रहा है।

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति - पृ. 54

2.4.5.1 चार्

'चोर्' अथवा उसना चावल का भात केरल का लोकप्रिय भोज्य पदार्थ है। उत्तर भारत में जो भात दही के साथ खाया जाता है वह कच्चे चावल का भात होता है। केरल में कच्चे धान खौलते पानी में उबालने के बाद सुखाते हैं। इसके बाद कुटाई होती है और कुटा चावल, उसना चावल (Boiled Rice) कहलाता है।

2.4.5.2 कञ्ञि

केरल का सबसे सादा और सस्ता खाना 'कञ्ञि' है। हिन्दी में भी इस शब्द का व्यवहार सुगम है। काफी पानी में थोड़ा सा चावल उबालकर जो पतली दलिया(मांड) तैयार किया जाता है, वही 'कञ्ञि' है।

2.4.5.3 पुषुक्कुं

तरह-तरह के कन्दमूल जैसे 'कप्पा' (कसावा), 'चेन'(सूरन), 'चेंपुं'(धइया), 'काच्चिल' (रतालू) तथा 'चक्के' (कटहल) में मिर्च तथा नारियल मिलाकर पुषुक्कुं तैयार करते हैं।

2.4.5.4 पुट्टुं

'पुट्टुं' चावल के आटे से बनानेवाले भोज्य पदार्थ है। यह 'पिट्टुं','पूट्टुं' आदि नामों से भी जाना जाता है। आटे में पानी, नमक और नारियल मिलाकर भाप में पकाने के कारण इसे अंग्रेज़ी में 'स्टीम' केक (Steam cake) भी कहते हैं।

2.4.5.5 इड्डली और दोशा

ये भोज्य पदार्थ तमिलनाडुं से केरल में आए हैं और यहाँ के आम भोज्य पदार्थ बन गए हैं। सफेद कच्चे चावल और उडद को पीसकर पानी मिलाकर छह-सात घण्डे रखने के बाद पकाते हैं। इड्डली भाप में पकाते है तो दोशा चपाती के समान पकाया जाता है।

2.4.5.6 अप्पम

'अप्पम' भी दोशा के समान कच्चे चावल से बनाया जाता है। लेकिन इसमें उडद नहीं मिलाया जाता है।

इनके अलावा उत्तर और दक्षिण राज्यों के बहुत सारे खाद्य पदार्थ भी केरल में प्रचलित है। लेकिन इसके अपनी कुछ सब्जियाँ हैं। इन सब्जियों के बनाने में नारियल तथा नारियल तेल का महत्त्वपूर्ण

स्थान है। केरल में नारियल के पेड़ों की प्रचुरता के कारण ही इनके इस्तेमाल में काफी बढ़ावा मिल गया। अन्य प्रकार की कड़ी तथा व्यंजनों में प्रमुख है - 'अवियल' 'तोरन' 'मेषुक्कुपुरट्टि' 'ओलन' 'पच्चटी', 'किच्चटी' 'पुळिश्शेरी' 'सांबार' 'तीयल' 'अच्चार' 'कोण्डाट्टम' 'उप्पिलिट्टतुं' 'चम्मन्ति' आदि।

2.4.5.7 अवियल

'अवियल' केरलियों का एक विशिष्ट व्यंजन है जिसमें सेंजन, सूरन, तोरी, ककड़ी, बैंगन, गोलकन्द, हरी मिर्च, कड़ी पत्ता, नारियल, नारियल तेल आदि का इस्तेमाल होता है।

2.4.5.8 तोरन या तुवरन

यह पपीता, केला, गोभी, बैंगन, तोरी, भिंडी, बंद गोभी, बरबटी आदि सब्जियों से बनाया जाता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें पानी बहुत कम ही मिलाया जाता है। इसलिए 'तोरन' सूखा सा दीख पडता है।

2.4.5.9 मेषुक्कुपुरट्टि

यह भी तरह-तरह की सब्जियों से बनायी जाती है। इसमें नारियल की जगह नारियल तेल का इस्तेमाल होता है।

2.4.5.10 सांबार

'सांबार' केरल के लिए तमिलनाडु का वरदान है। आजकल यहाँ के लोगों के लिए .सांबार ज़रूरी बन गया है। इसमें दाल, आलू, बैंगन, सेंफन आदि कई प्रकार की पौष्ठिक चीज़ें मिलाई जाती है।

2.4.5.11 सम्मन्ति

केरल लोग 'चट्नी'के लिए 'चम्मन्ति' या 'सम्मन्ति' का प्रयोग करते हैं। चट्नी के लिए प्रयुक्त साधन के अनुसार इसके नामों में भिन्नता है। जैसे 'तेङ्ङा चम्मन्ति' (नारियल चट्नी), 'मुळकुं चम्मन्ति' (मिर्च चट्नी), 'मीन चम्मन्ति' (मछली की चट्नी), 'पुळिम् चम्मन्ति' (इमली की चट्नी) आदि।

2.4.5.12 उप्पिलिट्टतुं

केरल में फसल के मौसम में फलों को नमक के पानी में डालकर कई दिनों तक सुरक्षित रखने की रीति है इसे मलयालम में 'उप्पिलिटुका' कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है नमक में डालना। आम,

नींबू, आमला आदि इस प्रकार सुरक्षित रखे जाते हैं।

2.4.5.13 कोण्डाट्टम

सब्जियों के टुकड़े-टुकड़े करके दही या नमक में डालने के बाद सूर्यप्रकाश में सुखाकर 'कोण्डाट्टम' तैयार करते हैं। बाद में उबलते तेल में डालकर भुनते हैं। मिर्च, करेला आदि के कोण्डाट्टम बहुत स्वादिष्ट है।

2.4.5.14 शर्करवरट्टी

फल या कन्दमूल को टुकड़े करके तेल में भुनाते हैं। इसके बाद गुड मिलाकर 'शर्करवरट्टी' तैयार करते हैं। 'शर्करा' या गुड मिलाकर बनाने के कारण इसे 'शर्करवरट्टी' नाम मिला।

2.4.5.15 पायसम्

पायसम या खीर का केरलीय भोजन में महत्वपूर्ण स्थान है। शादी, त्योहार, सालगिरा आदि विशेष अवसरों में पायसम तैयार करते हैं। पायसम् के लिए प्रयुक्त चीज़ के अनुसार 'अरिप्पायसम' (चावल का खीर), 'पालप्पायसम' (दूध का खीर), 'अटप्पायसम्' (चावल के आटे से 'अटा' बनाया जाता है और उससे खीर), 'शर्करप्पायसम्' (गुड का खीर), 'परिप्पु पायसम्' (दाल का खीर), 'पषप्पायसम' (केले का खीर) आदि कई किस्म के खीर होते हैं।

उपर्युक्त सारे के सारे भोज्य पदार्थ शाकाहारी हैं। केरल के हिन्दू लोगों में शाकाहारी भोजन की प्रधानता है। लेकिन ईसाइ और इस्लाम धर्म के लोग मछली और माँस ज़्यादा खाते हैं। क्रिसमस, ईस्टर, बक्रीद, ईद जैसे त्योहारों के अवसर पर भैंस, मुर्गी, बकरी आदि के माँस के तरह-तरह के भोज्य पदार्थ बनाए जाते हैं।

केरल में प्रयुक्त मुख्य पेय चाय और कॉफी है लोग गर्मी के दिनों में संभारम् पीते हैं। इसे 'मोरुम वेळ्ळम' भी कहते हैं। दही में ज़्यादा पानी डालकर उसमें हरी मिर्च, नमक, अदरक, प्याज व कड़ी पत्ता मलाकर संभारम् तैयार किया जाता है। कच्चे नारियल का पानी भी बहुत स्वादिष्ट है। नारियल के पानी का मिठास किसे विदित नहीं है? यह अमृत रस प्यास बुझाता है, दिल को ठंडा भी कर लेता है।

यहाँ तरह-तरह के पकवान भी बनाए जाते हैं। इसमें प्रमुख है-'सुखियन','अरियुण्डा',' नेय्यप्पम्', 'उण्णियप्पम्','वट्टयप्पम','अच्चप्पम्','उडुदवडा','बोंडा' 'पत्तिरी' 'वल्सन', 'एल्लुंडा' 'पप्पडवडा' 'उळ्ळिवडा' 'पक्कावडा' आदि प्रमुख है। उपर्युक्त पकवानों पर विचार करते समय एक बात सामने आएगा कि इनमें सामान्य रूप से चावल, नारियल या नारियल के तेल का इस्तेमाल होता है।

नारियल के समान केले के क्षेत्र में भी केरल अन्य प्रांतों से कहीं आगे है। यहाँ के अधिकाँश गाँवों में केलों की खेती की जाती है। केलों के जितने भेद यहाँ दीख पड़ते हैं शायद बाहर दिखाई नहीं देते। तरह-तरह के पके केले बराबर खाए जाते हैं। इस प्रांत में 'नेंत्रन' या 'एत्तवाषा' जो खास केला खूब चलता है। वह यहाँ के केला साम्राज्य का सम्राट माना है। प्रीति भोजों व विशेष अवसरों या धार्मिक पर्वों पर खाना केले के पत्तलों पर परोसते हैं।

यहाँ खान-पान से संबंधित कुछ शब्दों का उल्लेख ही किया है। जिसका उद्देश्य है स्थानीय शब्दावली के रूपायन में इन शब्दों की भूमिका का सामान्य परिचय दिलाना।

2.4.6 वेश-भूषा

हर एक देश की वेश-भूषा वहाँ की संस्कृति के आधार पर होती है। एक समय था प्रत्येक संस्कृति के कपड़े लत्ते भी कुछ न कुछ अलग हुआ करते थे। सभी स्थानों पर आदिवासियों में आज भी यह बात एक सीमा तक पायी जाती है। किन्तु आगे चलकर लोग यूरोपीय संस्कृति से इतने प्रभावित हुए हैं कि वही कपड़े-लत्ते काफी सारे देशों और संस्कृतियों ने ग्रहण कर लिए हैं। उदाहरण के लिए भारत में पहले धोती और उत्तरीय पुरुषों की पोशाक थी। धोती शब्द मूलतः 'अधोवस्त्र' है अर्थात् नीचे का वस्त्र और 'उत्तरीय' का अर्थ है ऊपर का। यह ऊपर पहनने का वस्त्र था। स्त्रियाँ 'शाटिका' पहनती थी जो आज साडी है। भारत के प्रांतों की विविधता का प्रत्यक्ष प्रमाण यदि पाना है तो यहाँ के विभिन्न प्रांतों की वेशभूषा का अवलोकन करें। पंजाब का कमीज़-सलवार राजस्थान में नहीं मिलता। वहाँ साफा-कुरता और घाघर-चुनरी का प्रचार अधिक है। महाराष्ट्र में धोती-टोपी का विशेष व्यवहार दीखता है। दक्षिण भारत की द्राविड भूमि पर पांव रहते ही पहनावे का क्रम अलग हो जाता है।

केरल के लोग यहाँ की भौगेलिक स्थिति एवं मौसम को दृष्टि में रखकर ही अपने लिए कपड़े चुनते थे। पहले यहाँ के पुरुषों के 'मुंडुं' और 'रंटाँ मुंडुं' (धोती और उत्तरीय) पहनने की रीति थी। फिर 'मुंडुं' के साथ 'षेर्ट' (Shirt) पहनाना शुरू हुआ। 'षेर्ट' के लिए मलयालम में 'कुप्पायम्' शब्द प्रयुक्त है। स्त्रियाँ प्रायः 'मुंडुं' और 'ब्लाउज़' तथा साड़ी और 'ब्लाऊज़' पहनती हैं। ब्लाऊज़ को मलयालम 'राऊक्का'कहते हैं। साड़ी के लिए 'चेला' शब्द भी प्रचलित है। ईसाई स्त्रियों का परंपरागत पोशाक'मुंडुं'और'चट्टा'है। चट्टा एक प्रकार की लंबी ब्लाऊज़ है। मुस्लीम स्त्रियों के लिए 'मुंडुं'और 'कुप्पायम्' ज़्यादा प्रयुक्त है। 'कुप्पायम्' भी एक प्रकार की लंबी ब्लाऊज़ है जो कटि के नीचे के हिस्से तक पहूँचती है। ये लोग सर पर 'तट्टम' धारण करती है। बाल को ढकने के लिए जिस कपड़े का प्रयोग होता है उसे 'तट्टम' कहते हैं। कुछ मुस्लीम परिवार के लोग अरबियों के समान 'बुरखा' धारण करती हैं।

घर में रहते वक्त लोग जिस रंगीन धोती पहनते हैं वह 'लुंगी','कैली' आदि नामों से जाना जाता है।

आधुनिक काल में यूरोपीय प्रभाव के कारण 'पैंटस्', (Pants), 'कोट' (Coat) 'षेर्ट' (Shirt) 'टी षेर्ट'(T Shirt) आदि सामान्य पोशाक बन गए हैं। स्त्रियाँ शलवार कमीज़, चूड़ीदार, स्कर्ट, जीन्स आदि पहनती हैं लेकिन साड़ी की लोकप्रियता अब भी कम नहीं हुई है। वस्तुतः अन्य क्षेत्रों की तरह ही जब-जब कोई नया कपड़ा प्रयोग में आया, उसके लिए भाषा में नए शब्द आए तथा जब-जब कोई पुराना कपड़ा प्रयोग से निकल गया, उससे सम्बद्ध शब्द भी गत प्रयोग हो गए। उनका शव केवल कोशों तथा पुराने साहित्य में ही देखा जा सकता है। यही बात केरल के संबंध में भी सौफीसदी सही है। वस्त्रों से एक सीमा तक धर्मो का भी संबंध होता है। यद्यपि पुरुषों ने 'पैंट्स' आदि अपना लिए हैं किन्तु अब भी पूजा-पाठ में या अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में हिन्दू धोती ही पहनते हैं। अन्य संस्कृतियों के लोग भी अपने धार्मिक कृत्यों के लिए परंपरागत वस्त्र ही पहनते हैं। धर्म की दृष्टि से केरल में हिन्दुओं के अलावा मुसलमान और ईसाई सज्जन बडी संख्या में रहते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के प्रभाव से सभी की वेशभूषा में समानता आ रही है। फिर भी परिवारों में जो परंपरागत धार्मिक जीवन क्रम होता है, वह आसानी से बदला नहीं जा सकता।

स्वर्ण और रत्न के लोभ में केरलवाले पडोसी तमिलनाडु और आन्ध्रप्रदेश के लोगों से कुछ पिछडे तो कहला सकते हैं। फिर भी सोना और हीरा हर किसी को गुलाम बनाते हैं। इसलिए यहाँ भी जेवर के रूप में सोने का प्रयोग खूब होता है। किन्तु फैशन के बदलने से पुरानी चीज़ों के बदले नई चीज़ें बनती हैं। प्राचीन केरल में बालियाँ, कड़े, करघनी, अंगूठी आदि आभूषण थे। पुराने ज़माने में केरलीय स्त्रियाँ कान में बड़ा छेद बनाकर उसमें सोने की बडी और भारी बालियाँ पहना करती थी, इसे 'ओला' या 'कम्मल' कहते थे। कमर पर भी नागांकित करघनी पहनने का रिवाज़ चलता था। टखनों पर चाँदी का मोटा कडा या घुंघरू पहनती थी जिन्हें क्रमशः 'अरपट्टा' 'अरञ्ञाणम' व 'पादसरम्' कहते हैं। युगों के परिवर्तन के साथ आभूषणों में भी बहुत परिवर्तन आने लगे।

2.4.7 कर्मकाण्ड

काण्ड का अर्थ होता है भाग। मूलतः कर्मकाण्ड वेदों के उस भाग को कहते थे जिसमें यज्ञ तथा धार्मिक कृत्य आदि के विधि-विधानों का विस्तृत विवरण है। आगे चलकर धार्मिक कृत्य, मृतक संस्कार तथा यज्ञ आदि में किए जानेवाले कृत्यों को कर्मकाण्ड कहने लगे। कर्मकाण्ड विस्तार से तथा व्यवस्थित ढंग से प्रायः किए जाते हैं अतः मुहावरा चल पडा 'कर्मकाण्ड' करना जिसका अर्थ है किसी भी काम

को लम्बे-चौडे ढंग से करना।[1] वस्तुतः पूजा, अर्चना तथा अन्य धार्मिक कृत्यों से सम्बद्ध काफी बडी शब्दावली कर्मकाण्ड की ही देन है।

संस्कृति और कर्मकाण्डों में गहरा सम्बन्ध है। व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यू तक तरह-तरह के कर्मकाण्डों का आचरण करना पडता है। जाति और धर्म के अनुसार इन कार्यों में पर्याप्त अन्तर देख सकते हैं। विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्डों से जुडे हुए कुछ मलयालम शब्द उदाहरण स्वरूप नीचे दिए जा रहे हैं-

2.4.7.1 इरुपत्तेट्टुँ केट्टल

हिन्दू घरों में कोई बच्चा पैदा होता है तो उसके कमर में एक काला धागा बाँधने की प्रथा है। जन्म के अठाइस दिन बाद ही यह कार्य होता है इसलिए इसका नाम 'इरुपत्तेट्टुँ केट्टुका' पड गया।'इरुपत्तेट्टुँ का अर्थ है अठाइस और 'केट्टुका' का अर्थ है बाँधना। इसी समय बच्चे का नाम भी रख देता है।

2.4.7.2 चोरूणुँ (अन्नप्राशम्)[2]

बच्चे को पहली बार जो अन्न (चोरुँ/भात) दिया जाता है उस कर्म को 'चोरूणुँ' कहते हैं। प्रायः यह कार्य किसी मंदिर में संपन्न होता है।

2.4.7.3 एषुत्तिनिरुत्तुका (विद्यारंभम्)

'एषुत्तिनिरुत्तुका' से तात्पर्य है अक्षरों का श्रीगणेश करना। बच्चे को जब पहली बार विद्योपार्जन के लि गुरु के पास ले जाता है तब गुरु उससे 'हरि श्री गणपताए नमः' लिखवाते हैं। इस कार्य को एषुत्तिनिरुत्तुका कहते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ है लिखवाने के लिए बिठाना।

2.4.7.4 कल्याणम्

शादी के लिए मलयालम में 'कल्याणम्','विवाहम' आदि शब्द प्रचलित है। मुसलमान लोग'निकाह'शब्द का प्रयोग करते हैं।

2.4.7.5 तालि केट्टल

मंगलसूत्र को मलयालम में 'तालि' कहते हैं और मंगल सूत्र बाँधने के कार्य को 'तालि केट्टल' से अभिहित किया जाता है।

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति - पृ. 75
2. कावालम् नारायण पणिक्कर, केरलत्तिले नाडोडी संस्कारम् - पृ. 83

2.4.7.6 मणवाळन और मणवाट्टी

मलयालम में दूल्हा और दुल्हन के लिए प्रयुक्त शब्द है 'मणवाळ्न' और 'मणवाट्टी'। वर और वधू शब्द भी प्रचलित है।

2.4.7.8 मंत्रकोटि

शादी के अवसर पर दूल्हा दुल्हन को जो विशेष प्रकार की रेशमी साडी देता है वह 'मंत्रकोटि' नाम से जाना जाता है। इसके लिए 'पुटवा' 'विरिप्पावुँ' आदि शब्द भी प्रचलित हैं।

2.4.7.9 बलियिटल (श्राद्धकर्म)

हिन्दू लोगों के मृत व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति के लिए बलि चढ़ाना ज़रूरी है। इस कर्म को मलयालम में 'बलियिटल' कहते हैं।

2.4.7.10 बलिच्चोर

बलि चढ़ाने के लिए भात, तिल आदि का जो मिश्रण तैयार करते हैं उसे 'बलिच्चोर' कहते हैं।

2.4.8 त्योहार और पर्व

त्योहार या पर्व प्रत्येक देश की संस्कृति की खिडकियाँ होते हैं। उनके माध्यम से किसी भी संस्कृति की बहुत सी बातें देखी और जानी जा सकती हैं। त्योहारों का यों तो धार्मिक महत्त्व भी है, किन्तु उसके अतिरिक्त इनका सामाजिक और वैयक्तिक महत्त्व भी कम नहीं है। समाज और व्यक्ति की एकरसता को तोडकर ये उन्हें उत्फुल्लता और आनन्द में विभोरकर उनके मानसिक स्वास्थ्य का संवर्धन करते हैं। कोई भी संस्कृति ऐसी नहीं होगी जहाँ त्योहार न हो। यों बहुत अधिक पर्व-त्योहार आजकल पिछडेपन की निशानी माने जाते हैं। किन्तु समाज और व्यक्ति पर इनके स्वास्थ्यकर प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता।

जीवन का आनन्द बंधु-मित्रों से मिलन और मनोरंजन में होता है। ऐसे अच्छे मौकों को कोई भी हाथ से छूट जाने देना नहीं चाहता। शादी-ब्याह जैसे घरेलू पर्वों पर लोग इकट्टे होते ही हैं। अपने गाँव के मन्दिर, मस्जिद या गिरिजाघर के किसी भी त्योहार के दिन लोग बडी तादद में मिलते हैं। इसका कारण धार्मिक श्रद्धा तो अवश्य है, साथ ही, या मुख्य रूप से यह साथियों-रिश्तेदारों से मिलने का बढ़िया मौका भी होता है। भारत के सभी प्रांतों में ऐसे कई धार्मिक और सांस्कृतिक पर्व शताब्दियों से मनाए जा रहे हैं। यद्यपि इनकी बाहरी रूपरेखाओं व साज सजावटों में काफी भिन्नता नज़र आएगी फिर भी इनके

अन्दर प्रवाहित भावात्मक एवं विचारात्मक समानता की निर्मल धारा एक ही है जो पूर्वजों के स्मृतिचिह्न के तौर पर अभी तक प्रवाहित है।

केरल में कई प्रकार के स्थानीय त्योहार और पर्व मनाए जाते हैं। कुछ तो सार्वजनिक हैं तो कुछ धार्मिक विचारों पर आधारित हैं।

2.4.8.1 ओणम [1]

ओणम केरल का देशीय त्योहार है। केरल के सभी लोग हर्षोल्लास के साथ ओणम मनाते हैं। महाबली नामक एक असुर राजा की पुण्य स्मृति में ओणम मनाया जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि महाबली नामक एक महान राजा यहाँ शासन करता था और उस असुर राजा की ख्याति से रुष्ट होकर देवों ने विष्णु को वामन का रूप धारण करवाया और महाबली को पाताल भिजवा दिया। वर्ष में एक बार महाबली के लौट आने का वादा रहा। इसी उपलक्ष्य में ओणम मनाया जाता है। ऐसी धारणा है कि श्रावण के महीने के तिरुवोणम के दिन महाबली प्रजा के दर्शन के लिए आते हैं। यहाँ के सारे के सारे, गरीब और धनी,बच्चे और बूढ़े सभी हर्षोल्लास के साथ ओणम मनाते हैं।

आगे ओणम से संबंधित कुछ शब्दों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

2.4.8.1.1 अत्तपूक्कळम

ओणम का विशेष पर्व दस दिन पहले शुरू होता है। इन दसों दिनों में घर के आँगन में फूलों के द्वारा किए जानेवाला 'एपन' जैसी सजावट को 'अत्तपूक्कळम' या 'ओणपूक्कळम' कहते हैं।

2.4.8.1.2 ओणक्कोटि

ओणम के दिन जो नए कपडे पहने जाते हैं उसे 'ओणक्कोटि' कहते हैं। 'कोटि' का अर्थ है नया कपडा।

2.4.8.1.3 ओणसद्या

ओणम के दिन जो महाभोज या बडाखाना तैयार होता है वह 'ओणसद्या' नाम से जाना जाता है। 'सद्या' का अर्थ है महाभोज।

2.4.8.1.4 ओणत्तुंपि

यह एक विशेष प्रकार की तितली है जो ओणम के मौसम में दिखाई देती है। इसे हर्षोल्लास का

1. केरल हिस्टरी एसोसियेशन, केरल चरित्रम् - पृ. 1146-1152

प्रतीक भी मानते हैं।

2.4.8.1.5 ओणक्कळि

ओणम से संबंधित तरह तरह के खेल-कूदों को मिलाकर 'ओणक्कळि' कहते हैं। 'कळि' का अर्थ है खेल ।

2.4.8.1.6 ओणप्पाट्टुँ

ओणम के मौसम में महाबली और उनके शासन से संबंधित जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'ओणप्पाट्टुँ'कहते हैं। 'पाट्टुँ' का अर्थ है गीत।

ओणम से संबंधित ऐसे बहुत सारे स्थानीय शब्द केरल में प्रचलित है।

2.4.8.2 विषु [1]

'विषु' केरल का दूसरा महत्वपूर्ण त्योहार है। यह त्योहार केरल भर में मनाया जाता है। विषु 'मेडम'यानि चैत्र महीने में मनाने की रीति है। विषु को नए वर्ष के शुभारंभ के रूप में मनाते हैं। इस उत्सव का मुख्य अंग 'कणिकाणल' है। 'कणि' का मतलब है अच्छा शगुन और 'काणल' या 'काणुका' का शाब्दिक अर्थ है देखना अर्थात् अच्छे शगुन के दर्शन। इसके लिए 'कणि' या झांकी तैयार करती है। तरह-तरह के अनाज, आम, कटहल, कनेर का फूल, नया कपडा, सोना, ग्रंथ, देवता की मूर्ति या तस्वीर, आइना, रुपया आदिएक ही जगह पर सजाकर कणि तैयार की जाती है।

2.4.8.2.1 विषुक्कैनीट्टम

विषु के दिन घर के बुजुर्ग लोग बाकी घरवालों को नए कपडे, पैसे आदि भेंट देते हैं इसे 'विषुक्कैनीट्टम' कहते हैं।

2.4.8.3 तिरुवातिरा (आर्द्रा नक्षत्र)

'तिरुवातिरा' का उत्सव केरल का एक प्रसिद्ध त्योहार है। यह आर्य-द्राविड संस्कृति समन्वय को प्रमाणित करता है। आर्य लोग इस दिन को शिव पूजा का विशेष पर्व मनाते हैं। द्राविड लोग इसे देवी पार्वती की पूजा का दिन समझते हैं। केरल के आद्रोत्सव पर तमिल भाषी प्रांत की संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव पाया जाता है।

1. कावालम नारायण पणिक्कर, केरलत्तिले नाडोडी संस्कारम् पृ. 106-108

केरल के आद्रोत्सव का संबंध सती धर्म से भी है। नव-ब्याही युवतियों को यह विशेष वरदान देता है। विवाह के बाद का प्रथम आद्रोत्सव 'फूल की आद्रा' (पूत्तिरुवातिरा) कहलाता है। नव वधुएँ आद्रा के बारह दिन पहले से ही व्रत प्रारंभ करती है। उषा काल में ही गाँवों की स्त्रियाँ जागकर प्रभाती गीत गाने लगती है। थोड़ी देर में ये हाथ में दीपक लिए हुए स्नान करने के लिए नदी या तालाब में जाती है। अब भी संगीत धारा नहीं टूटती। पानी को ऊपरी सतह पर ताल बजाते हुए स्नान करने के बाद ये घर लौटती हैं। इस व्रत का विशेष उत्सव आद्रा के एक दिन पहले अर्थात् मृगशिरा के दिन प्रारंभ होता है। उस दिन रात को स्त्रियाँ शंकर-पार्वती को चढ़ाने का नैवेद्य तैयार करती है। केरल के विशेष फलों और कंद-मूलों का उपयोग इसमें होता है। चुने हुए दस फूलों की अर्चना भी होती है। यह रूढ़ी केरल की हरी भरी खेती और फल वैभव प्रमाणित करती है। पूजा के बाद गीत-नृत्य का कार्यक्रम चलता है। काफी देर तक उल्लास और चहल-पहल का दृश्य रहता है। यह नाच-गाना आद्रा के दिन में भी बड़े मज़े में चलता है। हिंडोलों पर झूलती सुन्दर युवतियों और कन्याओं की झांकी कई घरों के प्रांगणों में दिखाई देती है। लेकिन आजकल यह परंपरा लुप्त होती जा रही है।

इन्हें छोड़कर धार्मिक विचारों पर आधारित कई त्योहार और पर्व केरल में मनाए जाते हैं। जैसे शिवरात्री, नवरात्री, क्रिसमस, ईस्टर, बक्रीद, रमसान आदि।

मन्दिरों, गिरिजाघरों और मस्जिदों में मनाए जानेवाले कई पर्व भी केरल में देखे जा सकते हैं। यद्यपि इनमें काफी समानताएँ पायी जाती है फिर भी प्रत्येक धर्म के लोग अलग नामों से इन्हें पुकारते हैं। हिन्दू धर्मों के पर्व 'उत्सवम्' या 'पूरम्' नाम से जाने जाते हैं तो गिरिजाघरों के पर्व 'पेरुन्नाळ' या 'तिरुन्नाळ' कहलाते हैं। मुसलमान लोग अपने मस्जिदों में त्योहार मनाने के विरुद्ध हैं। लेकिन केरल की विशिष्ट संस्कृति से प्रभावित होकर अपने मस्जिदों में 'चन्दनक्कुटम्' नामक एक पर्व मनाते हैं।

2.4.8.4 चन्दनक्कुटम्

केरल के मस्जिदों में यह पर्व मनाया जाता है। 'चन्दनक्कुटम्' 'चन्दन' और 'कुटम्' के मेल से बना शब्द है, जिनमें कुटम् का अर्थ है घटा। इस पर्व के दौरान लोग अलंकृत घटों में चन्दन मिश्रित पानी सजे हुए हाथियों के ऊपर ले जाते हैं। जुलूस में 'पंचवाद्यम' व अन्य कलाओं का प्रदर्शन भी होता है। तिरुवनन्तपुरम का बीमा मस्जिद, मय्यत्तुमकरा, मणत्तला, चङ्ङनाश्शेरी, एरुमेली, ईरारु पेट्टा आदि जगहों पर 'चन्दनक्कुटम्' का आयोजन किया जाता है।

तीनों धर्मों के लोग पर्व के दिन जुलूस निकालते हैं। हिन्दू और ईसाई लोग देवताओं की मूर्तियाँ लेकर शहर या गाँव का प्रदिक्षण करते हैं। किन्तु मुसलमान हरा झंडा लेकर जुलूस निकालते हैं। हिन्दू

लोग इसे 'घोषयात्रा' या 'एषुन्नळ्ळत्तु' कहते हैं। इसमें हाथी,'पंचवाद्यम्'[1], 'तालप्पोलि'[2] 'मुत्तुक्कुटा'[3] आदि शामिल होते हैं। ईसाई लोग इस जुलूस को 'प्रदक्षिणम्'कहते हैं।

इन्हें छोडकर अन्य राज्यों से यहाँ बसे लोग भी अपनी परंपरा के अनुसार कई प्रकार के त्योहार व पर्व मनाते हैं जैसे दीपावली, होली, दसहरा, पोंगल, मकर संक्रांति, उगादी आदि।

केरल के कुछ मंदिरों व गिरिजाघरों के त्योहार बहुत प्रसिद्ध है। इनमें भाग लेने के लिए दूर-दरार से लोग आते हैं। हिन्दी त्योहारों में प्रमुख हैं - 'तृश्शूर पूरम्', 'अंबलप्पुषा उत्सवम्', 'शबरिमला मकरविळक्कुँ' 'आलुवा शिवरात्री' 'तृक्काकरा अत्तोत्सवम्'आदि। ईसाई पर्व है 'मलयाट्टूर तीर्थयात्रा' 'एटत्वा पेरुन्नाळ','मरामण कन्वेन्शन' 'परुमला पेरुन्नाळ' 'बल्लारपाडम् पेरुन्नाळ' आदि।

`2.5 केरल की कलाएँ

स्थानीयता को रूपायित करने में प्रत्येक प्रदेश की अपनी कलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत भिन्न-भिन्न भाषा बोलनेवाले, तरह-तरह के वस्त्र पहननेवाले, कई प्रकार के भोजन लेनेवाले करोड़ों लोगों की जन्मभूमि है। फिर भी यहाँ की संस्कृति की सबसे बडी विशेषता विविधता और विविधता में विद्यमान अनोखी एकता है। "भौगोलिक, प्राकृतिक,आचार-विचार, वेश-भूषा एवं भाषापरक इन्द्रधनुषी विविधता में भी परिलक्षित इस अनोखी एकता की भावना भारतीय संस्कृति की सबसे अनूठी संपदा है जो समस्त भारतवासियों को एक शमियाने के नीचे खडा कर देती है।"[4] इस प्रकार गर्व के साथ हम अपनी संस्कृति की महत्ता का वर्णन करते हैं लेकिन कुछ सत्यों को अनदेखा करते हैं। वास्तव में भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप है वह अधिक कल्पित है। यथार्थ तो यह है कि विभिन्न राज्यों तथा समाजों की संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को लेकर उभरती हैं। जिसप्रकार सफेद रंग सातों रंगों का समूह होता है उसी प्रकार बाहर से देखनेवालों के लिए भारतीय संस्कृति एक से लगेगी परन्तु जो गहराई से पहचाना जाएगा उसके सामने इन विशेषताओं का भण्डार खुल जाएगा।

भाषापरक भिन्नता संस्कृतियों के बीच अलगाव की खाइयाँ खोद ली हैं। इन खाइयों को पाटने के लिए प्रत्येक राज्य को दूसरे राज्य के निकट आना पडता है। इसके लिए भाषाई आदान-प्रदान की

1. केरल के एक विशेष प्रकार का वाद्य जिसमें पाँच प्रकार के वाद्य - तिमिल,मद्दलम्,इटय्क्क,कोंपुं, इलत्तालम् आदि शामिल है।

2. विशिष्ट का स्वागत करने तथा उत्सव-त्योहारों के मौकों पर फूल तथा दीपों से सजाई गई थालियाँ लेकर लडकियाँ खडी होती है उसे 'तालप्पोलि'कहते हैं

3. विशेष प्रकार की रंगीन छत्तरी

4. डा तंकमणि अम्मा, संस्कृति के स्वर - पृ. 2

ज़रूरत है। जहाँ तक केरल का सवाल है, यहाँ की संस्कृति को रूपायित करने में कलाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। केरल की कलाओं की ऐसी विशेषता है कि ऐतिहासिक परंपरा, भाषिक संरचना, सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि, लोकप्रियता एवं प्रभावोत्पादकता आदि कई बातों की ओर ध्यान देकर ही इनका सृजन हुआ है। इतना ही नहीं यहाँ की ज़्यादातर कलाएँ धार्मिक विचारधाराओं के आधार पर ही टिकी हुई है। इसका कारण यह है कि इन कलाओं का प्रदर्शन मुख्य रूप से मंदिरों के ईर्दगिर्द ही हुआ करता था।

उत्तर-भारत के कला रूपों के समान केरल की कलाएँ भी राम-कृष्ण, रामायण, महाभारत आदि पौराणिक पात्र एवं कथाओं पर आधारित नृत्य, संगीत नाट्य आदि के समन्वय से विकसित हुई है। फिर भी ये भाषिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण केरल की अपनी कलाएँ कहने योग्य हैं।

कलाओं से संबंधित इस प्रकरण के अन्तर्गत केरल के नाट्य, नृत्य, संगीत, लोकनाट्य एवं लोकसाहित्य आदि का उल्लेख किया जा रहा है। तत्संबंधी शब्दों का विश्लेषण यहाँ नहीं किया जाएगा।

विश्लेषण के लिए विभाजन अवश्यंभावि है। यहाँ कलाओं का विवेचन करना है तो सवाल यह उठता है कि कलाओं का विभाजन कैसे संभव है? केरल की विशिष्ट सांस्कृतिक परंपरा को ध्यान में रखते हुए कलाओं पर नज़र रखें तो ज्ञात हो जाएगा कि केरल की कलाओं का संबंध यहाँ के मन्दिरों से है। ज़्यादातर कलाओं का जन्म और विकास मंदिरों के पास ही हुआ। दूसरी दृष्टि से विचार करें तो शास्त्रीय या लोक कलाएँ जैसे विभाजन भी संभव है। यहाँ कलाओं का सामान्य परिचय दिया जा रहा है क्योंकि कलाओं का स्थानीय शब्दावली को रूपायित करने में अप्रतिम स्थान है। कला संबंधी शब्दावली का विश्लेषण तीसरे अध्याय में विशद रूप से किया जाएगा।

2.5.1 मन्दिर से जुडी कलाएँ

2.5.1.1 कथकळि

'कथकळि' केरल का मशहूर कलारूप है जिसकी चर्चा दुनिया भर में होती है। कथकळि विभिन्न कलाओं का समन्वित रूप है। इसमें अभिनय, साहित्य, संगीत और नाट्य मुद्राओं का समन्वय हुआ है। सदियों से लेकर केरल के मन्दिरों तथा राजमहलों में कथकळि का प्रदर्शन होता आया है।

'कथकळि' का शब्दार्थ है कथा की 'कळि' अर्थात् केळि । कळि संस्कृत के केळि अथवा खेल से निष्पन्न है।[1] कथानक या कथा का कथकळि में महत्वपूर्ण स्थान है।

1. डॉ रामचन्द्र देव, कथकळि - कलात्मक साहित्यिक मूल्यांकन - पृ. 1

कथकळि एक स्वतंत्र कला रूप नहीं इसके आविर्भाव से पूर्व यहाँ प्रचलित विभिन्न नृत्य-नृत्यों का प्रभाव कथकळि में दर्शनीय है। 'यात्रकळि' (शास्त्रकळि), 'कूटियाट्टम' 'चाक्यार कूत्तु','दासियाट्टम', 'तेय्यम' 'तिरा' 'पटयणि' 'मोहिनियाट्टम' आदि शास्त्रीय व लोकनाट्यों से कई बातें इसमें मिली हुई हैं[1]

कथकळि में सबसे ज़्यादा प्रभाव डालनेवाले दो नृत्य रूप है 'कृष्णनाट्टम्' और'रामनाट्टम्'। 'कृष्णनाट्टम्'कृष्ण कथा पर आधारित नृत्य नाट्य है। इसमें आनेवाले पात्र मुखौटा धारण करते थे और वाचिक अभिनय नहीं प्रस्तुत करते। पीछे खडे होकर गायक गाता था और नट इसके आधार पर अभिनय प्रस्तुत करता था। 'रामनाट्टम्' वर्तमान कथकळि का प्राग्रूप है। इसको सारी कथाएँ रामायण पर आधारित है। 'रामनाट्टम्' में अभिनय और गायन अभिनेता स्वयं करता था। 'रामनाट्टम' और 'कृष्णनाट्टम्' के अलावा उस समय प्रचलित अन्य नृत्य-नृत्यों से कुछ बातों को स्वीकार कर आवश्यक परिमार्जन और तोड-मरोड के बाद ही आधुनिक कथकळि नृत्य का विकसित रूप सामने आया।

2.5.1.2 चाक्यार कूत्तु [2]

यह केरल का प्राचीन नाट्य रूप है। 'कूत्तु' शब्द की व्युत्पत्ति 'कुर्द' धातु से है। कूत्तु का अर्थ है निराला खेल या तमाशा।'चाक्यार' जाति के लोग ही कूत्तु प्रस्तुत करते थे इसलिए इसका नाम 'चाक्यार कूत्तु' पड गया। प्राचीन मंदिरों के पास 'कूत्तंबलम'[3] होता था जहाँ कूत्तु खेला जाता था। कूत्तु के तीन भेद माने जाते हैं - 'प्रबन्धम् कूत्तु' 'नङ्यार कूत्तु' और 'परक्कुम् कूत्तु'।

2.5.1.3 कूटियाट्टम् [4]

'कूटियाट्टम्'भी कूत्तु के समान एक प्राचीन नाट्य रूप है। 'कूटि' का अर्थ है सम्मिलित या संगठित और 'आट्टम्' का अर्थ नृत्य या अभिनय। कूत्तु में अभिनय और कथावाचन एक ही व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। लेकिन कूटियाट्टम् में एक से अधिक अभिनेता होते हैं। कई व्यक्तियाँ सम्मिलित होकर अभिनय करने के कारण इसका नाम 'कूटियाट्टम्' पडा। चाक्यार ही इसमें अभिनय करते हैं। 'नंपियार' जाति के लोग गायन करते हैं और बाजा भी बजाते हैं। रंगमंच के कई प्रकार की

1. वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरि, कलापठनम् - पृ. 16-17
2. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलॉर निघंटु - पृ. 278
3. वह नाट्यगृह जहाँ कूत्तु खेला जाता था।
4. केरल हिस्टरी एसोसियेशन, केरल चरित्रम्, खण्ड 2 - पृ. 848-850

साज-सजावट की जाती हैं जैसे 'निऽपरा'[1], 'कतिक्कुला'[2], 'तेङ्ङा'[3], 'निलविळक्कु'[4] आदि रखे जाते हैं। 'विदूषकन' या विदूषक का 'कूटियाट्टम्'में महत्वपूर्ण स्थान है।

2.5.1.4 तळ्ळल[5]

स्वयं गीत गाते हुए अभिनय के साथ किए जानेवाला एक विशेष प्रकार का नृत्य है'तुळ्ळल'[6]। 'कथकळि' की अपेक्षा 'तुळ्ळल' साधारण लोगों के बीच अधिक लोकप्रिय हो गया। वास्तव में 'तुळ्ळल' निम्न जातियों की कला है। जब समाज के ऊँची जाति के लोग मंदिरों के इर्दगिर्द बैठकर संस्कृत भाषा पर आधारित'कूत्तु' 'कूटियाट्टम्', 'कथकळि' आदि का आस्वादन करते थे तब पिछडी जातियों के लोगों को मनोरंजन के लिए किसी दूसरी राह ढूँढ लेनी पडी। इसके फलस्वरूप 'तुळ्ळल' का जन्म हुआ। तुळ्ळल प्रस्तुत करनेवाले 'नर्तक' को 'तुळ्ळलकारन' कहते है।

'तळ्ळल' तीन प्रकार के होते हैं - 'शीतंकन तुळ्ळल' 'परयन तुळ्ळल' और 'ओट्टन तुळ्ळल'। एक दृष्टि से देखें तो इन तीनों को अछूत जातियों की ही कला कह सकते हैं। 'शीतंकन' 'पुलय'[7] जाति का द्योतक है। 'परयन तुळ्ळल' नाम से ही जाति का पता चलता है। 'परयन' कृषि और व्यवसाय करनेवाली जाति है जो अछूत समझे जाते थे। 'ओट्टन तुळ्ळल' भी इसी के समान निम्न जाति के प्रस्थान की सूचना मिलती है। डॉ.एस.के.नायर के अनुसार 'कणियान'[8] जाति के 'कोलम तुळ्ळल'[9] में आज भी तुळ्ळल का सार्वजनिक रूप दर्शनीय है। 'ओट्टम' शब्द का अर्थ है भगानेवाला। 'कोलम तुळ्ळल' में किसी पैशाचिक शक्ति को दूर भगाता है।[10]

---

1. धान से भरी बडी मापनी।
2. नारियल किसलय
3. नारियल
4. बडी भारी कई मंजिलोंवाला भद्र दीपक जिसमें तेल में डूबी बत्तियाँ जलाई जाती हैं।
5. नारायण पिषारडी, कला लोकम् - पृ. 85-91
6. केरल हिस्टरी एसोसियेशन, केरल चरित्रम्, खण्ड 2 - पृ. 857
7. केरल की एक निम्न जाति जो खेतों में काम करती थी और अछूत समझी जाती थी।
8. केरल की एक जाति का नाम।
9. आगे इसका विश्लेषण है।
10. एस के नायर, संस्कार केदारम - पृ. 139-140

2.5.1.5 मोहिनियाट्टम् [1]

'मोहिनियाट्टम्' मन्दिर संस्कृति से जन्म लेनेवाला एक विशिष्ट नृत्य है। 'मोहिनी' से मतलब सुन्दर नारी और 'आट्टम्' का अर्थ है नृत्य या अभिनय। इसलिए सुन्दर नारियों का नृत्य इसका संज्ञापरक अर्थ है। यह शृंगार रस प्रधान लास्य नृत्य है। डॉ.के.आर. पिषारडी के अनुसार पांड्य देश से आई हुई कला है 'मोहिनियाट्टम्' । उन्होंने तंचाऊर, मधुरा आदि प्रदेशों में प्रचलित देवदासी नृत्य से इसके संबंध को ढूँढ लेने का प्रयास किया है।[2]

2.5.1.6 भगवतीपाट्टुं [3]

'भगवतीपाट्टुं' से मतलब है देवी या काळी का स्तुतिगायन। ('भगवती' देवी और 'पाट्टुं' गीत) मन्दिरों तथा ब्राह्मण-नायर गृहों में इसका आयोजन किया जाता है। इसके लिए ज़मीन पर हरे, पीले, सफेद तथा काले रंगों से भगवती या देवी का चित्र तैयार करते हैं जिसे मलयालम में 'कळम्' कहते हैं। कळम् 'कुरुत्तोला'[4] से अलंकृत करते हैं। 'कळम्' के सामने बाएँ हाथ पर 'चिलंबुं'[5] पकडकर और दाएँ हाथ पर एक विशेष प्रकार की तलवार हिलाते हुए 'वेळिच्चप्पाडुं' या 'कोमरम्'[6] नृत्य करते है। ऐसा विश्वास है भगवती ही 'कोमरम्' है। चारों ओर खड़े लोग भगवती की स्तुति में गीत गाते हैं। 'कळम्' के सामने खड़े होकर गाने के कारण इसे 'कळमेषुत्तुं पाट्टुं' भी कहते हैं। मतलब है 'कळम' बनाकर गानेवाला गीत।

2.5.1.7 तीयाट्टुं [7]

इस कला रूप के लिए भी 'कळम' बनाना पडता है। 'भगवतीप्पाट्टुं' के समान गीत गाया जाता है और 'वेळिच्चप्पाट्टुं' नाच भी करता है। लेकिन अंत में वह आग में कूदकर नाचने लगता है। 'ती' का अर्थ है आग और 'आट्टुका' से तात्पर्य है चारों ओर फैलाना, पीसना आदि। कोमरम आग में कूदकर यही करता है इसलिए इसका नाम 'तीयाट्टुं' पड गया। कुछ ग्रंथों में तीयाट्टुं के लिए ईश्वर

1. कलामण्डलम् कल्याणीकुट्टियम्मा, मोहिनियाट्टम् - चरित्रवुम् आट्टप्रकारवुम्
2. के आर पिषारडी, नम्मुटे दृश्य कला - पृ. 53-54
3. इटमरुकुँ, केरल संस्कारम् - पृ. 326
4. नारियल के कोमल पत्ते
5. एक प्रकार का आभूषण जो पैरों में बाँधा जाता है।
6. यह देवी का दूत माना जाता है। नृत्य करते समय यह जो भी बोलेगा वह देवी का सन्देश माना जाता है। इसकी निश्चित वेशभूषा भी होती है।
7. वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरी, कला पठनम् - पृ. 8-10

बनकर नाचना ऐसा अर्थ भी बताया गया। केरल में दो प्रकार के तीयाट्टुं है 'अय्यप्पन तीयाट्टुं' और 'भगवती तीयाट्टुं'।

2.5.1.8 कणियार् कळि [1]

इसका आयोजन भी काळी मन्दिरों में होता है। 'कणियार्'[2] जाति के लोगों के द्वारा खेले जाने के कारण इसका नाम 'कणियार् कळि' पड गया। 'कळि' का शब्दार्थ है केली या खेल। यह तोरणों (बंदनवार) से अलंकृत विशाल 'पंतल' (शमियान) के बीच रखे हुए 'निलविळक्कुं' (भद्रदीप) के चारों ओर ताल और संगीत के अनुसार किए जानेवाला नृत्य है।

2.5.1.9 पांपुम् तुळ्ळल [3]

'पांपुम् तुळ्ळल' से मतलब है नाग नृत्य। सर्प देवताओं की पूजा के लिए इसका आयोजन किया जाता है। इसके लिए सबसे पहले ज़मीन पर विभिन्न रंगवाले चूर्णों से बड़े फणवाले नागों का चित्र बनाया जाता है। यह चित्र 'पुळ्ळव' जाति के लोग बनाते हैं। जब 'पुळ्ळोन' (पुळ्ळव जाति का पुरुष) चित्र बनाता है तब उसके अनुचर उसके चारों ओर खडे होकर 'पुळ्ळोक्कुडम्'[4] बजाकर गीत गाते हैं। गीत गायन, दीया आराधना और पूजा के बाद स्त्रियाँ आकर नाग के समान अपने बदन हिलाती-डुलाती हुई नाच करती हैं, इस नृत्य को पांपुम् तुळ्ळल कहते हैं। (तुळ्ळुका - नाचना, पांपुं - साँप)

2.5.1.10 मुटियेर्रुं

'मुटि' का मतलब है मुकुट और 'एर्रुका' का शब्दार्थ है धारण करना। जब युद्ध में किसी की जीत होती है तब मुकुट दिया जाता है। 'मुटियेर्रुं'का मुख्य कथ्य काळी-दारुक युद्ध की कथा है। यह एक वीर रस-प्रधान नाट्यनृत्य है। इसके द्वारा दारुक पर काळी की युद्ध विजय दर्शायी जाती है। मंदिर के अंगण में काळी का चित्र बनाकर ही 'मुटियेर्रुं' खेला जाता है।[5]

---

1. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरी, फोकलोर निघंटु - पृ. 124
2. इसके दो वर्ग है, कुछ लोग ज्योतिष को अपने जीविका के रूप में स्वीकार करनेवाले है तोदूसरे वर्ग मंत्रवाद,'कोलम् तुळ्ळल'जैसे कार्य करनेवाले हैं।
3. के पी नारायण पिषारडी, कलालोकम् पृ. 31
4. एक प्रकार का घटा जिसके मुँह चमडी से बाँधकर बाजे के रूप में इस्तेमाल करते हैं।
5. इटमरुकुं, केरल संस्कारम् - पृ. 527

2.5.1.11 तेय्यम् [1]

'तेय्यम्'उत्तर केरल की धार्मिक अनुष्ठान प्रधान कला है। 'तेय्याट्टम्'या'तिऱयाट्टम्'में नाचनेवाला किसी देवी-देवता का प्रतिरूप बनकर आता है। मुख्य रूप से यह देवी मन्दिरों तथा 'कावों'में प्रस्तुत किया जाता है। 'तेय्याट्टम्'का भाषापरक अर्थ है ईश्वर का नृत्य। 'तेय्यम्' शब्द 'दैवम्'(ईश्वर) का परिवर्तित रूप है। 'तेय्यम्'के लिए एक विशेष प्रकार की रंगीन वेश-भूषा का प्रयोग होता है। इसमें प्रमुख है 'मुटि' या मुकुट।'मुटि' की पाँच मीटर तक की ऊँचाई होती है जो बाँस तथा नारियल के कोमल पत्तों से बनाया जाता है। नृत्य प्रस्तुत करनेवाले को 'वलिय तंपुराट्टी' कहते हैं।

2.5.1.12 पाना या पाना तुळ्ळल [2]

'भगवतिप्पाट्टुँ'और 'तीयाट्टुँ'से इसका गहरा संबंध है। रंगीन वेश धारण करके तरह-तरह के वाद्यों के अनुसार किए जानेवाला एक नृत्यरूप है 'पाना'। कभी कभी एक व्यक्ति या भारी भीड मिलकर यह नृत्य प्रस्तुत करते हैं। इसे एक धार्मिक अनुष्ठान भी कह सकते हैं। इसमें भी काळी-दारुक युद्ध का दर्शाता है। 'पाठकम्' और 'हरिकथा'[3] आदि पाठ्यरूपों का प्रणयन भी मंदिरों के आहातों में होता है।

2.6 केरल की लोकनाट्य परंपरा

फोकलोर (Folklore) अध्ययन आज एक विशिष्ट प्रकार की विज्ञान शाखा बन गई है। इसके अन्तर्गत लोककथाएँ, पुरावृत्त, लोकगीत, लोकनाट्य, कथा गीत, कहावत, पहेली, मुहावरा, लोक परंपरा, लोक-चिकित्सा, आचार-अनुष्ठान,खान-पान, त्योहार पर्व मनोरंजन आदि बहुत सारे विषयों का गहरा अध्ययन होता है।[4] प्रत्येक विषय एक दूसरे से गहरा संबंध भी रखता है। इसलिए केरल के लोकजीवन या लोक-कलाओं का विवेचन भी इसी बात को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

मन्दिर से जुडी हुई कलाओं की अपेक्षा लोकनाट्य परंपरा की दृष्टि से केरल एक संपन्न राज्य है। प्राचीन काल से ही लेकर यहाँ तरह-तरह के नाट्य रूपों का जन्म और विकास हुआ है, जिनका संबंध यहाँ की आम जनता से है। फलस्वरूप सामान्य लोगों के बीच इनका काफी प्रचार हुआ। इन कला रूपों और नृत्य-नृत्यों के कोई आधार ग्रंथ प्राप्त नहीं होते हैं फिर भी मौखिक रूप से इनका हस्तांतरण होता आया है।

---

1. एम वी विष्णु नंपूतिरी, फोकलोर निघंटु - पृ. 335-336
2. वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरी, कला पठनम् - पृ. 07
3. पौराणिक कथाओं को लेकर किए जानेवाले कथावाचन।
4. राघवन पय्यनाडुं, फोकलोर - पृ. 23

लोकनृत्य के मुख्यतः तीन भेद होते हैं -(क) युद्धप्रधान या वीर रस प्रधान, (ख) सामाजिक या सामाजिक क्रिया कलापों से संबंधित और (ग) धार्मिक या अनुष्ठान प्रधान।[1] इनका स्त्री-पुरुषों के नृत्य ऐसा भेद भी सामान्य रूप से कर सकते हैं। लोकनृत्य भी संस्कृति का एक अंग है। इनको भी व्यक्ति और समाज के प्रति अपना दायित्व निभाना ज़रूरी है। आम जनता के लिए लोकनृत्य मनोरंजन का साधन ही नहीं बल्कि जीवन का एक अनिवार्य अंग है। फलतः संस्कृति एवं सामान्य जनजीवन के साथ इनका गहरा संबंध है।

आगे कुछ लोकनृत्यों व लोकनाट्यों का परिचय दिया जा रहा है जिन्हें यहाँ काफी लोकप्रियता मिली है।

2.6.1 चविट्टुं नाटकम्[2]

'चविट्टुं नाटकम्'केरल की एक विशेष प्रकार की नाट्यकला है। कोडुङ्ङल्लूर से लेकर अंबलप्पुषा तक के ईसाई लोगों के बीच इसका काफी प्रचार हुआ। 'चविट्टुका' का अर्थ ज़ोर से पैर रखना, लात मारना आदि है। लकडी से बनाए गए मंच पर ईसाई धर्म पाश्चात्य इतिहास के मशहूर कथाओं को लेकर, ज़ोर से पैर रखकर ही अभिनय करते हैं इसलिए इसे 'चविट्टुं नाटकम्' (नाटक) नाम मिला होगा। इसमें गीतों की प्रधानता है न कि नाटकों के समान संवादों की। इसमें 'कूत्तुं', 'कूटियाट्टम','.कथकळि' आदि केरलीय नाट्यों का तथा यूरोप के 'ओपरा' नृत्य का भी प्रभाव देखा जा सकता है।

2.6.2 तोलपावक्कूत्तुं[3]

मध्यकेरल के 'काळी' मन्दिरों में इसका आयोजन किया जाता है। 'तोल्' शब्द का अर्थ है चमडी। 'पावा' कटपुतली या गुडिया के लिए प्रयुक्त शब्द है और 'कुत्तुं' का अर्थ है खेल या तमाशा। इसलिए इसका संज्ञापरक अर्थ है चमडी से बनायी कटपुत्तलियों का खेल। इसके निर्माण के लिए हिरणों की चमडी इस्तेमाल करते हैं। मुख्य रूप से रामायण पर आधारित कथाएँ खेली जाती है। काळी मन्दिरों के निकट बनाए गए 'कूत्तुंगृह' या 'कूत्तुं माडम' (नाट्य गृहों) में इसका प्रदर्शन होता है।

1. राघवन पय्यनाडुं, फोकलोर - पृ. 212
2. सेबीना राफी, चविट्टु नाटकम्, डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरि,फोकलोर निघंटु - पृ. 277
3. कला लोकम्, नारायण पिषारडी - पृ. 40

2.6.3 कोलकळि [1]

मलबार प्रदेशों में 'कोलकळि' 'कम्पटिक्कळि' या 'कोलटि' का काफी प्रचार है। 'कळरि' अभ्यास के साथ इसका संबंध माना जाता है। आठ से लेकर सोलह तक के लोग इसमें भाग लेते हैं दोनों हाथों में एक फुट लम्बाई की लाठियाँ लेकर बीच में रखे दीप के चारों ओर घूमकर, गीत गाते हुए, लाठियों तालबद्ध रूप से आपस में टकराकर 'कोलकळि' प्रस्तुत करते हैं। इन लाठियों को मलयालम में 'कोल' कहते हैं। 'कोल' या लकडी के खेल होने के कारण इस खेल को 'कोलकळि' कहते हैं।

2.6.4 परिचमुट्टुं कळि [2]

यह भी कोलकळि के समान एक लोकनृत्य है। इसमे लाठी के स्थान पर नकली तलवार और ढ़ाल का प्रयोग होता है। तलवार और ढ़ाल के लिए मलयालम में प्रयुक्त शब्द है 'वाळ'और'परिचा'।'मुट्टुका'का अर्थ है टकराना। 'कळि' से केळि या खेल निष्पन्न होता है। इसमें छः या आठ से लेकर लोग भाग लेते हैं। ईसाई धर्मवालों के बीच इस नृत्य का काफी प्रचार है। मुख्य नर्तक के गीत को दुहराकर ढ़ाल और तलवारों को आपस में टकराकर ताळबद्ध पदविन्यास के साथ 'परिचमुट्टुं कळि' प्रस्तुत करते हैं। कुछ इलाकों के लोग पैरों पर घूँघरू बाँधकर ही इसमें भाग लेते हैं।

2.6.5 तिरुवातिरा कळि या कैकोट्टिक्कळि

ओणम तथा आद्रनक्षत्र जैसे त्योहार पर्वों में इसका आयोजन होता है। इसमें स्त्रियाँ ही भाग लेती है। घर के आंगन में रखे हुए भद्रदीप के चारों ओर घूमकर नाच प्रस्तुत करती है। इसमें भाग लेनेवाली स्त्रियाँ परंपरागत वेश-भूषा - 'मुंडुं' और 'नेर्यत' - ही पहनती हैं। पहले इसकी प्रस्तुति सिर्फ 'तिरुवातिरा' (आद्र नक्षत्र) के दिन में ही होती थी। इसलिए इसका नाम 'तिरुवातिरा कळि' पड गया। इसका दूसरा नाम है 'कैकोट्टिकळि' । 'कैकोट्टुका' से मतलब है तालियाँ बजाना। तालियों के ताल पर खेले जाने के कारण इसे कैकोट्टिकळि भी कहने लगा।[3]

1. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरी, फोकलोर निघंटु - पृ. 250-251
2. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरी, फोकलोर निघंटु - पृ. 409
3. तत्विषयक जानकारी 'त्योहार-पर्व' उपशीर्षक के अन्तर्गत दी गयी है।

2.6.7 मार्गम कळि [1]

यह ईसाई लोगों का नृत्य है। इसमें ईसाई स्त्रियाँ अपने परंपरागत पोशाक धारण कर नाच प्रस्तुत करती हैं। वेश-भूषा में 'मुंडु' (धोती), चट्टा (स्त्रियों का कुरता जैसा वस्त्र), मेक्का मोतिरम (कान के ऊपरी भाग में पहननेवाला अंगूठा जैसा आभूषण) आदि की ज़रूरत है। पहले पुरुष लोग भी इसको प्रस्तुत करते थे। 'मार्गम्' का अर्थ है मार्ग। यहाँ यह विदित हो जाता है कि ईसा की राह पर चलना अर्थात् ईसाई धर्म को अपनाना। धर्मप्रचार भी इस नृत्य का लक्ष्य था। इसमें गानेवाले गीतों का विषय ईसा के ÊÉ¹ªÉ ºÉÆiÉ lÉÉä¨ÉºÉ (St.Thomas) के जीवन से संबंधित घटनाएँ है।

2.6.8 तुंपी तुळ्ळल

'तुंपी' एक विशेष प्रकार की तितली है जो ओणम के मौसम में केरल में पायी जाती है। इसलिए इसे 'ओणत्तुंपी' भी कही जाती है। लेकिन इस नृत्य को 'तुंपी तुळ्ळल' नाम कैसे मिला इसमें सन्देह है। शायद नृत्य करनेवाली युवति तितली के समान सिर हिलाकर, चंचल होकर नाचने के कारण यह नाम मिला होगा। यह मुख्य रूप से ओणम्, आद्रा नक्षत्र आदि के अवसरों पर खेला जाता है।

2.6.9 पुलि कळि या कडुवा कळि [2]

'पुलि' या 'कडुवा' से मतलब है चीता या बाघ। 'पुलि कळि' अर्थात् चीतों का खेल। इसमें मुख्य दो पात्र हैं 'पुलि' (चीता) और 'वेट्टक्कारन' (शिकारी)। बाघ के वेश धारण करनेवाले व्यक्तियों के शरीर पर बाघ का जैसा पीला रंग चढ़ाया जाता है और उस पर काली रेखाएँ, बिंदियाँ भी लगाई जाती है। स्वाभाविकता के लिए बाघ का मुखौटा और पूँछ भी पहनते हैं। शिकारी के हाथ में बंदूक होती है और सर पर टोपी। एक दल में दो चार बाघ और एक शिकारी होते हैं। ऐसे कई झुंड हो सकते हैं। बाघ उछलते-कूदते भागते हैं और गोली खाकर मरने का अभिनय प्रस्तुत करते हैं, कभी कभी शिकारी पर हमला भी करते हैं। शिकारी छिप-छिप कर बाघों के पीछे जाता है, निशाना लगाता है और मौका पाकर गोलियाँ चलाने का अभिनय करता है। वाद्य के रूप में 'चेंडा' का प्रयोग होता है।

2.6.10 ओप्पना [3]

यह मुस्लिम लोगों का विवाह नृत्य है। यह गीत और नृत्य का समन्वित रूप है। लोगों के सामने

1. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरी, फोकलोर निघंटु - पृ. 529
2. वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरी, कलापठनम् - पृ. 60-61
3. वही - पृ. 47-48

'मणवाळन' (दुल्हा) या 'मणवाट्टी' को सभी प्रकार के श्रृंगारों से सजाकर बिठाते हैं। और साथी या सहेलियाँ शृंगार रस प्रधान गीत गाकर उनके चारों ओर नाचते हैं। 'ओप्पना' शब्द 'अफ्ना' अरबी शब्द से बना है। इसमें 'कैकोट्टिकळि' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उत्तर केरल और मलबार में इसका काफी प्रचार है।

इन्हें छोडकर 'कुम्मट्टिक्कळि','काक्कारशी नाटकम्', '.कोतमूरियाट्टम','पोराट्टु नाटकम्' आदि लोकनाट्यों का काफी प्रचार था। लेकिन आजकल इनकी प्रस्तुति बहुत कम हो रही है। अकृत्रिम जीवन दर्शन तथा जीवन की मधुर पवित्रता का परिचय देनेवाले लोक नाट्यों में केरल की अपनी संस्कृति और स्थानीयता झलकती है।

2.7 केरल के लोक गीत और लोक साहित्य

लोकगीत जन मानस की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। ये बहुधा अलिखित रहते हैं और अपनी मौखिक परंपरा द्वारा कई पीढ़ियों तक जीवित रहते हैं। मलयालम के लोक साहित्य मुख्यतः 'पाट्टुं' या गीत शैली में उपलब्ध है।

मलयालम के इन लोकगीतों में 'विल्पाट्टुं' (धनुष गीत), 'ताराट्टुं पाट्टुं'(तराना गीत),'कल्याणप्पाट्टुं'(विवाह गीत), 'ओणप्पाट्टुं'(ओणम् से संबंधित गीत), 'तुंपि पाट्टुं'(तितली गीत),'कृषि पाट्टुं' 'तिरुवातिर पाट्टुं' 'वेलन पाट्टुं'(वेलन नामक एक निम्न जाति विशेष में प्रचलित गीत), 'पुळ्ळुवन पाट्टुं' 'वंचिप्पाट्टुं'(नौका गीत),'वडक्कन पाट्टुं'(उत्तर के गीत),'तोऱ्ऱम पाट्टुं'(तोऱ्ऱम गीत),'शस्ताम् पाट्टु (श्री अय्यप्पन के गीत) आदि भेद देख सकते हैं जिनका संबंध लोकजीवन तथा आचार विचारों से है।

2.7.1 विल्पाट्टुं अथवा विल्लुपाट्टुं [1]

एक ज़माने में केरल के गाँवों में इसका खूब प्रचार था लेकिन आजकल इसका प्रदर्शन बहुत कम हो रहा है। 'विल्पाट्टुं' में 'विल' या 'विल्लुं' का अर्थ है धनुष और पाट्टुं का अर्थ है गीत। इस गीत को प्रस्तुत करने के लिए बड़ा धनुष तैयार करता है जो लोहे या लकडी का हो सकता है। इसकी डोरी में घूँघरू या छोटी-छोटी घंटी आदि बाँधते हैं। कथावाचक और उसके साथी धनुष को सामने रखकर मंच पर बैठते हैं और गाना गाते समय छोटी सी लाठी से डोरी पर टोककर ताल देते हैं।

1. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरी, फोकलोर निघंटु - पृ. 585

2.7.2 ओण पाट्टुं [1]

केरल के लोक गीत का नाम लेते ही 'ओणपाट्टुं'का स्मरण आता है। इनमें महाबली के शासनकालीन समस्त-सुन्दर एवं सुख-वैभवपूर्ण वातावरण का वर्णन मिलता है। ओणम् के अवसर पर किए जानेवाले विभिन्न प्रकार के आचारों के सन्दर्भ में ये गीत गाए जाते हैं।

2.7.3 कृषिप्पाट्टुं

'कृषि पाट्टुं'या कृषि संगीत केरल की निजी संपत्ति है। केरल की प्राकृतिक सुन्दरता, नयनाभिराम सुषमा, खेती-बाड़ी, खेत जोतते कृषक,उनके साथ कार्यरत कृषक नारियाँ आदि की चर्चा कृषि गीतों में होती है। इनमें बीज बोते समय गानेवाले, सिंचाई करते समय गानेवाले, फसल काटते समय गानेवाले,धान पीटते समय गानेवाले गीत प्रमुख है। ये गीत सरल, सरस एवं तालबद्ध होते हैं इसलिए ये गाते हुए काम करते समय मेहनत का बोझ हल्का हो जाता है।

2.7.4 वंचि पाट्टुं

'वंचि पाट्टुं' नाव खेनेवालों के गीत है। 'वंचि' का अर्थ है नौका या नाव। केरल में त्योहार के दिनों में झीलों व नदियों में 'वळ्ळम कळि' (नौका खेल) का आयोजन किया जाता है। नाव खेनेवालों के आयास को कम करने के लिए ये गीत गाए जाते हैं। केरल में नौका गीतों को लेकर एक अलग साहित्यिक विधा भी है जिसे 'वंचि पाट्टुं साहित्यम्' कहते हैं।

2.7.5 वडक्कनपाट्टुं [2]

'वडक्कुं' उत्तर दिशा का सूचक है। उत्तर केरल में काफी प्रचार मिलने के कारण इन्हें 'वडक्कन पाट्टुं' (उत्तर के गीत) नाम दिया गया है। ये वीर पुरुषों की वीरता का वर्णन करनेवाले गीत हैं। इन गीतों में मुख्य रूप से 'तच्चोळि ओतेनन' 'आरोमल चेकवर'[3] जैसे वीर पुरुषों तथा उण्णियार्चा जैसी वीर महिलाओं के सौंदर्य वर्णन, युद्धों का वर्णन आदि को बढ़ा-चढ़ाकर गाए जाते हैं। एक प्रत्येक जाति विशेष के लोग 'उटुक्कुं'[4] नामक बाजा बजाकर गाँव-गाँव जाकर इनका गायन करते थे, जिन्हें

1. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरी, फोकलोर निघंटु - पृ. 111
2. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरी, फोकलोर निघंटु - पृ. 561-562
3. ऐसा कहा जाता है कि ये उत्तर केरल के प्रसिद्ध वीर थे और कळरिप्पय्यरुं में निष्णात थे। तलवार युद्ध में इनकी समकक्ष दूसरा कोई नहीं कर सकता था।
4. एक विशेष प्रकार का छाल वाद्य।

'पाणनार'कहते हैं। इनमें वीर, शृंगार, करुणा, हास्य रस प्रधान गीत शामिल हैं। व्यक्ति वर्णन के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परंपराओं का उल्लेख भी 'वडक्कन पाट्टुं' में मिलता है।

केरल में धार्मिक गीतों की भी सुदीर्घ परंपरा रही है। ऐसे लोकगीतों में धार्मिक विश्वास उपासना पद्धति तथा आराध्य देवताओं का परिचय मिलता है।

2.7.6 तोऱ्ऱम् पाट्टुं [1]

'सर्प नृत्य' 'तीयाट्टुं' 'तेय्यम','तिरा' 'मुटियेऱ्ऱुं','कळमेषुत्तुं' आदि धार्मिक कलाओं के सन्दर्भ में गाए जानेवाले गीतों को कुलमिलाकर 'तोऱ्ऱम् पाट्टुकळ' कहते हैं। इन गीतों में 'तीयाट्टु पाट्टुं'(तीयाट्टु से सम्बद्ध), 'कळमेषुत्तुं पाट्टुं' (कळमेषुत्तुं के सन्दर्भ में) 'शास्ताम् पाट्टुं' या 'अय्यप्पन पाट्टुं' (श्री अय्यप्पन से संबंधित गीत जो शबरिमला तीर्थाटन के संदर्भ में गाए जाते हैं।)'भद्रकाळी स्तुति'आदि प्रमुख हैं।

मलयालम का लोकसाहित्य केरल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का दर्पण है। केरल की निसर्ग-सिद्ध सुषमा, जनता की रीति-रिवाज़ एवं आचार-विचार, कला-बोध, धार्मिक भावना, मनोविनोद शृंगार-वीर-करुणा रसात्मक क्षणों की अनुभूति से परिपूर्ण हमारे लोकगीत यह स्पष्ट सूचित करते हैं कि केरल की संस्कृति उत्कृष्ट दशा में थी।

2.8 केरल की कळरी [2]

'कळरी पयऱ्ऱुं' केरल की स्थानीय आयोधन कला है जो सभी लोगों के लिए आश्चर्य की बात है। जहाँ 'कळरी पयऱ्ऱुं' का प्रशिक्षण दिया जाता है उसे 'कळरी' कहते हैं। कळरी की रक्षा के लिए एक देवता की पूजा ज़रूरी मानते हैं जो 'कळरिपरदेवता' या 'भगवती' नाम से जाना जाता है। प्रत्येक कळरी के एक गुरु होते है उन्हें मलयालम में 'आशान' कहते हैं।

'कळरी पयऱ्ऱुं' के कई पढ़ाव है। छोटी आयु में ही इसका प्रशिक्षण प्रारंभ होना चाहिए। सबसे पहले शरीर को व्यायाम के लिए तैयार किया जाता है। इसके लिए 'उषि़च्चिल'[3] किया जाता है। 'उषि़च्चिल' के बाद तरह-तरह के व्यायाम का पढ़ाव है इसे 'मेय् पयऱ्ऱुं' या 'मेय्त्तारी' (शारीरिक प्रशिक्षण) कहते हैं। इसके बाद 'कोलत्तारी' है। कोलत्तारी में बाँस जैसी लकडियों की लाठियों से वार

1. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरी, केरलत्तिले तोट्टम् पाट्टुकळ
2. पी के गोपाल कृष्णन, केरलत्तिन्टे सांस्कारिक चरित्रम् - पृ. 501
3. एक विशेष प्रकार का तेल लगाकर मालिश करना।

करना सिखाया जाता है। जब कोलत्तारी में दक्ष हो जाता है तभी उसे तलवार, ढ़ाल, गदा, कठार, छुरी, भाल आदि के प्रयोग का प्रशिक्षण मिलता है। किसी हथियार से या खाली हाथों से शत्रु का सामना करने की विधाएँ 'कळरी पयऱ्रुं' में सिखाई जाती हैं।

2.9 अंधविश्वास और अनाचार

मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलगाया है उसके बौद्धिक विकास ने। बौद्धिक विकास की सीढ़ी पर चढकर ही वह आज का प्रकृति-विजेता, तर्क-परायण, विज्ञान कुशल बन सका है। प्रारंभ में उसका अदृश्य शक्तियों पर अटूट विश्वास था जिसके पीछे कोई तर्क नहीं था। वह सोचता था कि उसके क्रिया-कलाप तथा भूत-भविष्य-वर्तमान अदृश्य शक्तियों (भगवान, भूत-प्रेत, देवी-देवता) से नियंत्रित होते हैं। यह विश्वास मृत्यु तक उसके साथ रहा। इन बातों से सम्बद्ध विभिन्न प्रकार के अंधविश्वास उसकी प्राचीन संस्कृति के अभिन्न अंग थे और अनेक देशों में तो आज भी। किसी भी संस्कृति के जितने ही पुराने रूप का अध्ययन-विश्लेषण किया जाय वह इन अंधविश्वासों से उतनी ही अधिक आक्रांत मिलेगी। केरल की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। यहाँ भी समय की गति के अनुसार तरह-तरह के अनाचार और अंधविश्वास पनपे और फैले। आगे ऐसे कुछ कार्यों का उल्लेख किया जा रहा है।

2.9.1 त्वचा का रंग

पुराने ज़माने से लेकर गौर वर्णवालों को श्रेष्ठ और काले रंगवालों को हीन समझने की रीति यहाँ थी। इसलिए होगा काले रंगवाले'पुलयर','पऱयऱ','मण्णान'आदि जाति के लोगों को गुलामों के समान देखने लगे। अंग्रेज़ी शासन काल में यह वर्ण भेद और प्रबल हो गया। किन्तु शिक्षा के प्रचार के फलस्वरूप प्रत्यक्ष रूप से केरल समाज में यह भेद भाव लुप्त हो गया लेकिन परोक्ष रूप सर्वव्याप्त है

2.9.2 स्मार्त्त विचारम्[1]

यदि किसी ब्राह्मण स्त्री के ऊपर व्यभिचार का आरोप लगाया जाता है तो उसके ऊपर मुकदमा चलाने की प्रणाली 'स्मार्त्त विचारम्' नाम से जानी जाती है। यदि किसी ब्राह्मण स्त्री के ऊपर अनैतिक संबंध का आरोप होता है तो प्रान्तीय शासक को सूचना देने के बाद अपनी जाति के वरिष्ठ एवं बुजुर्ग लोगों (स्मार्त्तन)[2] की ओर जाँच पड़ताल एवं पूछताछ होती है। 'स्मार्त्तविचारम्' के बाद यदि आरोप सच निकलता है तो पुरुष और स्त्री दोनों को समाज से भ्रष्ट किया जाता था।

1. इटमरुकुं, केरल संस्कारम् - पृ. 534-540
2. मुकदमा चलाने के लिए नियुक्त।

2.9.3 मण्णाप्पेडी और पुलप्पेडी

केरल की 'नायर' स्त्रियों को भयभीत करानेवाले अनाचार है'मण्णाप्पेडी'और 'पुलप्पेडी'। यदि 'पुलय' 'परय' या 'मण्णान' जाति के पुरुष एकाध महीनों में नायर जाति के औरतों का छूते हैं तो स्त्रियों को उनके साथ जाना पडता था। किसी निम्न जाति के पुरुष से छू जाने पर स्त्री अपने घर-परिवार को छोडकर भाग जाती थी ताकि परिवार के अन्य सदस्य भ्रष्ट न हो जाए। यह एक क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार माना जाता था इसलिए 1696 ई. में वीर केरलवर्मा नामक शासक ने इसे समाप्त कर दिया।

2.9.4 कैमुक्कुं [1]

'कैमुक्का' का शाब्दिक अर्थ हाथ डुबाना, हाथ डालना आदि। खून, व्यभिचार आदि के आरोप लगनेवाले ब्राह्मणों को दिए जानेवाला दण्ड था 'कैमुक्कल' इसके अनुसार आरोपित व्यक्ति को उबलते घी में हाथ डालना पडता था। यदि जलन महसूस करेगा या हाथ जलेगा तो उसे दोषी घोषित करने की रीति थी। यदि नहीं जले तो उसे बिना दण्ड के छोड देता था। यह भी एक अपरिष्कृत आचार माना जाता था। इसके समान दूसरा एक अनाचार है हाथ से गरम सीसा उठाना। दूसरी एक रीति है मुजरिम को मगरमच्छों से भरे तालाबों में तैरवाना। मगरमच्छों के द्वारा न पकडे जाने पर सूचित होता था वह निर्दोष है। ऐसे अवसरों पर आरोपित व्यक्तियों को आदर के साथ छोड देता था। इन प्रथाओं को तिरुवतांकूर महाराजा स्वाति तिरुनाळ ने समाप्त कर दिया।

2.9.5 मंत्रवाद

मंत्रवाद और मंत्रवादी शब्द सुनते ही सभी भयचकित हो जाते हैं। केरलवासियों के जीवन में मंत्रवाद का महत्त्वपूर्ण स्थान आज भी है। पचास साल पहले तक बीमारी की इलाज करने के बजाय मंत्रवाद से ठीक करने की प्रथा थी। छद्म वेश धारण करना, आकाश में उड़ना, पानी के ऊपर से चलना आदि कई अमानुषिक कार्य मंत्रवादियों के द्वारा होते थे। साँपों का विष उतारना, भयंकर बीमारियों को ठीक करना, भूत-प्रेतों से बचाव, मृत आत्माओं को मुक्ति दिलाना, भविष्य को उज्ज्वल बनाना, खोई हुई चीज़ों को ढूँढ निकालना आदि मंत्रवादियों के कार्य माने जाते थे। ऐसी धारणा थी कि मंत्रवादी लोग किसी उपास्य देवता की मदद और कृपा से ही सारे कार्य करते थे। मंत्रवाद से सम्बद्ध एक कथा साहित्य शाखा का विकास भी केरल में हुआ। 'सूर्यकालडी' तथा 'कोण्डमरुकुं' आदि नंपूतिरि परिवार मंत्रवाद के लिए विख्यात है। केरल के मंत्रवादियों में कडमऱ्ऱत्तच्चन (कडमऱ्ऱत्तुं कत्तनार - कडमट्टम नामक जगह का

1. इटमरुकुं, केरल संस्कारम् पृ. 544-548

एक ईसाई पादिरी) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आज के इस आधुनिक युग में मंत्रवादों पर विश्वास करनेवालों की संख्या कम नहीं है।

2.10 लोकोक्तियाँ

लोकोक्तियों में जीवन-जगत् के किसी न किसी पक्ष की अनूठी झलक है। इसलिए लोक साहित्य का अध्ययन इस मौखिक साहित्य के बिना अधूरा ही है। लोकोक्तियों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। मानव जीवन की कोई भी ऐसी गतिविधि नहीं, जो इसके चक्र के बाहर हो। इनमें जीवन के सभी सुख-दुख, हर्ष-विषाद, रुचि व ग्लानि विविध वर्णों में समाहित होकर मिलते हैं। जातियों के आचार-विचार, रीति-परंपरा आदि की अभिव्यंजना में लोकोक्तियों ने सदैव ही सहयोग दिया है। इनमें से यह स्पष्ट सूचना मिलती है कि देश भेद के आवरण के पीछे मानव-मानव एक है, मानव प्रवृत्ति सर्वत्र एक है। लोकोक्तियों में सामान्यतः समास-प्रवृत्ति प्रधान है। इनके रचयिताओं ने गागर में सागर भरने का अथक प्रयास किया है। ये यद्यपि देखने में छोटी होती हैं, पर उनमें विशाल भावराशी सिमटी रहती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं - "लोकोक्तियाँ जन समूह के बिखरे हुए रत्न है। किसने ये रत्न बिखेरे, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु बहुत संभव है कि कहावतों का प्रथम उत्स मनुष्य के मन में तभी उत्सरित हुआ होगा, जब उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति अपने सरस वेग के साथ सहज भाषा में निःसृत हुई होगी। एकान्त में बैठकर कहावतों का निर्माण नहीं किया गया किन्तु जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताओं ने कहावतों को जन्म दिया है। किताबों की आँखों से देखनेवाले निरे बुद्धि विलासी व्यक्ति कहावतों के निर्माता नहीं थे, कहावतों के रचयिता जीवन के दृष्टा थे।"[1]

जहाँ तक मलयालम कहावतों का सवाल है, कहावतों का एक विशाल भण्डार मलयालम में मिलता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े हुए विविध प्रकार की लोकोक्तियों से मलयालम संपन्न है। ये लोकोक्तियाँ केरल की स्थानीय विशेषताओं के प्रभाव से गढ़े हुए अनमोल हीरे कह सकते हैं। कहावत या लोकोक्ति के लिए मलयालम में प्रचलित शब्द है 'पषंचोल्लुँ' , इसमें 'पष' या 'पषय' का संज्ञापरक अर्थ है पुराना या प्राचीन और 'चोल्'या 'चोल्लुँ' का अर्थ कहना या कथन। तो वाक्यांश का अर्थ निकलता है पौराणिक कथन, प्राचीन कथन जो हिन्दी लोकोक्ति या कहावत से मिलता जुलता है।

पहले ही बताया जा चुका है कि कहावतों का क्षेत्र बहुत विपुल है। इनको प्रमुख रूप से निम्नलिखित भेदों में वर्गीकृत किया जा सकता है - पारिवारिक, व्यावसायिक, कलात्मक, शारीरिक अंग संबंधी पशु-पक्षी संबंधी, कथा संबंधी, मनोरंजन प्रधान, शारीरिक अवस्थाओं से संबंधित, खान-पान और

1. कन्हैयालाल सहल, राजस्थानी कहावतें - एक अध्ययन - पृ. 38
2. प्रो पी.सी. कर्ता, पषंचोल प्रपंचम् - पृ. 11-13

स्वास्थ्य संबंधी आदि।[2]

केरल की स्थानीय शब्दावली में उपर्युक्त सभी वर्गों के सैकड़ों कहावतें उपलब्ध है और यह हमारे अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग भी है। इस संबंध में विस्तार से विश्लेषण चौथे अध्याय में किया जाएगा।

2.11 मुहावरे

लोकोक्तियों के समान मुहावरों का प्रयोग भी दैनिक जीवन में निरंतर होता है। लोकोक्तियों में एक पूर्ण सत्य के विचार की पूरी अभिव्यक्ति होती है। वह इसी भाषा का अंश नहीं बनता वरन् एक स्वतंत्र वाक्य होता है। मुहावरों की लाक्षणिक शक्ति से भाषा में संयम् आता है और अनावश्यक विस्तार दूर हो जाता है।

मुहावरा किसी भाषा या बोली में प्रयुक्त होनेवाले अपूर्ण वाक्य खण्ड है, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज और रोचक बना लेते हैं। मुहावरा लोकोक्ति के समान अपने में पूर्ण नहीं होता। वह वाक्यांश होता है और उसकी सार्थकता वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही होता है। उसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता। यह सदैव अपने मूल रूप में प्रयुक्त होता है। शब्दों में परिवर्तन करने से अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बहुत कौशल से देखा, समझा और बार-बार उनका अनुभव किया, उन्हीं को शब्दों में बाँधा है, यही मुहावरे कहलाते हैं।

भाषा शास्त्रियों का कहना है कि मुहावरों की उत्पत्ति का रहस्य है, मानव की प्रयत्न लाघव प्रियता। वह छोटो से शब्दों में अपने को जम करना चाहता है। मनुष्य स्वभाव से रहस्यात्मकताप्रिय भी है। वह कुछ गोपनीय कहने का आदी भी है। इसी से साधारण शब्दों का प्रयोग न करके एक भिन्न किन्तु विशिष्ट प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है। मुहावरे सदैव गद्यात्मक होते हैं तथा बहुत लघु होते हैं।

इनका इतिहास भाषा के ही समान प्राचीन है। मुहावरों का प्रयोग बहुत प्राचीन है। हज़ारों वर्षों से दैनिक जीवन में बार बार प्रयुक्त होते रहने से वह हमारे पक्के साथी बन गया है। मानव जीवन से संबंधित किसी भी पक्ष की उपेक्षा इसमें नहीं है।

मुहावरों में जन-जीवन की स्पष्ट और सत्य झाँकी देखने को मिलती है। इनमें सामाजिक प्रथाओं, रूढ़ियों तथा परंपराओं का उल्लेख भी पाया जाता है। प्रत्येक संस्कृति के दर्शन भी इसमें मिलते हैं तथा इनके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों का भी पता चलता है। इनके अलावा इनमें पौराणिक कथाएँ, स्त्रियों के आचार-विचार, जातिगत विशेषताएँ तथा शकुन संबंधी धारणाएँ भी मिल जाती है। व्यंग्य वाणी के लिए भी इससे अधिक अच्छा शस्त्र मिलना संभव नही है। मुहावरों का अध्ययन करते समय संस्कारगत प्रथाओं

का उल्लेख होता है।

केरल की विशिष्ट भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने जितना प्रभाव मलयालम भाषा में डाला है उतना या उससे अधिक असर यहाँ के मुहावरों के ऊपर छोडा है। यहाँ के जड-चेतन सभी वस्तुओं से संबंधित मुहावरों का बृहत संकलन मलयालम की निजी संपत्ति है। प्रत्येक क्षेत्र से मुहावरों को चुनकर उनका विश्लेषण करते समय हमें लगेगा कि कुछ मुहावरों में संपूर्ण भारतीयता झलकती है तो कुछों में केरल की स्थानीयता प्रतिबिंबित होती है। यहाँ का जनजीवन, कला एवं लोक कलाएँ, जाति व्यवस्था, त्योहार-पर्व, वेश-भूषा, खान-पान आदि से संबंधित मुहावरे बहुतायत में हैं।

2.12 पहेलियाँ

मानव की जिज्ञासा प्रवृत्ति के साथ पहेलियाँ भी जन्म लिया होगा। सभ्यता के विकास के साथ साथ मनुष्य में प्रकृति और विकास के तत्त्वों को जानने की जिज्ञासा निरंतर बलवत्ती होती गयी है और आज भी अपने उसी रूप में हैं। जिन वस्तुओं के गुण, नाम आदि से कोई परिचित नहीं है, वह निश्चय ही उसके आकार या रंग की बात कहकर जानना चाहेगा कि वह क्या है ? जिज्ञासा की इस प्रक्रिया का नाम पहेलियाँ पड गया। पहेलियों का इतिहास अति प्राचीन है। वेदों में भी इसका स्वरूप विद्यमान है। संस्कृत साहित्य में यत्र-तत्र इसके दर्शन होते हैं। वास्तव में पुराने समय में भी बुद्धि-परीक्षा के कई तरीके थे जिनमें पहेलियाँ भी है। एक देश का राजा दूसरे देश के राजा के पास पहेलियों के द्वारा सन्देश भेजता था और दूसरी ओर से आनेवाला उत्तर भी राजा की बुद्धि परीक्षा का द्योतक माना जाता था। इस तरह की पहेलियों में कुछ सार्थक शब्दों के साथ कुछ कुछ निरर्थक शब्द होते हैं। ये शब्द किसी वस्तु के भाव मात्र की ओर संकेत करते हैं। भाव को समझकर उसका अर्थ ग्रहण करना और उसका उत्तर पहेलियों के द्वारा देना कला तथा बुद्धिमत्ता का संगम है। इन पहेलियों के सूरज, चाँद, तारे, आसमान, कुआँ, नारियल, दिया, सूई, धागा, गाय,भैंस, घोडा, हिरण, मिर्च, मूली, वर्षा, पुस्तक, महीना, ताला, छाता, लाठी, रस्सी आदि अनेकानेक विषय होते हैं।[1]

संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं में पहेलियों का भरमार है। जहाँ तक पहेलियों का सवाल है प्रांतीयता या प्रादेशिकता के आधार पर इनमें पर्याप्त अन्तर पाया जाता है लेकिन मुहावरों और लोकोक्तियों की तुलना में यह अन्तर गौण माना जा सकता है। अन्य भारतीय भाषाओं के समान मलयालम में भी पहेलियाँ बहुतायत में है। यदि हम मलयालम की पहेलियों का विश्लेषण करेंगे तो उनमें

1. दिनकर प्रसाद, लोकसाहित्य और संस्कृति - पृ. 121

निम्नलिखित भेद पाए जाएँगे।

1. पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तु संबंधी पहेलियाँ
2. फल-फूल एवं पेड-पौधे संबंधी पहेलियाँ
3. प्रकृति तथा प्राकृतिक घटनाएँ संबंधी पहेलियाँ
4. शरीर एवं आहार संबंधी पहेलियाँ
5. घर-गृहस्थी, खिलौने आदि संबंधी पहेलियाँ
6. विज्ञान, गणित, इतिहास, पुराण संबंधी पहेलियाँ
7. अन्य पहेलियाँ

मलयालम भाषा को समृद्ध बनाने में तथा केरल की स्थानीय विशेषताओं को उजागर करने में यहाँ की पहेलियों का भी अनुशंकिक भूमिका रही है। इनमें से यहाँ की विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन का परिचय भी मिलता है। लोक साहित्य की जिन विधाओं ने शिष्ट साहित्य को कई रूपों में प्रभावित किया है उनमें यहाँ की पहेली भी एक है। पहेलियों के आधार पर किसी भी समुदाय के दैनंदिन जीवन और विश्वासों का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इसी दृष्टि से मलयालम की पहेलियों का महत्त्व लोक साहित्य की किसी भी विधा से गौण नहीं है। इसमें जिन विषयों का विवरण मिलता है, वे समुदाय को जीवित संस्कृति से गृहीत हुए हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट साबित होता है कि केरल में एक विशिष्ट प्रकार की स्थानीय शब्दावली का रूपायन हुआ है जो हिन्दी प्रदेशों से सर्वथा भिन्न है। स्थानीय शब्दावली के सृजन में भूगोल, समाज, जाति व्यवस्था, परंपरा, कला, संस्कृति, काम-काज आदि अनेक तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस अध्याय में स्थानीय शब्दावली का ऐसा विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है कि जिसके माध्यम से केरलीय संस्कृति का सामान्य परिचय मिल जाए। प्रत्येक क्षेत्र के शब्द भण्डार का गहरा अध्ययन शोधार्थी का लक्ष्या नहीं था, बल्कि स्थानीय शब्दावली का तात्पर्य क्या है? उसका रूपायन कैसे होता है? केरल की स्थानीय शब्दावली, उसकी विशेषताएँ, उसके अंग आदि का विश्लेषण प्रस्तुत करना था। यहाँ जिन कलाओं का प्रचार है उनका आविर्भाव एवं विकास विशिष्ट केरलीय संस्कृति के आधार पर हुआ है। इसलिए कलाओं का अध्ययन भी संस्कृति एवं स्थानीयता को नज़र में रखकर ही किया जाना चाहिए। तब अनुवाद संबंधी समस्याएँ निश्चय ही जटिल तो होंगी।

तीसरा अध्याय

कला संबंधी शब्दों के अनुवाद की समस्याएँ

तीसरा अध्याय

कला संबंधी शब्दों के अनुवाद की समस्याएँ

कला क्या है ? इसका स्पष्ट एवं तर्कसंगत उत्तर मिलना आसान नही है। विभिन्न युगों में भिन्न-भिन्न आचार्यों ने कला की परिभाषा देने का प्रयास किया है और ये परिभाषाएँ कला संबंधी अनेक दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त करती हैं। अंग्रेज़ी के 'आर्ट' (Art) शब्द लैटिन शब्द 'आर्स' (Ars) से बना हुआ है जिसका अर्थ है निपुणता, कौशल आदि [1]। 'द ह्वेरी एनसाइक्लोपीडिया' के अनुसार मानव कल्पना को अभिव्यक्त करनेवाली अथवा उसकी भावात्मकता को अनूदित करनेवाली सृजनात्मक उपलब्धि ही कला है।[2] राण्डम शब्दकोश में कला की परिभाषा यों दी गई है - कला सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धाँतों के आधार पर की जानेवाली कोई भी सुन्दर, आकर्षक और असाधारण गुणवत्ता-सृजन या अभिव्यक्ति है।[3] उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि कला सामान्य से भिन्न, कल्पना जन्य भावात्मक अभिव्यक्ति है। यद्यपि कल्पना जन्य है तथापि यथार्थ से संबंध रखनेवाली है इसलिए ही वे तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से ओतप्रोत भी रहती है। समय और समाज के साथ एकरसता लाने में ही कला की सार्थकता निहित है।

प्राचीन भारत की कलाओं के विकास पर धर्म का बडा भारी प्रभाव है। कला के प्राचीनतम नमूनों पर धर्म की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। कला का उपयोग धर्म के तत्त्वों को समझाने के लिए किया जाता था। कला का प्रदर्शन मंदिरों, देवताओं की मूर्तियों, पत्थर या काष्ठ पर खुदे हुए धार्मिक कथा के चित्रों आदि के द्वारा किया जाता था। भारतीय कला के इतिहास और विकास को समझाने के लिए यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए। प्राचीन भारत में इन कलाओं का विशेष रूप से विकास हुआ था।[4]

कला एक सामाजिक वास्तविकता के रूप में समाज के विकास की अभिव्यक्ति है। श्रम के विभाजन के आधार पर निर्मित होनेवाले प्रस्थिति समूहों में कलाकारों का भी एक समूह विकसित हुआ है। जो अपने कला माध्यमों से खुद को अभिव्यक्त करता है व तत्कालीन समाज के सामाजिक संबंधों के स्वरूप को कला रूपों में व्यक्त करता है। अतः कलाकार अपनी मानसिक योग्यताओं के आधार पर न सिर्फ समाज की सौंदर्यात्मक अनुभूति की मूल आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है बल्कि समाज की

1. विश्वविज्ञान कोश, खंड ३ - पृ. 779
2. गोर्डन स्टॉहेल, द ह्वेरी एनसाइक्लोपीडिया - पृ. 84
3. द राण्डम हाउस ऑफ डिक्शनरी ऑफ इंग्लीश लॅग्वेज - पृ. 84
4. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति - पृ. 193

प्रकृति एवं उसके भविष्य की संभावनाओं को भी प्रस्तुत करता है। स्वाभाविक है कि इस स्थिति में कला को समाज की सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतिरूप के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है।[1]

कला का सामाजिक यथार्थ से घनिष्ठ संबंध होता है। हमारी विचारधारा, संरचनात्मक शक्ति, एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था में कला संबंधी उपलब्धियाँ, भौतिक उत्पादन एवं कला तथा सामाजिक निरंतरता का अंग है। कला पूर्व स्थापित लुंज समाज व्यवस्था का समर्थन भी कर सकती है और उसके विरोध में सटीक रूपों को प्रस्तुत भी कर सकती है। कलाचेतना हमारे सांस्कृतिक लक्ष्यों से भी घनिष्ठ संबंध है। लक्ष्यों की एकरूपता अथवा उनके बिखराव को प्रस्तुत कर कला समाज में परिवर्तनकारी तत्त्वों का विकास भी करती है।

केरल को अन्य भारतीय प्रांतों से अलग करनेवाली विशेषताओं में कला भी एक है। जैसे कि पहले ही विदित है, मनुष्य जिन परिस्थितियों के बीच में रहता है उन्हीं के आधार पर उसका रूपायन होता है और शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक विकास भी होता है। जहाँ तक केरल का सवाल है, प्राकृतिक सुन्दरता एवं भौगोलिक उपादानों की बहुलता ने यहाँ की जनता को एक स्वच्छ एवं सुन्दर जीवन बिताने की भूमिका तैयार की फलतः उन्होंने शारीरिक विकास के साथ उनके बौद्धिक एवं मानसिक विकास की राहें खोजने का प्रयास किया। तब मनोरंजन एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य बन गया। मात्र मनोरंजन महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि तमोगुणों का अन्त करनेवाले सत् गुणों के द्वारा मनोरंजन पाना एक पहेली बन गया तब ऐसी कलाओं का निर्माण एक अवश्यंभावी उत्तर के रूप में सामने आया।

केरल की विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति पर नज़र रखकर केरल की कलाओं का विश्लेषण करें तो एक बात साफ नज़र आएगी कि यहाँ की कलाओं के रूपायन में यहाँ के मंदिरों तथा धार्मिक विचारधाराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कई प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों ने कला और लोक कलाओं का रूप धारण किया है। केरल की कलाओं की ऐसी विशेषता है कि ऐतिहासिक परंपरा, भाषिक संरचना, सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि, लोकप्रियता और प्रभावोत्पादकता आदि कई बातों की ओर ध्यान देकर ही इन कलाओं का निर्माण हुआ है इसलिए इनका विश्लेषण भी उपर्युक्त बातों पर बल देकर ही किया जाना चाहिए। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ की कलाओं में धार्मिक भावना का प्रभाव सबसे अधिक है। केरल की शास्त्रीय कलाओं या मंदिर से जुडी हुई कलाओं का आधार राम, कृष्ण, काली जैसे देवी-देवताओं की कहानियाँ हैं और इन कलाओं का प्रदर्शन भी मंदिरों तथा मंदिरों के इर्दगिर्द तैयार किए गए विशेष प्रकार के नाट्य-गृहों में होता था, तो धर्म का प्रभाव भी उनमें पड़ना स्वाभाविक था। जाति-भेद का प्रभाव भी यहाँ की कलाओं की खासियत रही है। वर्ग गत भिन्नता के

1. राजीव गुप्त, कला की सामाजिकता (निबंध) संपादक - रामानंद राठी - कला के सरोकार - पृ. 22-26

अनुसार कलाओं की प्रस्तुति में भी पर्याप्त अन्तर है। समाज के उच्च वर्ग 'कथकळि' 'कूटियाट्टम', 'रामनाट्टम' 'कृष्णनाट्टम' 'कूत्तु'आदि कलाओं के आस्वादक होते थे तो'परयर कळि' 'भगवतिपाट्टु','तीयाट्टु' 'पाँपु तुळ्ळल' आदि निम्न वर्ग के लोग प्रस्तुत करते थे। कहने का मतलब है कि कलाओं की प्रस्तुति एवं आस्वादन में भी जातिगत भिन्नता दृष्टिगोचर है। यद्यपि पंडितों ने कलाओं का विभाजन विभिन्न ढंग से किया, जैसेकि उपयोगी कलाएँ, ललित कलाएँ आदि। लेकिन कला संबंधी शब्दावली के विश्लेषण के लिए ऐसे विभाजनों को अप्रासंगिक मानते हुए निम्नलिखित विभाजन अपनाने का प्रयास किया जा रहा हैं

क. मंदिर से जुडी हुई कलाएँ व शास्त्रीय कलाएँ

ख. अनुष्ठान प्रधान कलाएँ

ग. लोकनाट्य व लोकनृत्य

घ. लोक संगीत व लोक साहित्य

ङ. मुहावरे व लोकोक्तियाँ

च. पहेलियाँ

भाषापरक भिन्नता संस्कृतियों के बीच अलगाव की खाइयाँ खोद ली है। इन खाइयों को पाटने के लिए प्रत्येक राज्य को दूसरे के निकट आना पडता है। इसके लिए भाषाई आदान-प्रदान की ज़रूरत है। यह तभी संभव है जब प्रत्येक भाषा की शब्दावली एवं उसके प्रयोग से दूसरे परिचित हो जाएं। इसी बात को ध्यान में रखकर ही उपर्युक्त उपभेदों को लेकर उनसे जुडी हुई शब्दावली का विश्लेषण करना है। यहाँ शब्दों का चयन उनके प्रचलन और प्रयोग को दृष्टि में रखकर किया गया है। विश्लेषण के तहत समानार्थी हिन्दी शब्द प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है और जहाँ समानार्थी शब्द उपलब्ध नहीं है तो उसकी सूचना भी दी गई है।

जहाँ तक विभाजन और विश्लेषण का सवाल है कला संबंधी शब्दावली के अन्तर्गत लोक नृत्य, लोकनाट्य, लोकसाहित्य, मुहावरे व लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ आदि से संबंधित शब्दावली का विश्लेषण भी अति आवश्यक है। लेकिन केरल की विशिष्ट कला परंपरा की ओर ध्यान दे तो मालूम हो जाएगा कि इन सभी का अनुशीलन एक ही अध्याय में करना अत्यंत कठिन कार्य है। इसलिए इस अध्याय में सिर्फ मंदिर से जुडी हुई कलाओं, शास्त्रीय कलाओं (Classical Art forms) तथा अनुष्ठान प्रधान कलाओं (Ritual Art forms) का विश्लेषण किया जा रहा है। आगामी अध्याय में लोक सांस्कृतिक शब्दावली के विवेचन के तहत शेष लोक कलाओं व लोक साहित्य का विश्लेषण किया जाएगा।

3.1 केरल के वाद्य उपकरण

केरल की कलाओं से जुडी हुई शब्दावली के विश्लेषण के पहले यहाँ के वाद्यों से परिचित होना बहुत ज़रूरी है क्योंकि इन कलाओं की प्रस्तुति में किसी न किसी प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता है। इन वाद्यों में प्रांतीयता या कला की शास्त्रीयता के आधार पर पर्याप्त अन्तर भी देखा जा सकता है। कुछ कलाओं के लिए विशेष प्रकार के वाद्य अनिवार्य माने जाते हैं। प्रत्येक कला के विश्लेषण के अवसर पर वाद्य संबंधी विवरण दुहराते रहना आसान नहीं है इसलिए सबसे पहले वाद्यों का विश्लेषण किया जा रहा है।

संगीत ध्वनि बनानेवाले उपकरणों को वाद्य कहते हैं। उतार-चढाव के साथ शब्द तरंगों की सृष्टि करने से वाद्यों की ध्वनि आनंददायक बन जाती है। तंत्रि (तन्तु), समाघात, घन तथा हवा की सहायता से बचानेवाले (वायु वाद्य) आदि चार प्रकार के वाद्य मिलते हैं। कसी गई डोरी या तार में हाथ या किसी उपकरण से बजानेवाले वाद्यों को तंत्रीवाद्य या तंतुवाद्य कहते हैं। डोरी के आकार, उसकी लंबाई या कसावट के अनुसार ध्वनि में परिवर्तन लाया जा सकता है। उदा - वीणा, वयलिन। घडा या लकडी व लोहे के खूँट के मुँह को चमडी से बाँधकर बजानेवाले वाद्यों को समाघात (चर्मवाद्य) (Percussion) वाद्य कहते हैं। इन्हें हाथ या लकडी से बजाते समय कंपन के कारण ध्वनि उत्पन्न होती है। चेंडा, मद्दळम्, तुटि, तिमिला आदि इस श्रेणी में आते हैं। इनके अलावा गोद में रखकर बजानेवाले (मृदङ्गम) हाथ में लेकर या उठाकर बजानेवाले (चेंडा, मद्दलम्, इटक्का) ज़मीन पर रखकर बजानेवाले आदि तीन भेद हैं। काँस जैसे धातुओं से बनाकर परस्पर टकराकर या किसी ओर चीज़ से बजानेवाले वाद्यों को घनवाद्य कहते हैं। उदाः इलत्ताळम, चेङ्ङला आदि। मुँह से फूँककर या अन्य प्रकार से हवा देकर बजानेवाले वाद्यों को वायु वाद्य कहते हैं उदाः- बांसुरी, हार्मोनियम्

वाद्यों के संबंध में चर्चा वैदिक काल से ही प्रारंभ हुई थी। ब्रहदारण्यम् जैसे उपनिषदों में तथा महाभारत, रामायण जैसे पुराणों में भी वाद्यों के संबंध में सूचनाएँ मिलती हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के छठवीं अध्याय तथा अठाईस से तैंतीस तक के छह अध्यायों में भी वाद्यों के ऊपर विस्तृत विश्लेषण देखा जा सकता है। अमरकोश में भी वाद्यों का उल्लेख है। 'पुऱनानूऱु' 'पतिऱ्ऱुप्पत्तु', 'चिलप्पतिकारम' आदि संघकालीन तमिल कृतियों में उस समय के वाद्यों का परिचय मिलता है।

अम्बिलि वळयम्, आनकम्, इटख्क्का. इटित्ताळम्, उटुक्कु, तुटि, कण्ठजालम्, काळम्, तम्बेरु, तम्बुरु, तम्मिट्टम्, तित्रि, तिमिला, तोप्पि मद्दळम, दुंदुभि, किटुपिटि, कुषल, कृत्ति, कैमणि, कोम्बु, घट्टि वाद्यम्, चेंडा, पटहम्, नागस्वरम्, परा, पूँकुषल, भेरी, मड्डु, मद्दलम, चेंपरा, चेङ्ङला, झल्लारि,

डिंडिभम्, डक्का, तकिल, तप्पुँ, मुखवीणा, मुरशुँ, मृदङ्गम्, वनपरा, वीणा, वेणु, मरम्, मिषावुँ, ईष़ारा जैसे बहुत सारे वाद्य केरल में प्रचलित थे लेकिन आजकल इनमें से कई वाद्यों का प्रचलन नहीं है। इसलिए कुछ बहुप्रचलित वाद्यों का विश्लेषण किया जा रहा है।[1]

(देखिए पृष्ठ 134-क और 134 ख)

3.1.1 चेंडा

चेंडा (भेरी) केरल के वाद्यों में सबसे प्रमुख है। चेंडा एक असुर वाद्य है।[2] 'अठारह वाद्य चेंडा के नीचे' ऐसा एक कहावत ही प्रचलित है। केरल की ज़्यादातर कलाओं के लिए चेंडा ज़रूरी है। 'तायंबका','परिषवाद्यम' केळि आदि की प्रस्तुति तथा मंदिरों के अनुष्ठानों के लिए भी चेंडा की ज़रूरत है। चेंडा दो प्रकार के हैं - 'उरुट्टु चेंडा' और 'वीक्कन चेंडा'।

3.1.2 मद्दळम् -

'मद्दलम्'(मद्दल) अवनद्ध वाद्यों में एक है। यह एक सत्वगुण-प्रधान, मृदुल ध्वनिवाला बाजा है। इसके 'वीर मद्दळम्'तथा 'तोप्पि' (टोपी) मद्दलम् ऐसे दो प्रकार हैं। 'तोप्पि मद्दळम्'सबसे प्राचीन और आकार में छोटा है। 'वीर मद्दळम्' शुद्द मद्दळाम् माना जाता है। मंदिर के वाद्यों में इसका प्रमुख स्थान है। कथकळि, कृष्णनाट्टम्, पञ्चवाद्यम् आदि की प्रस्तुति मद्दळम् के बिना संभव नही है।

3.1.3 मिष़ावुँ -

'कूत्तुं' और कूटियाट्टम् के लिए इसका प्रयोग होता है। यह एक देव वाद्य है। कहा जाता है कि परशुराम ने इसका आविष्कार किया था। बडे तांबे के घटे के ऊपर चमडी चिपकाकर मिष़ावुं बनाया जाता है। तीन फीट ऊँचाई और उसके अनुसार विस्तार इसको है। इसको रखने के लिए लकडी के चौखडे (Frame) की ज़रूरत है। कृष्ण मृग, बछडा, काला बंदर आदि की चमडी घटा के मुँह को चिपकाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह पूर्ण रूप से केरलीय वाद्य है।

3.1.4 तिमिला

यह भी चर्मवाद्य है और पंचवाद्यों में एक है। बडी पैमाने पर पंचवाद्य का आयोजन करते समय ज़्यादातर तिमिलों का भी प्रयोग किया जाता है। 'कटुंतुटी' ही तिमिला का प्राग्रूप माना जाता है। इसके

1. डॉ एम वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु - पृ. 577-578

2. वही पृ. 292

संबंध में पुरावृत्त में एक कहानी है। महर्षियों ने शिव को मारने के लिए 'कटुंतुटी' तैयार की लेकिन शिव ने इसे एक वाद्य बनाकर हाथ में ले लिया। शिवभक्त शूरपत्मा ने इसे प्राप्त करना चाहा। दूसरों से छूने योग्य न होने के कारण शिव ने इनकार किया तब शूरपत्मा ने 'कटुंतुटी' के आकारवाले एक वाद्य का निर्माण किया। इसकी ध्वनि सुखद न होने की वजह से शिव ने उस वाद्य के बीच में एक छेद बनाया। प्रणव ध्वनिवाला यह वाद्य 'धिमिला' कहलाया गया है और 'धिमिला' बाद में तिमिला हो गया।

3.1.5 **इटय्क्का** -

यह चर्मवाद्यों में एक है। मध्यभाग में संकीर्ण लकडी के खोल में दोनों ओर से चमडी लगाकर यह वाद्य तैयार किया जाता है। इसके लिए गाय या बैल के जिगर के बाहरी छिलका इस्तेमाल करते हैं। बहुत मुलायम एवं हल्का होने की वजह से इसे बजाने के लिए बहुत पतली लकडी का प्रयोग होता है। इस वाद्य में तरह-तरह के रंगीन गोलियाँ लगाकर सजाया जाता है। 'सोपान संगीत' (अष्टपदि या गीत गोविन्दम् पर आधारित संगीत) के गायन में इसका होना ज़रूरी है।

3.1.6 **उटुक्कु** -

एक प्रकार का चर्मवाद्य। संस्कृत में इसे ढमरू कहते हैं। मध्य भाग में कम व्यासवाले घेरे में चमडी लगाकर यह वाद्य तैयार करते हैं।'इटय्क्का' की तुलना में दोनों अग्रों का विस्तीर्ण कम है। 'अय्यप्पन पाट्टुं'[1] तथा 'मारियम्मन तुळ्ळल' के लिए इसका प्रयोग होता है।

3.1.7 **चेङ्ङला (घंटा)**

'चेङ्ङला' या 'चेंगला' एक घनवाद्य है। श्रुतिवाद्य या तानवाद्य के रूप में इसका प्रयोग होता है। काँसा से वृत्ताकार में बनाए गए फलक पर छिद्र बनाकर उससे रस्सी खींचकर उसमें पकडकर एक टेढी लकडी से टकराकर 'चेङ्ङला' बजाते हैं। कथकळि के प्रमुख गायक हमेशा इसे बजाकर गायन प्रस्तुत करता है।

---

1. इनका विवेचन आगे किया जाएगा।

केरल के कुछ प्रमुख वाद्य

चेंडा

मद्दलम्

मिषावुं

इटक्का

तिमिला

इलत्ताळम्

नन्तुणी

घटम्

मृदङ्गम्

पुळ्ळुवकुटम्

पुळ्ळुव वीणा

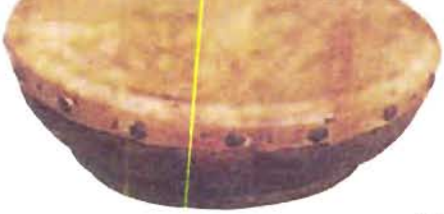

तप्पुं

3.1.8 इलत्ताळम्

यह भी एक प्रकार का घनवाद्य है। काँसा से कमल के पत्ते (इला) के आकार में यह बनाया जाता है। इस पत्राकार फलक के बीच में एक छिद्र है और इस छिद्र से रस्सी खींचकर उसमें क गाँठ लगाते हैं। इस रस्सी में पकडकर दो फलकों को आपस में टकराकर इसका वादन करते हैं। विभिन्न प्रकार की कलाओं की प्रस्तुति में यह बहुत आवश्यक है। (ताळम् का अर्थ है तान) इलत्ताळम अठारह वाद्यों [1] में एक है।

3.1.9 नन्तुणी

यह वीणा के समान एक तंत्रिवाद्य है। एक विशेष प्रकार की जंगली रस्सी से इसकी डोरी तैयार की जाती है। डोरी के ऊपर ऊँगली रखकर सात स्वर बजाने के निर्धारित स्थान भी नन्तुणी में है। नन्तुणी बजाकर जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'नन्तुणी गीत' कहते हैं।

3.1.10 कुषित्ताळम्

यह इलत्ताळम् के छोटे आकार का वाद्य है। इलत्ताळम् के समान इसे भी बजाया जाता है। यह 'कैमणि' (हाथों की घंटी)'ताळक्कूट्टम्'(ताल का समूह),'ताळक्कट्टा' (ताल बजाने के ढेला) आदि नामों से भी जाना जाता है।

3.1.11 वीणा

यह दुनिया भर में मशहूर तंत्रि वाद्य है। वेदों और पुराणों में भी इसका उल्लेख है। संघकालीन कृति 'चिलप्पतिकारम्'में चार प्रकार की वीणाओं का उल्लेख है तो भरतमुनि के 'नाट्य शास्त्र' में अठारह प्रकार की वीणाओं का वर्णन मिलता है। वीणा की डोरी की लंबाई को बढाकर या कम करके इसकी श्रुति में उतार चढाव लाकर इसका वादन करते हैं।

1. अठारह वाद्य - चेंडा, इटय्का, तिमिला, वीक्कन, मरम्, तोप्पि मद्दळम्, शंख,चेङ्ङिला, इलत्ताळम्, कोम्बु , कुषित्ताळम्, इडुमुडी,वीरागाम्, नन्तुणी, करटिका, पडहम्, शुद्द मद्दळम्, कूरुम् कुषल

3.1.12 शंख

कभी-कभी एक वाद्य के रूप में शंख इस्तेमाल किया जाता है। फिर भी धार्मिक दृष्टि से इसका महत्त्व ज़्यादा है। शंख नाद में लक्ष्मी देवी का निवास माना जाता है। मंदिरों तथा 'कावों' में उषःपूजा के पहले शंख बजाने की प्रथा है। शंख पंचवाद्यों में एक है।

3.1.13 ओटक्कुष़ल (बांसुरी)

केरल की अनुष्ठान कलाओं में इसका प्रयोग नहीं होता। लेकिन सुगम संगीत तथा अन्य संगीत शाखाओं में इसका प्रमुख स्थान है। अखिल भारतीय स्तर पर प्रयुक्त होने के कारण इसके विस्तृत वर्णन की ज़रूरत नहीं है।

3.1.14 घटम् (घड)

यह मिट्टी से बनाए जानेवाले एक विशेष प्रकार का घड है जिसे उल्टा करके गोद में रखकर उंगलियों से बजाया जाता है। कर्नाटिक संगीत तथा भरतनाट्यम्, मोहिनियाट्टम, व कुच्चिपुडी जैसी [illegible] 'मृदङ्गम्' के साथ 'घटम्' अनिवार्य रूप से इस्तेमाल किया जाता है।

3.1.15 मृदङ्गम

यह एक चर्मवाद्य है। लकडी के घूँटे के दोनों ओर चमडी बाँधकर मृदङ्गम् तैयार किया जाता है। मृदङ्गम् एक देव वाद्य है। शास्त्रीय संगीत व नृत्यों में इस वाद्य का प्रयोग होता है।

3.1.16 पुळ्ळुवक्कुटम् (कुटम् - घड)

इसका निर्माम और प्रयोग 'पुळ्ळुव' जाति के लोग ही करते हैं इसलिए इसका नाम'पुळ्ळुवकुटम्'पडा यानि पुळ्ळुव जाति का घड या पुळ्ळुवों का घड। यह एक चर्मवाद्य है। मिट्टी घटे के निचले भाग हटाकर वहाँ बछडे या गोहरे की चमडी लगाकर यह वाद्य तैयार किया जाता है। जहाँ चमडी लगाई जाती है उस भाग में दो छोटे छिद्र बनाकर उनमें से खजूर या नारियल की डोरी खींचकर उसके दूसरे हिस्से एक लंबी लकडी से बाँध लेते हैं। इस डोरी में 'तोरुं' नामक लकडी के दो छोटे टुकडों से तान देकर इसका वादन करते हैं। पुळ्ळुव जाति के सभी गीतों केलिए इसका बजाना अनिवार्य है।

देखिए चित्र - 15

3.1.17 पुळ्ळुव वीणा

मोटे बाँस, नारियल के खोपडे तथा एक प्रकार की जंगली डोरी आदि से पुळ्ळुव वीणा तैयार की जाती है। एक छोटी सी चाप से इसका वादन करते हैं। इसका निर्माण व वादन पुळ्ळुव जाति के लोग ही करते हैं इसलिए नाम 'पुळ्ळुव वीणा' बन गया।

3.1.18 पुळ्ळुव मिष़ावुँ [1]

मिट्टी के बडे घडे से पुळ्लुव जाति के लोग जो मिष़ावुँ तैयार करते हैं, वह पुळ्ळुव मिष़ावुँ नाम से जाना जाता है। पुराने ज़माने में सर्प गीतों के दौरान इसका वादन किया जाता था। आजकल इसका उतना प्रचलन नहीं है।

3.1.19 वीक्कन चेंडा

चेंडा का एक भेद। 'वीक्कुक' शब्द का अर्थ है ज़ोर से मारना। ज़ोर से मारकर बजाने के कारण ही इसका नाम 'वीक्कन चेंडा' बन गया। 'वीक्कुँ चेंडा' 'अच्चन चेंडा' नाम भी इसके लिए प्रचलित है। मंदिरों में 'अभिषेक' 'धारा' 'शीवेली' 'कलाशम्', 'श्रीभूतबलि'[2] आदि के लिए 'वीक्कन चेंडा' का होना अनिवार्य है।

3.1.20 तप्पुँ

एक प्रकार का समाघात या चर्मवाद्य। चक्राकार के लकडी के खूँटे में चमडी लगाकर 'तप्पुँ' तैयार किया जाता है। एक हाथ में पकडकर दूसरे हाथ से चमडीवाले हिस्से पर मारकर इसका वादन करते हैं। 'पटयणि','मुटियेर्रुँ' आदि कलारूपों की प्रस्तुति में तप्पुँ बजाते हैं। कुंचन नंपियार की 'तुळ्ळल कृतियों'में इसका उल्लेख मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि एकाध वाद्यों को छोड़कर शेष सब वाद्यों का प्रणयन

1. मिष़ावुँ के बारे में पहले ही प्रस्तुत किया गया है।
2. मंदिरों में किए जानेवाले विशेष प्रकार के पूजापाठ।

और प्रयोग केरल की विशिष्ट सांस्कृतिक दायरे के अन्दर ही होते हैं। इसलिए ऐसे शब्दों के लिए हिन्दी पर्याय मिलना कठिन है। हाँ कुछ वाद्यों में उत्तर भारत के वाद्यों से समानता पायी जाती है लेकिन वाद्यों के प्रयोग की पृष्ठभूमि अलग-अलग है। इसलिए हिन्दी भाषीवालों को इनका परिचय देने के लिए चित्र दिखाना या लिप्यंतरण प्रणाली को अपनाना पडेगा।

3.2 मंदिर से जुडी हुई कलाएँ

कलाएँ मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों से संबद्ध हैं। विश्व रंगमंच पर मनुष्य के आविर्भाव के साथ ही यह प्रवृत्ति उसमें विकसित हुई होगी। स्थूल से प्रताडित होने पर मानव चेतना सूक्ष्म के लिए व्यग्रता दिखाती है। धर्म भी इसी प्रवृत्ति से जन्म लेता है। इसी कारण धर्म और कला मूलतः परस्पर संपृक्त रहती है। यह देशकालातीत सत्य है। तात्पर्य है, कलात्मक तथा उपासनात्मक प्रवृत्ति तत्त्वतः अभिन्न है।

प्रदेशगत भेदभाव के बावजूद प्राचीन भारत के नाना जनसमूहों के कलात्मक व्यापारों में एक सामान्य प्रवृत्ति लक्षित होती है। यह इस देश की आंतरिक एकता की द्योतक तो है ही मानव मात्र मौलिक ऐक्य की भी समर्थक है। केरल की भौगोलिक परिस्थिति, प्रकृति-सुषमा, सामाजिक व्यवस्था आदि ने उसकी कलात्मकता को विशेषतः उन्मीलित किया होगा। घन नील गगनतल, तरंगाकुल महासागर, गहन वनस्थल, स्वप्निल शैल माला, कला भाषिणी नदियाँ, स्वच्छ जल सरोवर, खग-मृग सब हृदय को उद्वेलित करते हैं। भारत की सारी कलाएँ आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का साधन मानी जाती है। इनका विकास मुख्य रूप से धर्मस्थानों और मंदिरों के प्रांगण में हुआ। अन्य राज्यों के समान केरल में भी नृत्त-नृत्य, संगीत आदि ईश्वर प्रीति के साधन माने जाते थे। कला प्रस्तुति हेतु मंदिरों में नर्तकियाँ (देवदासियाँ) नियुक्त थीं। चाक्यार जाति के लोग कुल-परंपरा से अभिनय कार्य में संलग्न रहते थे। इनका काम कला प्रदर्शन द्वारा लोगों का मनोरंजन करना मात्र था लेकिन वे इसे अपना परम कर्तव्य मानकर ईश्वरीय पूजा के समान किया करते थे। सामन्ती व्यवस्था ने भी कलाओं के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। आधुनिकता के बढते प्रभाव में पुरानी सामाजिक व्यवस्था शिथिल पड गई। देशी कलाओं तथा मंदिर से जुडी हुई कलाओं के क्षेत्र में यह शिथिलता प्रवेश करने लगी। सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन ने हमारी प्राचीन कलाओं को एक सर्वथा नवीन परिस्थिति में पहुँचा दिया। पश्चिमी शिक्षा प्रणाली एवं जीवन दर्शन के बढ़ते प्रसार ने भारतीय संस्कृति और कला की ओर एक प्रकार की उपेक्षा की भावना पैदा कर दी तो केरल की कलाएँ इस सर्वभौमिकरण की वृत्ति से कैसे बच सकती थीं ? आधुनीकरण व यंत्रीकरण का प्रभाव केरल की सभी कलाओं में देखा जा सकता है। लेकिन कुछ समर्पित कलाकारों के कठिन प्रयत्न के फलस्वरूप विभिन्न कलारूपों की श्रेष्ठ परंपराओं की यथार्थ रूप-भंगिमा - क्षीण तो सही - हमारे सामने विद्यमान है।

आगे ऐसे कलारूपों व उनसे संबंधित शब्दावली का विश्लेषण किया जा रहा है। यहाँ सबसे पहले ऐसी कलाओं का विवेचन प्रस्तुत है जिनका संबंध आध्यात्मिक चेतना व धार्मिक भावना से है तथा प्रस्तुति की दृष्टि से मंदिरों तथा उनसे जुडे हुए नाट्य गृहों से संबद्ध हो। पहले ही बताया जा चुका है कि ज़्यादातर कलाओं का जन्म और विकास मंदिरों के पास ही हुआ है। दूसरी दृष्टि से विचार करें तो शास्त्रीय कलाएँ व लोक कलाएँ ऐसे विभाजन भी संभव है। यहाँ कलाओं का चयन उनकी सांस्कृतिक एवं कलात्मक पृष्ठभूमि तथा लोकप्रियता को दृष्टि में रखकर किया गया है।

3.2.1 कथकळि

'कथकळि' केरल का मशहूर कला रूप है जिसकी चर्चा विश्व भर में होती है। इसकी कलात्मक-साहित्यिक चारुता के साथ उसकी शास्त्रीय पद्धति पर भी आजकल बहुत परिचर्चाएँ हो रही हैं। भारतीय संस्कृति तथा अभिनय कला की प्रौढ़ तथा सुन्दरतम अभिव्यक्ति केरल की इस विख्यात नृत्य कला में उपलब्ध होती है। उसमें संगीत, साहित्य, शिल्प, नृत्त-नृत्य आदि विविध कलाओं का समुचित समन्वय है और इसी कारण बहुत कुछ शास्त्रीय होते हुए भी वह शताब्दियों से शिक्षित-अशिक्षित भेद [illegible][1] सदियों से लेकर केरल के मंदिरों तथा राजमहलों व सामंती गृहों में कथकळि का प्रदर्शन होता आया है।

कथकळि का शब्दार्थ है कथा की 'कळि' अथवा 'केळि'। कळि संस्कृत के 'केळि' अथवा खेल से विकसित शब्द है। कथा या कथानक को अभिनय व संगीत के माध्यम से प्रस्तुत करने के कारण ही इसका नाम कथकळि बन गया होगा।

कथकळि एक स्वतंत्र कला रूप नहीं। इसके आविर्भाव के पूर्व केरल में प्रचलित विभिन्न नृत्त-नृत्यों व अन्य कलाओं का प्रभाव कथकळि में दर्शनीय है। इसमें जनवादी नृत्त-नृत्य तथा संस्कृत नाट्य परंपरा की धाराएँ प्रमुख हैं। संस्कृत नाटकों के अभिनय की प्रथा देवस्थानों में आज भी प्रचलित है। 'कूत्तु', 'कूटियाट्टम' आदि इसके उदाहरण है। कथकळि के विकास में इनका अपना योगदान है। इन्हें छोडकर 'तिरियाट्टम' 'मुटियेरट्र' 'कालियाट्टम्','पटयणि' आदि जनवादी कलारूपों से कई बातें भी कथकळि में आ गई हैं। भक्ति आंदोलन ने साहित्य के समान अन्य कलाओं को भी देशव्यापी बना दिया। कथकळि की कथाओं और अन्य प्रणालियों का पुराणों से अविच्छेद संबंध है। लोक कथाओं और धार्मिक अनुष्ठानों ने भी उसके रूपायन में मदद पहूँचाई।

कथकळि के पूर्ववर्ती कलारूपों व नृत्यों का सामान्य परिचय आगे दिया जा रहा है।

---

1. रामचन्द्र देव, कथकळि कलात्मक साहित्यिक मूल्यांकन पृ. 1

3.2.1.1 चाक्यार कूत्तु

चाक्यार शब्द एक विशेष जाति का सूचक है जिन्होंने मुख्य रूप से 'कूत्तु', 'कूटियाट्टम' आदि कलाओं की प्रस्तुति को अपना पेशा स्वीकार किया है।[1] 'चाक्यार' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में भी कई तर्क है। 'कूत्तु' शब्द 'कूर्द' धातु से निष्पन्न है जिसका संस्कृत रूप है 'कूर्दनम्'। इसका तद्भव रूप कूत्तु है और अर्थ है नृत्य । केरल के प्रमुख मंदिरों के निकट 'कूत्तंबलम' (नाट्य गृह) थे और इनमें चाक्यार लोग पुराण कथाओं पर आधारित अभिनय प्रवचन करते थे। कूत्तु में अभिनय, नृत्य व हँसी-मज़ाक का सामंजस्य देखा जा सकता है। चाक्यार मंच पर आकर रंग पूजा प्रस्तुत करते हैं और उसके बाद 'चारी'नामक एक अनुष्ठान नृत्य पेश करते हैं। 'चारी' एक अनुष्ठान होने के कारण बडी सावधानी बर्तनी चाहिए। इसमें किसी गलती का होना अशुभ माना जाता है। इसके बाद गद्य-पद्यों के द्वारा अभिनय नृत्य एवं व्याख्यान होते हैं। कूत्तु प्रारंभ काल में सिर्फ कथावाचन था लेकिन कालान्तर में काफी परिवर्तन के फलस्वरूप आज का रूप सामने आ गया । प्रसंगानुसार हास्य-व्यंग्य का प्रयोग कूत्तु की सबसे बडी विशेषता है। शब्दनिष्ठ एवं अर्थनिष्ठ चुटकुलों यथोचित प्रस्तुति से दर्शक भावविभोर हो जाते हैं। चावल के चूर्ण, हल्दी व कठ कोयला आदि से चेहरे पर रंग लगाते हैं। एक कान में कुंडल और दूसरे कान में पान के पत्ते व 'चेत्ती' का फूल (गुलदाउदी) धार करते हैं। कमर में एक विशेष प्रकार के झालरदार कपडे पहनते हैं और सिर में लाल कपडा, शिखा , मोर पंखों का मुकुट आदि का होना ज़रूरी है। कमर में कटि सूत्र व हाथ में 'कटकम्'[2] आदि से चाक्यार की साज-सज्जा संपन्न होती है।

कूत्तु के दो भेद हैं -'चाक्यार कूत्तु' और 'तोलपावकूत्तु'। चाक्यार कूत्तु में संस्कृत नाटकों का अभिनय होता था और 'तोलपावकूत्तु' में तमिल नाटकों का। केरलीय नाट्यकला पर कूत्तु का बडा गहरा प्रभाव पडा है। आंगिक और वाचिक अभिनय के क्षेत्र में कूत्तु कथकळि का मार्गदर्शक है। कूत्तु एक ही व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।अनेक पात्रों की भूमिका वह स्वयं निभाता है जैसे'मोनो एक्ट' (Monoact)

3.2.1.2 कूटियाट्टम्

एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा अभिनीत नाटक को 'कूटियाट्टम्'कहा जाता है। यह एक अनुष्ठान कला है और संस्कृत भाषा पर आधारित इस कला का प्रदर्शन मंदिरों के नाट्यगृहों में होता है। इसका आधार भरतमुनि का नाट्य शास्त्र है और नाट्य, नृत्य व संगीत का समन्वित रूप इसमें

1. एम वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु - पृ. 277-278

2. कटकम् - इसका दूसरा नाम है हस्तकटकम्। कलाप्रदर्शनों में हाथ पर बाँधनेवाला एक रंगीन आभूषण।

दर्शनीय है। 'कूटियाट्टम्'में 'कूटि' का अर्थ है सम्मिलित या संघटित। 'आट्टम्' का अर्थ है नाटक या अभिनय। इसमें पुरुष पात्रों की भूमिका 'चाक्यार' व स्त्रियों की भूमिका 'नंगियार' (चाक्यार स्त्री) निभाते हैं। गीत गाने या श्लोक पढने का काम भी नंगियार करती है।

'कूटियाट्टम' का कथानक संस्कृत नाटकों से लिए गए कुछ भाग होता है। कुलशेखर पेरुमाल के 'सुभद्रा धनंजयम्','तपतीसंवरणम्', श्री हर्ष का 'नागानन्दनम्', शक्तिभद्र का 'आश्चर्य चूडामणि',भास के 'प्रतिमा नाटक' 'अभिषेक नाटक' 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम्', 'स्वप्न वासवदत्तम्'आदि नाटकों के प्रमुख भागों की कूटियाट्टम् में प्रस्तुति होती है। ज़्यादातर 'कूटियाट्टों' में विदूषक की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। बिना विदूषक से भी 'कूटियाट्टम' खेला जाता है। लेकिन विदूषक की हँसी-मज़ाक कूटियाट्टम में चार चाँद लगाती है। चतुर्विद अभिनयों का अत्यंत शास्त्रानुसार प्रयोग इसमें होता है। नाटक के श्लोकों और पात्रों के वार्तालापों का एक विशिष्ट ढंग से उच्चारण होता है। संगीत भी निराला है। बहुत सी अप्रचलित राग-रागिनियों का आलाप भी किया जाता है। इसकी भाषा में संस्कृत, प्राकृत तथा मलयालम का मिश्रण है।

कई दिनों तक एक ही नाटक का कूटियाट्टम में अभिनय कार्य चलता है। एक दिन अधिक से अधिक एक अंक । कथकळि में 'कूटियाट्टम' से कई बातें स्वीकृत है। किसी भी कथा का संपूर्ण रूप से एक ही रात में अभिनय कथकळि में अनिवार्य नहीं है। किसी कथांश को लेकर पूरी रात तक अभिनय चल सकता है। अभिनय के प्रारंभ में जिन परिपटियों का आचरण 'कूटियाट्टम' में होता है वह परिवर्तित रूप में कथकळि में भी मिलता है। आगे 'कूटियाट्टम' व 'कूत्तु' से संबंधित कुछ सामान्य शब्दों का विश्लेषण किया जा रहा है -'कूटियाट्टम' में प्रयुक्त वाद्य हैं -'मिष़ावु','इटय्क्का','शंख','कुरुंकुष़ल' 'कैमणि' आदि।

कूत्तु व कूटियाट्टम से संबंधित कुछ सामान्य शब्द[1]

कूत्तंबलम्	- मंदिरों से संबद्ध नाट्य गृह जहाँ कूत्तु सरीखे कलारूपों का प्रदर्शन होता है।
रंग वंदनम्	प्रारंभिक मंच वन्दना।
चारी	कूत्तु से संबंधित प्रारंभिक अनुष्ठान नृत्य
किरीटम	मुकुट
पीलिप्पट्टम्	मोर पंखों से वृत्ताकार में बनाई गई सजावट जिसे मुकुट में बाँधते हैं।

1. एम वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु 1.

कुटुमा	शिखा
कटिसूत्रम्	रंगीन और विस्तृत कमरबंध
वासुकीयम्	सिर में धारण करनेवाला
चुट्टि कुत्तुं/ चुट्टियेषुत्तुं	कूत्तुं, कूटियाट्टम व कथकळि कलाकारों के चेहरे पर की जानेवाली सजावट या 'मेक अप'
विदूषकन	विदूषक
सूत्रधारन	- सूत्रधार
पूरप्पाटुं व निर्वहणम्	- कूटिपाट्टम शुरू होने से पहले विदूषक द्वारा प्रस्तुत प्राक्कथन व अभिनय
विवादम्, विनोदम्, अशनम्, राजसेवा	कूटियाट्टम प्रस्तुत करने के चार पढ़ाव (पुरुषार्थ चतुष्टय)
रंगालंकारम्	रंगमंच की सजावट
कुरुत्तोला	- नारियल के कोमल पत्ते
पट्टुं	- रेशमी कपडा
कुलवाषा	केले का फलदार पौधा
अक्कित्तम्	- कूटियाट्टम शुरू करने से पहले प्रस्तुत गणेश, सरस्वती व शिव का स्तुति गीत।
क्रिया चविट्टुं	'अक्कित्तम्'के बाद सूत्रधार द्वारा प्रस्तुत नृत्य व अभिनय
अरङ्ङुं तळि	- नंपियार द्वारा 'मिषावुं'के सामने कूटियाट्टम् का कथासार प्रस्तुत करने की क्रिया।
निर्वहणम्	- नायक का अभिनय
अंकम्	कूटियाट्टम् की समाप्ति की सूचना देने के लिए प्रस्तुत नंगियार का गीत और चाक्यार का नृत्य।

कूत्तुं और कूटियाट्टम् से संबंधित उपर्युक्त बहुत सारी परिपाटियों का प्रभाव कथकळि में परिलक्षित है।

3.2.1.3 कृष्णनाट्टम्

भारतीय भक्ति आन्दोलन की कलात्मक परिणति का उत्कृष्ट उदाहरण है 'कृष्णनाट्टम्'। समस्त केरल में इसका प्रचलन नहीं है। 'अष्टपदियाट्टम्'[1] तथा कूटियाट्टम् की कलात्मक शैलियों का समन्वय 'कृष्णनाट्टम्' में दृष्टव्य है। इसे गुरुवायूर के प्रसिद्ध श्री कृष्ण मंदिर की अपनी नृत्य विधा कह सकते हैं। इसका विधिवत् अभिनय केवल गुरुवायूर मंदिर में ही चलता है।

'कृष्णनाट्टम्' के आविर्भाव के संबंध में एक कहानी बहुप्रचलित है। कालिकट के एक प्रसिद्ध सामूतिरि (जमूरिन) महाराजा ने (इन शासकों को मानवेद भी कहते हैं।) मशहूर कृष्णभक्त विल्लमंगलम स्वामियार से भगवान के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। स्वामियार की कृपा से एकबार बालकृष्ण के दर्शन प्राप्त हुए। भक्ति में भावविभोर राजा ने बालकृष्ण को हाथ में उठा लेने की कोशिश की। लेकिन कन्हैया राजा के हाथ न आए वे झट से अंतर्धान हुए। यद्यपि राजा कृष्ण को उठा लेने में सफल न हुए, फिर भी कृष्ण के मोर मुकुट की एक पिंछिका उनके हाथ आई। राजा ने उसे मूल्यवान मानकर सुरक्षित रख दिया। इसके बाद स्वामियार के निर्देशानुसार मानदेव राजा ने कृष्णगीति (कृष्णाष्टक) की रचना की।[2] यह गीतगोविंद की शैली पर संस्कृत में रची गई है। यही कृष्णनाट्टम की आधार रचना है। कृष्णावतार, कालियमर्दनम्, रासलीला, कंसवध, स्वयंवर, बाणयुद्ध, विवदवध, स्वर्गारोहण आदि आठ भागों में संपूर्ण कृष्णगीति बंटी हुई है। मेल्पत्तूर नारायण भट्टतिरि का 'नारायणीयम्', जयदेव का 'गीतगोविन्दम्', सुकुमार कवि का 'श्रीकृष्णविलासम्', शंकर कवि की 'श्रीकृष्ण विजय' आदि रचनाओं का मार्गदर्शन 'कृष्णनाट्टम्' को प्राप्त है। यह एक भक्ति रस प्रधान नाट्य है जो भगवद् प्रीति हेतु प्रस्तुत किया जाता है। 'शुद्द मद्दलम्','तोप्पि मद्दळम्','इलत्ताळम्','चेंङ्ङिला' आदि वाद्य इसमें प्रयुक्त होते हैं।

'कृष्णनाट्टम्' में संपूर्ण कृष्ण चरित का आठ दिनों में अभिनय होता है। पात्रों की वेश-भूषा कुछ अंशों में 'कूटियाट्टम्' से भिन्न है। 'कूटियाट्टम' में मुखौटे का उपयोग नहीं होता। लेकिन 'कृष्णनाट्टम' में दैत्य, यम, पूतना जैसे आसुरी स्वभाववाले पात्र मुखौटा धारण करते हैं। 'कृष्णनाट्टम' में मुकुट में मोर-पंख का होना अनिवार्य है। अन्य साज-सज्जा 'कूटियाट्टम' से बहुत-कुछ बातों में समान ही है। नवीनता के अनेक लक्षण 'कृष्णनाट्टम' में विद्यमान है। वाचिक अभिनय त्याज्य है। रंगमंच के पीछे खडे होकर गायक जो पद या गीत गाता है, उनके अनुसार नट अभिनय प्रस्तुत करते

1. जयदेव के गीत गोविंद पर आधारित नृत्य।

2. एम वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु- पृ. 227-228

हैं। 'कृष्णनाट्टम्' में प्रेमलक्षणा भक्ति की प्रधानता है और प्रमुखतः ललित तथा सुकुमार भावों की अभिव्यंजना परिलक्षित होती है। कथकळि और 'कृष्णनाट्टम्' का आपसी संबंध इतना प्रगाढ़ है कि एक की अवधारणा दूसरे के सम्यक ज्ञान के लिए अत्यंत आवश्यक है।

3.2.1.4 रामनाट्टम्

'रामनाट्टम्' वर्तमान कथकळि का प्राग्रूप है। कुछ विद्वान दोनों में कोई भेद नहीं मानता। 'रामनाट्टम्' के प्रणेता कोट्टारक्करा तंपुरान (कोट्टारक्करा राज्य का नरेश) है। 'कृष्णनाट्टम' इसका प्रेरक रहा है। इसके संबंध में एक जनश्रुति प्रचलित है। 'कृष्णनाट्टम' सारे केरल में मशहूर हो गया था इसलिए यह देखने की इच्छा से कोट्टारकरा तंपुरान ने एक बार राजा मानदेव से 'कृष्णनाट्टम' के कलाकारों को कोट्टारक्करा भेजने का अनुरोध किया। किन्तु मानवेद ने तंपुरान की प्रार्थना का निराकरण किया। कारण, उनके अनुसार कोट्टारक्करा के लोगों में उसके आस्वादन की क्षमता नहीं है। इससे तंपुरान के स्वाभिमान को ठेस पहुँची। वे तो बहुत अच्छे कलाविद् थे और 'कृष्णनाट्टम' के समकक्ष रखने योग्य एक कलारूप का सृजन किया। यही आगे चलकर 'रामनाट्टम्' कहा गया। 'कृष्णनाट्टम्' कृष्णावतार पर आधारित है तो 'रामनाट्टम्' रामकथा पर आधारित है। सीता परित्याग को छोड़कर रामायण की शेष सारी घटनाएँ 'रामनाट्टम्' में आती हैं।

'कृष्णनाट्टम्' और 'कूटियाट्टम्' के समान इसमें भी हस्तमुद्राओं का प्रयोग होता है लेकिन अन्तर सिर्फ इतना है कि अभिनय व गायन अभिनेता स्वयं करते हैं। उसका अभिनय वर्तमान कथकळि के अभिनय से भिन्न था। वाद्यों में मद्दळम् और इलत्ताळम प्रमुख है, चेंडा का प्रयोग नहीं होता। 'रामनाट्टम्' की वेश-भूषा भी भिन्न है फिर भी 'कृष्णनाट्टम्' से अनुकरण दर्शनीय है। 'कृष्णनाट्टम्' की भाषा संस्कृत थी, जबकि 'रामनाट्टम्' की मलयालम। 'कूत्तु', 'कूटियाट्टम्', 'कृष्णनाट्टम्' आदि का अभिनय उन दिनों मंदिरों के प्राकारों के भीतर ही होता था निम्नवर्ग के लोग उसके दर्शन से वंचित रहते थे। परन्तु 'रामनाट्टम्' मंदिरों के बाहर खुली हवा में प्रस्तुत होने लगा। इसलिए यह आम जनता के बीच बहुत प्रचलित हुआ। राम कथाएँ केरल में बहुप्रचलित होने के कारण से भी 'रामनाट्टम्' की लोकप्रियता बढ़ती गई। उसका सृजन धार्मिक वातावरण में हुआ। संगीत साहित्य आदि विविध कलाओं का उसमें समावेश था, अतः पंडित मंडली ने भी उसका अभिनंदन किया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नृत्य, अभिनय, संगीत, साहित्य, वाद्य, वेश-भूषा आदि के लिए कथकळि ने 'कूत्तु', 'कूटियाट्टम', 'कृष्णनाट्टम' तथा 'रामनाट्टम' सरीखे पूर्ववत् कलाओं का सहारा अवश्य ग्रहण कर लिया है 'तेय्यम-तिरा' जैसी जनवादि कलाओं का प्रभाव भी दर्शनीय है। आगे कथकळि से संबंधित शब्दावली का विश्लेषण किया जा रहा है।

3.2.1.5 'कथकळि साहित्य' (आट्टकथा साहित्य)

हमने देखा, कालिकट के मानदेव द्वारा विरचित तथा उत्तर केरल में प्रचलित 'कृष्णनाट्टम' का अनुकरण करते हुए कोट्टारकरा तंपुरान ने 'रामनाट्टम्' का प्रणयन किया। कृष्णनाट्टम् में कृष्ण की कथा है और 'रामनाट्टम्' में राम की । दोनों भक्ति की कलात्मक परिणतियाँ है। कला का कर ग्रहण करके भक्ति अधिक हृदय स्पर्शी बनती है। तभी वह सभी भावापन्न मानव जीवन का अभिन्न अंग बन सकती है। माध्यम की सरलता उसकी संवाद क्षमता को बढ़ाती है। 'कृष्णनाट्टम्' की भाषा संस्कृत है। शायद माध्यम की दुरूहता के कारण उसका प्रभाव क्षेत्र बहुत ही सीमित रह गया। पर रामनाट्टम् सरल मलयालम में प्रणीत है अतएव वह शीघ्र ही जन प्रिय हो गया। विषयवस्तु में परिवर्तन रहने पर भी उसका काव्यरूप हमेशा एक ही रहा। श्लोक और गेयपदवाली गीतगोविन्द की प्रणाली कथकळि के लिए रूढ़ हो गयी।[1]

कथकळि काव्य केवल पाठ्य या श्रव्य नहीं है बल्कि वह मुख्यतः अभिनय की वस्तु है। नृत्य, वादन, वाचन, अभिनय से रसाभिव्यंजन उसका आत्यंतिक लक्ष्य है। गेय पदों के पठन मात्र से उसमें रसपरिपाक संभव नहीं है। संगीत की लघु लहरियों पर आरूढ़ होकर वह हमारे हृदय में प्रवेश पाता है। नाद धारा में द्रवित होता है हृदय : नृत्यसंवलित अभिनय में हृद्गत भाव उन्मीलित होते हैं।[2]

कथकळि के काव्य को 'आट्टकथा' कहते हैं। एक काव्य में अनेक गीय या पद होते हैं,उन्हें 'कथकळि पदम्'नाम से अभिहित किया जाता है। कथकळि काव्य वास्तव में मलयालम साहित्य को संपन्न बनानेवाली एक विशिष्ट धारा है। कथकळि साहित्य के प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ निम्नलिखित हैं -

1. कोट्टयम् तंपुरान — बकवध, कल्याणसौगंधिक, किर्मीर वध, कालकेय वध
2. महाराजा कार्तिकतिरुनाल बालरामवर्मा (धर्मराजा) — राजसूय, बकवध, कल्याणसौगंधिकम्, सुभद्राहरण, गंधर्वविजय, पंचाली स्वयंवर, नरकासुर वध (अधूरा)
3. अश्वनी युवराज रामवर्मा - रुक्मिणी स्वयंवर, पौण्ड्रक वध, अंबरीष चरित, पूतनामोक्ष
4. उण्णायि वारियर - नलचरितम्, रामपंचशति, गिरिजाकल्याणम्, सुभद्रा हरण

1. रामचन्द्र देव, कथकळि कलात्मक एवं साहित्यिक मूल्यांकन - पृ. 11
2. वही

5. इट्टिरारिच मनोन	रुक्मांत चरित व संतानगोपालम्
6. इरयिम्मन तंपि	कीचक वध, उत्तरास्वयंवर तथा दक्षयाग
7. किलिमानूर विद्वान कोखित्तंपुरान	रावण विजय
8. आर्यन नारायण मूस	दुर्योधन वध

बीसवीं शती के आरंभ के साथ कथकळि में आधुनिक प्रवृत्तियाँ विशेषतः दृष्टिगत होने लगती है। कथानक में ही नहीं, अपितु अभिनय वेश-भूषा, संगीत आदि में भी नवीन प्रयोग होने लगे हैं। कथानक केवल भारतीय पुराणों से ग्रहण किए जाते थे। पर अब बाइबिल, ग्रीक पुराण, समकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र, विदेशी साहित्य आदि से भी कथानक लिए जाते हैं। भारतीय पुराणों की भी वस्तु नये सिरे से ग्रहण की जाती है। शृंगार और वीर प्रकरणों के अभाव में कथकळि की कल्पना तक असंभव मानी जाती थी लेकिन आधुनिक युग में स्थिति बदल रही है।

कथकळि के प्रमुख आधुनिक काव्यकारों का विवरण निम्नलिखित है:-

1. नाणु पिल्लै पन्निशेरी	निषलकुत्तु, भद्रकाळी विजय, पादुक पट्टाभिषेक, शंकर विजय।
2. वी कृष्णन तंपि	ताटकावध, वल्लीकुमारम्, चूडामणि।
3. डॉ एन वी कृष्णवारियर	बुद्ध चरित, चित्रांगदा ।
4. ओ एम सी नारायणन नंपूतिरि	स्नापक योहन्नान (बाइबिल), गुरुवायूरप्पन
5. प्रो. वी विजयन	मणिकंठ विजय (अय्यप्पन से संबंधित) प्रीति वैभव (अय्यप्पन से संबंधित) कर्ण और कुंती, वीणपूवुं ।
6. नीलंपेरूर कुट्टन पणिक्कर	- करुणा, कांचन सीता, डेविड विजय (बाइबिल)
7. गणपति शर्मा, अंपलपुषा	- स्यमंतक, पार्वती स्वयंवर
8. प्रो. अयमनम् कृष्ण कैमल	- डॉ फाऊस्ट
9. नीलंपेरूर रामकृष्णन नायर	त्रिपुरदहन, कर्णविजय, चंडाल भिक्षुकी, सीतावतार, हैमलेट, भीष्मशपथ, रावणवध।
10. डॉ अकवूर नारायणन	कवि-कोकिल, उत्तररामायण।

11. ओ.एम अनुजन	भवदेवचरित, भावशुद्धि, मातंगी, उर्वशी-पुरूरवा, मेघदूत।
12. आर रामचन्द्रन नायर ('तुलसीवनम')	- भट्टारक विजय, भामा वासुदेवम्, पार्वती-परिणय, कार्तिकेय विजय।
13. माधविकुट्टि के वारियर	विश्वामित्र, कुमारसंभव।
14. केशवन कलामंडलम	रुस्तम और सोहराब (बाइबिल), भीमबंधन, एकलव्य चरित, शाकुन्तलम्, रघुविजय, विचित्र विजय, अश्वत्थामा, सती, सुकन्या, बभ्रुवाहन।

मलयालम का आट्टकथा साहित्य श्रेष्ठ और संपन्न है और साहित्यिक सुषमा तथा अभिनयोपयुक्तता की दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट है। आट्टकथाओं की महत्ता शुद्ध साहित्यिक आधार पर नहीं आँकी जाती। मंचीय सफलता ही उसकी महिमा और लोकप्रियता का हेतु है। मंचीयता तब प्रभावशाली बनती है जब अभिनय, वेशभूषा, गीत, वाद्य, संगीत आदि के सामंजस्य से कथ्य की प्रस्तुति हो।

3.2.1.6 अभिनय

पहले ही विदित है कि कथकळि विभिन्न कलाओं का समन्वय है। साहित्य, संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्त-नृत्य आदि विविध कलाएँ इसमें समन्वित होती है। प्रत्येक का अपना महत्व है। परन्तु उसकी संप्रेषणीयता अभिनय पर अधिष्ठित है। कथकळि की सफलता उसके अभिनय की सफलता है और इसके लिए अन्य विधावों का कुशल सहयोग ज़रूरी है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय के चार भेद हैं आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक। कथकळि में इन चारों का समावेश दर्शनीय है। लेकिन वाचिक अभिनय नट के द्वारा न होकर गायक द्वारा संपन्न होता है, यह कथकळि की अपनी विशेषता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र ही कथकळि के अभिनय का आधार है इसलिए अभिनय संबंधी सभी नियम भी इसके अनुरूप गढ़ित किए गए हैं। हाँ, कथकळि की कलात्मक परिणति को ध्यान में रखकर, कुछ तोड मरोड अवश्य किए गए हैं। विस्तार भय से अभिनय संबंधी उन बातों का विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत नहीं है। लेकिन हस्तमुद्राओं का विवेचन अनिवार्य मानकर इसके साथ जोड दिया है।

3.2.1.7 हस्तमुद्राएँ (कैमुद्राएँ)

मुद्राएँ कथकळि की आत्मा है। भावप्रेषण की सार्वजनिक उपाधि है हस्तमुद्रा। सभी प्रकार के भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति मुद्राओं के ज़रिए संभव है। हस्तमुद्राएँ भावों और वस्तुओं को सहज ही

हृदयंगम बना देती है। वातावरण की सृष्टि में भी वे निपुण हैं। हस्तमुद्राओं के सामान्य ज्ञान के बिना कथकळि का सम्यक आस्वादन संभव नहीं है। पदों या गीतों में गुंफित भावों को अभिनय व हस्तमुद्राओं के द्वारा नट दर्शक तक पहुँचा देता है और रसानुभूति का संचार करता है। हस्तमुद्राओं का कथकळि में वही स्थान है जो भाषा में शब्दों का। अभिनय की वाणी है हस्तमुद्रा। विद्वानों के मतानुसार हस्तमुद्राओं के माध्यम से अभिव्यक्ति पानेवाले पदार्थों की संख्या पाँच सौ है। इससे यह विदित होता है कि शब्दों की सहायता के बिना भी भाव-संप्रेषण संभव है। मुद्राओं के बल पर वस्तु जगत तथा परिवेश का बोध जगाना कथकळि की असुलभ सिद्धि है।

'नाट्यशास्त्र',अभिनय दर्पण आदि अनेक शास्त्रार्थों से हस्तमुद्राओं के संबंध में कथकळि ने सामग्री ग्रहण की है। किन्तु कथकळि की मुद्राएँ कुछ निराली है। वे प्रमुख रूप से 'हस्तलक्षण दीपिका' नामक ग्रंथ पर अधिष्ठित हैं। यह किसी अज्ञात केरलीय ग्रंथकार की रचना मानी जाती है।[1]

सामान्यतः हस्तमुद्राएँ चार भागों में विभक्त हैं - असंयुक्त, संयुक्त, समान और मिश्र। असंयुक्त में एक हाथ से काम चलाता है। संयुक्त में दोनों हाथों का प्रयोग होता है। समान में एक से अधिक वस्तुएँ व्यंजित होती है, पर मुद्राएँ समान रहती हैं। मिश्र में दोनों हाथों की मुद्राएँ अलग रहती हैं।

'हस्तलक्षण दीपिका' के अनुसार प्रमुख हस्तमुद्राएँ चौबीस हैं - पताक, मुद्राख्य, कटक, मुष्टि, कर्तरीमुख, शुकतुंड, कपित्थक, हंसपक्ष, शिखर, हंसास्य, अंजलि, अर्द्धचन्द्र, मुकुर, भ्रमर, सूचिका मुख, पल्लव त्रिपताक, मृगशीर्ष, सर्पशिर, वर्धमानक, अराल, उर्णनाभ, मुकुल और कटका मुख।[2]

देखिए चित्र - 20, 21

मुद्राओं का सामान्य परिचय चित्र तालिका से मिला होगा। प्रत्येक मुद्राओं से कई भाव और

---

1. रामचन्द्र देव, कथकळि कलात्मक एवं साहित्यिक मूल्यांकन पृ. 371.

2. हस्तः पताको मुद्राख्यः कटको मुष्टिरित्यपि।
कर्तरीमुखसंज्ञश्च शुकतुंडः कपित्थकः।।
हंसपक्षश्च शिखरो हंसास्यः पुनरंजलिः।
अर्धचन्द्रश्च मुकुरो भ्रमरः सूचिकामुखः।।
पल्लवचरित्रपताकश्च मृगशीर्षाह्वयस्त था ।
पुनः सर्पशिरश्चाथ वर्धमानक एव च।।
अराल उर्णनाभश्च मुकुलः कटकामुखः।
चतुर्विंशतिरित्यते कराः शास्त्राज्ञ सम्मताः।। केपी नारायण पिषारटि,भरतमुनियुटे नाट्यशास्त्रम्(अनु.)-पृ.343-344

वस्तुएँ सूचित होते हैं और इनकी जानकारी के बिना भावग्रहण संभव नहीं है। आगे मुद्राओं से सूचित बातों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।[1] **(देखिए पृष्ठ सं. 150 क और ख)**

1. पताक मुद्रा

इसके दो भेद हैं - संयुक्त पताका मुद्रा और असंयुक्त पताका मुद्रा। संयुक्त पताका मुद्रा से ३६ पदार्थ सूचित होते हैं। वे हैं सूर्य, राजा, हाथी, सिंह. वृषभ, मगर, तोरण, लता, पताका, लहर, मार्ग, पाताल, भूमि, नाभि, पात्र, प्रासाद, संध्या, मध्याह्न, मेघ, वात्मीक, जाँघ, दास, चरण (संचार) पहिया पीठ, वज्र (इन्द्र का हथियार), गोपुर, चैत्य (बौद्ध विहार), गाडी, शांत, कुटिल, द्वार, तकिया, खाई, पैर और अर्गला। असंयुक्त पताक मुद्रा से निम्नलिखित वस्तुएँ सूचित होती हैं - दिवस, गगन, जीभ, माथा, शरीर, सामान, शब्द, दूत सिकता और पल्लव।

2. मुद्राख्य

संयुक्त मुद्राख्य मुद्रा - वृद्धि, गति, स्वर्ग, समुद्र, सांद्र (निबिड), विस्मृति, सब, विज्ञापन, वस्तु, मृत्यु, ध्यान, जनेऊ और सीधा।

असंयुक्त मुद्राख्य मुद्रा - मन, विचार, इच्छा, स्वयं, स्मृति, ज्ञान, सृष्टि, प्राण, पराभव, भविष्य,नहीं, केलिए।

3.कटक

संयुक्त कटक मुद्रा - विष्णु, श्रीकृष्ण, बलराम, बाण, स्वर्ण, चाँदी, राक्षसी, निद्रा, प्रमुख नारी, लक्ष्मी देवी, वीणा, नक्षत्र, माला नीलोत्पल, राक्षस, मुकुट, गदा, विशेष, रथ, साथ।

असंयुक्त कटक मुद्रा - पुष्प, दर्पण, स्त्री, होम, पसीना, अल्प, शब्द, तूणीर तथा सुगंध।

4. मुष्टि

संयुक्त मुष्टि मुद्रा सारथि, वरदान, सौंदर्य, पुण्य, भूत, बंधन, योग्यता, स्थिति, एडी, खींचना (आकर्षण), चामर, यम पंक, औषधि, धनुष, झूला, दान, परिक्रमा, खनन करना, छोडना, माला, शूरता, तप्त होना, बिखेरना व प्रसव।

असंयुक्त मुष्टि मुद्रा - वृथा, अत्यंत, धिक्कारना, मंत्री, लंघन, सहन, दान, अनुमति, जय, धनुष, हम, एक, जरा (बुढापा), हरण, भोजन।

5. कर्तरीमुख

1. रामचन्द्र देव, कथकळि कलात्मक एवं साहित्यिक मूल्यांकन - पृ.40-46.

संयुक्त कर्तरीमुख मुद्रा पाप, थकावट, ब्राह्मण, यश, हाथी का मस्तक, भवन, व्रत, शुद्धि, किनारा, वंश, भूख, सुनना, भाषण।

असंयुक्त कर्तरीमुख मुद्रा तू, एकवचन, समय भेद, बहुवचन, हम, मानव, मुख, विरोध शिशु, नेवला।

6. शुकतुंड

इसमें असंयुक्त हस्त का प्रयोग नहीं होता और संयुक्त से दो ही पदार्थों का बोध होता है - अंकुश और पक्षी।

7. कपित्थक

इसमें भी असंयुक्त का प्रयोग नहीं होता और सूचित वस्तुएँ हैं - जाल, संदेह, पिंछ, पीना, स्पर्श करना, लौटाना, बाहर, पृष्ठभाग, उतरना और कदम रखना।

8. हंस पक्ष

संयुक्त हंस पक्ष मुद्रा - चन्द्रमा, वायु, कामदेव, देवता, गिरिशिखर, नित्य, बंधु, सेज, शिला, सुख, वक्ष, स्तन, वस्त्र, वाहन, असत्य, लेटना, गिरना, आना, जनता, पीटना, ओठना, बिछाना, स्थापना करना, प्रणाम करना, नहाना, चंदन, आलिंगन, अनुगमन, पालन, पहूँचाना, गदा, कपोल, कंधा, केश, आगमन, अनुग्रह, मुनि, इति, मत्स्य, नाम, पूजा और कछुआ।

असंयुक्त हंसपक्ष मुद्रा - तुम लोग, तलबा, कोप, अब, मैं, सामने, फारसा, ज्वाला, आह्वान, गोदी में बैठना और रोकना।

9. शिखर मुद्रा

चलना, पैर, नेत्र, देखना, मार्ग, अन्वेषण, कान और पीना। इसमें असंयुक्त नहीं होता।

10. हंसास्य

संयुक्त हंसास्य मुद्रा दृष्टि, मृदुलता, धूल, धवल, नीला, लाल, करुणा, और रोमालि।

असंयुक्त हंसास्य मुद्रा - वर्ष का आरंभ, केश, रेखा एवं त्रिवली।

11. अंजलि

संयुक्त अंजलि मुद्रा - वर्षा, वमन, आग, प्रवाह, स्वर, प्रभा, केश, कुंडल, संताप, संभ्रम, सदा, नदी, स्नान, बहना और रक्त।

असंयुक्त अंजलि मुद्रा का प्रयोग नहीं होता।

चौबीस हस्तमुद्राएँ

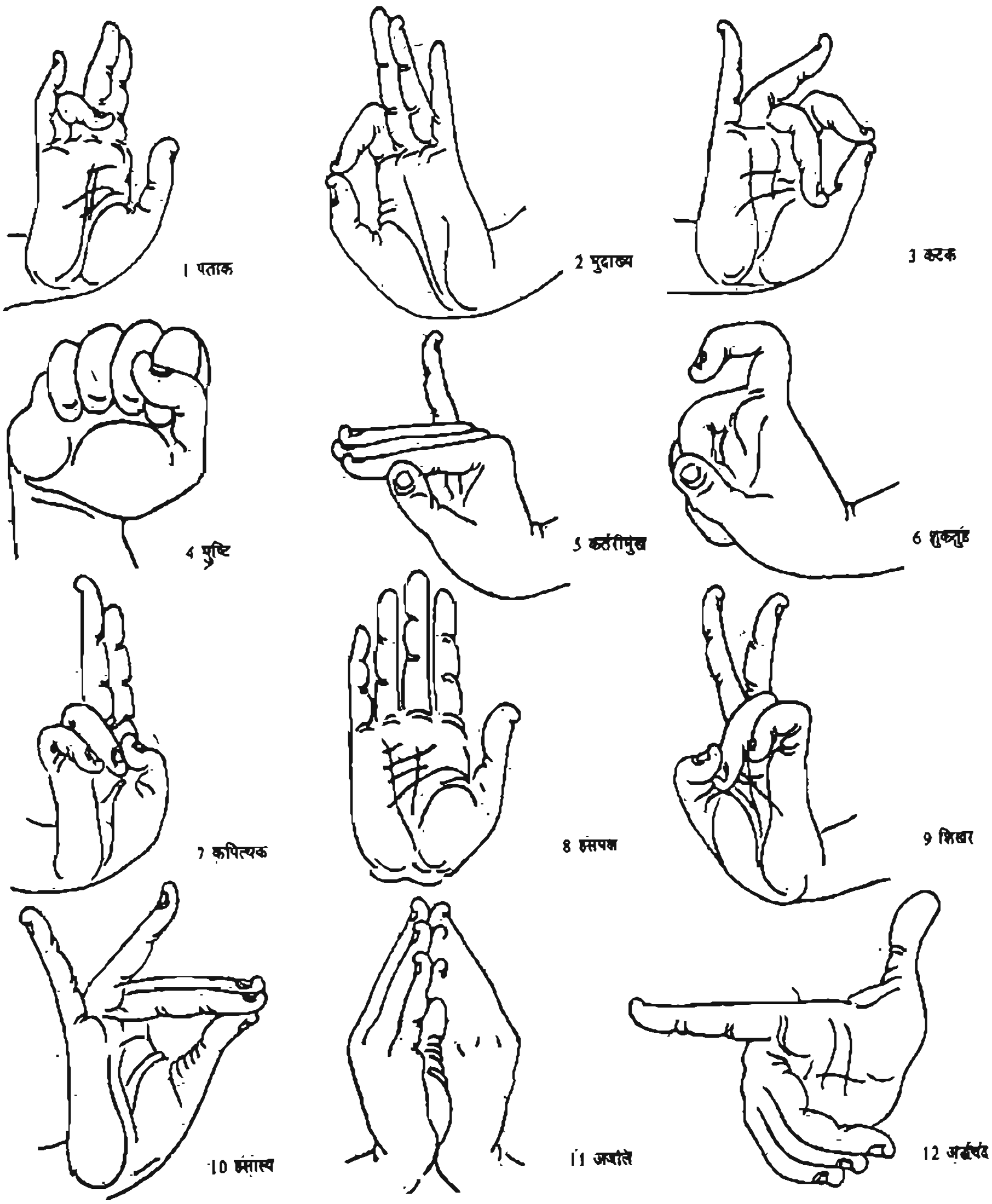
1 पताक
2 मुद्राख्य
3 कटक
4 मुष्टि
5 कर्तरीमुख
6 शुकतुंड
7 कपित्थक
8 हंसपक्ष
9 शिखर
10 हंसास्य
11 अंजलि
12 अर्धचंद

अभिनय

13 मुकुर

14 भ्रमर

15 सूचीमुख

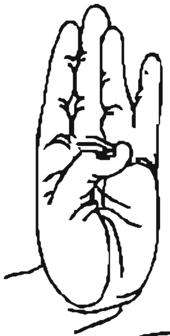
16 पल्लव

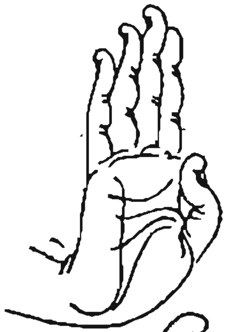
17 त्रिपताक

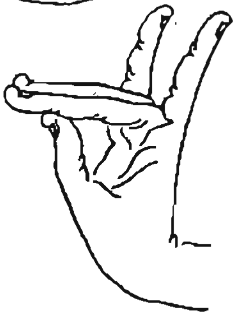
18 मृगशीर्ष

19 सर्पशिर

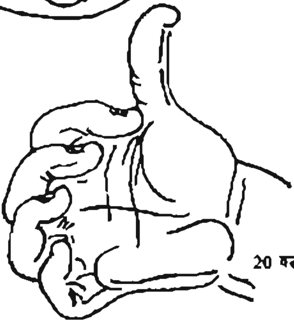
20 वर्द्धमानक

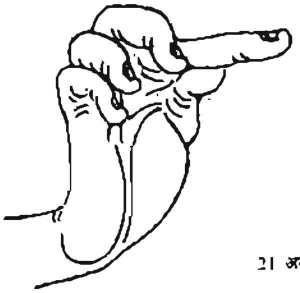
21 अराल

22 ऊर्णनाभ

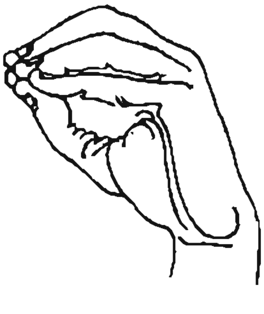
23 मुकुल

24 कटकामुख

12. अर्द्धचन्द्र

संयुक्त अर्द्धचन्द्र मुद्रा यदि, क्या, विवशता, आकाश, धन्य, देव, स्मृति, तृण और पुरुषों के केश।

असंयुक्त अर्द्धचन्द्र मुद्रा - प्रस्थान, मंदहास, क्या, निंदा।

13. मुकुर

संयुक्त मुकुर मुद्रा - दंष्ट्रा, वियोग, जांघ, नितंब, वेद, सहोदर, स्तंभ, ओखला, वेगवाला,पिशाच, पुष्टि।

असंयुक्त मुकुर मुद्रा - शत्रु, भ्रमर, रश्मि, क्रोध, अच्छा, कंकण, गला, अंगद (एक आभूषण) निषेध।

14. भ्रमर

संयुक्त भ्रमर मुद्रा पंख, जल, गान, छत्र तथा हाथी का कान।

असंयुक्त भ्रमर मुद्रा - गंधर्व, जन्म, भीति एवं रोदन।

15. सूचीमुख

संयुक्त सूचीमुख मुद्रा - भिन्न, उछलना, संसार, लक्ष्मण, पतन, दूसरा, मास, भौहें, शिथिल, पूंछ।

असंयुक्त सूचीमुख मुद्रा - एक व्यक्ति, हाथ, जड,अन्य, बहुवचन, कान, कला, पुरातन काल, यह, ये, राज्य, थोडा, साक्षी, तिरस्कार, आओ तथा जाओ।

16. पल्लव

संयुक्त पल्लव मुद्रा - वज्र गिरि शृंग, गाय के कान, नेत्र की लंबाई, महिष (भैंस) परिध (एक हथियार) माला, सींग तथा लपेटना।

असंयुक्त पल्लव मुद्रा - दूरी, न्यास (जमानत) धूप, पूँछ, बेंत और विविध प्रकार के धान।

17 त्रिपताक

केवल संयुक्त मुद्रा में इसका प्रयोग होता है सूर्यास्त, आरंभ, अये(संबोधन), पीना, शरीर, माँगना।

18. मृग शीर्ष - मृग और परमात्मा

19. सर्पशिर

केवल संयुक्त में इसका प्रयोग होता है। चंदन, सर्प, धीरे-धीरे, अर्घ्य, विकीर्ण करना, महर्षि, हाथी के कानों को हिलाना, रक्षा करना, मालिश करना।

20. वर्द्धमानक

संयुक्त वर्द्धमानक मुद्रा स्त्रियों का कुंडल, रत्नहार, घुटने, योगी, भेरी तथा महावत।

असंयुक्त वर्द्धमानक मुद्रा - भँवर, नाभि व स्तन।

21. अराल - मूर्ख, वृक्ष, कील, कलिका तथा अंकुर

22. उर्णनाभ घोडा, फल, व्याघ्र, मक्खन, हिम, बहुत तथा कमल।

23. मुकुल सियार, बंदर, मुरझाना एवं भूलना।

24. कटकामुख कंचुक, किंकर, वीर पुरुष, मल्ल, तीर, चलाना तथा बाँधना।

अराल, उर्णनाभ, मुकुल तथा कटकामुख में असंयुक्त मुद्रा का प्रयोग नहीं होता।

उपर्युक्त विवेचन नाट्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र के अनुवाद, हस्तलक्षण दीपिका आदि ग्रंथों के आधार पर किया गया है। मुद्राओं संबंधी तथ्य संस्कृत भाषा पर आधारित होने के कारण सभी भारतीय भाषाओं तथा नृत्यों में इनका प्रचलन है। शास्त्रीय नृत्त-नृत्यों में मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन विभिन्न भेदों में मुद्राओं का प्रयोग भी अलग - अलग तरीके से होता है। आगे भी शास्त्रीय नृत्यों का विश्लेषण होने के कारण ही मुद्राओं का विस्तृत व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है। यदि कथकळि मुद्राओं का सामान्य ज्ञान दर्शक को है तो आस्वादन अधिक सुगम हो जाता। इतना ही नहीं भाषा परक जटिलता भी कम हो जाएगी।

3.2.1.8 वाचिक अभिनय

कथकळि का वाचिक अभिनय एक विशेष प्रकार का होता है। नट वचनों का उच्चारण नहीं करता। कभी-कभी कुछ पात्र अपने मुँह से एक विशेष ध्वनि निकालते हैं लेकिन उसका वाचिक अभिनय से कोई संबंध नहीं है। अभिनेता के निकट ही खडे होकर दो गायक गीत गाते रहते हैं। गीतों या पदों के अर्थों को ही नट अभिनय द्वारा दर्शकों के लिए बोध गम्य बनाता है। हस्तमुद्राएँ, मुख मुद्राएँ, चरणन्यास आदि तो अर्थ संप्रेषण में पूर्णतया समर्थ है। सहृदय दर्शक गीत सुनते हुए उसके भावों का हृदय में संयक् आकलन करते हैं। अभिनय में वह पूर्णतया रम जाते हैं। तभी रसास्वादन संभव होता है।

'कूटियाट्टम्' में नट स्वयं वचनों का उच्चारण करता था। एक ही शब्द का कई बार उच्चारण करते हुए उसके अर्थों का अभिनय करना 'कूटियाट्टम्' की प्रथा थी। इसी कारण एक ही नाटक के अभिनय के लिए महीनों का समय लगता था। यह अत्यंत बोझिल और जटिल कार्य था। 'रामनाट्टम्' में भी अभिनेता स्वयं वाचिक अभिनय करता था कालान्तर में यह कार्य अतीव दुष्कर प्रतीत हुआ और फलतः गीत गाने का कार्य गायकों को सौंप दिया। इसी रीति का अनुकरण कथकळि ने भी किया। असल में गायकों का स्थान कथकळि में अभिनेता से उच्च नहीं तो निम्न भी नहीं है। वे ही समस्त अभिनय प्रक्रियाओं के नियामक हैं। गायन के भार से विमुक्त अभिनेता अपनी दक्षता पूर्णतः प्रकट करते हैं आंगिक और सात्विक अभिनय के माध्यम से।

कथकळि नटों के लिए यह असंभव है कि वे नृत्त-नृत्य के लिए विशिष्ट अंग-भंगिमा प्रदर्शन, अवयवों का आकुंचन-विकुंचन, हस्तमुद्रा, चरणन्यास आदि का कार्य करते हुए गीत भी गाएँ। वह स्थिति विलक्षण और नीरस प्रतीत होगी इसलिए गायकों को नियुक्त किया हैं। कथकळि गायकों को 'भागवतर' कहा जाता है। दो गायकों में से एक प्रमुख होता है और अन्य सहायक। प्रमुख को 'पोन्नानि' और सहायक को 'शिंकिटि' कहते हैं। 'पोन्नानि' शब्द का अर्थ है अग्रणी और शिंकिटि का संघटी।

3.2.1.9 आहार्य अभिनय

उचित वेश-भूषा ही आहार्य अभिनय से व्यंजित होता है। पात्र की वेशभूषा उसके स्वभाव का परिचय देती है। वातावरण का भी वह द्योतक है। आधुनिक नाटकों में रंगमंच, पर्दा, कक्षा और उसकी अन्य साज-सज्जाओं का जो भी विधान है, उसे भी आहार्य के अंतर्गत माना जाना चाहिए। कथकळि में आहार्य अभिनय का विशेष महत्त्व है। नाटक में तो वेश-भूषा आदि के संबंध में कोई अपरिवर्तनीय नियम नहीं है। लेकिन कथकळि की बात यह नहीं है। उसमें पात्र की वेश-भूषा, साज-सज्जा, मुख राग आदि अधिकाँश में नियत और परंपरा प्रतिष्ठित है। कथा और कर्ता कोई भी क्यों न हो, घटना चक्र का विकास किसी भी प्रकार का क्यों न हो, पात्रों का वेष पुराने सुनिश्चित नमूनों से भिन्न प्रकार का नहीं होगा।[1] फिर भी कथकळि के पात्रों की वेश-भूषा परिवर्तित होती रहती है। पर उसकी अलौकिकता और दिव्यता में कोई अन्तर नहीं। कथकळि के पात्र अधिकतर अलौकिक हैं। उनके चरित्र असाधारण। अतएव वेश-भूषा अलौकिक होती है। इसलिए ऐसे पात्रों को सामने पाकर हम विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं, उनकी युक्तिसहता पर ध्यान ही नहीं देते।

1. डॉ एस के नायर, साहित्य चरित्रम् प्रस्थानंङळिलूटे - पृ. 563

पात्रों के स्वभाव, आचरण, प्रकृति आदि को ध्यान में रखकर कथकळि के वेषों को मुख्यतया पाँच भेदों में विभक्त किया गया है - 'मिनुक्कुँ','पच्चा','कत्ति' 'करि' और 'दाढी'।[1]

3.2.1.9.1 मिनुक्कुँ

'मिनुक्कुँ' का शब्दार्थ है, मुलायम, मृदुल या शोभा युक्त। इसमें मुखलेपन बहुत ही महीन और मृदुल रहता है। काजल लगाकर आँखों और भौंहों में गहरी कालिमा लाई जाती है। आँखों में कालिमा के साथ लालिमा भी आवश्यक है। इसके लिए 'शुंठा पुष्प' इस्तेमाल किया जाता है। लालिमा के कारण नेत्रों की ज्योति और उज्ज्वलता और बढ़ती है। रसाभिव्यंजन के लिए यह बहुत आवश्यक है। मुनि, ब्राह्मण, दूत, नारी आदि पात्र मिनुक्कुँ पात्र के उदाहरण हैं।

3.2.1.9.2 पच्चा वेष

'पच्चा' का शब्दिक अर्थ है हरा। इसके दो भेद हैं - एक में रंग गहरा रहता है और दूसरे में हल्का। सात्विक प्रकृति के पात्रों के लिए पच्चा वेष निश्चित है। राम, कृष्ण आदि पच्चा वेष के उदाहरण हैं। धीरोदात्त तथा साहसी पात्रों के लिए भी पच्चा वेष स्वीकार किया गया है। इसमें कागज़ के लंबे चाकू जैसे टुकडों को गाल के निचले भागों में लगाते हैं। पच्चा वेष का मुकुट बडा मनमोहक होता है। पच्चा में पीला रंग मिलाने से शंकर, ब्रह्मा आदि के लिए उपयुक्त वेष तैयार करते हैं।

3.2.1.9.3 कत्ति वेष

यह धीरोदात्त नायकों का वेष है। दुर्योधन, कीचक, शिशुपाल, नरकासुर आदि कत्ति-वेष के उदाहरण है। कथकळि में सर्वाधिक सुंदर वेष है कत्ति। कत्ति का शाब्दिक अर्थ है छुरी। भौंहों के ऊपर, आँखों के नीचे और नाक के निकट छुरी के आकार में लाल रंग लगाया जाता है। नासाग्र और भ्रूमध्य में छोटे कमल मुकुल जैसे दो 'चुट्टिपूवुँ' होते हैं। कत्तियाँ कई प्रकार की होती है - 'कुरुंकत्ति','नेटुंकत्ति' आदी। 'कुरु' छोटा है और 'नेटु' लंबा। कुरुंकत्ति रावण, दुर्योधन, कंस आदि के लिए है और नेटुंकत्ति, किर्मीरण, हिडिंब, कच जैसे पात्रों के लिए।

1. रामकृष्ण पिल्लै, कथकळि - पृ. 82-90

3.2.1.9.4 दाढ़ी वेष

इसके लिए निबिड, लंबी-चौडी कृत्रिम दाढ़ी की आवश्यकता है। पात्रों के स्वभाव के अनुसार इसके तीन भेद हैं - लाल, काली एवं सफेद। बाली, सुग्रीव आदि के लिए लाल, निषाद, आखेटक आदि पात्रों के लिए काली दाढ़ी आवश्यक है। हनुमान, शकुनि आदि पात्रों के लिए सफेद दाढ़ी निर्धारित है। महर्षियों और मुनियों के लिए काली या सफेद दाढ़ी संभव है।

3.2.1.9.5 करि वेष (काला)

'करि वेष'अत्यंत भीषण और कराल होता है। मुख पर काले रंग का लेपन होता है इसलिए इसका नाम 'करि' यानि काला पडा। शूर्पणखा, सिंहिका, नक्रतुंडी जैसे भयंकर पात्रों के लिए करि वेष निर्धारित है।

कथकळि में पात्रों के मुकुट, पहनावा, आभूषण आदि भी अत्यंत असाधारण और आश्चर्यजनक होते हैं। 'कत्ति' और 'पच्चा' वेषों के मुकुट गोलाकार हैं। राम, कृष्ण आदि के मुकुट भिन्न प्रकार के होते हैं जिन्हें 'मुटि'कहते हैं। मुकुटों के पीछे घने, लंबे कृत्रिम केशजाल लटकते हैं। पृष्ठ भाग अत्यंत पृथुल बनाए जाते हैं। स्त्री पात्रों के लिए सामान्यतः मुकुट का प्रयोग नहीं होता।

उपर्युक्त वेष निर्धारण से यह पता चलता है गुणों के आधार पर ही वेषों का निर्धारण हुआ है। 'पच्चा' और 'मिनुक्कु' सत्वगुण प्रधान है। 'कत्ति' और 'दाढ़ी' का संबंध रजोगुण से है। 'सफेद दाढ़ी' भी सात्विक है। 'करि वेष' तामसिक है।

3.2.1.10 कथकळि संगीत

ललित व शास्त्रीय कलाओं में संगीत का प्रमुख स्थान है। संगीत के साथ संपृक्त है वाद्य और नृत्य। कथकळि में प्रयुक्त राग-रागनियों की रीति कर्नाटिक शैली से भिन्न है। इसको केरलीय विद्वान केरल की निजी शैली मानते हैं। किन्तु इसकी आलापन-शैली का संबंध वैदिक साम संगीत से है। कथकळि संगीत सोपान संगीत से जाना जाता है। कथकळि कला और संगीत दोनों पर गीतगोविन्द का गहरा प्रभाव है। अष्टपदि के गीत विष्णु मंदिर के सोपानों पर अब भी गाए जाते हैं। इसी आधार पर कथकळि संगीत का नाम सोपान संगीत नाम पडा। इसमें स्वरों का प्रयोग नहीं होता। कथकळि का संगीत कोरा गान ही नहीं कहा जा सकता।

3.2.1.11 कथकळि के वाद्य

कथकळि में निम्नलिखित वाद्य प्रयुक्त होते हैं - 'मद्दळम्', 'चेंडा', 'चेङ्ङला', 'इलत्ताळम' और 'श्रुतिपेटी'।[1] नट जब अभिनय करते हैं, वादक अपने बाजों का तदनुरूप प्रयोग करते हैं। तभी 'मेळम्'(एक से अधिक वाद्यों का एकतान और लयात्मक वादन) भावानुकूल हो सकता है। 'कथकळि मेळम्' दो भागों में विभक्त है 'शुद्ध मेळम्' तथा 'अभिनय मेळम्'। 'शुद्ध मेळम्' में वाद्यों का विधिपूर्वक प्रयोग होता है और 'अभिनय मेळम्' में अभिनय के अनुरूप प्रयोग। कथकळि में 'अभिनय मेळम्' की अधि उपयोगिता है। प्रमुख गायक 'पोन्नानि' के हाथ में 'चेंङ्ङला' हमेशा रहती है और वही अभिनय का नियामक है। गीत के अनुसार 'चेंडा' का वादन और अभिनय का कार्य चलता है। नारी पात्रों की अभिनय वेला में 'चेंडा' का प्रयोग नहीं होता। 'मद्दळम्' का ही वादन किया जाता है। कथकळि-प्रस्तुति की सफलता में वादकों का योगदान कदापि लघुतर नहीं माना जा सकता।

3.2.1.12 रंगमंच

कथकळि का रंगमंच बहुत ही सरल है। प्रस्तुति के लिए विशेष नाट्यगृह की आवश्यकता नहीं। कोई भी स्थान जहाँ सभा सदों को बैठने की सुगमता हो, कथकळि का नाट्य गृह हो सकता है। प्रारंभ में कथकळि भी मंदिरों और प्रासादों के प्राकारों के अंदर ही प्रस्तुत होती थी। पर धीरे-धीरे एक जनकला के रूप में वह उन्मुक्त वातावरण में आ गई। मंच के लिए एक छोटा सा स्थान पर्याप्त है। रंगमंच की कोई दूसरी साज सज्जा आवश्यक नहीं। मुख-राग-लेपन, वेष धारण आदि के लिए बहुत समय आवश्यक है। इसलिए नेपथ्य निकट ही होना चाहिए। नटों के सामने खडे हुए दो व्यक्ति यवनिका या पर्दा आवश्यकतानुसार ऊपर चढ़ाते या हटाते रहते हैं। पात्रों के रंगप्रवेश और बीच की अवकाश वेला में ही यवनिका की आवश्यकता होती है।

3.2.1.13 प्रारंभिक कार्यक्रम [2]

कथकळि का अभिनय कई भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग में कुछ विशेष कार्यक्रम है। इनमें प्रमुख हैं -'केळिकोट्टुं','तोटयम्','पुरप्पाटुं','तिरनोट्टम्', 'आट्टम्' और 'कलाशम्' ।

3.2.1.13.1 केळिकोट्टुं

अभिनय की सूचना देने के लिए संध्या के कुछ पहले ही 'चेंडा' 'मद्दळम्', 'चेंङ्ङला' जैसे

---

1. इसके संबंध में विवरण दिए जा चुके हैं।

2. रामकृष्ण पिल्लै, कथकळि - पृ. 72

वाद्य बजाया जाता है। कथकळि की सूचना देने हेतु प्रस्तुत इस कार्य को 'केळिकोट्टुं'[1] कहते हैं। रात में 'कळि' के लिए दीपक जलाया जाता है, बाजे बजाए जाते हैं। अभिनय का आरंभ होनेवाला है। दो व्यक्ति इस समय यवनिका या पर्दा पकडते हैं और भागवतर गायन शुरू करते हैं।

3.2.1.13.2 तोटयम्[2]

इसके बाद 'तोटयम्' है। नाट्यशास्त्र में जिसे पूर्वरंग कहते हैं, कथकळि में वही 'तोटयम्' है। 'तोटयम्' में आराध्य देवता की स्तुति की जाती है। एक बाल पात्र या स्त्री पर्दे के पीछे नृत्य करती है। हस्तमुद्रा का प्रयोग नहीं होता। नाट्यशास्त्र में पूर्वरंग के बाद नांदी का क्रम है। इसी का अनुकरण करते हुए कथकळि में एक वंदनापरक श्लोक पढ़ा जाता है। तत्पश्चात् 'मंजुतरा' से शुरू होनेवाला गीतगोविन्द पद गाया जाता है। 'मंजुतरा' को 'मेळपदम्'भी कहते हैं।

3.2.1.13.3 पुरप्पाटुं[3]

'मंजुतरा' के बाद 'पुरप्पाटुं' है। 'पुरप्पाटुं' का शाब्दिक अर्थ है प्रस्थान अथवा आविर्भाव। पात्र के प्रथम प्रवेश का यह अवसर है। उसके दर्शन से किसी देवी देवता के प्रत्यक्ष होने की प्रतीति हो सकती है। पात्र के चरित्र के अनुरूप वातावरण की सृष्टि की जाती है। वाद्यघोष और दीपप्रभा से काम लिया जाता है। असुर पात्रों के 'पुरप्पाटुं' में वाद्यों की प्रचण्ड ध्वनि से साधारण प्रेक्षक सहम जाते हैं। क्रमशः पर्दा हटाया जाता है। पात्र पूर्ण प्रौढ़ता के साथ रंगवेदी पर प्रविष्ट हो जाता है। इस समय गानेवाले 'पद' का नाम 'निलपदम' है।

3.2.1.13.4 तिरनोट्टम्[4]

वाद्यघोष के साथ, यवनिका के पीछे, उज्ज्वल विपुल दीप के सम्मुख, मुख थोडा सा दिखलाता, छिपाता, विशिष्ट नृत्य-भंगिमा के साथ पात्र पूर्णतया अपने को सदस्यों के सामने प्रस्तुत करता है। मुख्य अभिनय शुरू होने से पहले ही यह परिपाटि निभायी जाती है।

3.2.1.13.5 कलाशम्[5]

कथकळि तांडव प्रधान नृत्य है फिर भी इसमें लास्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्त्रियों के लिए

1. रामकृष्ण पिल्लै, कथकळि - पृ. 72
2. वही - पृ. 72-82
3. वही
4. वही
5. वही

केवल लास्य निर्धारित है। कलाशम अभिनय का चरमोत्कर्ष है। इससे रस संचार संभव होता है। 'कलाशम्' संज्ञा भेद से मणिपुरी, कथक, भरतनाट्यम् सब में वर्तमान है। वस्तुतः तांडवोचित विशिष्ट चरणन्यास ही 'कलाशम्' है। 'कलाशम' के साथ मंच से नट का निष्क्रमण होता है।

कथकळि में प्रयुक्त शब्दावली के विश्लेषण से यह बात साफ नज़र आती है कि मुद्राओं को छोड़कर ज़्यादातर शब्दों में प्रांतीयता की अमिट छाप लगी हुई है। प्रांतीयता की विशेष बातों से अवगत हुए बिना इस कला का पूर्ण आस्वादन संभव नहीं है। लेकिन कथानक मुख्य रूप से पुराणों और इतिहासों से ग्रहीत होने के कारण उसमें जटिलता की गुंजाइस कम है। कथकळि की वेशभूषा, वाद्य एवं मंचीयता भी ध्यान आकर्षित करनेवाली बातें हैं। यहाँ अनुवाद और कठिन हो जाता है क्योंकि हिन्दी भाषी इलाकों में ऐसे शब्दों का नितांत अभाव है। इसलिए लिप्यंतरण ही एकमात्र उपाय है।

3.2.2 तुळ्ळल

'तुळ्ळल' के प्रमुख जनवादी दृश्य कलाओं में एक है। श्री कुञ्चन नंपियार इसके प्रणेता है। मनोरंजन व हास्य-व्यंग्य इस कला की सबसे बडी विशेषता है।

तुळ्ळल के आविर्भाव के संबंध में एक दन्तकथा प्रचलित है। कुञ्चन नंपियार अंबलपुषा श्रीकृष्ण मंदिर में 'मिषावुँ' बजानेवाला कलाकार था। एक बार 'कूत्तुं' के दौरान कुञ्चन नंपियार सो गया तब चाक्यार ने उसकी हँसी उठाई। सभा में अपमानित नंपियार ने इसके बदला लेने की इच्छा से उसी रात में ही 'कल्याण सौगन्धिकम' कथा को 'तुळ्ळल' का रूप प्रदान किया।[1] अत्यंत ललित एवं मोहक वेश भूषा तथा मलयालम भाषा के द्वारा प्रस्तुत यह नृत्य कला बहुत जल्दी ही आम जनता के बीच में लोकप्रिय हो गयी। तुळ्ळल से प्रभावित दर्शक 'कूत्तुं' को छोड़कर इसका आस्वादन के लिए आने लगे। संस्कृत की भाषापरक जटिलता से मुक्त इस कला का प्रचार बहुत शीघ्र ही हो गया।

स्वयं गीत गाते हुए अभिनय एवं मुद्राओं के द्वारा किए जानेवाला एक विशेष प्रकार का नृत्य है 'तुळ्ळल'।[2] जब समाज के ऊँची जाति के लोग मंदिरों के इर्द-गिर्द बैठकर संस्कृत भाषा पर आधारित 'कूत्तुं','कूटियाट्टम','कथकळि' आदि का आस्वादन करते थे तब पिछडे जातियों के लोगों को मनोरंजन के लिए किसी दूसरी राह ढूँढ लेनी थी। ऐसे अवसर पर 'तुळ्ळल' का सृजन हुआ। मनोरंजन से बढ़कर समाज में प्रचलित बुराइयों और विसंगतियों की खिल्ली उठानेवाला 'तुळ्ळल'कलाकार समाज सुधारक की भी भूमिका निभाता है। 'तुळ्ळल' प्रस्तुत करनेवाले नर्तक को 'तुळ्ळलकारन' कहते हैं।

1. वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरि, कला पठनम् - पृ. 38
2. के पी नारायण पिषारडी, कलालोकम् - पृ. 85-91

तुळ्ळल तीन प्रकार के होते हैं 'परयन तुळ्ळल','शीतंकन तुळ्ळल' और 'ओट्टन तुळ्ळल'। एक दृष्टि से देखें तो इन तीनों को अछूत जातियों की ही कला कह सकते हैं। 'शीतंकन' पुलय जाति का द्योतक है। 'पुलयर' [1] केरल की एक निम्न जाति के लोग हैं जो खेतों में काम करते थे और अछूत समझे जाते थे। 'परयन तुळ्ळल' नाम से ही जाति का पता चलता है। 'ओट्टन तुळ्ळल' भी इसी के समान निम्न जाति के प्रस्थान की सूचना देता है। डॉ.एस.के. नायर के अनुसार 'कणियान' लोगों के 'कोलमतुळ्ळल' में आज भी तुळ्ळल का सार्वजनिक रूप दर्शनीय है। 'ओट्टन' शब्द का अर्थ है भगानेवाला। कोलमतुळ्ळल में किसी पैशाचिक शक्ति को दूर भगाते हैं। [2]

3.2.2.1 परयन तुळ्ळल[3]

धीमी गति से तथा धीमे गीतों के ज़रिए 'परयन तुळ्ळल' की प्रस्तुति होती है। इसके लिए नाग फण के आकारवाला मुकुट इस्तेमाल किया जाता है। सिर में लाल रेश्मी कपडा (पट्टुं) और झालर लगाते हैं। पूरे शरीर में चन्दन लगाते हैं और कमर में लाल रेश्मी कपडा विशेष तरीके से बाँधते हैं। चेहरे पर कोई सजावट नहीं किन्तु आँखों में काजल लगाते हैं। गले में मालाएँ व हाथ और पैरों में चूडी या कंगण पहनने की रीति है। एक पैर में 'वाकचिलंबु' धारण करते हैं। 'परयन तुळ्ळल' सामान्यतः सुबह खेला जाता है।

3.2.2.2 शीतंकन तुळ्ळल [4]

इसमें 'परयन तुळ्ळल' से बढकर तेज़ गति में गीत गाकर नृत्य प्रस्तुत करते हैं। अपराह्न में इसकी प्रस्तुति की जाती है। सिर में बायीं ओर से आधा फूट ऊँचाई पर 'कोंडा' नामक चीज़ रखकर काले कपडे ढँककर बाँधते हैं। मुकुट का प्रयोग इसमें नहीं है। चेहरे पर सजावट के नाम पर आँखों पर काजल लिखने की रीति है। बिंदी भी लगाते हैं। 'कुरुत्तोला' (नारियल के कोमल पत्ते) से बनाए गए आभूषण गले और हाथ में पहनते हैं। पैरों पर घूँघरू बाँधते हैं।

3.2.2.3 ओट्टन तुळ्ळल [5]

'परयन तुळ्ळल' एवं 'शीतंकन तुळ्ळल' की तुलना में 'ओट्टन तुळ्ळल' अत्यंत मनमोहक

1. इसका विवरण दिया जा चुका है।
2. एस के नायर, संस्कार केदारम् - पृ. 139-140
3. वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरि, कला पठनम् - पृ. 38-39
4. वही - पृ. 39
5. वही पृ. 39-40

एवं आकर्षक है। कथकळि के समान वेशभूषा और साज-सजावट इसकी विशेषता है। चेहरे पर हरा रंग लगाकर आँखों और भौंहों को एक विशेष प्रकार से काजल लगाकर सजाते हैं। कडा-कंकण, मालाएँ व घूँघरू धारण करते हैं। वाद्य के रूप में 'तोप्पि मद्दळम्','कैमणि' (हाथ की घंटी) इस्तेमाल करते हैं। नट द्वारा गाए जानेवाले गीतों को नेपथ्य में खडे अनुचर या 'शिंकटि' दुहराते हैं। कथकळि के समान तुळ्ळल ने भी पुराणों से अपने लिए कथानक चुने हैं। कुञ्चन द्वारा लिखी गई प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित है -

'सभा प्रवेशम्', 'त्रिपुरा दहनम्','हरिश्चन्द्र चरितम्', 'पुलिंदी मोक्षम्', 'नारायणी चरितम्', 'दक्षयागम्', 'कीचक वधम्', 'सुन्दोपाख्यानम्' (परयन तुळ्ळल),'कल्याण सौगंधिकम्', 'हरिणी स्वयंवरम्','ध्रुव चरितम्','कृष्णलीला' 'कालीय मर्दनम्', 'पौण्ड्रक वधम्'(शीतंकन तुळ्ळल),'प्रदोष महात्म्यम्','रुक्मिणी स्वयंवरम्', 'घोषयात्रा' 'कार्तवीर्याजुन विजयम्','रामानुज चरितम्', 'नल चरितम्','स्यमन्तकम्', 'बाणयुद्धम्','सन्तानगोपालम्','सीता स्वयंवरम्', 'रावणोद्भवम्', 'बालिविजयम्', 'हिडिंबवधम्', 'बक वधम्', 'निवात कवच कालकेय वधम्' (ओट्टन तुळ्ळल)

यदि उपर्युक्त रचनाओं के कथानक पर विचार करें तो पता चलेगा कि ये हिन्दी भाषी लोगों के लिए चिरपरिचित है। लेकिन गाए जानेवाले गीत ध्वन्यात्मकता पर आधारित होने के कारण भाषा की पकड बहुत ज़रूरी है। अभिदार्थ से बढकर लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ प्रमुख हैं। प्रसंगानुरूप हास्य और व्यंग्य समझने से ही रसास्वादन संभव हो जाता है।

3.2.3 मोहिनियाट्टम्[1]

'मोहिनियाट्टम्' मंदिर की संस्कृति से जन्म लेनेवाला एक विशिष्ट नृत्य है। 'मोहिनी' का अर्थ है सुन्दर नारी और 'आट्टम्' का अर्थ है नृत्य या अभिनय। इसलिए सुन्दर स्त्रियों का नृत्य इसका संज्ञापरक अर्थ है। 16 वीं शती में मषमंगलम नारायणन नंपूतिरि द्वारा रचित 'व्यवहारमाला' नामक ग्रंथ में 'मोहिनियाट्टम्' नामक नृत्य के उल्लेख से केरल की इस कला की प्राचीनता का बोध होता है।[2] 'कूटियाट्टम्' से 'कृष्णनाट्टम्','कृष्णनाट्टम्' से 'रामनाट्टम्', 'रामनाट्टम्' से कथकळि को रूपायित करनेवाले परिवर्तन काल के अन्तराल में कही 'मोहिनियाट्टम्' भी जन्म लिया होगा।

भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्रम्'में पार्वती द्वारा प्रस्तुत एक लास्य नृत्य का उल्लेख मिलता है। इसको 'नटराज' के 'तांडव' से बढ़कर आकर्षक एवं मोहक बताया गया है। इसके बाद इलंको अटिकळ के

1. कला मंडलम् कल्याणीकुट्टियम्मा, मोहिनियाट्टम् - चरित्रवुम् आट्टप्रकारवुम् ।
2. वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरि, कला पठनम् - पृ. 36

'चिलप्पतिकारम्'तथा कालिदास के 'मालवाग्निमित्रम्'में भी इस प्रकार के लास्य नृत्यों का उल्लेख मिलता है। पहले दक्षिण भारत के मंदिरों में 'देवदासी प्रथा' प्रचलित थी। केरल में इसप्रकार की औरतों को 'तेविटिच्ची' पुकारते थे। प्रमुख रूप से इन देवदासियों के द्वारा प्रस्तुत दासिनृत्य ही 'मोहिनियाट्टम्' का प्रथम सोपान है। इसके अलावा उस समय केरल के प्रचलित 'नङ्ङियार कूत्तु' 'तिरुवातिर कळि','कथकळि'आदि नृत्यों से भी पर्याप्त सहायता ग्रहण कर ही 'मोहिनियाट्टम्' का विकास हुआ। दक्षिण भारत का मशहूर नृत्य'भरतनाट्यम्' की कई समानताएँ भी इसमें पायी जाती हैं। इसकी भी शुरूआत 'चेलकेट्टुं' से होती है। इसके बाद क्रमशः 'जातिवर्णम्','पदम्','वर्णम्','तिल्लाना' 'श्लोकम्' तथा 'सप्तम' की प्रस्तुति की जाती है। इस नृत्य ने हस्तमुद्राओं के लिए 'हस्तकला दीपिका' तथा संगीत के लिए 'कथकळि' का सहारा लिया है।

सबसे पहले साहित्य में 'मोहिनियाट्टम्' का उल्लेख मषमंगलम नारायणन नंपूतिरि द्वारा रचित 'व्यवहार माला' में मिलता है। इसके बाद 'स्वातितिरुनाल' ने कई पदों, वर्णों तथा तिल्लानों का सृजन करके संगीत की दृष्टि 'मोहिनियाट्टम्' को अधिक रोचक एवं समृद्ध बनाया। लेकिन 'मोहिनियाट्टम्' के वर्तमान लोकप्रिय रूप का श्रेय महाकवि वळ्ळत्तोल नारायण मेनोन द्वारा संस्थापित केरल कला मंडलम् को है। कला मंडलम के मशहूर नर्तक ओरिक्कलेटतु कल्याणि अम्मा, तंकमणी गोपिनाथ, नट्टुवन कृष्ण पणिक्कर, रामकंटत्तु वळप्पिल माधवी अम्मा, तोट्टाशेरी चिन्नु अम्मा आदि ने मोहिनियाट्टम को आधुनिक शैली प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।[1]

'मोहिनियाट्टम्' शृंगार रसप्रधान लास्य नृत्य है। इसमें पदान्यास, 'अटवुं', अभिनय, संगीत, वाद्य तथा वेशभूषा आदि कई बातों की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है। सारे 'अटवुं' व अभिनय का आधार पदान्यास है। इन पदान्यासों में प्रमुख हैं - 'उद्घाटिता' 'सामा','अग्रतला संचारम्'आदि जिनका उल्लेख 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। 'कारी' (तालात्मक पदान्यास) तथा 'नागबंधम्'(नागों के जैसा शारीरिक चाल-चलन) 'मोहिनियाट्टम्' की सबसे बडी विशेषता है।

घुटनों की स्थिति के अनुसार मोहिनियाट्टम के पाँच पटाव होते हैं। वे हैं -'साममंडलम्', 'अरमंडलम्','मुषुमंडलम्', 'मुक्कालमंडलम्' और 'काल्मंडलम्'। घुटनों को बिना मोडे सीधा खडे हो जाना 'साममंडलम्' है। दोनों घुटनों को दाएँ और बाएँ मोड़कर पैरों को घट के आकार में लाना 'अरमंडलम्'है। घुटनों पूर्णतः दोनों दिशाओं में मोड़कर एडियों के बल पर बैठ जाना 'मुषुमंडलम्'है और इस स्थिति में नर्तक पिंडुलियाँ ही ज़मीन पर रहती हैं। 'मुषुमंडलम्' और 'अरमंडलम्' के बीच की स्थिति

1. जी वेणु, निर्मला पणिक्कर, मोहिनियाट्टम् द लास्य डैंस - पृ. 28

'मुक्काल मंडलम्'है। 'अरमंडलम्' और 'साममंडलम्' के बीच की स्थिति 'काल्मंडलम्' कहते हैं।

'अटवुँ' नृत्य का मूलभूत इकाई है। इनके कई भेद और उपभेद हैं। 'मोहिनियाट्टम्' में मुद्रा, शारीरिक चाल-चलन, मंडलम्, पदान्यास, अभिनय आदि का अद्‌भुत सामंजस्य होता है। 'अटवुँ' पदान्यास के अनुसार बदलता रहता है और 'वायत्तारी' (गीत) के साथ इनका घनिष्ठ संबंध भी है। 'तगणम्', 'जगणम्','धगणम्' तथा 'सम्मिश्रम' 'अटवुँ' के भेद हैं। 'वायत्तारी'के पहले वर्ण के आधार पर ही यह विभाजन हुआ है। अंतिम भेद सम्मिश्रण (मिश्रित) कई 'अटवों' को भिन्न-भिन्न प्रकार मिलाने से रूपायित होता है। 'मोहिनियाट्टम्' में कुलमिलाकर 60 अटवुँ प्रयुक्त होते हैं।

नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय के चार तथ्य माने जाते हैं- 'आंगिकम्' (शारीरिक चाल चलन), 'वाचिकम्' (मौखिक), 'आहार्यम्' (वेशभूषा तथा साज सजावट) सात्विकम् (शारिरिक क्रियाकलापों के ज़रिए मानसिक एवं भावात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति) इन चारों भेदों का कलात्मक एवं प्रभावात्मक समन्वय 'मोहिनियाट्टम्' की विशेषता है। नर्तक शारीरिक चाल-चलन, पदान्यास,मौखिक अभिनय, तथा हस्तमुद्राओं का क्रमबद्ध व लयात्मक प्रस्तुति से दर्शक को मोहित करती है। अभिनय में आँख, होंठ, भौहें, नाक, कपोल तथा एडी से चोटी तक के सारे अंगों का नाट्य विधि के अनुसार प्रयोग होता है। 'मोहिनियाट्टम्' में एक ही मुद्रा की कई बार प्रस्तुति होने के कारण अभिनय को साधारण दर्शक भी आसानी से समझ पाएँगे। गीतों के अनुसार प्रस्तुत सात्विक अभिनय भी इसमें सहायक होता है। इन गीतों को भी 'वर्णम्', 'जतिस्वरम्','तिल्लाना' के आधार पर विभाजित कर सकते हैं। कर्नाटिक संगीत की राग-रागिनियों में बंधे हुए इन गीतों में भी पर्याप्त विविधता देखी जा सकती है।

3.2.3.1 मोहिनियाट्टम् के वाद्य

पुराने ज़माने में 'तोप्पिमद्दळम्','मुखवीणा' 'कुषित्ताळम्' आदि वाद्यों का प्रयोग होता था। लेकिन कलामंडलम् शैली के प्रचलन के बाद 'मृदंगम्','वयलिन','वीणा' 'बाँसुरी','इटक्का' और 'कुषित्ताळम्'ही वाद्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

3.2.3.2 वेशभूषा व साज-सजावट

मोहिनियाट्टम् में प्रयुक्त वेशभूषा बहुत सरल किन्तु मोहक है। नर्तकी पुराने ज़माने की केरलीय दुल्हन की जैसी साड़ी और ब्लाऊज़ ही पहनती है। साड़ी के बीच में सुन्दर झालर लगे होते हैं तथा साड़ी तथा ब्लाऊज़ के स्वर्णिम छोर होते हैं। माथे के आभूषण को 'नेर्‌री-चुट्टि' कहते हैं। माथे के ऊपर बालों में पहननेवाले वृत्ताकार के आभूषण 'सूर्य' तथा 'चन्द्र' नाम से जाने जाते हैं। नर्तकी के बालों को सिर के बाएँ ओर गोलाकार में बाँधकर चमेली की माला से सजाते हैं। इनके अलावा 'तोडा' (कान की बुंदी)

'मूक्कुत्ति' (नाक का आभूषण), 'नागपटत्ताली'(गले की माला), 'पवन माला' (साने के सिक्को से बनी माला) 'काप्पुं' (कंकण) तथा घुंघरू भी पहनती है।

शीरीरिक सजावट में आँखों व भौहों को काजल लगाकर सुन्दर बनाती है तथा होठों पर लाल रंग या 'लिपस्टिक' लगाती है। हाथों व पैरों के छोरों को विभिन्न नमूनों में लाल रंग से लीपना भी ज़रूरी है।

'मोहिनियाट्टम्' में प्रयुक्त मुद्राओं को 'हस्तलक्षण दीपिका' तथा 'बालरामभारतम्' से गृहीत किया गया है। इसके संबंध में कथकळि के विश्लेषण के दौरान विवेचन प्रस्तुत किया गया है। निस्संदेह रूप से मोहिनियाट्टम केरल की अपनी नृत्य शैली है जिसका प्रचार संपूर्ण विश्व में हो गया है।

3.3 केरल की अनुष्ठान प्रधान कलाएँ -

यहाँ तक मंदिर से जुडी हुई कुछ शास्त्रीय माननेवाली कलाओं का विश्लेषण किया गया है। आगे कुछ ऐसी कलाओं के बारे में विचार-विमर्श किया जाएगा जो धार्मिक अनुष्ठान प्रधान कलाओं की कोटि में आती हैं। इन कलाओं की प्रस्तुति के मूल में किसी न किसी धार्मिक अनुष्ठान या देवप्रीति संबंधी विचार निहित होते हैं।

3.3.1 तेय्यम्[1]

'तेय्यम्' उत्तर केरल की धार्मिक अनुष्ठान प्रधान कला है। 'तेय्यम्' शब्द 'दैवम्' (ईश्वर) का परिवर्तित रूप है। तेय्यम में नाचनेवाला किसी देवी-देवता का प्रतिरूप बनकर सामने आता है। मुख्य रूप से यह देवी मंदिरों व 'कावों'[2] में प्रस्तुत किया जाता है। देवी-देवताओं, यक्ष-गंधर्वों, भूतों, नागों, मृत पूर्वजों तथा वीर-शूरों का 'कोलम्' बनाकर तेय्यम् खेला जाता है। खेले जानेवाले वेश के अनुसार साज-सजावट से प्रस्तुत कलाकार को 'कोलम्' कहते हैं।आम लोगों की पूजा या आराधना संप्रदाय ही तेय्यम है। पत्थर, लकडी, लोहे आदि से बनाई गई मूर्तियों में ईश्वर को देखकर आराधना करने की रीति को मूर्ति पूजा कहते हैं। लेकिन तेय्यम् इससे सरल आराधना शैली कह सकते हैं। इसमें बोलनेवाले व

1. एम वी विष्णु नंपूतिरि, तेय्यम

कावुं - यह देवताओं का निवास स्थान है। वृक्षाराधना से ही इसका जन्म हुआ। केरल के हिन्दु घरानों के निकट वृक्ष-लताओं से समृद्ध एक जगह नाग देवताओं के लिए सुरक्षित रखा जाता था जो कावुं नाम से जाना जाता था कालान्तर में अन्य देवताओं के लिए कावों का आविर्भाव हुआ। देवताओं के नामों के अनुसार कावों के नामों में भी बदलाव आ गया। जैसे सर्प कावुं (नाग), शास्ताँ कावुं (अय्यप्पन कावुं) गणपति कावुं (गणेश) काळी कावुं (काळी या दुर्गा) आदि।

चलनेवाले देवताओं के दर्शन होते हैं। यहाँ मनुष्य में देवताओं का आरोप करते हैं।

पहले ही बताया जा चुका है यह एक अनुष्ठान प्रधान कला है। तेय्यम् प्रस्तुत करनेवाला कलाकार, (कोलक्कारन) करानेवाला कर्मी, 'कोमरम्' आदि को व्रतों का पालन करना बहुत ज़रूरी है। ऐसे व्रतों का पालन करने से मन और तन पवित्र बन जाते हैं। नृत्य में भी कई प्रकार के अनुष्ठानों का पालन करना पडता है। सबसे पहले 'अटयाळम्'देने की पृथा है। तेय्यम् खेलने का यह प्रारंभिक चरण है कावों के मालिक तेय्यम् खेलनेवाले (कोलक्कारन) को निमंत्रित करके आदर के साथ देवता स्थान में बिठाकर उसे पान, सुपारी, धन आदि दक्षिणा देकर खेलने का तारीख तय करते है और इसे 'अटयाळम्' कहते हैं। तेय्यम् की शुरूआत गीत के ज़रिए होती है। इसे 'तोऱ्ऱम्' गीत कहते हैं। तेय्यम् की वेषभूषा भी निराली होती है। चेहरे और शरीर पर विभिन्न रंगों से खेलनेवाले देवता स्वरूप के आधार तरह-तरह की डिज़ाइनों में से सजाया जाता है। यह 'चुट्टिकुत्तल' के समान होता है। इसे 'मेय्येषुत्तु'कहते हैं। तेय्यम् के मुकुट भी कई प्रकार के आकार और रूप के होते है। इसे 'मुटि' कहते हैं। 'मुटि', बास, सुपारी की लकडी, कपडे, नारियल के कोमल पत्ते, चमकीले पदार्थ, लोहे आदि से बनाया जाता है। इसकी ऊँचाई में भी अन्तर है। कभी-कभी तीस-चालीस फूट ऊँचाई के मुकुट भी तैयार करते हैं। कमर में कमरबंध, गहरे रंग के कपडे आदि धारण करते हैं। इन वेश-भूषाओं तथा साज-सजावट से देवता समान अलौकिक सौंदर्य से कलाकार प्रशोभित होने लगते हैं। गाए जानेवाले गीत के आधार पर देवता का परिचय दर्शक को मिलता है। लगभग 400 देवताओं का वेश धारण करके तेय्यम् खेला जाता है, इससे ही इसकी विविधता का अनुमान लगाया जा सकता है। साधारणत: 'वण्णान' 'मलयन' 'माविलन' 'वेलन','पुलयन' 'परवन' 'चिंकत्तान'[1] आदि जाति के लोगों के द्वारा तेय्यम् खेला जाता है। इस जाति भेद के अनुसार तेय्यम् में भिन्नता देखी जाती है। विभिन्न उद्देश्यों को लेकर ही तेय्यम खेलते हैं जैसे प्रकृति-पूजा, वृक्ष-पूजा, नाग-पूजा, वीर-पूजा, पौराणिक पात्रों की पूजा, पूर्वज-पूजा, यक्ष-गांधर्व पूजा, रोगों से बचाव या ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु।[2]

तेय्यम् की प्रस्तुति 'कावुँ' 'मुंड्या' या 'मुंडिया'(अवर्ण जातियों का आराधना स्थल जिसे मुंड्या कावुँ भी कहते हैं।)'तानम्'(पूजा करने का स्थान)'अऱा'या 'पल्लियऱा '(ग्रामीण देवताओं का आराधना स्थल जहाँ देवताओं का निवास माना जाता है। उत्तर केरल अरा और पल्लियरा बहुतायत में हैं।)'कोट्टम्' (देवातास्वरूपवाले वीर पुरुषों का आराधना स्थल) आदि स्थानों में होती है। बड़े-बडे हिन्दु घरानों में भी तेय्यम खेलने की प्रथा है।

1. केरल के विभिन्न जाति के लोग ।

2. के के मारार, केरलत्तनिमा पृ. 105

3.3.1.1 तेय्यम् के मुकुट

तेय्यम् कलाकार की साज-सजावट एवं वेशभूषा का इस कला में महत्वपूर्ण स्थान है। पहले ही सूचित किया गया है कि तेय्यम के मुकुट यानि 'मुटि' कई आकारवाले होते हैं। इनमें प्रमुख है-'नीळ मुटि'(लंबा मुकुट), 'वट्टमुटि' (गोल मुकुट), 'चट्ट मुटि' 'पीलि मुटि' 'कूँपुं मुटि' 'पूक्कट्टि' 'ओंकारमुटि' 'पाळमुटि' 'ओल मुटि' 'इलमुटि' 'तोप्पिच्चमयम्', 'तोङ्ङल मुटि' 'कोडुमुटि' 'तिरुमुटि' 'कोंपनमुटि' 'कोतच्चमुटि' आदि। बबूल, पाला (एक तरह का वृक्ष - Astonia Scholaris) सुपारी आदि की लकडी आदि मुकुटों के निर्माण के लिए इस्तेमाल की जाती है। इनके अलावा सुनहले रंगवाले धातुओं के चद्दर, विभिन्न रंगवाले कपड़े, 'पाळा' (सुपारी के किसलय के बाहरी आवरण), गुलदाऊदी के फूल, नारियल के कोमल पत्ते, मोरपंख, काँस के बुलबुलाकार टुकडे और चाँदी के अर्द्ध चन्द्राकार आभूषण आदि से मुकुट बनाया जाता है। प्रत्येक देवता के लिए अलग-अलग प्रकार के मुकुट इस्तेमाल करने की पृथा है। उदाहरणतया 'तायिपरदेवतावाले' तेय्यम् के लिए नीळमुटि (लंबा मुकुट या बडा मुकुट) इस्तेमाल किया जाता है। 'चेन्नम्मा' 'मूत्त भगवति' 'पटक्कत्ति भगवति' 'कावुंबाई भगवति' आदि 'तायपरदेवता' (माँ कल्पित देवता) के उदाहरण हैं। प्रांतीय भेद, जाति भेद, देवता भेद तथा कावों के अनुसार मुकुटों के आकार और सजावट में अन्तर हो सकता है।

भगवति, काळी, आलंकुलंङ्ङरा भगवति, प्रमांचेरी भगवति, कानक्करा भगवति, नरंबिल भगवति आदि 'वट्टमुटि' (गोल मुकुट/वृत्ताकार मुकुट) धारण करती है। वृत्ताकारवाले इन मुकुटों के किनारे नारियल पत्ते, गुलदाऊदी फूल, मोर पंख आदि से सजाते हैं। पुलियूर कण्णन, पुलिक्कंडन, कालप्पुलि, कडंप्पुलि आदि (पुलि-तेंदुआ) 'चट्टमुटि' का प्रयोग होता है। बीच में गुदंबवाले एक विशेष प्रकार के आकारवाले मुकुट के किनारे पर मोरपंख से सजाकर 'पीलि मुटि'तैयार करते हैं। 'पीलि' का अर्थ है मोरपंख। शायद मोरपंख से सजाने के कारण ही इसका नाम 'पीलिमुटि' पडा होगा। 'वेट्टक्कोरुमकन' 'ऊरपषच्ची' 'करिंतिरिनायर' 'कन्निक्कोरुमकन' 'पाक्कान तेय्यम्' आदि के लिए पीलिमुटि इस्तेमाल किया जाता है।'पूमारुतन' 'अंकक्कारन' 'बप्पुरियन' तेय्यों के लिए 'कूँपुं मुटि' का प्रयोग होता है। वीरपुरुषों के प्रतिनिधि तेय्यम् प्रायः 'पूक्कट्टि मुटि' धारण करते हैं। 'कतुवनूर वीरन' ' पटवीरन' 'पाटारकुलंङ्ङरा कलियन' आदि वीर पात्रों के लिए ' पूक्कट्टि मुटि' निर्धारित है।'कोतच्चमुटि' 'कूँपुंमुटि'से आकार में थोडा भिन्न है। 'किरमुरिक्कन' 'तिरुवप्पन' 'वैरजातन' 'पुतिच्चोन' 'वीर भद्रन' आदि कोतच्चमुटि धारण करते हैं। इनके अलावा 'तेप्पिच्चमयम्', 'पाळमुटि' (सुपारी के किसलय के बाहरी आवरण से बनाए जानेवाले)'ओलमुटि' (नारियल के कोमलपत्तों से बनाए जानेवाले) आदि मुकुट भी बहुप्रचलित है। बाँस, बेंद, रेश्मी कपडे आदि से भी मुकुट तैयार करने

की रीति है। **(देखिए पृष्ठ सं.166 क)**

3.3.1.2 चेहरे व शरीर की सजावट

मुख व शरीर पर विभिन्न रंगों से की जानेवाली सजावट का तेय्यम् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। चेहरे पर निराले चित्राकार में की जानेवाली सजावट को 'मुखमेषुत्तुं'या 'मुखलेखन' कहते हैं। चावल के चूर्ण,हल्दी, लाल (हल्दी व चूने का मिश्रण) कोयला(लकडी या नारियल के छिलके से तैयार किए जानेवाला)पत्तों व जडी-बूटियों को पीसकर बनानेवाले हरा रंग आदि से मुख लेखन किया जाता है।'एषुत्तुं' का शाब्दिक अर्थ है लिखना। वास्तव में कलाकार के चेहरे पर विभिन्न रंगों से लेखन ही होता है। मुखलेखन कई प्रकार के होते हैं। 'प्राक्केषुत्तुं' 'नरिक्कुरिच्चेषुत्तुं' 'वट्टकण्णिट्टेषुत्तुं' 'प्राक्चुरुल' 'अंचुपुळ्ळियिट्टेषुत्तुं' 'अंचुपुळ्वियुम्' 'आनक्कालुम'् 'कोयिपूविट्टेषुत्तुं' 'पुळ्ळियिट्टेषुत्तुं' 'पालोट्टे दैवम् मुखमेषुत्तुं' 'शंखिट्टेषुत्तुं' 'हनुमान कण्णिट्टेषुत्तुं' 'मानकण्णिट्टेषुत्तुं','नागंताक्कल' 'नागोम्कुरियुम्', 'कुक्किरिवालुम् चुरुलुम्', 'कोडुम्पिरियन' आदि बहुप्रचलित मुखलेखन हैं। तेय्यम् के नयनाभिराम दृश्यानुभव के लिए मुखलेखन की महत्वपूर्ण भूमिका है। **(देखिए पृष्ठ सं.166 ख)**

शरीरलेपन ('मेय्येषुत्तुं') में भी विविधता पायी जाती है। इसके भी कई प्रकार हैं जैसे'पन्निमूक्कुं'(सुअर की नाक)'परुंतुवाल' (बाज की पूँछ) और 'पुळ्ळि' (बिंदुवाला) आदि। तेय्यम् के पात्रानुकूल शरीर लेपन भी भिन्न भिन्न शैली के होते हैं। आजकल 'मेय्येषुत्तुं' या 'मुखमेषुत्तुं' एक विशिष्ट कला के रूप में माने जाने लगे हैं।

कथकळि के समान तेय्यम् भी कई प्रकार के आभूषण धारण करते हैं। शरीर में पहननेवाले आभूषणों में 'मारवट्टम्'प्रमुख है। यह धातु, तांबे या काँस से बनाए गए स्तनाकार आभूषण है जो मुख्यतः स्त्री वेशों के लिए निर्धारित है। इसके अलावा 'पूत्तंडा' 'पोतिप्पट्टम्', 'वळयन' 'कटिसूत्रम्'(कमरबंध), 'चिलंबुं' (पैर का आभूषण) 'अरमणि' (कमर की घंटी), 'कंकण' 'कालत्तळा'(पैर के आभूषण) आदि आभूषण भी पहनते हैं।'चिरकुटुप्पुं' 'वितानत्तरा' 'ओलियुटुप्पुं' आदि तेय्यम् के विशेष पहनावे हैं।

वीर पात्रवाले तेय्यम् हाथ में तरह-तरह के हथियार लेकर सामने आता है। तलवार और ढ़ाल, धनुष और बाण, चाँदी के फलक (वेल्लिक्किण्णम्) आइना आदि इसमें प्रमुख हैं। मुरम् (छाज, सरई) झाडू, चाकू, मूसल जैसे कृषि के औजार भी कुछ तेय्यम् इस्तेमाल करते हैं।

प्रत्येक साल में किए जानेवाले तेय्यम के आयोजन को 'कळियाट्टम्'[1] कहते हैं। कई सालों के अन्तराल में यदि इसका आयोजन किए जाए तो उसे 'पेरुंकळियाट्टम्' (बडा कळियाट्टम) कहेंगे।

तेय्यम् के मुकुट

पीलिमुटि

पञ्चुरुळि

कॉटन मुटि

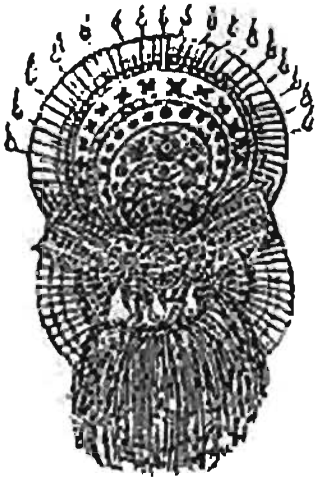

वट्ट मुटि

पूक्कट्टि मुटि

तोप्पिच्चमयम्

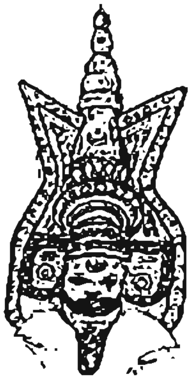

कोतच्च मुटि

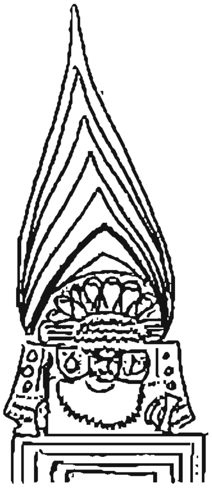

नीळमुटि

मुखलेपन और शरीर लेपन के नमूने

वट्टक्कण्णिट्टेषुत्तुं

मानक्कण्णिट्टेषुत्तुं

कोयिप्पूविट्टेषुत्तुं

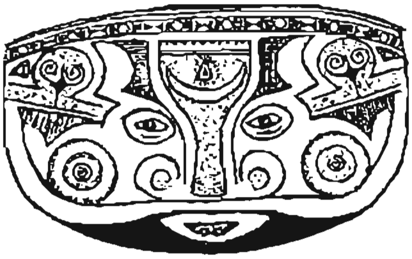

अञ्चुपुळ्ळियुम् आनक्कालुम्

नरिक्कुरिच्चेषुत्तुं

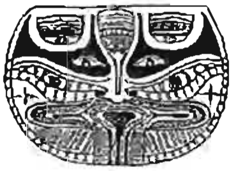

प्राक्केषुत्तुं

पालोट्टु दैवम् मुखमेषुत्तुं

कोटुम्पुरियन वच्चेषुत्तुं

मुखलेपन के अन्य भेद

3.3.1.3 तेय्यम् के गीत

तेय्यम् के दौरान गाए जानेवाले गीतों को तोऱ्ऱम् पाट्टुकळ् (तोऱ्ऱम् के गीत) कहते हैं। इसका साहित्यिक दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण स्थान है। इन गीतों में तेय्यम् की उत्पत्ति से संबंधित कहानियाँ व दंतकथाएँ, देवताओं की स्तुति, प्रत्येक प्रांत की सामाजिक व सांस्कृतिक विशेषताएँ और इतिहास आदि से जुडे हुए कथानक शामिल होता है। प्राचीन गीतों की भाषा तमिल मिश्रित मलयालम थी लेकिन कालांतर में इनकी मुडाव संस्कृत की ओर हो गयी। वीरता, करुणा, भक्ति तथा सामाजिक जीवन से जुडी हुई बातों का वर्णन इन गीतों के मुख्य विषय है।

तेय्यम् की प्रस्तुति के तीन चरण होते हैं। प्रथम चरण में तेय्यम के लिए नियुक्त कलाकार सरल वेश-भूषा के साथ 'कावुँ' में आता है। इस चरण को 'तोऱ्ऱम्' कहते हैं। एक छोटा सा भेरु बजाकर तेय्यम से संबंधित पुरावृत्तों व प्रचलित कहानियों को 'तोऱ्ऱम् गीतों' के ज़रिए दर्शक को सुनाना इस चरण का लक्ष्य है। इसके बाद तेय्यम् नेपथ्य में वापस जाता है। कुछ समय के बाद और सजावट के साथ फिर दर्शक के सामने आता है और तरह-तरह के अनुष्ठान व नृत्यों से दर्शकों का मन लुभाता है। इस चरण को 'वेळ्ळाट्टम्' कहते हैं। यह तेय्यम् के यौवन काल ही माना जाता है। 'वेळ्ळाट्टम्' के बाद दुबारा वह नेपथ्य में जाता है और सभी प्रकार के आभूषण, मुकुट, 'चिलंबुँ' व हथियार (पात्र के अनुसार) धारण करके, मुखलेखन व शरीर लेपन से अलंकृत होकर पूर्ण तेय्यम् बनकर पुनः सामने आता है। यहाँ उसका देवता स्वरूप दर्शनीय है। यह विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों व नृत्यों का चरण है। अब तेय्यम् जो कुछ भी कहेगा या आदेश देगा वह देवता के मानकर भक्तों के द्वारा स्वीकृत किया जाएगा। इसके बाद वह दर्शकों के बीच में जाकर आशीर्वाद देता है। यही स्थिति तेय्यम् की है। 'चेंडा' जैसे वाद्यों से माहौल की प्रभावात्मकता और बढ़ जाती है।

कुछ तेय्यम् दिन के प्रकाश में सामने आते हैं तो कुछ रात में खेले जाते हैं। कुछ तेय्यों की प्रस्तुति सबेरे होती है। मशालों के उजाले में विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलंकृत तेय्यम् की सुन्दरता और भावात्मकता देखते ही बनती है। मुकुट में और कमर में बडे-बडे मशाल धारण करनेवाले तेय्यम् भी है। अंगारों के ढेर के ऊपर नृत्य करनेवाले तेय्यम् को 'तीचामुंडी' कहते है 'ती' का शाब्दिक अर्थ है आग। पैरों से अंगारों को चारों ओर फैलाकर उछलते-कूदते नृत्य करनेवाले 'तीचामुंडी' एक अद्भुत दृश्य है। अंगारों के इस ढेर को 'मेलरि' कहते हैं। मुखौटा धारण करके कृत्रिम पैरों के ऊपर नृत्य करनेवाले 'गुलिकन' तेय्यम् की भी अलग सी पहचान है। नाटकों में विदूषक के समान तेय्यम् में हँसी-मज़ाक

1. एम वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु - पृ. 168

करनेवाले पात्र भी होते हैं। 'बप्पूरयन' 'पनियन' 'कैक्कीलन' 'पूतम्' आदि इस कोटि में आते हैं।

अनुष्ठानों पर आधारित कला होने पर भी इसे कृषि उत्सव या ग्रामीण उत्सव कहने में ज़रा भी अनौचित्य नहीं है। प्रत्येक गाँव में आयोजित तेय्यम उस गाँव का अपना उत्सव बन जाता है। मित्रों व रिश्तेदारों से मिलने, आपसी प्रेम और भाईचारे को ताज़ा करने, घराने को साफ करके साज-सजाने तथा आपसी शत्रुता भूलकर मित्रता को लाने में ये उत्सव सहायक होता है। कभी-कभी 'कावुँ' उपजों के व्यापार हेतु देहाती खाट के रूप में काम करने लगता है। फसल कटने के बाद दूसरी खेती से पूर्व युवकों को अपनी शक्ति खेलों के द्वारा अभिव्यक्त करने का अवसर भी तेय्यम् के दौरान मिलता है। इस प्रकार देखें तो प्रत्येक गाँव के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को सशक्त एवं समृद्ध बनाने में तेय्यम की भूमिका महत्वपूर्ण है।[1]

3.3.1.4 तेय्यम् के प्रमुख भेद

पहले ही सूचित किया गया है कि लगभग 400 से अधिक प्रकार के तेय्यम प्रचलित हैं। आगे कुछ प्रमुख तेय्यों की सूची प्रस्तुत है जिसमें नाम, स्त्री/पुरुष, प्रकार, प्रस्तुत करनेवाली जाति व स्थान जैसे वर्गीकरण भी किया गया है।

क्रम सं	तेय्यम का नाम	पुरुष स्त्री	मुकुट का	भेद प्रकार	जाति/वर्ग	प्रस्तुत करनेवाला प्रमुख स्थान
1.	अंकक्कारन	पुरुष	वट्टमुटि/ कूँपुँमुटि	युद्ध देवता	वण्णान, मुन्नूट्टर	कटत्तनाडुँ
2.	अंककुळङ्ङरा भगवति	स्त्री	वट्टमुटि/ कूँपुँमुटि	युद्ध देवता	वण्णान	अंककुलङ्ङरा
3.	अंडळूर दैवम	पु.	—	श्रीराम	वण्णान	अंडलूर कावुँ
4.	अत्तिक्कंडत्तिल भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	श्री पोर्कली/	वण्णान	अत्तिक्कंडम्
5.	अऱत्तिल भगवति	स्त्री	वलियमुटि	तिरुवरकाट्टुँ भगवति	वण्णान	अऱत्तिलंबलम्
6.	अरुंबळ्ळि भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	कक्कर भगवति	वण्णान	पट्टुवम्

1. के के मारार, केरलत्तनिमा - पृ. 108-109

7. आयित्ती भगवति	स्त्री	नीळमुटि	भगवति	वण्णान	आयित्ती कावुॅ, ओरियल सागर तट नेल्लिक्कावुॅ
8. आयिरम तेङ्ङल भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	रक्त चामुंडी	वण्णान	चेरुकुन्रुॅ
9. आरिय भगवति	स्त्री	—	मरक्कला भगवति	पुलयर	मलनाडुॅ
10. आरियक्करा भगवति	स्त्री	—	मरक्कला भगवति	पुलयर/वण्णान	
11. आर्यपूंकन्नी	स्त्री	—	वैदिकेतर देवता	वण्णान	उत्तर केरल
12. आलक्कुन्रुॅ चामुंडी	स्त्री	पुरत्तट्टुॅ	विष्णु मूर्ति	माविलर	आलक्कुन्रुॅ
13. आलंकुळङ्ङरा भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	ग्राम देवता	वण्णान	आलंकुळङ्ङरा
14. आलाटा भगवति	स्त्री	वट्टमुटि, मशाल	काळी	माविलर	आलमाटक्कावुॅ
15. आलित्तेय्यम्	पु.		मुसलमान/ भूत	वण्णान	कासर्गोड के आसपास
16. इळम करुमकन	पु.	पूक्कट्टि मुटि	वनदेवता	वण्णान/ मून्नूट्टान	—
17 उच्चारन तेय्यम	पु.		उर्वर देवता	पुलयर	आरळम्
18. उच्चिट्ट	स्त्री	ओलमुटि	प्रसव देवता	मलयन/पाणन	उत्तर केरल
19. उतिरच्चामुंडी	स्त्री	पुरत्तट्टुॅ	विष्णु	पुलयर	
20. उतिरपालन	पु.		मृत मनुष्य	वण्णान	
21. उतिरयाल भगवति	स्त्री		कृषि देवता	चिंकत्तान	
22. ऊर्पषच्चि दैवम्	स्त्री	पीलिमुटि	वैष्णवांशवाली देवी/रोग निवारण		उत्तर केरल

23. एडप्पारा चामुंडी	स्त्री		रक्त चामुंडी	मलयन	एडप्पारा
24. एडलापुरत्तुं चामुंडी	स्त्री	पुऱत्तट्टुं	आर्य चामुंडी	वण्णान	एडलापुरम
25. ऐप्पळिळ तेय्यम्	पु.		एक पुलय	पुलयर	उत्तर केरल
26. ओखंकरा भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	युद्ध देवता	वण्णान	उत्तर केरल
27. कक्करा भगवति	स्त्री	वट्टमुटि/ मशाल	काळी	वण्णान	कक्कराकावुँ (कण्णूर जिला)
28. कण्ठाकर्णन	पु.	वट्टमुटि/ मशाल	मंत्र मूर्ति	मलयर/पाणर	उत्तर केरल
29. कण्णाङ्ङट्टु भगवति	स्त्री	वट्टमुटि/ वितानत्तरा[1]	ग्राम देवता		
30. कतुवनूर वीरन	पु.	पूक्कट्टि मुटि	वीर पुरुष	वण्णान	
31. कन्निक्कोरु मकन	पु.	पीलिमुटि	वीर देवता		उत्तर केरल
32. कन्नित्तेय्यम	पु.		उर्वर देवता	वेलन	उत्तर केरल
33. कम्माटत्तुं भगवति	स्त्री	पाळमुटि/ वितानत्तरा	माँ स्वरूपवाली[2] देवी	वण्णान	कम्माटम्
34. कम्मारन तेय्यम्	पु.		मृत पुरुष	वण्णान	
35. कम्मियम्मा	स्त्री		काळी के उपास्य देवताओं में एक	वण्णान	
36. करिंकुट्टिच्चात्तन	पु.	वट्टमुटि	मंत्र मुर्तियों में एक	पाणन,मलयन परयन, पुलयन	उत्तर केरल
37. करिंचामुंडी	स्त्री	पुऱत्तट्टुं		वण्णान,पुलयर	उत्तर केरल
38.करिंपूतम	पु.	लकडी के मुखौटा	श्रीभूत	वण्णान	
39. करिविळ्ळोन	पु.		वन देवता	वण्णान,	

1. तेय्यम के कमर पर लकडी या बाँस केचौखडे पर कपडा बाँधकर बनानेवाला।

2. तायपरदेवता

40. कल्लळन दैवम्	पु.	ओंकार मुटि		मून्नूट्टान माविलर	
41. कल्लेरि मलप्पिलवन	पु.		आखेट देवता	वण्णान	
42. कल्लेरियम्मा	स्त्री	इलमुटि	माँ स्वरूपवाली देवी		वयनाडुं
43. कळरियाल भगवति	स्त्री		कळरि देवता	वण्णान	कळरि वातुक्कल
44. कर्कडोत्ती	स्त्री		उर्वर देवता पार्वती स्वरूप	वण्णान	कण्णूर
45. कातियोट्टॅ भगवति	स्त्री		माँ स्वरूपवाली देवी	वण्णान	तृक्करिपूर
46. कानक्करा भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	ग्रामीण देवता	वण्णान	
47. काप्पाळ्त्ति चामुंडी	स्त्री	पुरत्तट्टुं		माविलर चेरुवर	उत्तर केरल
48. काराट्टुं भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	माँ स्वरूपवाली देवी/ग्रामीण	वण्णान	काराट्टुं
49. काल चामुंडी	स्त्री	पुरत्तट्टुं	महादेव की बेटी	वेलन मलयन	
50. कावुंबाई भगवति	स्त्री	वलियमुटि	भगवति	पुलयर	
51. किषक्कन दैवम्	पु.		सुग्रीव	वण्णान	चेङ्ङळा
52. कुञ्जिक्कोरन तेय्यम	पु.		वीर योद्धा	माविलर चेरवर	
53. कुटुवक्कुलङ्ङर भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	माँ स्वरूपवाली	वण्णान	पुत्तूर
54. कुट्टिक्कर चामुंडी	स्त्री	वट्टमुटि/ पुरत्तट्टुं	रक्त चामुंडी	मलयर	वेङ्ङरा

55. कुट्टिच्चात्तन	पु.	चट्टमुटि	मंत्र मूर्ति	सभी जाति	उत्तर केरल
56. कुंडोर चामुंडी	स्त्री	वट्टमुटि/ पुरत्तट्टुं	काळी	वेलर	उत्तर केरल
57. कुरीक्कळ तेय्यम	पु.	पूक्कट्टि मुटि	गुरु	वण्णान पुलयर	उत्तर केरल
58. कुरुट्टु चाल भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	ग्रामीण देवता	वण्णान	
59. कुरत्ति (18 प्रकार की)	स्त्री		मंत्र मूर्ति	विभिन्न जाति के लोग	उत्तर केरल
60. कुरंता कुलंङ्ङर भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	माँ स्वरूपवाली देवी	वण्णान	नेडुवप्रा
61. कुरुंतुनी भगवति	स्त्री	ओंकार मुटि/ रात में खेला जाता है।	भगवति	वण्णान	
62. कूलियाङ्ङ भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	ग्राम देवता	वण्णान	
63. कूळूल भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	माँ स्वरूपवाली देवी	वण्णान	पट्टुवम्
64. केळम्कुलंङ्ङर भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	स्त्री	वण्णान	कुञ्ञिमंगलम्
65. कोरक्कोट्टुं भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	ग्राम देवता	वण्णान	
66. कोरगन तेय्यम	पु.		कुरवन	कोप्पाळर माविलर	कासरगोडुं
67. कोतोळी भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	भगवति	वण्णान	तृक्करिपूर
68. कोयिच्चार तेय्यम्	पु.		वीर पुरुष	वण्णान	कैतक्कोट्टुं
69. कोरच्चेकोन	पु.		कोमरम्	वण्णान	
70. कोळियाट्टुं चामुंडी	पु.	कोतच्चमुटि	विष्णु मूर्ति	मलयर	

71. गुलिकन	पु.	मुखौटा (कण्णंपाळा)	मंत्र मूर्ति	विभिन्न जाति के लोग	उत्तर केरल
72. चामुंडी	स्त्री	[illegible] पुरत्तट्टुँ		विभिन्न जाति के लोग	उत्तर केरल
73. चुटल भद्रकाळी	स्त्री	वट्टमुटि	भगवति/काळी	वेलर	उत्तर केरल
74. चेंपिलोट्टुँ भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	माँ स्वरूपवाली देवी	वण्णान	तृक्करिपूर
75. चेरळत्तुँ भगवति	स्त्री	वट्टमुटि/ मशाल	ग्राम देवता	वण्णान	
76. चोरक्कळत्तिल भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	युद्ध देवता	मुन्नूट्टान	
77. तीचामुंडी	पु.	पुरत्तट्टुँ	विष्णु मूर्ति	निम्न जाति के लोग	
78. तुळुवनत्तुँ भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	ग्राम देवता	वण्णान	तुळुवनम्
79. तेक्कन करियात्तन	पु.	नीळमुटि	वीर पुरुष	वण्णान	उत्तर केरल
80. तोंडच्चन तेय्यम	पु.		मृत लोगों के तेय्यम	पुलयर तथा अन्य	उत्तर केरल
81. तोट्टुंकर भगवति	स्त्री			वण्णान	
82. नटयिल भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	भगवति	वण्णान	नीलेश्वरम्
83. नागकंठन	पु.	चट्टमुटि/ ओप्पनपोंति[1]	नागदेवता	वण्णान	
84. नागक्कन्नि	स्त्री		नाग स्त्री देवता	पुलयर, चींकतार, वण्णान	
85. निलमंगलत भगवति	स्त्री	नीळ मुटि/ वलिय मुटि	माँ स्वरूपवाली देवी	वण्णान	तुरुत्ति
86. नीलकेशी	स्त्री				

1. लकडी से बनाए गए एक विशेष प्रकार का हथियार।

87 पच्चिल भगवति	स्त्री	इलमुटि	भगवति		वेळ्ळमुंडा
88.पंचरुळि	स्त्री	वट्टमुटि	वराह देवता	मलयन,वेलन कोप्पालर, माविलर	
89. पटमटक्कि तंपुराट्टी	स्त्री	नीळ मुटि	रणदेवता	पुलयर	
90. पटवीरन	पु.	पूक्कट्टि मुटि	वीर योद्धा	माविलर, मण्णान	
91. पनयार कुरिक्कळ	पु.	कूँपुँ मुटि	एक पुलय की स्मृति में	पुलयर	उत्तर केरल
92. पयिट्टियाल भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	भगवति	वण्णान	
93. पाचेनी भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	भगवति	वण्णान	पुत्तूर
94. पाताळत्तिल भद्र	स्त्री	वट्टमुटि	काळी	पुलयर	
95. पालंकुलङ्ङर भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	माँ स्वरूपवाली देवी	वण्णान	तिमिरि
96. पारमेक्काविल भगवति	स्त्री	[illegible] मोर पंख	भगवति	वण्णान	कुन्नरु
97. पुतिय भगवति	स्त्री		रोग निवारण		
98. पुलिक्कंडन	पु.	चट्टमुटि	तेंदुआ रूपी शिव	वण्णान	
99. पुलिमरञ्ञ तोंडच्चन	पु.		पुलय	पुलयर	उत्तर केरल
100. पुलियुरु काळी	स्त्री	वट्टमुटि	तेंदुआ रूपी पार्वती		उत्तर केरल
101.पुळिळक्करिंकाली	स्त्री	वट्टमुटि	मृगदेवता	वण्णान	
102. पुळिळक्कुरत्ती	स्त्री		पार्वती	वेलन	उत्तर केरल
103. पुळिळचामुंडी	स्त्री	वट्टमुटि/ पुरत्तट्टुं		वेलन	उत्तर केरल
104. पुळिळ भगवति	स्त्री	ओलमुटि/ कृत्रिम आँखों	ग्राम देवता	वण्णान	

105. पूक्कुट्टिच्चात्तन	पु.	पूक्कट्टि मुटि	कुट्टिच्चात्तन/ मंत्र मूर्ति	पाणन मलयन	उत्तर केरल
106. पूळोन दैवम्	पु.		परमशिव	वण्णान	करिवेळ्ळूर
107. पोत्ताळन	पु.		वन देवता	वेलन माविलर चिरवन	कानत्तूर
108. पेनतेय्यम्	पु.		मृत व्यक्ति	पुलयर	
109. पैच्चेल भगवति	स्त्री		भगवति	परयर	पषच्चिल
110. पोट्टन तेय्यम	पु.	मुखौटा	शैव स्वरूपवाला		
111. प्रमांचेरि भगवति	स्त्री	वट्टमुटि/ मशाल	ग्रामीण देवता	वण्णान	प्रेमांचेरि, एषिमला
112. बप्पिरियन	पु.	कूँपुं मुटि	मुस्लिम तेय्यम		अंडल्लूर कावुं
113. बालिच्चेरी तेय्यम्	स्त्री	वट्टमुटि	रक्त चामुंडी	चिंकत्तान	
114. बालितेय्यम्	पु.		बालि	वण्णान	मोराषा, कुरुंताषा
115. भैरवन	पु.		मंत्र मूर्ति	विभिन्न जाति के लोग	उत्तर केरल
116. मटयिल चामुंडी	स्त्री	वट्टमुटि	काळी	विभिन्न जाति के लोग	उत्तर करेल
117. मणत्तण भगवति	स्त्री वञ्चि	पोतिप्पातुं/	काळी	मणत्तण, कोलेङ्ङरत्तुं, करिंपनक्कल	
118. मणवाळन तेय्यम	पु.		श्रीराम	वण्णान	मडियनकूलों श्रीरामविलयकषकम्
119. मणाट्टी तेय्यम्	स्त्री		सीता	वण्णान	मडियनकूलों श्रीरामविलयकषकम्
120. मनिप्पन तेय्यम्	पु/स्त्री		वराह	माविलर	
121. मांपळ्ळि भगवति	स्त्री	वट्टमुटि/ मशाल	ग्रामीण देवता	वण्णान	
122. माञ्ञालम्मा	स्त्री	वट्टमुटि/ कृत्रिम जिह्वा	काळी की आश्रिता	वण्णान	

123. मारिमटक्कि तंपुराट्टी	स्त्री		रोग देवता	पुलयर	उत्तर करेल
124. मुच्चिलोट्टुं भगवति	स्त्री	व्वट्टमुटि / तिरुमुटि	ग्रामीण कन्या		मुच्चिलोट्टुं कावुं
125.मुट्टियर चामुंडी	स्त्री	चेर्र्मुटि/ पुरत्तट्टुं	रक्त चामुंडी	मलयन	
126.मुंडपुरत्तु भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	ग्रामीण देवता	वण्णान	
127. मुवाळम कुषिच्चामुंडी	स्त्री	चेर्र्मुटि	रण देवता	मलयन	उत्तर केरल
128. रक्त चामुंडी	स्त्री	चेर्र्मुटि/ पुरत्तट्टुं	काळी	मलयन,पाणन मुन्नूट्टान	उत्तर केरल
129. वट्क्कन कोटि वीरन	पु.	कूँपुं मुटि	जहाज़ देवता	वण्णान	मलनाडुं
130. वटयंतूर भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	भगवति		नीलेश्वरम्
131. वट्टिपूतम	पु.		प्रसूत देवता	वण्णान	रामविल्यम कषकम्
132.वयनाट्टुं कुलवन	स्त्री	पूक्कट्टि मुटि	अखेट देवता		कासरगोड
133. वल्ला कुळङ्ङर भगवति	स्त्री	वट्टमुटि	ग्रामीण देवता	वण्णान	एरमम्
134. वळयङ्ङाटन तोंडच्चन	पु.	पूक्कट्टि मुटि	वीर देवता	पुलयर	उत्तर केरल
135. वाटक्कानत्तुं चामुंडी (तूवक्काळी)	स्त्री	पुरत्तट्टुं	रक्त चामुंडी	चेख़र	
136. वीर चामुंडी	स्त्री	पुरत्तट्टुं	रक्त चामुंडी	चिंकत्तान	कुञ्जिमंगलम्
137.वीरंचिरक्काविल भगवति	स्त्री	नीळ मुटि/ वलिय मुटि	माँ स्वरूपवाली देवी	वण्णान	
138. वीर भद्रन तेय्यम	पु.	कोतच्च मुटि	अखेट देवता	मुन्नूट्टान वण्णान, माविलन	

139. वीरर् काळी	स्त्री	वट्टमुटि काळी	उत्तर केरल
140. वेट्टय्क्कोरु मकन	पु.	पूक्कट्टि मुटि अखेट देवता	उत्तर केरल

यहाँ सामान्य रूप से खेले जानेवाले तेय्यम् का विवरण दिया गया है। इसके और भी सैकडों भेद है और प्रांतीय भेद के अनुसार अलग-अलग ढंग से उनकी प्रस्तुति भी होती है। वास्तव में तेय्यम् केरल की विशिष्ट धार्मिक विचारधारा का आकलन ही नहीं करता बल्कि यहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक विशिष्टताओं के समायोजन का परिचायक भी है।

3.3.2 कळमेषुत्तुं पाट्टुं/भगवतिप्पाट्टुं

'भगवतिप्पाट्टु' से तात्पर्य है देवी या काळी का स्तुतिगायन (भगवति देवी या काळी और पाट्टुं-गीत) मुख्य रूप से दक्षिण केरल के 'वेलन जाति' के लोगों के द्वारा इस अनुष्ठान कला का आयोजन होता है। विभिन्न प्रकार के रंगों से भगवति या काळी का चित्र बनाकर इसकी प्रस्तुति होती है। इस चित्र को 'कळम्'कहते हैं।[1] 'कळम्' बनाकर गाए जाने के कारण इसे 'कळमेषुत्तुं पाट्टुं'भी कहते बैं। प्रायः हिन्दु घराने, कावों या भगवति मंदिरों में इसका आयोजन होता है। इसके लिए सबसे पहले 'कळम्'तैयार करना है। यह पाँच प्रकार के रंगीन चूर्णों से तैयार करते हैं। विविध उद्देश्यों को लेकर 'कळम' तैयार करने की प्रथा है और आराधना मूर्ति के अनुसार 'कळम' के आकार व प्रकार अलग-अलग होते हैं जैसे 'भद्रकाळी कळम' (भगवतिप्पाट्टुं), 'अय्यप्पन कळम' (अय्यप्पन पाट्टुं), 'वेट्टय्क्कोरु मकन कळम' (तेय्यम), 'भूतक्कळम' 'चात्तन कळम' (चात्तन पूजा), 'हनुमान कळम' (हनुमान पूजा), 'चुटल कळम' 'भस्म कळम', 'मंत्रवाद कळम' (मंत्रवाद संबंधी) आदि। यहाँ कोष्ठक तत्संबंधी पूजाओं का उल्लेख किया गया है।

'भद्रकाळी तेय्यम','कळमेषुत्तुं पाट्टुं', 'मुटियेरॅुं' 'पाना' 'तीयाट्टुं' आदि के अवसरों पर काळी के 'कळम' तैयार करते हैं। 'कळम' में काळी के साथ अन्य देवी-देवताओं के चित्र भी बनाने की रीति है। 'भगवति कळम' बनाने के लिए सर्वप्रथम ज़मीन से थोड़ी ऊँचाई में मिट्टी से एक सफा तैयार करते हैं। उसके ऊपर काली भूसी फैलाने के बाद चावल के चूर्ण से नवखंड बनाते हैं। इसके बाद 'तलवार' 'चिलंबुं','त्रिशूल' आदि धारण करती हुई भद्रकाळी का चित्र बनाते हैं। 'कळम' के आकार के अनुसार चार, आठ,सोलह, बत्तीस या चौसठ हाथोंवाली काळी का चित्र तैयार किया जाता है। चावल के चूर्ण से सफेद, कोयले से काला, हल्दी से पीला, पत्तों से हरा तथा हल्दी और चूने के मिश्रण से लाल

1. एम वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु - पृ. 161

रंग तैयार करते हैं। 'काळी' के स्तनों को रूपायित करने के लिए चावल से स्तनाकार में ढेर लगाते हैं और उसके ऊपर रंगीन चूर्ण लगाकर सजाते हैं। नाक के आकार में चावल के चूर्ण डालने के बाद ही उस पर रंग चढ़ाते हैं। 'कळम' तैयार हो जाने के बाद 'भगवतिप्पाट्टुं' कई चरणों में प्रस्तुत किया जाता है ।

सूर्योदय में 'कोमरम्' या 'वेळिच्चप्पाटुं' वेश-भूषा धारण कर तैयार होता है, इसे 'काप्पुं केट्टल' कहते हैं। कोमरम संध्या समय में आकर 'कळम' को नष्ट करते हैं। इसकी एक रीति है - एक हाथ में 'चिलंबुं'और दूसरे हाथ में एक विशेष आकारवाली तलवार लेकर उछलते-कूदते, नृत्य करते हुए तथा काळी के समान आदेश या आशीर्वाद देते हुए रंगों को चारों ओर बिखेरते हुए 'कळम' को नष्ट कराते हैं। चेंडा जैसे वाद्यों के साथ भक्तों तथा भक्तिविलीन स्तुति वचनों के बीच भाव विभोर होकर नाचनेवाले'कोमरम्'का दृश्य बहुत निराला है। तीन दिनों तक ऐसी प्रथा चलती है और चौथे दिन बकरी, मुर्गी आदि की बलि चढ़ाते है और उसे 'कुरुति' कहते हैं। यह एक शाक्तेय कर्म माना जाता है इसलिए इसका विकल्प के रूप में स्वीकार करते हैं। 'कुरुति' यानि बलि के बाद 'कोमरम्' अट्टहास करते हुए बलिपीठ पर चढ़कर केले के फल या 'पाल वृक्ष' की शाखा काटते हैं। इसी से भगवति पूजा समाप्त होती हैं।

'कळम' तैयार होकर उसकी पूजा हो जाने के बाद चार-पाँच लोग 'कळम' के सामने बैठकर भगवति के स्तुति गीत गाने लगते हैं। सबसे पहले भगवति को 'कळम' में बिठाते हुए कुछ गीत गाए जाते हैं। उसके बाद भगवति से संबंधित स्तुति गीत, 'तोर्रम्' और कीर्तन का आलाप होता है। 'तोर्रम्' गाते समय 'कुषित्ताळम','नंतुणि' आदि वाद्यों का प्रयोग होता है। 'कुरुप्पुं','मारार' 'वात्ति' 'कोल्लन','मलयरन' आदि जाति के लोगों के द्वारा ही 'भगवतिप्पाट्टुं' का आयोजन होता है। वास्तव में मध्य और दक्षिण केरल में इस अनुष्ठान कला का काफी प्रचार है।

बारह सालों के अन्तराल में 'वैक्कम' मंदिर में होनेवाला ' कळमेषुत्तुं पाट्टुं' बहुत मशहूर है। इसमें 'भगवतिप्पाट्टुं' को संपूर्ण रूप से देखने का अवसर मिलता है। 'नवतालम्' नामक परंपरागत ढाँचे के आधार पर 'कळम' तैयार किया जाता है। 'कळम' बनाने में बारह दिन लगते हैं और कळम ६४ हाथोंवाली सर्वालंकार विभूषित भद्रकाळी का भीमाकार चित्र तैयार होता है। काळी के स्तनों को रूपायित करने में पाँच सेर चावल इस्तेमाल होता है, इससे ही चित्र के आकार का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। हज़ार वर्ग फुट का यह चित्र केरल का सबसे बडा धूली चित्र माना जाता है। वास्तव में इस चित्र के दर्शन से चित्र बनानेवाले लोगों की कारीगरी एवं निपुणता का परिचय हमें मिलता है।[1] 'ऐतीह्य माला' के अनुसार चेचक जैसी भयंकर बीमारियों को दूर कराने हेतु काळी को प्रसन्न कराने के

लिए ही इस अनुष्ठान कला का प्रारंभ किया था। एक धार्मिक अनुष्ठान से बढ़कर इसकी कलात्मकता को ग्रहण करें तो केरल की एक विशिष्ट कला परंपरा के सार्वजनिक रूप का तिरस्कार कैसे किया जा सकता है ?

3.3.3. मुटियेर्रुं [2]

यह भी भद्रकाळी की कृपा प्राप्ति के लिए किए जानेवाला एक अनुष्ठान है। प्रमुखतया मध्यकेरल के कोच्ची तथा दक्षिण केरल के तिरुवनंतपुरम में इसका काफी प्रचार है। कुछ स्थानों में इसके लिए 'मुटियेटुप्पुं' शब्द भी प्रचलित है। 'मुटि' का शाब्दिक अर्थ है मुकुट, अर्थात् मुकुट धारण करना ही 'मुटियेर्रुं' या'मुटियेटुप्पुं' का वाच्यार्थ है। तेय्यम के समान लकडी या लोहे से बडा मुकुट बनाया जाता है। कटहल की लकडी को गोलाकार में काटकर उस पर कुंडल तथा नागफण बनाकर और सुन्दर बनाते हैं तथा रेश्मी कपडे, मोती, मोर पंख आदि से अलंकृत करते हैं। इस मुकुट को मंदिर में धारण करने की प्रथा है। 'मुटियेर्रुं' प्रस्तुत करनेवाले लोगों को 'कुरुप्पुं' कहते हैं। 'नायर' जाति के लोग वाद्य बजाते हैं। मुख्य रूप से 'वीक्कन चेंडा' 'उरुट्टु चेंडा','इलत्ताळम','चेङ्ङ्ला' आदि वाद्यों का प्रयोग होता है।

'भगवतिप्पाट्टुं' के समान नारियल के कोमल पत्तों से अलंकृत शमियान के नीचे पाँच रंगों से भद्रकाली का 'कळम' तैयार किया जाता है। दारिक के कटे हुए सिर हाथ में लेकर वेताल के ऊपर सवार काळी का भयंकर रूप 'कळम' में चित्रित किया जाता है। 'कळम' तैयार हो जाने के बाद 'कळम पाट्टुं' (कळम के गीत) होता है। इसमें काळी के कीर्तन होते हैं। इसके बाद 'तालप्पोलि' लेकर कन्याएँ कळम की प्रदिक्षिणा करती हैं। तदुपरांत 'तिरियुषिच्चिल' है।'तिरियुषिच्चिल' में मशाल लेकर कळम की आरती उतारी जाती है। लोगों का विश्वास है कि 'तिरियुषिच्चिल' से सभी प्रकार की पैशाची शक्तियों के उपद्रव से मुक्ति मिलेगी। इसके बाद 'मुटियेर्रुं' है।

'मुटियेर्रुं' के सभी पात्र कथकळि के समान वेश-भूषा धारण करके आते हैं। मुख-लेपन, पात्रानुकूल साज-सज्जा और मुकुट बहुत ज़रूरी है। बडे भद्रदीप के प्रकाश में ही अभिनय होता है। भद्रकाळी, दारिक, शिव, नारद, दानवेन्द्र, 'कूळी'[1] आदि प्रमुख पात्र है। काळी के चेहरे पर चावल के चूर्ण से बिंदियाँ लगाते हैं। चेचक को प्रतीकात्मक रूप से दिखाने के लिए ही ऐसे करते हैं। काली मुकुट

1. के के मारार, केरलत्तनिमा - पृ. 96

2. जी भार्गवन पिल्लै, नाट्टरङ्ङुं विकासवुम् परिणामवुम् - पृ. 15-42

धारण करके ही खेलने आती है। दारिक भी नारियल के पत्तों से बनाए गए छोटा मुकुट धारण करता है और चेहरे पर काले रंग से लेपन करते हैं।

सबसे पहले नारद और शिव मंच पर आते हैं। इसके बाद दारिक का आगमन होता है और पीछे काळी और 'कूळी' आती हैं। दारिक और काळी आपस में युद्ध के लिए चुनौती देते हैं। इसके बीच 'कोयिंपट्टर' का प्रस्थान होता है। एक सामंती प्रभु की भूमिका 'कोयिंपट्टर' द्वारा निभायी जाती है। तदुपरांत काळी-दारिक युद्ध शुरू होता है। अंत में दारिक का सिर काटकर काळी अट्टहास करने लगती है। यही 'मुटियेऱ्ऱु' का अंतिम दृश्य है। सबसे अंत में शिवस्तुति होती है और यहीं 'मुटियेऱ्ऱु' का समापन होता है। आम तौर पर सूर्यास्त के बाद ही 'मुटियेऱ्ऱु' शुरू होता है और सूर्योदय के पहले समाप्त करने की रीति है।

'मुटियेऱ्ऱु' के 'तोऱ्ऱम्' में भगवतिप्पाट्टु से पर्याप्त अन्तर है। इसके गीत कथापात्रों के संवाद के रूप में तैयार किए गए हैं। ज़्यादातर गीतों में रौद्र, वीर और हास्य रसों को प्रमुखता दी गयी है। वस्तुतः इस अनुष्ठान कला के द्वारा दर्शक या भक्त को नाटक जैसा आनंद मिलता है और दारिक का निग्रह करनेवाली काळी का भयंकर रूप देखकर भाव विभोर हो जाते हैं। चित्रकला, संगीत, वाद्य, अभिनय एवं वास्तुकलाओं का ऐसा अनोखा सामंजस्य अन्य कलारूपों में बहुत दुर्लभ है। इतिहासकारों के अनुसार 'कूटियाट्टम्', कथकळि जैसी कलाओं ने 'मुटियेऱ्ऱु' की कई बातों को अपना लिया है। यदि इन कलाओं का विश्लेषण करें तो हमें भी यह बात स्पष्ट रूप से मालूम हो जाएगी।

3.3.4 पटयणि [2]

'कुंभम्-मीनम्'(माघ-फालगुन) महीनों में 'भरणि उत्सव' के दौरान केरल में खासकर मध्यकेरल के भगवति मंदिरों में 'पटयणि' का आयोजन होता है। कोल्लम, पत्तनंतिट्टा, आलप्पुष़ा आदि जिलों में 'पटयणि' का काफी प्रचार है। 'पट श्रेणी' 'पेटनी' आदि शब्दों से ही 'पटयणि' का आविर्भाव हुआ है। 'पटयणि' का शाब्दिक अर्थ है सेना का प्रस्थान। हाँ दारिक वध के बाद काळी अपनी सेना के साथ आती है, यही इसका आधार है। 'पटयणि' की आधार कथा भी दारिक वध है। दारिक निग्रह के बाद भी काळी के क्रोध का शमन नहीं हुआ तो उन्हें शांत कराने हेतु परमशिव व देवताओं ने 'कोलम' पहनकर नृत्य किया था, इसकी स्मृति में 'पटयणि' खेला जाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि शिव

1. कूळी - एक पैशाची शक्ति। ऐसी धारणा है कि काळी खून पीनेवाले बहुत सारे अनुचरों के साथ प्रस्तान करती है जिन्हें 'कूळी 'कहते हैं। मुक्ति न मिलने पर मृत आत्माएँ 'कूळी' बन जाती हैं।

2. कावालम नारायण पणिक्कर, केरलत्तिले नाटोटी संस्कारम् - पृ. 40-50

ने स्वयं नृत्य नहीं किया था बल्कि उनके भूतगणों के द्वारा नर्तन हुआ था। जो कुछ भी हो स्थानीय वस्तुओं से कोलम बनाकर नृत्य करनेवाले कुछ लोग, उसके साथ जुडे हुए कुछ आचार-विचार, रीति-रिवाज़, वाद्य-गीत आदि से यह कला अत्यंत आकर्षक है। 'पटयणि' आम लोगों की कला है। 'तुळ्ळल' के साथ इसका गहरा संबंध है। कुंचन नंपियार ने 'तुळ्ळल' के आविष्कार के लिए बहुत सी बातें 'पटयणि' से ही ग्रहण की थी। 'परयन' और 'शीतंकन' जैसे 'कोलम' या 'मुखौटा' पहले से ही 'पटयणि' में मौजूद थे। शायद इन्हीं नामों को लेकर ही 'परयन तुळ्ळल' 'शीतंकन तुळ्ळल' आदि नामों का आविर्भाव हुआ होगा। आधुनिक मलयालम नाटकों में भी 'पटयणि' के कुछ प्रयोग देखने को मिलता है।

'पटयणि' को संपूर्ण रूप से प्रस्तुत करने के लिए २४ दिनों की ज़रूरत है। बारह दिन कलाकारों की तैयारियों में बीत जाते हैं और शेष बारह दिनों में विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों के साथ 'पटयणि' की प्रस्तुति होती है। कुछ स्थानों में सात दिनों के अन्तर्गत सारे खेलों को समाप्त करने की रीति है। लेकिन आजकल एक ही दिन पटयणि समाप्त हो जाती है। किन्तु इस कला की प्रस्तुति में गाँव की सभी जातियों के लोगों का आपसी सहयोग सराहनीय है।

'पटयणि' का पहला कार्यक्रम 'काच्चिकेट्टुं'है। 'पटयणि' के आयोजन की सूचना सारे गाँववालों को देना इसका उद्देश्य है। इसके लिए वाद्य बजाकर सारे गाँव का भ्रमण करते हैं। दूसरे कार्यक्रम का नाम 'काप्पोलि' है। इसमें लोग पेडों की हरे पत्तेवाली टहनियाँ तथा सफेद कपडे हवा में हिलाकर शोर मचाते हुए नृत्य करते हैं। हाथ का घंटा बजाकर चेंडा जैसे वाद्यों की धुन के साथ नृत्य करना तीसरा कार्यक्रम है, इसे 'तावटि तुळ्ळल' कहते हैं। इसके व्यंग्यात्मक रूप को 'पन्नत्तावटि कहलाते हैं'। 'पन्नत्तावटि' में असली वाद्यों के स्थान पर 'पाळा'[1] से बनाए गए वाद्य नमूनों का प्रयोग होता है।

'पटयणि' में भाग लेनेवाले कलाकार 'पाळा' से बनाए गए मुखौटा धारण करके आते हैं। इन मुखौटों को 'कोलम्' कहते हैं। 'कोलम्' कई प्रकार के होते हैं। 'गणपति कोलम्','यक्षिक्कोलम्' (यक्षी), 'पक्षिक्कोलम्' (पक्षी), 'कालन कोलम्' (शिव), 'पिशाचुकोलम्','माटनकोलम्','मरुताक्कोलम्', 'भैरविक्कोलम्' ,'गंधर्वनकोलम्','मुकिलन कोलम्' आदि देवताओं के 'कोलम्' सिर पर रखकर नाचते हैं। नृत्य के साथ गीतों का गायन भी होता है।

1. पाळा - सुपारी के किसलय का आवरण।

'कोलम्' 'पाळा' से तैयार किए जाते हैं। कभी कभी सैकड़ों 'पाळा' जोडकर भीमाकार'कोलम्'बनाए जाते हैं। कोयला, हल्दी, मिट्टी आदि से 'कोलम्' के चित्र बनाते हैं। पात्र के अनुसार 'कोलम्' के चित्र भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। 'कोलम्' सभी प्रकार की जातियों के लोगों की ओर से बनाए जाते हैं किन्तु गणक जाति के लोग इसके सिद्धहस्त माने जाते हैं। 'कोलम्' धारण करनेवालों को कई प्रकार के व्रतों का पालन करना पडता है।

'कोलम्' देखने में भयानक होते हैं। कुछ 'कोलम्' हाथ में मशाल लेकर नृत्य करते हैं। 'भैरविक्कोलम्' सबसे बडा होता है। यह कोलम् 100-1000 'पाळा' मिलाकर बनाया जाता है। सैकडों मशालों की रोशनी में वाद्यों की धुन के साथ 'भैरविकोलम्' के आगमन से सारा गाँव जाग उठता है। दारिक के निग्रह के बाद आनेवाली काळी ही भैरवी है।

पटयणि के स्थान की सूचना देने के लिए गाँव के लोग 'कोमरम्'के नेतृत्व में एक सुपारी का पेड़ काटकर ध्वज खंभ के रूप में मंदिर के सामने लगाते हैं। गाँव के प्रत्येक प्रांत के लोगों की ओर से मशाल जलाने से 'पटयणि' की शुरूआत होती है। इसे 'चूट्टुं वय्पुं' कहते हैं। (चूट्टुं नारियल के सूखे पत्तों से बनाए गए मशाल) इसके बाद 'कुतिरप्पटयणि' है (कुतिर-घोड़ा) 'पाळा' से घोडे का मुखौटा बनाया जाता है और नारियल के कोमल पत्तों से घोड़े के शरीर के आकार बनाकर कलाकार कमर में बाँधता है। तब दर्शक को घोड़े का आभास होता है। 'कुतिरक्कोलम्' के पीछे एक कहानी है। मलबार के किसी राजा ने अपने योद्धाओं के लिए अरेबिया से घोड़ों को खरीदा था। इसकी स्मृति में 'कुतिरक्कोलम्' की प्रस्तुति होती है।

3.3.4.1 'कोलम्' का परिचय

पटयणि में सर्वप्रथम 'गणपति कोलम्' का प्रस्थान है। यह गणेश (गणपति) का 'कोलम्' न होकर श्री गणेश करने के अर्थ में सर्वप्रथम आनेवाले किसी भी कोलम् हो सकता है। 'कालन कोलम्' शिव का है। मार्कंडेय को बचाने के लिए यम से युद्ध करनेवाले शंकर ही 'कालन कोलम्' है। इसके एक हाथ में मशाल तथा दूसरे हाथ में तलवार होती है। कभी-कभी क्रोध के आवेग में यम का वध करनेवाले शिव को शांत कराने के लिए कई सहायकों की ज़रूरत पडती है। कृष्ण के वध करने के लिए कंस द्वारा भेजा गया पक्षी है 'पक्षीकोलम्' का द्योतक। पुराने ज़माने में यहाँ के लोग यक्षी और गंधर्वों की पूजा करते थे। इसी से प्रेरणा लेकर ही 'यक्षी कोलम्' और 'गंधर्व कोलम्' बनाते हैं।

'पटयणि' के अन्तिम चरण में हँसी-मज़ाक एवं मनोरंजन का भी प्रावधान है। 'मासप्पटि' 'कोड़िङणी' 'काक्करशी','मरक्कात्ती' 'शीतंकन','परयन','परदेशी','वृद्धा','चोवन','शर्करक्कूट्टक्कारन

अन्तोणि' 'कुञ्ञुण्णि' 'कळ्ळुकुटियन' (शराबी) आदि कई पात्र आकर दर्शकों का मनोरंजन करते हैं। इनके रसीले संवाद एवं अभिनय से हँसी-मज़ाक का माहौल बनाया रहता है।

'तप्पुं' पटयणि का प्रमुख वाद्य है। इसके अलावा 'चेंडा' 'कैमणि' आदि वाद्यों का प्रयोग भी कभी कभी होता रहता है।

मशालों की रोशनी में 'कोलम् तुळ्ळल' की प्रस्तुति होती है। देवप्रीति, पैशाची शक्तियों का उन्मूलन आदि ही इस कला का प्रमुख उद्देश्य है। गाना और वाद्य पटयणि के अभिन्न अंग है। 'पुलवृत्तम' नामक एक संगीत कार्यक्रम बहुत मशहूर है। कृषक मज़दूर पुलय जाति के लोगों की वेशभूषा धारण करके इस गायन कार्यक्रम में भाग लेते हैं। सच में गीत ही पटयणि की जीवात्मा है।

3.3.5 अय्यप्पन तीयाट्टुं [1]

'अय्यप्पन तीयाट्टुं' अय्यप्पन कावों तथा ब्रह्मालयों में प्रस्तुत किया जाता है। 'तीयाटि नंप्यारों'के द्वारा इसकी प्रस्तुति होती है। यह अनुष्ठान प्रधान कला है। उत्तर तथा मध्यकेरल में सामान्य रूप से तथा दक्षिण केरल में विरल रूप से इसका आयोजन होता है। शबरिमला अय्यप्पन की आराधना के रूप में इसका आयोजन किया जाता है। इसके लिए 'अय्यप्पन कूत्तुं' नाम भी प्रचलित है। इसकी प्रस्तुति के लिए मंदिरों तथा कावों के आंगण में बडा शमियान तैयार करते हैं और उसको नारियल कोमल पत्ते, सफेद कपडे, रेश्मी कपडे, पान के पत्ते आदि से अलंकृत करते हैं। 'तीयाट्टुं' के पूर्वी दिन में रेश्मी कपडों से शमियान को अलंकृत करने की पृथा है जिसे 'कूरयिटल' (कूर-कपडा) कहते हैं। 'तीयाट्टुं' के दिन 'उच्चपूजा' (दुपहर की पूजा) के बाद 'उच्चप्पाट्टुं'(दुपहर के गीत) का आयोजन होता है। संध्या होने तक पाँच वर्णों से अय्यप्पन का 'कळम्' तैयार करते हैं। संध्या में 'संध्याकोट्टुं' (सांध्य पूजा व गायन) करते हैं और उसके बाद 'कळम् पूजा' 'कळम् पाट्टुं','कूत्तुं'(कथाभिनय) 'कोमरम्' या 'वेळिच्चप्पाट्टुं' का प्रस्थान, 'तिरियुषिच्चल' आदि की प्रस्तुति होती है।

'अय्यप्पन तीयाट्टुं'में कूत्तुं अथवा कथाभिनय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्यकलाओं के समान 'कूत्तुं' के कलाकार मुख लेपन नहीं करते। वे 'पातियम्' नाम छोटा मुकुट, 'कोरलारम्','कंकण' 'करकम्','तोडा','चेविप्पूवुं' (कर्णाभरण), 'पटियरञ्ञाणम्' (चौडा कमरबंध) आदि आभूषण धारण करते हैं। इन्हें छोडकर कमर पर एक झालरदार कपडा तथा लाल रंग की कमीज़ भी पहनते हैं। वेशभूषा मंदिर के श्रीकोविल के सामने ही धारण करने की प्रथा है। इस अवसर पर अय्यप्पन का स्तुति गायन

1. डॉ ए वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु पृ. 32-33

होता है। लेकिन कूत्तुं शुरू होने के बाद गायन नहीं होता। 'पालाषी मंथन', '.अय्यप्पन का जन्म' 'वेद परीक्षा' आदि प्रसंगों को हस्तमुद्राओं तथा अभिनय द्वारा प्रस्तुत करता है। यह प्रस्तुति बारह दिनों तक चलती है। संपूर्ण कथानक को छोटी-छोटी इकाइयों में विभक्त करके ही अभिनय प्रस्तुत होता है।

हस्तमुद्राओं के ज़रिए अभिनय प्रस्तुत करने के पीछे एक लोक कथा प्रचलित है। विष्णु-शंकर के पुत्र अय्यप्पन का बढ़ते प्रभाव से पार्वती को जलन होने लगा। अय्यप्पन को नीचे दिखाने के उद्देश्य से पार्वती ने अय्यप्पन से एक प्रश्न किया -'माँ की पत्नी कौन है'? इसका जवाब अय्यप्पन को मालूम नहीं था इसलिए वे सीधे शिव से मिलने गये। उस समय शिव तांडव कर रहे थे इसलिए नंदिकेश्वर ने अय्यप्पन के उद्भव की कहानी उन्हें समझायी। तांडव में बाधा उत्पन्न न होने के लिए मुद्राओं के ज़रिए नंदिकेश्वर ने अय्यप्पन की संपूर्ण कहानी अय्यप्पन को समझायी। जैसे कि विष्णु का मोहिनी अवतार, शिव का भ्रमित होना, अय्यप्पन का जन्म आदि। इसी की स्मृति में 'अय्यप्पन कूत्तुं' का आयोजन होता है।

'अय्यप्पन कूत्तुं'का एक प्रमुख अंग है 'कळत्तिलाट्टम' (कळम् का नृत्य) इसके अंतर्गत 'कोमरम्' (वेळिच्चप्पाटुं) 'अय्यप्पन कळम्' में कूदकर हाथ में तलवार लेकर नाचने लगता है। नाचते-नाचते वह संपूर्ण कळम को मिटा देता है। साथ ही शमियान के सारे अलंकार और साज-सजावट को भी नष्ट करता है। 'कळत्तिलाट्टम' 'अरुलप्पाटुं' (देववाणी या देवाज्ञा) से संपन्न होता है। इस प्रसंग में 'कोमरम्' भगवान के रूप में भक्तों को तरह-तरह के आदेश देता है। कुछ इलाकों में 'कळत्तिलाट्टम' के साथ 'कनलाट्टम' (अंगारों के ऊपर किए जानेवाला नृत्य) का भी आयोजन होता है। 'अय्यप्पन कूत्तुं' सुबह या संध्या के समय प्रस्तुत करता है।

'अय्यप्पन कूत्तुं' के पूर्व तरह-तरह के गीत गाए जाते हैं। 'उटुक्कुं','कैमणि' आदि वाद्यों के साथ ही ये गीत गाते हैं। अय्यप्पन, गणेश, सुब्रह्मणियन, वावर (एक मुसलमान राजा जिसकी अय्यप्पन के साथ घनिष्ठ मित्रता थी) आदि से संबंधित प्रसंग इन गीतों का मुख्य विषय है। 'उटुक्कुं' नामक वाद्य बजाकर गाने के कारण इन्हें 'उटुक्कुं पाट्टुं' (गीत) भी कहते हैं।

3.3.6 पांपुम् तुळ्ळल[1]

'पांपुम् तुळ्ळल' का शाब्दिक अर्थ है नाग नृत्य। 'सर्पकावुं' नागमंदिरों तथा हिन्दू घरानों में इसका आयोजन होता है। इसलिए 'सर्पम् तुळ्ळल', 'नागम् पाट्टुं','सर्पोत्सव' आदि शब्द भी प्रचलित है। नाग नृत्य स्त्रियों के द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। नृत्य करनेवाली औरतें सात या नौ दिनों तक कई प्रकार के व्रतों का पालन करती हैं। 'पुळ्ळुव पणिक्कर' (पुळ्ळुव पूजारी) तेल की पूजा करके इन

औरतों को देता है और इस तेल का लेपन करके स्नान करने से इनके व्रत का श्रीगणेश होता है।

पूरी तरह अलंकृत शमियान के नीचे 'सर्प कळम्' तैयार किया जाता है। सुबह चावल के चूर्ण से 'कळम' तैयार करते हैं और दुपहर और संध्या के समय रंगीन चूर्णों से इसे सजाते हैं। पुळ्ळुव जाति के लोग 'कळम्' बनाने में सिद्धहस्त हैं। 'कळम्' कई प्रकार के होते हैं - 'ओर्र्क्ककळम्','इरट्टक्ककळम्', 'किरीटक्केट्टुं' 'भस्मक्केट्टुं' 'उरिकक्केट्टुं' 'तूक्कुं' 'कोट्टक्केट्टुं','पवित्रक्केट्टुं' 'शिवलिंगपद्मम्', 'पवित्रकळम','नागयक्षिक्ककळम्','अष्टनागक्ककळम्','पक्षिक्ककळम्' आदि। शमियान दीपों से अलंकृत करते हैं और कळम के चारों ओर चावल, नारियल, पान के पत्ते, सुपारी, सुपारी की किसलय, दूध से भरा घटा आदि से सजाते हैं। इसके बाद 'कळम' की पूजा की जाती है। तदुपरांत नृत्य करनेवाली स्त्री को कळम में लाया जाता है। वह'नागराज' 'नागयक्षी' 'सर्प यक्षी' 'मणिनागम्', 'एरिनागम्', 'किरनागम्', 'कुषि नागम्','परनागम्' आदि की स्वांग रचाकर नाचने लगती है। वाद्य और 'कुरवा' (मुँह से बनानेवाली एक प्रकार की ध्वनि) की धुन में वह नाचने लगती है। आगे नाग देवताओं दूध पिलाने का कार्यक्रम है जिसे 'नूरुम्-पालुम्' देना कहते हैं। इसके बाद नर्तकी हाथ में सुपारी के किसलय लेकर द्रुत गति से नृत्य करती है। 'पुळ्ळुव वीणा' 'पुळ्ळुवक्कुटम्','कैमणि' आदि बजाकर पुळ्ळुव जाति के लोग गीत गाते हैं। गीत और वाद्यों के रफ्तार व ताल-लय के अनुसार नृत्य की गति में भी उतार-चढ़ाव होता रहता है। नृत्य करनेवाली स्त्री भक्तों को आशीर्वाद देती है और उनसे दक्षिणा भी स्वीकार करती है। कभी-कभी भविष्यवाणी भी सुनाती है। अंत में 'कळम्' में गिरकर सर्प के समान रेंगते हुए सारे 'कळम्' को मिटा देती है। कभी-कभी यह नृत्य सात दिनों तक चलता है। सातवाँ दिन 'अष्टनागक्कळम्' बनाने की प्रथा है। उसी दिन रात में 'अष्टनागपूजा','नागबलि','कुरुति' आदि का आयोजन होता है। 'पुळ्ळुवन' के आदेशानुसार उसके अनुचर ही सारे कर्म करते हैं। नागस्तुतिपरक लघु गीतों के साथ 'आस्तिकम' 'पालाषी मंथन' जैसे बडे गीतों का भी गायन होता है।

3.3.6 पाना तुळ्ळल

'पाना' काळी की पूजाविधियों में प्रमुख है। वळ्ळुवनाटुं, पोन्नानी, एरनाटुं, कोच्ची, तृश्शूर, पालक्काटुं आदि प्रदेशों के काळी मंदिरों में तथा कभी कभी हिन्दु घरों में इसका आयोजन होता है। संपूर्ण प्रांत के लोगों के सहयोग से आयोजित होने के कारण इसे 'देश पाना' भी कहते हैं। (देश-प्रांत)

अलंकृत शमियान के नीचे ही इसका आयोजन होता है। इस शमियान में खंभों का होना ज़रूरी है। इन खंभों के लिए 'पाल वृक्ष' की लकडी इस्तेमाल की जाती है। नारियल के कोमल पत्ते तथा केले

1. डॉ ए वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु - पृ. 618-619

के फलदार पौधों से शमियान अलंकृत करते हैं। शमियान को पाँच भागों में विभाजित करते हैं। सबसे बीच में भद्रकाळी का स्थान है, पूर्व में 'वेट्टक्कोरु मकन' तथा उत्तर में 'शास्तावुँ'के लिए स्थान निर्धारित होता है। दक्षिण में वाद्य बजानेवाले तथा पश्चिम में दर्शक खडे होते हैं। इन स्थानों को 'तट्टकम' कहलाते हैं।

शमियान को पवित्र बनाने के बाद 'पाल' वृक्ष की एक टहनी वाद्यों के साथ लाकर 'भद्रकाळी तट्टकम्' के बीच में विशेष रूप से तैयार किए गए मंडप पर रख देते हैं। उस मंडप पर पाँच प्रकार के रंगीन चूर्णों से रंगोली तैयार की जाती है। इस टहनी के पूर्वी भाग में काळी की तलवार तथा लाल रेश्मी कपडे रख देते है और इसे काळी का श्रीकोविल मानते हैं। इसके बाद 'पाना' कलाकारों का नेता जिसे 'अशान' कहते हैं विशेष प्रकार के पदान्यास के साथ नृत्य करते हुए काळी की पूजा करता है। तदुपरांत 'कुरुति' और 'तिरियुषि़च्चिल' है। यह पाना का प्रमुख अनुष्ठान है। हाथ में दीपक या मशाल लेकर ही 'तिरियुषि़च्चिल' (आरति उतारना) का आयोजन किया जाता है।

'पाना' के बीच में 'केळिक्कै' नामक एक कार्यक्रम है। विश्राम के समय दर्शकों के हँसी-मज़ाक के लिए ही इसकी प्रस्तुति होती है। इसके बाद 'पाना पिटुत्तम्' नामक अनुष्ठान है। 'पाना' के नर्तक 'पाला' की टहनी तथा सुपारी के किसलय हाथ में लेकर नृत्य करते हैं। इसी को 'पाना पिटुत्तम्' कहते है। इसके बाद तोऱ्ऱम् का गायन होता है। यदि चार दिन का पाना हो तो पहले दिन 'गणेश तोऱ्ऱम्', दूसरे दिन 'शास्ता तोऱ्ऱम् ' (अय्यप्पन), तीसरे दिन 'दारिक तोऱ्ऱम्' तथा 'चेऱिय काळी तोऱ्ऱम्' (छोटी काळी) तथा चौथे दिन'वलिय काळी तोऱ्ऱम्' (बड़ी काळी) गाए जाते हैं। 'तोऱ्ऱम्' के बाद 'कोमरम्' आकर तीन बार प्रदक्षिण करने के बाद मंडप को तोड देता है। इस समय 'कोमरम्' द्वारा देवी की ओर से भक्तों को कई आदेश भी दिए जाते हैं। कुछ इसके साथ 'कनलाट्टम्' (कनल-अंगार, आट्टम् -नृत्य) का भी आयोजन होता है। इस अनुष्ठान में नर्तक व कोमरम् कटहल की लकडी जलाकर बनाये गये अंगारों के ढ़ेर में कूदकर नृत्य करते हैं।

पाना के लिए 'परा' 'चेंडा', 'मद्दळम्','इलत्ताळम','कुष़ल','कोंपुं' आदि वाद्यों का प्रयोग होता है।

3.3.7 पूरक्कळि

'पूरक्कळि' उत्तर केरल के 'कावों' तथा भगवति मंदिरों में नौ दिनों तक चलनेवाली एक अनुष्ठान कला है जिसका समापन 'मीनम्' (फाल्गुन) महीने के 'पूरम' के दिन को होता है। 'मणियाणि','तीयन' 'मुक्कुवन' 'चालियन' 'आशारी' 'मूशारी' 'तट्टान','कोल्लन' आदि

जाति के लोग इस कला को प्रस्तुत करते हैं। 'पूरक्कळि' के दौरान गाये जानेवाले गीतों में 'पूरक्कळि' और 'पूरोत्सव' की उत्पत्ति से संबंधित बातें प्रमुख होती हैं। इसके संबंध में प्रचलित एक दंतकथा निम्नलिखित है। शिव की क्रोधाग्नि में कामदेव जलकर राख हो गए। इसके दुख में उनकी पत्नी रति प्रलाप करने लगी। रति के दुख में देव स्त्रियाँ तथा पार्वती भी बहुत दुखी हुई। उन्होंने शिव के पास जाकर सारी बातें बतायीं तब शिव ने पुष्पों से कामदेव की एक प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करने का अनुरोध दिया। देव स्त्रियों ने ऐसा ही किया उनका सारा दुख दूर हो गया और कामदेव को कल्पना में पुनःसृजित करने के फलस्वरूप उनमें कामवासना जागरित हुई। वे गीत गाकर नृत्य करने लगी तथा पृथ्वी की महिलाओं ने भी उनका अनुकरण किया। कुछ लोग रासलीला से इसका संबंध मानते हैं। वसंत पूजा से भी 'पूरक्कळि' का संबंध माननेवाले भी हैं। जो कुछ भी हो कई प्रकार के परिवर्तन और काट-छांट के बाद ही 'पूरक्कळि' हमारे सामने हैं। पहले यह स्त्रियों का नृत्य रहा होगा लेकिन आज यह पुरुषों का नृत्य है।

'कावुँ' या मंदिरों के प्राधिकृत लोगों के द्वारा 'पूरक्कळि' के प्रमुख- जिसे 'पणिक्कर' कहते हैं को विधिवत् निमंत्रित करने से 'पूरक्कळि' संबंधी क्रिया-कलापों का श्रीगणेश होता है। जब'पणिक्कर'पूरक्कळि के लिए अपने शिष्यों के साथ उपस्थित होता है तब पान बाँटने की प्रथा है। इसके बाद विशेष प्रकार की वेश-भूषा धारण कर (कच्चिला और चुरा) पणिक्कर और शिष्य मंच पर चढ़ते हैं, इसे 'पन्तल प्रवेशम्' (शमियान में प्रवेश करना) कहते हैं। इसके पूर्व 'पणिक्कर' द्वारा 'मंगल श्लोक' गाने की भी प्रथा है। देवता वंदना, दीप वंदना, नव वंदना, नवाक्षर वंदना आदि वंदनाओं के बाद 'पूरक्कळि' प्रारंभ हो जाती है। नर्तक 'पूरमाला' गणेश स्तुति, गणेश-श्रीकृष्ण-सरस्वती स्तुति, महाभारत-रामायण गाथाओं आदि का गायन करते हुए नृत्य करते हैं। 'अंकम्','पटा' 'चायल' 'पांपाट्टम' 'शैवक्कूत्तुं','शक्तिक्कूत्तुं','योगी','आंडुं','पळ्ळु' आदि कई अंक पूरक्कळि के होते हैं। 'पूरक्कळि'के अन्तिम चरण मैं बहुत तेज़ गति में गीत गाने तथा नृत्य करते हैं जिसे 'पोलिच्चु पाट्टुं' कहते हैं। 'तोषुन्न पाट्टुं' (वंदना गीत) के साथ इसका समापन होता है।

'पूरक्कळि' में 'कळरिप्पयर्रं' का काफी प्रभाव देखा जा सकता है। प्रत्येक नर्तक कई सालों के कठिन व्यायाम और प्रशिक्षण के बाद ही 'पूरक्कळि' के लिए काबिल हो जाता है। अत्यंत लचीलापन के साथ उछलते-कूदते, शरीर के अंगों को विभिन्न दिशाओं में घुमा-फिराकर, टेढ़ा-मेढ़ा करके किए जानेवाला यह नृत्य नृतकों की कायिक क्षमता का उत्तमोदाहरण है।

उपर्युक्त विवेचन में केरल की प्रमुख अनुष्ठान प्रधान कलाओं का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ध्यान से देखें तो ये कलाएँ सिर्फ धार्मिक अनुष्ठान नहीं है बल्कि यहाँ के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन

की जीती-जागती तस्वीरें होती हैं। प्रत्येक प्रांत एवं जाति विशेष के अनुसार पर्याप्त अंतर होते हुए भी इनमें निहित भावात्मक समानता को अनदेखा नहीं कर सकता। लेकिन प्रत्येक कला की प्रस्तुति के पीछे का लक्ष्य परिस्थिति के अनुसार बदलने के कारण उत्पन्न भिन्नता भी इन कलाओं की गरिमा का एक कारण होता है। इसलिए सिर्फ आस्वादन की दृष्टि से इन्हें देखना और परखना इनके प्रति अन्याय सिद्ध होता है। इसलिए सबसे पहले इनके इतिहास और परंपरा की पुनरीक्षा अवश्यंभावी है। हर अनुष्ठान के पीछे काम करनेवाली भावनाओं को सही ढंग से समझना भी ज़रूरी है।

3.4 हिन्दी प्रदेशों के प्रमुख वाद्य

मानव अपने अस्तित्व के साथ ही साथ नीरस को सरस बनाने के लिए अनवरत रूप से प्रयत्नशील रहा है। इसी क्रम में व्याकरण जैसे नीरस विषय को व्याकरण रुचि के विद्वानों ने हृदयग्राही बना दिया। इसी प्रकार संगीत के क्षेत्र को भी संगीत के पूजारियों द्वारा अधिक सरस बनाने का प्रयास किया गया। संगीत-अनुरागियों ने संगीत को अधिक से अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए विभिन्न वाद्यों का आश्रय लिया। इस प्रकार वाद्य संगीत तथा नृत्य का आवश्यक अंग बन गया।

इस अध्याय के प्रारंभ में केरल के वाद्यों का परिचय दिया गया है। एक तुलनात्मक अध्ययन होने के नाते केरल के प्रमुख वाद्यों के साथ हिन्दी प्रदेशों के वाद्यों का भी परिचय देना ज़रूरी है ताकि कुछ समानताएँ या असमानताएँ सामने आ जाए। यहाँ कुछ ऐसे वाद्यों का परिचय दिया जा रहा है कि जिनका गीतों, कलाओं, नृत्यों, नाट्यों व लोक गीतों, लोक नृत्यों तथा लोकनाट्यों में प्रयोग होता है। आकार तथा प्रकार गत विषमताओं के होते हुए भी कलाओं की प्रभावोत्पादकता को बढ़ावा देने की दृष्टि से इन वाद्यों का चरम लक्ष्य एक ही होता है।

हिन्दी प्रदेशों में प्रयुक्त वाद्यों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है - क. वायु वाद्य, ख. चर्मवाद्य, ग. तन्तु वाद्य, घ. ताल वाद्य ।

3.4.1 वायु वाद्य

जिन वाद्यों का आधार वायु है, उन्हें वायु-वाद्य कहा गया है। इन्हें वायु अर्थात मुख की वायु (फूँक) से बजाया जाता है। इसमें बाँसुरी, अलगोजा, शहनाई एवं बीन प्रमुख रूप से आते हैं।

1. **बाँसुरी** - वायु वाद्यों में यह प्रधान वाद्य है। यह बाँस से बनी हुई होती है। आज पीपल या लोहे की धातु से निर्मित बाँसुरियाँ भी देखी जा सकती है। बालकों का यह सर्वाधिक प्रिय वाद्य है। भजन आदि गाते समय जनपद की कीर्तन मंडलियों में इसका प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है।

2. अलगोजा - बाँसुरी की तरह यह भी बाँस का बना होता है। पीतल के भी अलगोजा देखे जा सकते हैं। इनमें कोई तीन छेद का तथा कोई पाँच छेद का होता है। कभी-कभी एक व्यक्ति ही एक साथ दो-दो अलगोजे बजाता है। इसके बजने पर ऐसी ध्वनि निकलती है, जैसे सीटियाँ बज रही हो। आजकल इसका प्रयोग बहुत कम ही मिलता है।

3. शहनाई - शहनाई बहुत ही प्रसिद्ध लोकवाद्य है। यह शीशम या सागौन की बनी होती है। बनारस की बनी शहनाई बहुत ही प्रसिद्ध है। इसमें ताड़ का पत्ता लगा होता है, इसलिए इसकी आवाज़ तीखी एवं मीठी होती है। विवाह के अवसर पर, स्त्रियों के तेल पूजन के लिए, मंदिर पर जाते हुए, कुछ कला-नृत्यों के प्रदर्शन के अवसर इसे बजाया जाता है। इसकी स्वर-लहरी नगाडे के साथ में अपना पूरा असर दिखाता है।

4. बीन- यह सुराकी के आकार की लौकी की बनी होती है। इसमें नीचे को बाँस की दो नलकियाँ लगी रहती है। दोनों नलकियों में नौ-नौ छेद होते हैं। इस वाद्य को सँपरे जाति के लोग ही बजाते हैं। इसको बजाने में फूँक द्वारा विशेष बल लगाना पडता है। साँस रोककर मुँह में वायु भरकर, विशेष ढंग से इसे बजाया जाता है। मलयालम में इसके लिए ‘मकुडि’ शब्द प्रचलित है।

3.4.2 चर्मवाद्य

चर्मवाद्यों के अंतर्गत वे वाद्य आते हैं, जो कि चर्म अर्थाच् पशुओं की खाल से मढ़े होते हैं तथा हाथ की थपकी या छोटी-छोटी लकडियों से बजाये जाते हैं। संगीत शास्त्र में इस प्रकार के वाद्यों को आनद्ध कहा गया है। ये मुख्य रूप से ढ़ोलक, नगाडा, नगड़िया, खंजडी, नौबत, ढपला, चमेली, डमरू, तासे, चंग आदि हैं।

1. ढ़ोलक -चमवाद्यों सबसे अधिक लोकप्रिय वाद्य ढ़ोलक ही है। स्त्रियों का यह सर्वप्रिय वाद्य है। गाँव में प्रायः प्रत्येक घर में यह उपलब्ध रहती है। संस्कारों एवं शुभ अवसरों पर ढ़ोलक बजने के बाद इसे रोली, चावल, पान, मिठाई आदि से पूजकर रख दिया जाता है। यह गोल घेरे में दोनों ओर बकरे की खाल से मढ़ी होती है। इसको कसने के लिए डोरी में छल्ले पडे रहते हैं। तेंदू की लकडी की ढ़ोलक सबसे अच्छी मानी जाती है। ढ़ोलक शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत दोनों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। वैसे आजकल शास्त्रीय संगीत में ढोलक का स्थान तबले ने ले लिया है।

2. नगाड़ा - यह प्रायः मिट्टी का बना हुआ होता है तथा एक ओर भैंसें की खाल से मढ़ा हुआ होता है। नगाड़े के साथ छोटी मढ़ी हुई नगड़िया भी होती है। ये दोनों लकडी की चोव से बजाये जाते हैं। इस वाद्य की प्रमुखता अधिकतर नौटंकी में देखी जाती है। एक दशक पीछे मस्जिदों में रमज़ान के दिनों में

नगाडा बजता था, ताकि लोग जगकर शहरी वगैरह से निवृत्त हो जायें। कहीं-कहीं सुबह शाम मंदिरों में आरती के समय भी इसे बजाया जाता था, किन्तु अब दोनों धर्मों ने जन-जागरण का कार्य लाउड-स्पीकर से लेना प्रारंभ कर दिया है। वर्तमान समय में यह नौटंकी के अलावा और कहीं नहीं दिखलाई पडता। इसके ठेके, गति और लग्गी अपने अलग होते हैं। इसकी ध्वनि काफी दूर तक जाती है तथा बरबस ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती है। इसके लिए मलयालम में प्रयुक्त शब्द है - 'पेरुंपरा'।

3. **खंजडी** - यह विशुद्ध लोकवाद्य है। यह छः या आठ इंच के व्यास में लकडी की बनी होती है तथा एक ओर बकरे की खाल से मढ़ी होती है। इसके पूरे घेरे में पीतल या टीन के पतले गोल चपटे टुकड़े लगे रहते हैं, जो बजाते समय अपनी मधुर ध्वनि देते हैं। ग्रामीण लोकगीतों में बहुधा इसका प्रयोग किया जाता है। होली के अवसर पर गाये जानेवाले लोकगीतों में विशेष रूप से यह बजाई जाती है। वैसे गाँवों में इसका प्रयोग सामाजिक एवं धार्मिक दोनों अवसरों पर किया जाता है। कुछ भक्तिगीत केवल खंजडी बजाकर ही गाये जाते हैं। इसके लिए मलयालम में 'खिंचरा' आदि शब्द प्रचलित है।

4.**नौबत** -यह एक प्रकार का नगाडा ही होता है। शुभ अवसरों पर बजने के कारण ही इसे नौबत कहा गया। पुत्रोत्सव एवं विवाहोत्सव के अवसर पर इसे विशेष गति, लय एवं ध्वनि से बजाया जाता है। इसलिए इसे नौबत की संज्ञा दी गई है। ये दो होती हैं। एक कुछ छोटी होती है तथा दूसरी बड़ी। यह लकड़ी की चोवों से बजायी जाती है। यह मिट्टी की भी बनी होती है और धातु की भी। शहनाई के साथ इसके बजने का विशेष प्रचलन है।

5. **ढपला** - इसका घेरा कहीं लकडी का तथा कहीं लोहे की चादर का होता है तथा भैंसे की खाल से एक ओर मढ़ा होता है और तांत से कसा रहता है। बजाने से पहले इसे आग में सेंक लिया जाता है। पहले यह भले ही शुभ अवसरों पर बजता हो, परन्तु वर्तमान ससमय में शवयात्रा के साथ बहुधा ढपले बजते हुए दिखाई पडते हैं। यह लकडी की सहायता से बजाया जाता है। इसको बजानेवाली चोव कहीं तो साधारण होती है और कहीं गुल्लेदार चोव भी काम में आती है। मलयालम में इसके समान वाद्य को 'तप्पुं'कहते हैं।

6. **चमेली** - यह मिट्टी की बहुत चिलम के आकार की होती है। यह लगभग डेढ़ फिट लंबी होती है तथा एक ओर खाल से मढ़ी होती है। जन पद में यह होली आदि अवसरों पर बजायी जाती है। चौपई में यह विशेष रूप से बजती है।

7. **डमरू** - यह प्राचीन एवं धार्मिक वाद्य है। शिवजी को यह बहुत प्रिय था। वैसे इसका प्रयोग सड़कों पर हाथ की सफाई दिखानेवाले मदारी लोग ही करते हैं। इसके साथ बांसुरी बजाने का प्रचलन भी है।

यह दो उल्टे चिपके प्यालों की शक्ल का होता है और दोनों ओर मढ़ एवं डोरियों से कसा हुआ होता है। बीच में दो डोरियाँ बँधी होती हैं जिनमें मोम की छोटी-छोटी गोलियाँ बँधी होती हैं। जनपद में इसके लिए ..डुगडुगिया शब्द भी है।

8. तासा - यह बहुत बडी ढ़ोलक की तरह होता है। इसका घेरा एक फिट से लेकर दो फिट तक के व्यास में होता है। इसे लकडी की चोव से बजाया जाता है। कहीं-कहीं दोनों तरफ चोवों से तो कहीं-कहीं एक तरफ चोव तथा दूसरी तरफ हाथ से बजाया जाता है। होली एवं शादी-विवाह के अवसर पर यह बजता है, किन्तु जनपद में इसका सबसे अधिक प्रचलन होली के समय चौपाई में होता है। इन्हीं का विकसित रूप अंग्रेज़ी में ड्रम है।

3.4.3 तन्तु-वाद्य

जिन वाद्यों में तारों के माध्यम से ध्वनि उत्पन्न होती है, अर्थात् जिनमें पीतल या लोहे के तार लगे होते हैं और उन तारों को झंकृत करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है, वे वाद्य तन्तु-वाद्य के अंतर्गत आते हैं। सारंगी, मिजराब, इकतारा आदि तंतु वाद्यों के अन्तर्गत आते हैं।

1. सारंगी - सारंगी में 27 तार होते हैं, जो ऊपर की ओर एक खूँटी से कसे रहते हैं और जिसके कारण यह प्रत्येक स्वर एवं गायन को व्यक्त करने में सक्षम होती है। इसे कमानी से बजाया जाता है, जिसमें घोडे के बालबँधे होते हैं। जनपद में न तो कीर्तन-मंडलियाँ ही इसे बजाती है और न ही शादी विवाह पर यह स्थान पाती है। रामलीला के दिनों में निकलनेवाली बारात एवं राजगद्दी में ठेलों पर बैठी गायिकाओं के साजिन्दे ही इसे बजाते हैं।

2. मिजराब - यह सितार एवं सारंगी का मिला जुला रूप-सा प्रतीत होता है। यह भी कमानी से बजायी जाती है, जिसमें घोडे के बाल बँधे होते हैं। आजकल इस वाद्य का प्रचलन बहुत कम है।

3. इकतारा - प्रायः पकी हुई लौकी के खोल में बाँस फँसाकर एवं उस बाँस में खूँटी गाड़कर इसे बनाया जाता है। इसमें एक ही तार होता है इसलिए इसका नाम इकतारा पड़ा । यह प्रायः भिखारियों और साधुओं के पास ही दिखाई देता है। इसे एक हाथ से ही, जिसमें यह पकड़ा गया होता है, बजा लिया जाता है। इसके तार को उँगली द्वारा झंकृत किया जाता है।

उपरोक्त तन्तु वाद्यों के अलावा वयलिन, सितार, सरोद आदि वाद्यों का भी काफी प्रचलन है। लेकिन इनका प्रयोग खासकर शास्त्रीय कलाओं के साथ ही होता और सारे देश की जनता इनसे परिचित है इसलिए इनका विवरण ज़रूरी नहीं है ।

3.4.4 तालवाद्य

वाद्यों के सहायक वाद्य भी होते हैं, जिन्हें तालवाद्य कहते हैं। ये संगीत को अपनी ध्वनि से मोहक बनाते हैं। इनमें ताल देने की ही क्षमता होती है, स्वर देने की क्षमता इनमें नहीं होती, इसीलिए इन्हें तालवाद्य के नाम से पुकारा गया है। इसके अंतर्गत मंजीरा, झांझ, खड़ताल, चिमटा, गज, झुनझुना, घण्टा, घडियाल आदि वाद्य आते हैं।

1. **मंजीरा** - यह पीतल और काँसे की मिश्रित धातु का बना होता है। इसका आकार छेद्दार दिए की तरह होता है। ये दो होते हैं तथा डोरे से बंधे रहते हैं। दोनों हाथों में एक-एक मंजीरा पकडकर, दोनों को टकराकर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। इसकी ध्वनि मधुर होती है। स्त्रियाँ ढोलक के साथ गीत गाते समय इसे अवश्य बजाती है। ढोलक और मंजीरों का एक प्रकार से संग ही है। मलयालम में इसके लिए 'कैमणि' शब्द प्रयुक्त है जिसका अर्थ है हाथ का घंटा।

2. **झांझ** - यह मंजिरों का ही बडा आकार है। यह चार इंच से लेकर आठ इंच तक के व्यास का होता है। यह भी पीतल एवं कांस की मिश्रित धातु से बनाया जाता है। कीर्तन-मंडलियों एवं होली पर निकलनेवाली चौपई में इनका प्रचलन है। केरल में इसके समान प्रयुक्त वाद्य 'इलत्ताळम्' नाम से जाना जाता है।

3. **खड़ताल** - यह दो होती हैं, अर्थात् जोड़े से बजायी जाती हैं। एक में अंगूठे के बराबर छेद होता है तथा दूसरी में इतनी जगह होती है कि चारों उंगलियाँ चली जाएं। यह लकडी की बनी होती है। इसमें लोहे या पीतल के गोल चपटे टुकडे लगे होते हैं। लकडी के होने के कारण इनकी ध्वनि मधुर नहीं होती। परन्तु इनमें पडे टीन एवं पीतल के टुकडों से इनकी ध्वनि मधुर हो जाती है। प्रायः खड़ताल धार्मिक लोकगीतों में ही बजती है। इसके लिए मलयालम में 'चप्लांकट्टा' शब्द प्रचलित है।

4. **चिमटा** - यह साधु महात्माओं एवं भिखारियों के पास देखा जाता है। इस चिमटे के सिरे पर एक कड़ा लगा होता है, जिसे ताल के साथ बजाया जाता है। कीर्तन मंडलियों में चिमटे होते हैं, उनकी लम्बाई दो या ढाई फीट तक होती है। इसमें भी लोहे या पीतल के गोल चपटे टुकडे लगे होते हैं, जिनसे ध्वनि और मोहक होती है।

5. **गज** - यह एक प्रकार की लोहे की छड़ी होती है। यह लोहे कड़े या टुकड़े से बजाया जाता है। इसमें शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं, अपितु यह गीतों की ध्वनि के साथ-साथ चलता है। गज का प्रयोग भी कीर्तन-मण्डलियों में ही होता है।

6. हारमोनियम - हारमोनियम ने भी अब लोक संगीत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। वर्तमान समय में हारमोनियम का प्रचलन सबसे अधिक है। चौपई गाते हुए लोकमानव इसे विशेष रूप से बजाता है। साथ ही कीर्तन-मंडलियों में भी यह आवश्यक रूप से शामिल होता है।

यदि इन वाद्यों की तुलना प्रयोग एवं प्रयोजन की दृष्टि से केरल के वाद्यों से की जाएँ तो दोनों में पर्याप्त समानता व भिन्नता नज़र आयेंगी। लेकिन प्रांतीय विशेषताओं के प्रभाव के कारण इन वाद्यों में जो भिन्नताएँ दिखाई पडती हैं उन्हें प्रांत की अपनी मौलिकता ही मान लेनी चाहिए, इनके आकार और स्वरूप को महत्त्व देने की कोई ज़रूरत नहीं।

3.5 उत्तर भारत में प्रचलित शास्त्रीय नृत्य

जिस प्रकार दक्षिण भारत में नृत्य की दो प्रधान पद्धतियाँ प्रचलित हैं कथकळि तथा भारतनाट्यम, उसी प्रकार से उत्तरी भारत में नृत्य की दो प्रधान शैलियाँ उपलब्ध होती है कत्थक और मणिपुरी। इनमें कत्थक नृत्य अधिक लोकप्रिय है तथा इसका प्रचार अधिक क्षेत्रों में पाया जाता है। इस नृत्य का जन्म मुगल काल में माना जाता है। मुगल बादशाहों को ऐसे नृत्य की आवश्यकता थी जो उनका मनोरंजन कर सके। इसलिए कत्थक नर्तकों की वेशभूषा आज भी मुगल दरबार के समान है। ये रंगीन अचकन और चूड़ीदार पैजामा पहनते हैं। सिर पर दुपलिया टोपी और अचकन के ऊपर वासकट (जवाहर जाकेट) धारण करते है। ये अपने पैरों में घुँघरू बाँधकर नाचते हैं। कत्थक नृत्य पुरुष और स्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें नृत्य की अपेक्षा नृत्त पर अधिक बल दिखाई पडता है। नर्तक लय और ताल के आधार पर नर्तन का कार्य कर जन-मन का अनुरंजन किया करते हैं। उत्तर भारत में काफी प्रचलित होने के कारण इसका विस्तृत विश्लेषण शोधार्थी के लिए अनिवार्य नहीं मानता हूँ।

यद्यपि मणिपुरी नृत्य को भी एक शास्त्रीय नृत्य के रूप में गिना जाता है फिर भी हिन्दी प्रदेशों में इसका प्रचार कम है। स्वतंत्रता के पूर्व मणिपूर एक स्वतंत्र रियासत थी जिसका विलयन भारत में हो गया है। यहाँ का एक विशिष्ट प्रकार की नृत्य शैली प्रचलित है जो इस प्रदेश के नाम के कारण मणिपुरी कहलाती है। मणिपुर की पौराणिक गाथाओं के अनुसार ऐसै ज्ञात होता है कि यहाँ के निवासियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति नृत्य की ओर है। ये लोग इस कला को अत्यंत पवित्र मानते हैं।

अतः कत्थक को छोड़कर केरल की कथकळि या मोहिनियाट्टम के समकक्ष रखने योग्य एक शास्त्रीय नृत्य का हिन्दी प्रदेशों में नितांत अभाव है। यद्यपि घूमर माँच के नृत्य, भीलों के नृत्य, मोहिली, पाली नृत्य, पाण्डव नृत्य, नागर्जा (नागराजा) नृत्य, झोड़ा नृत्य, छपेली, छोलिया नृत्य आदि कई नृत्यों का प्रचलन हिन्दी प्रदेशों में हैं फिर भी ये सब लोकनृत्य की कोटि में आते हैं।

जहाँ तक अनुष्ठान कलाओं का संबंध है वहाँ भी यह भिन्नता नज़र आती है। केरल की कलाओं में भक्ति तथा अनुष्ठानों की जो प्रधानता होती है उसे उसी रूप में हिन्दी प्रदेशों में पाना कठिन है। जातिगत, धर्मगत, प्रांतगत एवं भाषागत भिन्नताएँ दोनों के आपसी मिलन को रोकती हैं।

3.6 शब्दावली का विश्लेषण

केरल के मंदिरों से जुड़ी हुई कलाओं तथा अनुष्ठान प्रधान कलाओं से संबंधित शब्दावली का विश्लेषण निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

1. विश्लेषण प्रत्येक कलाविशेष तक सीमित न होकर सामान्य तौर पर कलाओं के सभी अंगों की ओर ध्यान देकर किया जाना चाहिए।

2. भाषावैज्ञानिक स्तर पर विश्लेषण असंगत है क्योंकि आम जनता के साथ ही इसका संबंध है न कि भाषा वैज्ञानिकों या वैयाकरणिकों से ।

3. सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं क्षेत्रीय विशेषताओं की पृष्ठभूमि में विवेचन किया जाना चाहिए।

4. जातिगत एवं धर्मगत परंपराओं के महत्त्व को स्वीकरना अनिवार्य है।

5. कलाओं से संबंधित साहित्य व गीतों का परिचय भी दिया जाना चाहिए।

6. कलाओं की प्रस्तुति के विभिन्न पटावों से संबंधित विशेष शब्दों का उल्लेख भी अनिवार्य है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में प्रयुक्त शब्दावली को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है।

1. कलाओं की प्रस्तुति संबंधी शब्दावली
2. धर्मगत/जातिगत शब्दावली
3. साहित्य/गीत संबंधी शब्दावली
4. वेशभूषा, साज सज्जा एवं रंग सज्जा संबंधी शब्दावली
5. वाद्यों से संबंधित शब्दावली

3.6.1 कलाओं की प्रस्तुति संबंधी शब्दावली

इसके अंतर्गत ऐसी शब्दावली का विश्लेषण किया जाएगा जिनका संबंध कलाओं के प्रस्तुतिकरण से है। यहाँ प्रत्येक कलाओं के संबंधित ऐसे शब्दों को चुना गया है जिनकी जानकारी के बिना इन कलाओं का आस्वादन असंभव है। अध्ययन की सुविधा के लिए जो विभाजन प्रस्तुत किया है उसी के मुताबिक शब्दावली का चयन भी प्रस्तुत किया गया है।

मूल मलयालम शब्द	समानार्थी हिन्दी शब्द (हिन्दी में अर्थ)
कूत्तुॅ	नृत्त (नृत्य)
चारी	कूत्तुॅ की शुरूआत करनेवाला अनुष्ठान नृत्य।
रंग वंदनम्	प्रारंभिक रंगपूजा
कूटि	सम्मलित, संघटित
आट्टम्	नाट्य, अभिनय
विदूषकन	विदूषक
सूत्रधारन्	सूत्रधार
पुऱप्पाटुॅ/निर्वहणम्	कूटियाट्टम् शुरू करने से पहले विदूषक द्वारा प्रस्तुत प्राक्कथन व अभिनय
विवादम्, विनोदम्, अशनम्, राजसेवा	कूटियाट्टम प्रस्तुत करने के चार पढ़ाव (पुरुषार्थ चतुष्टय)
अक्कित्तम्	कूटियाट्टम् की प्रारंभिक गणेश, शिव व सरस्वति स्तुति
क्रिया चविट्टुॅ	अक्कित्तम् के बाद सूत्रधार द्वारा प्रस्तुत नृत्य व अभिनय
अरङ्ङुॅ तळि	कूटियाट्टम् का कथासार प्रस्तुत करना।
अंकम् मूटल	कूटियाट्टम् की समाप्ति की सूचना देने के लिए प्रस्तुत गीत और नृत्य
अष्टपदियाट्टम्	अष्टपदि गीत के अनुसार किए जानेवाला नृत्य
रामनाट्टम्	रामकथा पर आधारित नृत्य व अभिनय
कृष्णनाट्टम्	कृष्णकथा पर आधारित नृत्य व अभिनय
कथकळि	मशहूर शास्त्रीय नृत्य
कैमुद्रा	हस्तमुद्रा
केळिकोट्टुॅ	कथकळि अभिनय/प्रस्तुति देनेवाला वाद्यघोष
तोटयम्	पूर्वरंग या अभिनय की शुरूआत के पहले ईश्वर वंदना
पुऱप्पाटुॅ	प्रस्थान या आविर्भाव
निलपदम्	प्रस्थान का गीत
तिरनोट्टम्	नर्तक के दर्शक के सामने धीरे धीरे प्रत्यक्ष होना।
कलाशम्	कथकळि का तांडवप्रधान नृत्य जिसके साथ नर्तक का निष्क्रमण होता है।

तुळ्ळल	नृत्य विशेष
परयन तुळ्ळल, शीतंकन तुळ्ळल ओट्टन तुळ्ळल	तुळ्ळल के भेद
चेलकेट्टुं,जातिवर्णम्, वर्णम् , तिल्लाना	मोहिनियाट्टम् के पढ़ाव
मोहिनियाट्टम्	लास्यप्रधान शास्त्रीय नृत्य
अटवुं	मोहिनियाट्टम् के पदान्यास
उद्घाटिता, सामा, अग्रतला संचारम् साममंडलम्, अरमंडलम्, मुषुमंडलम्	पदान्यास
मुक्काल मंडलम्, काल् मंडलम्	मोहिनियाट्टम् में घुटनों की स्थिति के आधार पर पाच पढ़ाव
वायत्तारी	गीत
तगणम्, जगणम्, धगणम्, सम्मिश्रम्	अटवुं

* विभिन्न हस्तमुद्राओं से संबंधित विस्तृत जानकारी इस अध्याय में दी गई हैं।

तेय्यम्	केरल की अनुष्ठान प्रधान कला
कावुं	देवताओं का निवास स्थान
कोलम्	साज-सजावट के साथ आनेवाला तेय्यम् कलाकार
कोमरम्/वेळिच्चप्पाटुं	ईश्वर/देवता का प्रतिपुरुष
अटयाळम्	तेय्यम् की प्रस्तुति की सूचना देनेवाला अनुष्ठान
मुंड्या/मुंडिया	अवर्ण लोगों का आराधना स्थल
कोट्टम्	देवता स्वरूप वीर पुरुषों का आराधना स्थल
तानम्	पूजा करने का स्थान
कळियाट्टम्	प्रत्येक साल में किए जानेवाले तेय्यम् का आयोजन
पेरुम्कळियाट्टम्	कई सालों के अन्तराल में कळियाट्टम् की प्रस्तुति
तोऱ्ऱम्	तेय्यम् कलाकार का प्रस्थान
वेळ्ळाट्टम्	तेय्यम् की प्रस्तुति की दूसरा चरण
ती	आग

मेलरी	अंगारों का ढ़ेर
कोलक्कारन	तेय्यम् प्रस्तुत करनेवाला कलाकार
कळम्	विभिन्न अनुष्ठानों के लिए पाँच प्रकार के रंगों से बनानेवाली रंगोली।
काप्पुकेट्टल	कोमरम का वेशभूषा धारण कर तैयार होना।
मुटियेर्रु	अनुष्ठान प्रधान कला
मुटियेर्रुक	मुकुट धारण करना।
तिरुवुषिच्चिल	मशाल लेकर कळम् की आरति उतारने का अनुष्ठान।
पटयणि	अनुष्ठान कला जिसका शाब्दिक अर्थ है सेना का प्रस्थान
काच्चिकेट्टु	गाँववालों को पटयणि की सूचना देनेवाला कार्यक्रम
कोप्पोलि	पटयणि का दूसरा चरण
तावटि तुळ्ळल	पटयणि का तीसरा चरण
I नृत्य	
अरुळप्पाट्टु	देववाणी या देवाज्ञा
कनलाट्टम्	अंगारों के ऊपर किए जानेवाला नृत्य-नृत्त
पांपुम् तुळ्ळल/सर्पम् तुळ्ळल	नाग नृत्य
नूरुम् - पालुम्	नाग देवताओं को दूध पिलानेवाला अनुष्ठान
पान तुळ्ळल	देवी प्रीति के लिए आयोजित नृत्य
भद्रकाळी तट्टकम्	पान तुळ्ळल के लिए तैयार किए जानेवाला मंडप
आशान	पाना कलाकारों का नेता व प्रशिक्षक
पानपिटुत्तम्	पाल वृक्ष/सुपारी का किसलय आदि हाथ में लेने का कार्यक्रम
पूरक्कळि	अनुष्ठान नृत्य
पंतल प्रवेशम्	पूरक्कळि कलाकारों का मंच पर प्रस्थान
पणिक्कर	पूरक्कळि कलाकारों का नेता एवं प्रशिक्षक
अंकम्, पटा, चायल, पांपाट्टम्, शैवक्कूत्तु, योगी, आंट्टु, पळ्ळु	पूरक्कळि के विभिन्न चरण

3.6.2 धर्मगत/जातिगत शब्दावली

केरल में भी अन्य भारतीय प्रांतों के समान अनेक जातियों व उपजातियों का प्रचलन हैं। कुछ जातियाँ अपने पेशे के आधार पर जाने जाती है तो कुछ इसके बिना। ज़्यादातर जातियाँ भिन्न-भिन्न प्रांतों

में अलग-अलग नामों से पुकारी जाती हैं। आजकल पेशे के आधार पर किसी जाति के लोगों को समझना भी कठिन कार्य हो गया है। दूसरे अध्याय में केरल की प्रमुख जातियों का सामान्य परिचय दिया गया है। यहाँ सिर्फ शब्दावली की दृष्टि से नामों का उल्लेख मात्र दिया गया है।

मलयालम शब्द	हिन्दी में अर्थ
चाक्यार	जाति का नाम (कूत्तु प्रस्तुत करनेवाला)
नङ्ङियार	चाक्यार स्त्री
नंपियार	जाति का नाम (मिषावु जैसे वाद्य बजानेवाला)
परयर	अवर्ण जाति
पुलयर	अवर्ण जाति
नायर	सवर्ण जाति
तेविडिच्चि	देवदासी स्त्री
वण्णान, मलयन, माविलन, चिंकत्तान, वेलन, मुन्नूट्टान, अञ्ञूरान, कोप्पाळन, पुलयन, परवर, पंपत्तर	तेय्यम् प्रस्तुत करनेवाली अवर्ण जातियाँ
वेलन, मारार, कुरुप्पु, वात्ति, कोल्लन, मलयरयन	कळमेषुत्तु पाट्टु/भगवतिप्पाट्टु प्रस्तुत करनेवाली जातियाँ
गणकन	गणक जाति का व्यक्ति जो पटयणि में कोलम तैयार करता है।
चोवन	एक जाति विशेष
पुळ्ळुव पणिक्कर	पुळ्ळुव पूजारी
मणियाणि	जाति विशेष
तीयर	जाति विशेष
मुक्कुवर	मछुवारे
आशारी	बढ़ई
मूशारी	जाति विशेष
पुळ्ळुवर	अवर्ण जाति जो पुळ्ळुव गीत प्रस्तुत करती है।
तट्टान	सुनार
कोल्लन	लोहार

तीयाटि नंपियार	अय्यप्पन तीयाट्टु प्रस्तुत करनेवाले।

3.6.3 साहित्य/गीत संबंधी शब्दावली

इस विवेचन के अंतर्गत आनेवाली सभी कलाओं में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है यह संगीत कभी वाद्यों के द्वारा सृजित होता है, कभी राग-रागणियों में बंधे हुए गीतों के द्वारा। इन गीतों को भी दो प्रकार से बंटे जा सकते हैं। पहला जो पंडित लोगों के द्वारा सृजित शुद्ध एवं सात्त्विक साहित्य। दूसरा जो ग्रामीण एवं आम लोगों के कंठों से निकली स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। यहाँ इसप्रकार के साहित्य एवं गीत से संबंधित शब्दों को प्रस्तुत किया गया है।

पाट्टु	गीत
आट्टक्कथा	कथकळि साहित्य
कथकळि पदम्	कथकळि के गीत
अष्टपदि पदम्	अष्टपदि के गीत
कृष्णगीति	कृष्णाष्टक (कृष्णनाट्टम् की आधार रचना)
तोऱ्ऱम् पाट्टु	तेय्यम्, कळमेषुत्तु, पाना आदि के दौरान गानेवाले गीत
पुलवृत्तम	पटयणि में प्रस्तुत गीत
आस्तिकम्	पांपुम् तुळ्ळल के द्वारा गानेवाले गीत
गणेश तोऱ्ऱम्	गणेश से संबंधित गीत
शास्ता तोऱ्ऱम्	शास्तावु (अय्यप्पन) से संबंधित गीत
दारिक तोऱ्ऱम्	दारिक से संबंधित गीत
काळी तोऱ्ऱम्	काळी से संबंधित गीत
तोषुन्न पाट्टु	पूरक्कळि का वंदना गीत

गीतों से संबंधित शब्दावली इतनी सीमित इसलिए हो गई है कि इन शब्दों का संबंध सिर्फ इस अध्याय में निर्धारित कलाओं से है। केरल के लोकगीतों के विश्लेषण के दौरान इसप्रकार के बहुत सारे शब्दों का विश्लेषण किया जाएगा जो अगले अध्याय में सम्मिलित हैं।

3.6.4 वेशभूषा, साज सज्जा एवं रंग सज्जा संबंधी शब्दावली

किसी भी कला की प्रस्तुति वेशभूषा, साज-सज्जा एवं रंग सज्जा के बिना अधूरी है। प्रस्तुतिकरण की प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। केरल की सभी कलाओं की साज-सज्जा लाजवाब है। कई सालों के निरंतर अनुसंधान एवं प्रयोग के बाद ही इसके लिए सामग्रियाँ तैयार की जाती

है। 'तेय्यम्', 'कथकळि','कूत्तु' आदि की प्रस्तुति में मुखलेपन एवं शरीर लेपन की ओर ज़्यादा ध्यान देना पडता है। एक ही रंग के बदल जाने से पात्र की हैसियत बदल जाती है। 'कळमेषुत्तु पाट्टु' 'पटयणि' 'पांपुंतुळ्ळल' आदि में चित्रकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला का सामंजस्य दर्शनीय है। कुशल कलाकारों के ज़रिए इसके लिए रंगभूमि तैयार की जाती है। यहाँ कला-प्रस्तुति में सहायक वेशभूषा, साज सज्जा, औजार-हथियार आदि से संबंधित शब्द प्रस्तुत हैं।

अरिप्पोटि	चावल के चूर्ण/चूरा
कुंडलम्	कुंडल
मुटि	शिखा, मुकुट
अरप्पट्टा	कटिबंध
कटकम्	हाथ में पहननेवाले विशेष आकारवाला कंकण
मयिल पीलि	मोर पंख
किरीटम्	मुकुट, ताज
पीलिप्पट्टम्	मोर पंखों से वृत्ताकार में बनायी गयी सजावट जिसे मुकुट में बांधते हैं।
कुटुमा	शिखा
वासुकीयम्	सिर में धारण करनेवाला आभूषण
चुट्टि कुत्तु, चुट्टियेषुत्तु	चेहरे पर की जानेवाली सजावट/मुखलेपन की शैली
रगालंकारम्	रंगमंच की सजावट
पट्टु	रेश्मी कपड़ा
कुरुत्तोला	नारियल के कोमल पत्ते
पूक्कुला	नारियल का किसलय
कुलवाषा	केले का फलदार पौधा
मुखंमूटि	मुखौटा
मिनुक्कु वेष	कथकळि में मुनि, ब्राह्मण, दूत नारी पात्र की सजावट
पच्चा वेष	सात्विक प्रकृतिवाले पात्रों की सजावट
दाढ़ी वेष	निषाद, अखेटक, शकुनि जैसे रजोगुण प्रधान पात्रों की सजावट
करिवेष (काला)	आसुरी वृत्तियोंवाले पात्रों की सजावट

कत्ति वेष	धीरोदात्त पात्रों की सजावट
चिलंबु	पैर में पहननेवालाआभूषण जिसके अन्दर झंकार के लिए मोती भरे रहते हैं।
कोडा	शीतंकन तुळ्ळल में सिर में बाँधनेवाला आभूषण
चिलंका	घूँघरू
नेऱ्िऱ चुट्टि	माथे का आभूषण
सूर्य, चन्द्र	बाल के आभूषण
तोडा	कान की बुंदि
मूक्कुत्ति	नाक का आभूषण
नागपटत्तालि	नाग के फन के आकार में बनायी गयी एक प्रकार की माला
पवनमाला	सोने के सिक्कों की माला
वेऱ्िऱला	पान के पत्ते
नीळ मुटि, वट्ट मुटि, चट्ट मुटि, पीलि मुटि, कॊंपु मुटि, पूक्कट्टि मुटि,ओंकार मुटि, पाळ मुटि, ओल मुटि,इल मुटि, तोप्पिच्चमयम्, कोटुमुटि,तोङ्ङल मुटि, तिरुमुटि, कोंपन मुटि,कोतच्च मुटि	तेय्यम के विभिन्न आकारवाले मुकुट
करि	कोयला
मञ्ञळ	हल्दी
मुखमेषुत्तुं	मुखलेपन
प्राक्केषुत्तुं, अंचुपुळ्ळियिट्टेषुत्तुं, वट्टक्कण्णिट्टेषुत्तुं, पुळ्ळियिट्टेषुत्तुं, प्राक्चुरुळ, तोप्पिपूविट्टेषुत्तुं, अंचुपुळ्ळियुम् - आनक्कालुम्, पालोट्टे दैवम् मुखमेषुत्तुं, शंखिट्टेषुत्तुं, हनुमान कण्णिट्टेषुत्तुं, मानकण्णिट्टेषुत्तुं, नागत्तालम्,	तेय्यम् की विभिन्न मुखलेपन शैलियाँ

नागोम् कुरियुम्, कुक्कुरि वालुम्-
चुरुळुम्, कोडुंपिरियन

पत्रिमूक्कुँ, परुंतुवाल, पुळिळ	शरीर लेपन के प्रकार
मारवट्टम्	वक्ष में पहननेवाला आभूषण
अरमणि	कमरघंटी
कालत्तळा	पैर के आभूषण
वाळुम्-परिचयुम्	तलवार व ढाल
अंपुम्-विल्लुम्	बाण और धनुष
वेळिळक्किण्णम्	चाँदी का फलक
चूल	झाड़ू
मुऱम	सरई
उलक्का	मूसल
नवतालम्	कळम बनाने के परंपरागत ढाँचा
गणपतिक्कोलम्	गणेश का कोलम्
यक्षिक्कोलम्	यक्षि का कोलम्
पक्षिक्कोलम्	पक्षी का कोलम्
कालनकोलम्	शिव का कोलम्
पिशाचुकोलम्	पिशाच का कोलम्
माटनकोलम्	माटन (पैशाची शक्ति) का कोलम्
मरुताक्कोलम्	मरुता का कोलम्
भैरविक्कोलम्	भैरवि का कोलम्
गंधर्वनकोलम्	गंधर्व का कोलम्
मुकिलनकोलम्	मुकिलन का कोलम्
कुतिरक्कोलम्	घोड़े का कोलम्
पतियम्	अय्यप्पन तीयाट्टुँ के लिए प्रयुक्त छोटा मुकुट
कोरलारम्	अय्यप्पन तीयाट्टुँ के लिए प्रयुक्त आभूषण
चेविप्पूवुँ	कर्णाभरण

पटियरञ्ञाणम्	चौडा कमरबंध
ओर्र्क्कळम्, इरट्टक्कळम्, किरीटक्केट्टुं, भस्मक्केट्टु, उरिक्केट्टु, तूक्कुं, कोट्टक्केट्टुं, पवित्रक्केट्टुं,शिवलिंग पद्मम्, पवित्र कळम्, नागयक्षिक्कळम्, अष्टनागक्कळम्, पक्षिक्कळम्	नागनृत्य में बनानेवाले विभिन्न प्रकार के कळम्
कच्चिला और चुरा	पूरक्कळि की वेशभूषा

* तेय्यम् के विविध भेदों की सूची दे चुको है।

3.6.5 वाद्यों से संबंधित शब्दावली

वाद्यों की चर्चा विस्तृत रूप से इस अध्याय की शुरूआत में दी गई है। उत्तर भारत में विभिन्न नृत्यों, लोकनृत्यों, लोकगीतों में प्रयुक्त वाद्यों की जानकारी भी सामान्य रूप से प्रस्तुत है। इनमें कुछ वाद्यों का प्रयोग दोनों क्षेत्रों में सामान्य है तो कुछ एक दूसरे के लिए बिलकुल अपरिचित। केरल प्रांत के ऐसे वाद्यों की ओर हिन्दी प्रदेशों के लोगों का ज़्यादा ध्यान होगा क्योंकि यहाँ की कलाओं की प्रस्तुति में इन वाद्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

3.7 अनुवाद संबंधी जटिलताएँ

भारत एक बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है, यह तथ्य बारबार अनेक विद्वान अनेक संदर्भों में विवेचन कर चुके हैं। इतना ही नहीं भारतीय भाषा समुदायों को दृष्टि में रखकर भारतीय बहुभाषिकता को एक शक्ति, एक सहज प्रयोग की प्रकृति के रूप में भी अब पहचाना जाने लगा है। भारतीय बहुभाषिकता एक विशिष्ट प्रकृति से बनी हुई है। इस विशिष्ट प्रकृति में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि बहुभाषिक, बहु सांस्कृतिक प्रकृति में भी इनका प्रवाह एक अंतःसलिल के रूप में सर्वमान्य रहा है। यही कारण है कि इस बहुभाषी देश में अनुवाद की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

भारत की सभी भाषाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं कला संबंधी श्रेष्ठ सामग्री उपलब्ध है। ये सारी सामग्रियाँ भारत की महादेशीयता की सक्षम प्रमाण है। इन्हें हिन्दी के माध्यम से अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाना भारतीय बहुभाषिक स्थिति में अनुवाद की आकांक्षा और भूमिका रही है, जिसका विस्तार और भी व्यापक धरातल पर अब अनिवार्य हो गया है। आज अनुवाद एक

सामाजिक आवश्यकता के रूप में उभर कर हमारे सामने है। इसलिए संप्रेषण-प्रक्रिया के एक उपयोगी माध्यम के रूप में उसे स्वीकारा जा रहा है। इस धरातल पर अनुवाद एक उपयोगी व्यावहारिक कला-कौशल के रूप में हमारे समक्ष है।

एक भाषा की किसी सामग्री का दूसरी भाषा में रूपांतरण (भाषान्तरण) ही अनुवाद है, जो श्रोत भाषा में व्यक्त विषय को दूसरी भाषा में पुनर्व्यक्त करता है। प्रत्येक भाषा विशिष्ट परिवेश में पनपती है, अतः उनकी अनेक ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, रूपात्मक, वाक्यपरक, अर्थपरक, मुहावरा-लोकोक्ति-विषयक, लाक्षणिक, संस्कारगत और आंचलिक विशेषताएँ होती हैं जो अन्य भाषाओं से भिन्न होती हैं। इसलिए श्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में उपरोक्त विशेषताओं को लेकर शब्द, वाक्य, भाव, शैली तथा अभिव्यक्ति में भ्रामक समानताएँ एवं स्पष्ट भिन्नताएँ पायी जाती हैं। अनुवाद के लिए वे दोनों प्रायः बाधक होती हैं।

शब्द की रचना ध्वनियों से होती है। ये शब्द समूचे भाषिक समुदाय की थाती है। इस समुदाय के द्वारा शब्द का प्रयोग-अनुप्रयोग होता रहता है। शब्द का एक सार्वत्रिक रूप भी होता है और दूसरा उसका उच्चरित ध्वनिबद्ध रूप। पहले रूप में अर्थ की प्रधानता होती है और दूसरे में संरचक ध्वनियों के विशिष्ट विन्यास पर भी दृष्टि केन्द्रित होती है। इस प्रकार के शब्दों का अनुवाद एक बडी समस्या होती है। इसका कारण यह है कि इनका मूल अर्थ ही पर्याप्त नहीं होता, एक विशिष्ट ध्वनियोजना से उत्पन्न बिंबपरक अर्थ भी होता है। सामान्य अर्थ का वाचक पर्याय शब्द लक्ष्य भाषा में ढूँढा जा सकता है किंतु इसीप्रकार की अनुरणनात्मक ध्वनि खोज लेना असंभव होता है। इस प्रकार के बिंबपरक शब्दों का प्रयोग सामान्य जीवन में होता ही है लेकिन कलाओं में बिंबपरक शब्दों की उपादेयता अधिक होती है।

उपर्युक्त बातों पर दृष्टि रखकर केरल की कला संबंधी शब्दावली के हिन्दी अनुवाद की जटिलताओं पर विचार करना है। मलयालम और हिन्दी अनुवाद के संबंध में विचार करें तो मलयालम-हिन्दी अनुवाद परंपरा की ओर भी ध्यान देना होगा। साहित्यानुवाद (गद्य व पद्य) के क्षेत्र में इस प्रकार के बहुत सारे प्रयास हुए हैं और किए जा रहे हैं। लेकिन कला संबंधी शब्दावली के अनुवाद के सिलसिले में प्रयास बहुत कम या न के बराबर है। इसलिए इस क्षेत्र में काम करना दुविधाजनक कार्य है। साहित्य - गद्य हो या पद्य - के अनुवाद से जुडी हुई जितनी भी समस्याएँ अनुवादक के सामने आ जाएँगी उनसे भी गंभीर समस्याएँ कलासंबंधी शब्दावली के अनुवाद से जुडी हुई हैं। साहित्यानुवाद में जहाँ शब्दानुवाद असफल होता है वहाँ भावानुवाद से काम चलाया जा सकता है। लेकिन कला संबंधी शब्दों के अनुवाद में ऐसे प्रसंग आएँगे जहाँ शब्दानुवाद और भावानुवाद दोनों कामयाब नहीं हो सकते क्योंकि इन कलाओं

के पीछे कार्यरत सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं प्रादेशिक विशेषताओं को यथासंभव हिन्दी में प्रस्तुत करना आसान कार्य नहीं है। इसके अलावा भाषापरक जटिलताओं से जुडी हुई समस्याएँ अलग से बाधा उत्पन्न करती हैं। कला संबंधी शब्दों का अनुवाद करते ससमय उपरोक्त सारी बातों की ओर ध्यान देना चाहिए। उदाहरणतया, यदि कोई हिन्दी भाषी 'तेय्यम्' का आस्वादन करता है तो मात्र यह तेय्यम् है, यही जानने से काम नहीं हो सकता। लगभग 400 भेदों से यह कौनसा 'तेय्यम्' है, यह किस देवता का प्रतिरूप है, किस प्रसंग को लेकर प्रस्तुति हो रही है, तेय्यम् के दौरान प्रस्तुत 'तोऱ्ऱम्-गीतों' में क्या-क्या वर्णित है, इसकी प्रस्तुति किस लक्ष्य को सामने रखकर की जा रही है इन सभी बातों की ओर दर्शक का ध्यान जाना चाहिए। ऐसी समस्याएँ हर कलाओं के साथ जुडी हुई हैं।

भाषावैज्ञानिक स्तर पर वर्ण, शब्द, पद, रूप, वाक्य, अर्थ इस प्रकार का विभाजन करके अनुवाद संभव है। लेकिन इसके प्रयोग और परिणाम सिर्फ भाषा वैज्ञानिकों एवं भाषा पंडितों तक सीमित रहेंगे, आम जनता के साथ उसका कोई संबंध न रहेगा। इसका मतलब बिलकुल यह नहीं है कि भाषावैज्ञानिक तत्त्वों का कला संबंधी शब्दावली के अनुवाद में कोई महत्त्व नहीं रहेगा, मतलब सिर्फ इतना है कि भाषावैज्ञानिक तत्त्वों का संबंध ऐसे अनुवाद के लिए आवश्यक है फिर तथ्यों को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने के लिए भाषावैज्ञानिक तथ्य ही पर्याप्त नहीं है।

कला संबंधी शब्दों का अनुवाद अगर हिन्दी में कर रहे हैं तो केरल की रूढ़ियों, रीति-रिवाज़, आचार-विचार आदि का भी अनुवाद हिन्दी में करना है। जब हिन्दी प्रदेश के लोग ऐसे तत्त्वों से अपरिचित है तो हिन्दी में इनके पर्यायवाची शब्द नहीं मिल सकते। अनुष्ठानप्रधान कलाओं की बात और भी कठिन है क्योंकि यहाँ की सांस्कृतिक एवं धार्मिक शब्दावली को हिन्दी में प्रस्तुत करना मुश्किल है। काव्य की तरह कलाओं में भी शब्दों का विशेष प्रभाव परिलक्षित है। लक्षणा-व्यंजना का व्यापार तो है ही। तीव्र संवेदना के बोधक शब्दों व प्रयोगों का कलाओं में विशेष स्थान है। इनके लिए उतने ही सशक्त शब्दों को लक्ष्य भाषा में प्राप्त करना भी आसान नहीं है। अनुवाद की सुविधा के लिए इन शब्दों का रूपांतरण तो संभव है। लेकिन एक सांस्कृतिक क्षेत्र के शब्दों का अन्य सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रतिरोपण अगर कुशलता से न किए जाये तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। इसलिए अनुवादक को अधिक सावधानी बर्तनी होगी।

निष्कर्ष

किसी भी भाषा का अस्तित्व उस क्षेत्र की संस्कृति से जुडा हुआ है जहाँ वह पनपी और बोली जाती है। वहाँ की जनता के जीवन और संस्कार की अतल गहराइयों तक भाषा की जड़ें फैली हुई हैं।

इन जड़ों को काटकर भाषा को अन्य प्रांत में पुनःरोपण करना बाएँ हाथ का खेल नहीं है। यदि ऐसा करें तो भाषा के स्वरूप एवं प्रांतगत विशेषताओं में क्षति पहूँचने की संभावना है। कलाओं से संबंधित शब्दावली के अनुवाद में यह समस्या और जटिल हो जाती है। यहाँ शब्दानुवाद और भावानुवाद दोनों पूर्णतः सफल हो नहीं पाते। स्रोत भाषा में प्रयुक्त एक शब्द के लिए एक समान या समानार्थक शब्द लक्ष्य भाषा में गठित करने से अनुवाद कार्य पूर्ण नहीं होता क्योंकि कलाओं का मुख्य उद्देश्य आस्वादन है इसलिए अन्य भाषा-भाषी लोगों को आस्वादन के स्तर पर इन कलाओं का परिचय दिलाना ही अनुवादक का परम कर्तव्य बन जाता है। केरल की कलाओं को हिन्दी भाषी लोगों के सामने प्रस्तुत करते समय भी इस बात पर अधिक ध्यान देना पडता है। यहाँ अनुवाद भाषा की ही नहीं संस्कृतियों के आदान-प्रदान की बात है। तब कलाओं के साथ जुडी हुई सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आंचलिक विशेषताओं की पृष्ठभूमि में ही अनुवाद कार्य होना अनिवार्य बन जाता है।

चौथा अध्याय

केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ

चौथा अध्याय

केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ खण्ड - क

किसी भी प्रांत के लोक साहित्य, कला, गीत और गीतों को मिलाकर कोई नाम लेना चाहे तो सबसे पहले अंग्रेज़ी का 'फोकलोर' (Folklore) शब्द मन में आता है। फोकलोर एक सामासिक पद है जिसमें दो शब्द सम्मिलित है - (1) 'फोक' (Folk) तथा (2) 'लोर' (lore)। फोक शब्द से सभ्यता से दूर रहनेवाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। परन्तु यदि इसका विस्तृत अर्थ लिया जाये तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इसी नाम से पुकारे जा सकते हैं। लेकिन फोकलोर के संदर्भ में 'फोक' शब्द का अर्थ असंस्कृत लोग है। अंग्रेज़ी फोक के लिए इसी अर्थ में हिन्दी के लोक शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। दूसरे शब्द 'लोर' का शाब्दिक अर्थ ज्ञान अथवा विद्या से होता है। अतः फोकलोर का अर्थ हुआ सामान्य जनता का ज्ञान अथवा विद्या। कहने का आशय है कि जनता-जनार्दन का यावत ज्ञान है, उनकी जो कुछ जानकारी है वे सभी कुछ 'फोकलोर' के अध्ययन का विषय है। इसप्रकार जनता के रीति-रिवाज़, विधि-विधान, क्रिया-कलाप, विश्वास-प्रथा, परंपरा और लोक साहित्य-गीत, कथा, नाट्य ये सभी विषय फोकलोर में अन्तर्भुक्त होते हैं।[1]

फोकलोर शब्द की परिभाषा अनेक विद्वानों ने विभिन्न रूपों से बतलायी है। किसी ने इसके साहित्यिक रूप पर बल दिया है तो जनता की संस्कृति के अध्ययन को ही फोकलोर का क्षेत्र माना है। इसके साथ ही फोकलोर का क्षेत्र परी कथाओं, परंपरागत खेलों, लोकगीतों, जनप्रिय सूक्तियों, कला, शिल्प, लोकनृत्य तथा अन्य ऐसी वस्तुओं तक व्याप्त है। इस प्रकार देखें तो प्रत्येक प्रांत विशेष की संपूर्ण जाति के जीवन का परिचय फोकलोर से मिलने लगता है।

'फोकलोर' या लोक संस्कृति का विश्लेषण इस अध्ययन का प्रमुख लक्ष्य न होने के कारण कला से संबंध रखनेवाली कुछ बातों का उल्लेख आगे किया जा रहा है जिनका विषय से घनिष्ठ संबंध है।

4.1 केरल के लोकनृत्य

"नृत्य मनुष्य जीवन की सृजनेच्छा का प्रथम सोपान है। आदिम जातियों के अध्येताओं ने उनकी परंपराओं के सूक्ष्म अध्ययन से यह सर्वप्रथम निरूपित किया कि चित्र कला मानवीय भावाभिव्यक्ति का प्रथम उन्मेष नहीं है बल्कि भावावेग की अभिव्यक्ति का प्रथम मानवीय प्रयत्न नृत्य के द्वारा हुआ।"[2] नृत्य

1. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूप रेखा पृ. 4-5
2. वसन्त निरगुणे, लोक संस्कृति - पृ. 85

मनुष्य की चेतनता की आत्माभिव्यक्ति है। आदिम नृत्य किसी त्योहार, अनुष्ठानिक कार्यों के प्रारंभ से जुडे रहे हैं। आदिम नृत्यों की प्रेरणा मनुष्य को प्रकृति और जीवों से मिली है, बुनियादी रूप से उल्लसित मानव ने अपनी खुशी का इजहार नृत्य-संगीत के माध्यम से किया है। आदिम समूहों में नृत्य एक सामूहिक क्रिया कलाप है, इसलिए नृत्य उसकी सामूहिक भावना का प्रतीक है। लोक संस्कृति का मूल आदिम संस्कृति है। लोक संस्कृति ने आदिम संस्कृति के कई जीवंत तत्त्व ग्रहण किए, उनमें नृत्य परंपरा भी एक है। लोकनृत्य किसी भी देश और संस्कृति की महानतम कला के जीवंत दस्तावेज है। लोकनृत्य में किसी भी देश या प्रांत की आत्मा का निवास होता है। ''यदि किसी देश की संस्कृति का परिचय प्राप्त करना हो तो बस उस प्रांत के लोकनृत्य देख लीजिए जिनमें वहा के भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल समाहित होते हैं। लोकनृत्य ऐसी सार्वभौमिक अभिव्यक्ति है, जिसे समझने के लिए सिर्फ मन की प्रारंभिक आँख चाहिए ।''[1]

लोकनृत्य दो तरह के होते हैं, एक जाति में किया जानेवाला नृत्य और कई जातियों में किया जानेवाला नृत्य। प्रत्येक जाति में कोई न कोई पारंपरिक नृत्य किए जाने की परिपाटी होती है। ऐसे नृत्य एक जातीय कहे जा सकते हैं। एक जातीय नृत्य दूसरी जाति में नहीं किया जा सकते हैं। कुछ ऐसे नृत्य होते हैं जो समान रूप से सभी जातियों में किए जाते हैं। भारत में जातियों का सर्वाधिक फैलाव है इसलिए उसके हर आंचल में कई प्रकार के लोकनृत्य वहाँ की संस्कृति के अनुरूप देखे जा सकते हैं। लोकनृत्यों में नृत्य मुद्राओं के साथ-साथ गीतों के शब्द तथा धुनें भी समय की द्योतक होती है। पारंपरिक वाद्यों के आकार प्रकार और लय ताल भी समय को परिभाषित करने में सदैव सक्षम होते हैं। लोकनृत्यों की वेशभूषा और श्रृंगार पर भी समय की अमिट छाप होती है। लोकनृत्य में धुन, गीत, वाद्य, लय-ताल, वेशभूषा, शृंगार आदि किसी न किसी संस्कृति की परिचायक होती है।

शास्त्रीय नृत्यों में मुद्राओं का क्रमबद्ध विकास होता है और वे सोचे समझे स्वर-ताल-लय में निबद्ध होते हैं। शास्त्रीय नृत्यों का एक सुनिश्चित व्याकरण होता है परन्तु लोकनृत्यों का कोई निश्चित व्याकरण नहीं होता। लोक नर्तक चाहे जहाँ अपनी स्वेच्छा से मौज में मुद्राएँ बदल सकता है, यह उसकी सृजनेच्छा पर निर्भर करता है। फिर भी लोकनृत्य के पारंपरिक स्वरूप तो निश्चित होते हैं, उसी के आधार पर उसकी सुनिश्चित पहचान होती है। यह पहचान ही शैली या विधा का रूप धारण कर लेती है।

लोकनृत्यों में परिवर्तन और परिवर्द्धन की प्रक्रिया निरंतर घटित होती है। समय के लोकप्रिय तत्त्वों को लोकनृत्य अपने में आत्मसात करता आया है, यही लोकनृत्य की जीवनी शक्ति भी है।

1. वसन्त निरगुणे, लोक संस्कृति - पृ. 100

लोकनृत्य कभी भी समाप्त नहीं हो सकते है, जब तक लोक है तब तक लोक नृत्य भी है। आत्माभिव्यक्ति की यह उत्फुल्ल कला हर देश काल और परिस्थिति में जीवित रहेगी।

केरल लोकनृत्यों की एक विशेष रंगभूमि रहा है। पुराने ज़माने से लेकर केरल में लोकनृत्यों का काफी प्रचार था। इन नृत्यों के प्रणयन में कभी-कभी धार्मिक विचारधारा की भूमिका रही तो कभी-कभी सामाजिक विशिष्टताओं का प्रभाव दर्शनीय है। पहले ही बताया जा चुका है कि लोकनृत्यों का सीधा संबंध आम जनता से है क्योंकि जनता ही इसका सृष्टा और दृष्टा है। इन नृत्य-नृत्यों के कोई आधार ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते फिर भी मौखिक रूप से इनका प्रचलन कई पीढ़ियों से होकर हम तक पहुँच गया है। यहाँ केरल के कुछ मशहूर और बहुप्रचलित लोकनृत्यों का विश्लेषण किया जा रहा है।

4.1.1 कणियान कळि या कूत्तुं [1]

इसका आयोजन मुख्य रूप से हिन्दू घरानों तथा मंदिरों में होता है। 'कणियार' जाति के लोगों के द्वारा प्रस्तुत होने के कारण इसका नाम 'कणियार कळि' पड गया। 'कळि' का शाब्दिक अर्थ है केळि या खेल। इसके लिए 'कणियानाट्टम्', 'कणियान कूत्तुं', 'आट्टकूत्तुं','काणिकूत्तुं' आदि कई प्रकार के प्रांतीय नाम भी प्रचलित है। तोरणों तथा नारियल के कोमल पत्तों से अलंकृत शमियान के बीच में रखे हुए भद्रदीप के सामने इसका आयोजन होता है। प्रमुख कलाकार को 'आशान' कहते हैं और वह सफेद धोती के ऊपर लाल रंग के रेशमी कपडा बाँधकर तथा हाथों और गले में रुद्राक्ष पहनकर आता है। दो पुरुष स्त्री वेश धारण करके नृत्य करने के लिए इसके साथ आते हैं। जब आशान गीत गाता है तब तीन चार लोग पीछे खड़े होकर इसको दुहराते हैं। नर्तक गीत के अनुसार अभिनय करते हुए नृत्य करते हैं।

'कणियानकूत्तुं' शुरू करने से पहले 'कुटियुणर्तल' नामक एक अनुष्ठान का पालन करना है। वाद्यों के द्वारा गाँववालों को कूत्तुं की सूचना देना इसका उद्देश्य है। यह 'कथकळि' के 'केळिकोट्टुं' समान एक कार्यक्रम है। इसके लिए 'तोप्पि मद्दळम्','उटुक्कुं','कुषित्ताळम' 'इरट्ट चेंडा' (दो 'चेंडों'को एकसाथ बाँधकर तैयार करनेवाला वाद्य) 'कुषल' आदि वाद्यों का प्रयोग होता है। यह वादन लगभग आधे घंटे तक चलता है। इसके बाद पात्र दर्शक के सामने आकर गीतों का गायन व नृत्य करते है। 'माटन' 'यक्षी','मुत्तारम्मन','कुरुप्पस्वामी' 'इरक्किपम्मन' 'अग्निमारी' 'दुर्गा' आदि देवी-देवताओं की प्रीति के लिए 'कणियान कूत्तुं'का आयोजन होता है। इन्हीं देवताओं से संबंधित कहानियाँ ही इन गीतों का मुख्य विषय है। इन्हें 'तोऱ्ऱम्' कहते हैं।

1. जी भार्गवन पिल्ले, नाट्टरङ्ङ - पृ. 143-150

4.1.2 कोल कळि

'कोलकळि' का शाब्दिक अर्थ है डंडाओं का खेल। इसके लिए 'कोलटिक्कळि' 'कंपटिक्कळि' 'कोलुकळि' आदि विभिन्न प्रादेशिक नाम भी प्रचलित हैं। केरल के सभी प्रांतों में खासकर उत्तर केरल में इसका काफी प्रचार है। जाति भेद और प्रांत भेद के अनुसार इसमें पर्याप्त अन्तर भी पाया जाता है।

'कळरि' विद्या के साथ इसका निकटतम संबंध है। 'कळरिप्पयर्र्' सिखानेवाले शिक्षक 'कोलकळि'भी सिखाते हैं। दोनों हाथों में एक-ढाई फुट लंबाईवाले डंडे लेकर बीच में रखे हुए दीप के चारों ओर घूमकर गीत गाते हुए, डंडे तालबद्ध रूप से आपस में टकराकर उछलते-कूदते 'कोलकळि' प्रस्तुत करते हैं। आठ या दस जोडे युवक इस खेल या नृत्य में भाग लेते हैं। कलाकार के लिए विशेष प्रकार की वेशभूषा भी निर्धारित है। घुंघरूवाले या बिना घुंघरू के डंडे इसके लिए इस्तेमाल करते हैं।

'कोलकळि' में सर्वप्रथम 'वंदनम्' है। इसमें गणेश या सुब्रह्मणियम आदि के स्तुति गीत गाकर नृत्य करते है। इसके लिए 'वट्टक्कोल' शब्द भी प्रचलित है। 'कोलकळि' के कई चरण होते है और प्रत्येक चरण का अलग-अलग नाम भी है। 'चुट्टिक्कोल' 'तेर्रिक्कोल','इरुन्नु कळि' 'कोट्टत्तो-पोन्नो कळि' 'तट्टत्तु कळि','ताळक्कळि' 'तट्टत्तु तेट्टिक्कोल' 'चविट्टि चुर्रल','चुर्ञ्ञु चुर्रल','ओर्रक्कोट्टु' 'रंडुकोट्टु' 'चिंतु','अकवुम्-पुरवुम' 'ओरुमणि मुत्तु' आदि 60 से अधिक पढ़ाव'कोलकळि' के लिए निर्धारित है। प्रत्येक पढ़ाव के लिए अलग-अलग ताळक्रम और पदान्यास होते हैं। इन ताळों को मौखिक रूप से सीखना जरूरी है और इन ताळक्रमों के अनुसार गीतों का भी गायन होता है। ऐसा कहा जाता है कि पैर, हाथ, शरीर, मन और नेत्रों के सामंजस्य से 'कोलकळि' सफल हो सकता है। 'कोलकळि' में भाग लेनेवाले खिलाडियों को अन्दर और बाहर के आधार पर विभाजित करते हैं। वृत्ताकार में खडे होकर नृत्य प्रारंभ होता है और बाद में बाहर के खिलाडी अन्दर तथा अन्दर के खिलाडी बाहर आ जाते हैं। इस क्रिया को 'कोर्कल' या पिरोना कहते हैं। खेल के अन्त में खिलाडी अपने पूर्वस्थान पर आ जाते हैं। इसके गीत भी राग-ताल समन्वित है। प्रायः भक्ति व वीर रस प्रधान गीत ही गाए जाते हैं।

4.1.3 परिचमुट्टु कळि

यह भी कोलकळि के समान एक लोक नृत्य है। इसमें डंडे के स्थान पर नकली तलवार और ढ़ालों का प्रयोग होता है। तलवार और ढ़ाल के लिए मलयालम में प्रयुक्त शब्द है 'वाळ' और'परिचा'। 'मुट्टुका'का अर्थ है आपस में टकराना और 'कळि' से खेल निष्पन्न होता है। इसलिए 'परिचमुट्टु कळि'का शाब्दिक अर्थ है ढ़ालों को आपस में टकराकर खेलना या नृत्य करना। मध्यकेरल या दक्षिण

केरल में इसका काफी प्रचार है। इसके खिलाडी पैरों पर घुंघरू बाँधकर नृत्य करते है।

केरल के ईसाई धर्मवालों के बीच में इसका काफी प्रचार है। शादी, चर्च के त्योहारों आदि के अवसरों पर इसका आयोजन किया जाता है। इस खेल के दौरान पदान्यास व ताळ के अनुकूल गीत भी गाए जाते हैं। ईसाई धर्मवालों के खेलों में प्रमुखतः संट थॉमस के जीवन से संबंधित गीतों का गायन होता है। खिलाडी सफेद धोती पहनकर (कच्चा बाँधकर) बाएँ हाथ ढ़ाल तथा दाए हाथ में तलवार लेते हैं। ढ़ाल और तलवार लकडी से बनाए जाते है और रंग चढ़ाकर सुन्दर बनाते हैं। वंदना गीत के साथ खेल शुरू होता है। खेल का मुख्या गीत गाता है और बाकी खिलाडी इसको दुहराते हैं। गाने के अनुसार ताल बद्ध पदान्यास के साथ ढ़ालों को आपस में टकराकर नृत्य करते हैं और अंत तक आते-आते पदान्यास और गीत की गति तीव्र हो जाती है। 'कोलकळि' के समान इसके भी कई पढ़ाव होते हैं। इसलिए प्रशिक्षण बहुत ज़रूरी है। 'परिचमुट्टुकळि' में गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। पारंपरिक गीतों के साथ आधुनिक प्रसंगों के गीत भी गाए जाते हैं।

4.1.4 मार्गमकळि

यह भी ईसाई लोगों का नृत्य है। ऐसा कहा जाता है कि देश की रक्षा करने के लिए हथियार लेनेवाले ईसाई लोगों ने मनोरंजन हेतु इसका आविष्कार किया था। इस नृत्य का मुख्य विषय ईसा मसीह के शिष्य सेंट थॉमस का केरल आगमन तथा धर्मपरिवर्तन संबंधी प्रयास तथा तत्संबंधी घटनाओं का वर्णन है। प्रारंभिक काल में इसका जो कुछ भी उद्देश्य रहा हो कालान्तर यह कलारूप 'क्नानाय' ईसाइयों की शादी के अवसरों पर अनिवार्य रूप से खेले जाने लगा। ईसा मसीह की कल्पना में पीठ पर एक भद्रदीप जलाकर रखते है और उसके चारों ओर विशेष प्रकार के पदान्यास एवं हस्तमुद्राओं के साथ गीत गाते हुए नृत्य करते हैं। नर्तक धोती और उत्तरीय पहनते हैं और सिर पर पगडी के समान कपडे भी बाँधते हैं और उसमें मोर के पंख भी रखते हैं। कभी-कभी खेल के अंत में तलवार और ढ़ाल लेकर भी नृत्य करते हैं। 'मार्गम कळि' के लिए विशेष प्रकार के गीतों की रचना हुई है जिन्हें 'मार्गम कळिप्पाट्टुं' (पाट्टुं-गीत) कहते हैं।'मार्गम्'शब्द ईसाई मार्ग (ईसाई धर्म) के लिए प्रयुक्त है। यहाँ यह भी विदित होता है कि ईसाई मार्ग पर चलना या ईसाई धर्म को अपनाना। धर्म प्रचार भी इस नृत्य का एक लक्ष्य था। केरल के'कोलकळि','परिचमुट्टुकळि' आदि की कई समानताएँ इसमें पायी जाती हैं।

स्त्रियाँ भी 'मार्गम् कळि' प्रस्तुत करती हैं। इसमें ईसाई स्त्रियाँ अपनी परंपरागत पोशाक धारण कर नृत्य करती है। वेशभूषा में 'मुंडुं' और 'चट्टा' (धोती और विशेष प्रकार की कमीज़) तथा 'नेर्यत' (उत्तरीय) ज़रूरी है। कानों में 'मेक्कामोतिरम्'(कानों के ऊपरी भाग में पहननेवाला अंगूठा जैसा

आभूषण) तथा पैरों पर तळा (एक प्रकार का आभूषण) पहनने की रीति है। आजकल स्त्रियों द्वारा ही इसकी प्रस्तुति होती है। लेकिन गीत, पदान्यास, मुद्राओं में काफी अन्तर नहीं है।

4.1.5 ओप्पना

यह मुस्लिम लोगों का विशेष नृत्य रूप है। विवाह, सुन्नत आदि विशेष अवसरों पर इसकी प्रस्तुति होती थी लेकिन आजकल एक विवाह नृत्य के रूप में ही इसका प्रचार है। मलबार मुस्लिम लोगों के बीच इसका काफी प्रचार है। अरबी शब्द 'अफ्‌ना' से ही 'ओप्पना' का आविर्भाव माना जाता है। एक दृश्य श्रव्य कला के रूप में ही 'ओप्पना' को लेना चहिए। स्त्रियों और पुरुषों के द्वारा ओप्पना खेला जाता है। शादी की पूर्वी संध्या में 'मणवाट्टी' (दुलहन या वधू) को सभी प्रकार के शृंगारों से सजाकर विवाह के लिए बनाए गए शमियान में लाकर कुर्सी में बिठाती है। इसके बाद नृत्य करनेवाली स्त्रियाँ गीत गाती हुई उसके चारों ओर घूमकर नाचने लगती हैं। एक पहले गाती है और बाकी नर्तक गीत को दुहराती हैं। ओप्पना में 'चायल','मुरुकळ' जैसे दो पढ़ाव है। 'चायल' लास्य और अभिनय प्रधान पढ़ाव है और उस समय ताली नहीं बजाती हैं। लेकिन'मुरुकळ' में ताली बजाना ज़रूरी भी है। 'मुरुकळ' के समय गीत और पदान्यास की गति तीव्र हो जाती है। ओप्पना 'चायल'से शुरू होकर 'चायल' में समाप्त होता है।

पुरुषों के 'ओप्पना'दूल्हा के दुलहन के घर जाते समय या सुहाग रात में ही खेला जाता है। इसमें दूल्हा के मित्र या प्रशिक्षण प्राप्त कलाकार भाग लेते हैं। स्त्री-पुरुषों के 'ओप्पना' के गीत और पदान्यास में काफी अन्तर तो नहीं है लेकिन स्त्रियों के 'ओप्पना' के लास्य भाव और सौंदर्य का पुरुषों में अभाव है।

ओप्पना के गीत तालबद्ध होते हैं। शृंगार रस प्रधान प्रेम गीत ही मुख्य रूप से गाए जाते हैं फिर भी वीर रस प्रधान तथा यात्रा वृत्तों पर आधारित गीत भी गाए जाते हैं। ओप्पना प्रस्तुत करनेवाले प्रसंग के अनुसार गीतों के कथानक में अन्तर आ जाता है। इन गीतों में अरबी तथा मलयालम शब्दों का मिश्रण देख सकता है। स्त्री और पुरुष परंपरागत मुस्लिम पोशाक धारण कर ही नृत्य करते हैं। पुरुष धोती, कुरता तथा सिर पर पगडी या टोपी पहनते और हाथों में रूमाल बाँधते हैं। स्त्रियाँ धोती और कमीज़ के साथ शिरोवस्त्र (तट्टम) भी धारण करती है तथा हाथों में काँच के कंकण पहनती है। इस नृत्य में 'कैकोट्टिक्कळि' या 'तिरुवातिर कळि' का प्रभाव दिखाई देता है।

4.1.6 दप्पुं मुट्टिक्कळि [1]

'दप्पुं मुट्टिक्कळि' केरल के मुसलमानों के बीच प्रचलित एक नृत्य है। इसके लिए 'दप्पुं'

1. एम वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु - पृ. 344-345

नामक एक वाद्य का प्रयोग होता है जो ढ़ेड फुट व्यास में लकडी का बना होता है और एक ओर बैल के खाल से मढ़ा होता है।'दप्पु' के लिए'दफ्फु','तप्पिट्टा' आदि शब्द भी प्रचलित है। इस वाद्य को बजाकर गीत गाते हुए इस खेल की प्रस्तुति होती है। एक दल में दस या बारह लोग होंगे। जब उस्ताद (गुरु) गाते हैं तब शिष्य वृत्ताकार में उनके चारों ओर खडे होकर उस गीत को दुहराते हुए 'दप्पु' बजाते हैं और तालबद्ध निम्नोन्नत पदान्यास के साथ चारों दिशाओं में बदन को हिलाकर नृत्य करते हैं। कभी कभी एक ऊँचे फर्श पर बैठकर भी इसकी प्रस्तुति होती है। कुछ जगहों पर 'दप्पु' के स्थान पर 'अरबना' नामक वाद्य का प्रयोग होता है। ऐसे अवसरों पर इसको 'अरबना मुट्टु' नाम से अभिहित किया जाता है।

एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मुस्लिम लोगों ने इसे स्वीकार किया है। सुन्नत, विवाहादि मंगल कार्यों के समय इस नृत्य की प्रस्तुति होती है। इसका प्रारंभ 'सलात्तु' (प्रार्थना) से होता है। 'वंपुट्टांऱ्ऱे चोरा', 'चेतमलर चोरा','.मालेंटे चोरा' 'चेरिय एट्टिऱ्ऱे चोरा','मालवीञ्ञ चोरा' 'मालच्चोट्टुचोरा' 'संतोषक्कळि' 'वरंटुळ्ळ चायल' 'सेय्तु मुहम्मद कळि' '.सलात्तुळ्ळ-सलामुळ्ळ कळि' '.मुत्तिनबिमकळ कळि' आदि कई चरण इसके अंतर्गत आते हैं।

पुराने ज़माने में 'दप्पुकळि' के लिए 'अरबी' गीतों का प्रयोग होता था लेकिन कालान्तर में मलयालम गीतों तथा अरबी मिश्रित मलयालम गीतों का ही काफी प्रचार हुआ। इन गीतों को धार्मिक गीत, प्राकृतिक वर्णन, स्थलपुराण, कल्पना गीत आदि कई प्रकार से विभाजित कर सकते हैं। 'बदुरल मुनीर' 'हुसि मुलजमाल' 'बदरप्पटपाट्टु','तक्कम फतह','अरबल युद्ध' 'कच्चोटप्पाट्टु' 'तालिप्पाट्टु' 'पक्षीप्पाट्टु' 'उहद युद्ध',' उमरकिसा' आदि गीतों का काफी प्रचार है। समकालीन घटनाओं से संबंधित आधुनिक गीतों का गायन भी इसमें होता रहता है।

4.1.7 तिरुवातिर कळि या कैकोट्टिक्कळि[1]

ओणम तथा आद्र नक्षत्र जैसे त्योहार-पर्वों के दौरान इसका आयोजन होता है। 'तिरुवातिरा' या आद्र नक्षत्र का उत्सव केरल का एक प्रसिद्ध त्योहार है। इस त्योहार का संबंध सती धर्म से माननेवाले बहुत है। 'तिरुवातिर कळि' के उद्भव के संबंध में प्रचलित एक दंतकथा इस प्रकार है। परम शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए श्री पार्वती ने कठिन तपस्या की। आर्द्रा के दिन को ही पार्वती को वरदान मिला था। इसी की स्मृति में स्त्रियाँ 'तिरुवातिरा' मनाती हैं। धारणा है कि नव-ब्याही युवतियों को इसी दिन विशेष वरदान मिलेगा। इसलिए यहाँ की स्त्रियाँ आर्द्रा के बारह दिन पहले से ही व्रत प्रारंभ

1. वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरि ,कला पठनम् - पृ. 42-43

करती है। उषाकाल में ही गाँवों की स्त्रियाँ जागकर प्रभाती गीत गाने लगती हैं। थोड़ी देर में हाथ में दीपक लिए हुए स्नान करने के लिए नदी या तालाब जाती हैं। अब भी संगीत की धारा नहीं टूटती। पानी के ऊपरी सतह पर ताल बजाते हुए, गीत गाते हुए स्नान करने के बाद ये घर लौटती हैं। इस त्योहार का विशेष उत्सव आद्रा के एक दिन पहले अर्थात् मृग शिरा के दिन प्रारंभ होता है। उसी दिन स्त्रियाँ घर के आंगन में रखे हुए भद्रदीप के चारों ओर हस्तमुद्राएँ दिखाते हुए, तालियाँ बजाते हुए, गीत गाते हुए विशेष प्रकार के पदान्यास के साथ नृत्य प्रस्तुत करती हैं । पहले इसकी प्रस्तुति 'तिरुवातिरा' (आद्र नक्षत्र) के दिन में ही होती थी इसलिए इसका नाम 'तिरुवातिर कळि' पड गया। इसके लिए 'कैकोट्टिक्कळि' नाम भी प्रचलित है। 'कैकोट्टुका' का शाब्दिक अर्थ है तालियाँ बजाना। स्त्रियाँ तालियाँ बजाकर ही यह नृत्य प्रस्तुत करती हैं इसलिए ही इसका नाम 'कैकोट्टिक्कळि' बना होगा।

'तिरुवातिरा कळि' में भाग लेनेवाली स्त्रियाँ केरल की परंपरागत वेश-भूषा 'मुंड और नेर्यत' (धोती और उत्तरीय) ही धारण करती हैं । फूल, आभूषण, सिन्दूर, काजल आदि से अलंकृत होकर ही महिलायें नृत्य पेश करती हैं। सबसे पहले गणेश वंदना है उसके बाद सरस्वति, श्रीकृष्ण, शिव आदि की स्तुति है। इसके उपरांत अन्य गीत गाकर नृत्य करती हैं। यह एक लास्य प्रधान नृत्य माना जाता है। गीतों में 'गंगयुणर्त्तुं पाट्टुं' 'कुळंत्तुटि पाट्टुं' 'ऊञ्आल गीत' 'स्तुति गीत','पू चूटल पाट्टुं','तालोलम पाट्टुं' 'कुम्मिप्पाट्टुं','मंगलयातिरा पुराण' 'पार्वती स्वयंवरम्','सत्या स्वयंवरम्', 'रुक्मिणी स्वयंवरम्' आदि प्रमुख हैं। 'तिरुवातिरा' गीतों का साहित्यिक महत्त्व भी है। कुंचन नंबियार, रामपुरत्तुं वारियर, इरयिम्मन तंपि जैसे मशहूर साहित्यकारों ने तिरुवातिरा गीतों की भी रचना की है। इन गीतों के अलावा कभी-कभी कथकळि गीतों का गायन भी 'तिरुवातिरा कळि' के दौरान होता रहता है।

उपर्युक्त नृत्यों को छोड़कर 'कावटियाट्टम्','तुंपि तुळ्ळल' (तितली नृत्य),'अम्मनकुटम्', 'करकम् तुळ्ळल','कुम्माट्टिक्कळि','गंधर्वन तुळ्ळल' 'पाणर कळि' जैसे बहुत सारे लोकनृत्यों का प्रचलन केरल में था लेकिन आजकल इसकी प्रस्तुति बहुत कम है।

4.2 हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोकनृत्यों का परिचय

भारतवर्ष की संस्कृति बडी विशाल है। इस महान देश के प्रत्येक राज्य में विभिन्न प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित है। हिन्दी प्रदेश बहुत विस्तृत होने के कारण वहाँ प्रचलित लोकनृत्यों में भी बहुत विविधता नज़र आती है। यहाँ विभिन्न इलाकों से चुने गए कुछ लोकनृत्यों का सामान्य परिचय दिया जा रहा है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन लोक नृत्यों को यों विभाजित कर सकते हैं

1. धार्मिक नृत्य
2. सामाजिक नृत्य

3. पेशेवाली जातियों के नृत्य[1]

4.2.1 धार्मिक नृत्य - इसके अन्तर्गत धार्मिक आचार-विचारों से जुडे हुए नृत्य आते हैं। कभी कभी इन नृत्यों में आम जनता के बीच में प्रचलित अंधविश्वासों को देखा जा सकता है।

क. पांडव नृत्य

इसकी प्रस्तुति प्रायः खुले मैदान में होती है। इसमें चार-पाँच व्यक्ति सम्मिलित रूप में भाग लेते हैं परन्तु स्त्रियाँ इससे पृथक रखी जाती हैं। लोकवाद्यों में ढोल-टौटी का प्रयोग होता है। इसकी कथावस्तु पाँचों पांडवों तथा कुन्ती से संबंधित होती हुई भी महाभारत से भिन्न है। इस नृत्य में वीर तथा रौद्र रस की प्रचुरता के साथ साथ करुण रस की भी अभिव्यक्ति पायी जाती है। इसमें पांडव तथा कुन्ती को देवता-देवी की हैसियत से देखा जाता है।

ख. नागर्जा (नागराजा) नृत्य

इस नृत्य में स्त्री और पुरुष दोनों ही भाग लेते हैं। यह आँगन या किसी कक्षा में भी किया जा सकता है। नागर्जा कृष्ण का स्वरूप माना जाता है। अतः इसमें गोपियों तथा नाग द्वारा समुद्र मंथन की कथा प्रधान रूप से प्रस्तुत की जाती है। इसमें गंगू नामक व्यक्ति तथा बालकृष्ण की करुण कथा को नृत्य रूप से अभिनय किया जाता है। इस नृत्य में करुण रस की मात्रा अधिक और रौद्र रस कम पाया जाता है।

ग. देवी नृत्य

यह नृत्य चण्डी और काळी देवियों से संबद्ध है। अतः इसमें सिर्फ स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। इसमें स्त्रियाँ अपने सिर के बालों को खोलकर तथा हाथ में नंगी तलवार लेकर चण्डी का रूप बनाकर नृत्य करती हैं। इसमें मुख्य कथानक दारिक वध ही है।

घ. अछरी नृत्य

यह सबसे सौम्य और आकर्षक नृत्य है। अछरी का अर्थ अप्सरा है। अतः इसमें स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। ये स्त्रियाँ सफेद अथवा रंगीन मखमली घाँघरा पहनकर अप्सरा की वेश-भूषा धारणकर नर्तन करती हैं। इनकी गति तथा अंग विक्षेप मधुर होता है। अछरी नृत्य में लास्य की प्रधानता है।

1. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा - पृ. 246-251

4.2.2 सामाजिक नृत्य

इस कोटि में तीन प्रकार के नृत्य आते हैं - मेले के नृत्य, ऋतुविशेष के नृत्य तथा मानव जीवन से संबंधित नृत्य। इस प्रकार के नृत्यों में प्रांतीयता के अनुसार पर्याप्त अन्तर भी दर्शनीय है। उत्तर भारत में प्रचलित कुछ नृत्यों का सामान्य परिचय नीचे दिए जा रहा है।

क. मेले के नृत्य

गढ़वाल के दक्षिणी भाग में 'गेंद का मेला' प्रसिद्ध है। डाडा मण्डी, थल नदी तथा यमकेश्वर इस मेले के लिए विख्यात हैं। इस नृत्य में दो पार्टियाँ घेरे के बीच में रखे गेंद को छीनकर अपनी ओर ले जाने का प्रयास करती है। इसलिए इसे 'गेंद का मेला' कहा जाता है। दोनों पार्टियों के लोग अपने के झण्डे के नीचे खडे होकर नाचते हैं। उस समय तरह-तरह के लोक-गीतों का गायन भी होता है।

ख. ऋतुविशेष के नृत्य

सामाजिक नृत्यों में सबसे अधिक भावपूर्ण नृत्य 'चौफुलों' माना जाता है। प्राचीन काल में इसमें स्त्री और पुरुष समान रूप से भाग लेते थे। परन्तु आजकल यह कुमारी कन्याओं की सम्पत्ति बन गया है। 'चौफुलो' एक सामूहिक नृत्य है। इसमें अनेक लड़कियाँ वृत्ताकार में नाचती है। एक लड़की अपने आगे और पीछे की लड़कियों के हाथों को पकड़कर नर्तन करती है। इस नृत्य में बडी सजीवता तथा उत्फुल्लता का संचार दर्शनीय है। नृत्य के अवसर पर ऋतु विशेष की सुन्दरता एवं विशेषताओं से संबंधित गीत गाए जाते हैं। वर्षा ऋतु के प्रारंभ में प्रस्तुत 'मोर' का नाच सबसे सुन्दर नृत्य है जिसमें कन्याएँ वृत्ताकार मण्डल में खडी होकर नाचती हैं। मण्डल के बीच में स्थित लड़कियाँ मोर के पंख की आकृति बनाकर नृत्य करती हैं। इसे देखने से काले बादल देखकर खुशी से नाचकर बारिश का स्वागत करनेवाले मोर का आभास होता है। इस प्रकार श्रावन, वसन्त आदि ऋतुओं से संबंधित नृत्य भी प्रस्तुत किए जाते हैं।

ग. झोड़ा नृत्य

हिमालय की घाटियों में प्रचलित विख्यात नृत्य है - 'झोड़ा नृत्य' जिसमें प्रत्येक जाति के स्त्री और पुरुष सम्मिलित होकर भाग लेते हैं। ये लोग वृत्ताकार घेरा बनाकर परस्पर एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर मंद तथा सरल पद संचालन के साथ गीत गान प्रारंभ करते हैं। वृत्त के बीच खडे होकर मुख्य नायक गीत की प्रथम पंक्ति गाता है। इसके बाद अन्य व्यक्ति उसी पद को दुहराते हैं और अपने अंग-प्रत्यंगों के संतुलित संचालन द्वारा नृत्य करते हैं। गति की तीव्रता के साथ ही नृत्य का आकर्षण बढ़ता जाता है।

विषय वस्तु की दृष्टि से 'झोड़े' को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे, धार्मिक, स्थान व अवसर विशेष संबंधी तथा देवी देवताओं का स्मरण, पूजन और विनय की भावनाओं से युक्त। देवताओं में शिव, दुर्गा, काळी और नन्द देवी की गणना विशेष रूप से की जाती है।

घ. चाँचरी नृत्य

'चाँचरी नृत्य' में नर-नारी समान रूप से भाग ले सकते हैं। यह नृत्य अनुमानतः 'झोड़ा' का मूल और प्राचीन रूप है। अनेक स्थानों में 'चाँचरी' को 'झोड़ा' भी कहा जाता है। परन्तु नृत्य की दृष्टि से इन दोनों में अंतर है। चाँचरी में पद संचालन मंद गति से होता है। स्वरों के आरोह-अवरोह में विभिन्नता होती है। लय अधिक जटिल होती है तथा धुनों का खिंचाव दीर्घ होता है। इसका सबसे अधिक आकर्षण वेश-भूषा की विभिन्नता है। इस नृत्य में पाँच-सात व्यक्तियों से लेकर तीन सौ व्यक्ति तक भाग लेते हैं। इस प्रकार यह 'चाँचरी'नृत्य पूर्णतया सामुदायिक नृत्य है।[1]

विषय वस्तु की दृष्टि से 'चाँचरी' नृत्य में धार्मिक भावों की प्रधानता होती थी लेकिन धीरे-धीरे इसमें प्रेमपरक तथा सामाजिक विषयों का प्रभाव बढ़ने लगा है। इसलिए इसको सामाजिक नृत्य के अंतर्गत स्थान दिया गया है।

ङ. छपेली नृत्य

यह दो प्रेमियों का नृत्य-गीत है। इस नृत्य में प्रेमी व प्रेमिका के एक हाथ में दर्पण होता है और वे नृत्य करते जाते हैं। कोई पुरुष हुडुका (एक पर्वतीय लोकवाद्य) बजाकर नृत्य करता है और गीत गाता है और स्त्री अपने विभिन्न अंगों का संचालन कर उस गीत के भावों को स्पष्ट करती जाती है। आजकल इस नृत्य में स्त्री के स्थान पर पुरुष पात्र ही काम करने लगे हैं।

छपेली नृत्यों का विषय उन्मुक्त प्रेम का प्रदर्शन है। समागम की कामना करनेवाले भाव छपेली नृत्य में मिलते हैं जिनमें यौवन का आवेग चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिखाई पड़ता है।

च. छोलिया नृत्य

कुमाऊँ इलाके में प्रचलित 'छोलिया' नृत्य में प्राचीन और दैनिक जीवन के कार्य-कलापों के साथ प्रत्यक्ष संबंध रखते हैं। इस नृत्य में केवल अंग संचालन के द्वारा भाव प्रदर्शन किया जाता है। इस नृत्य के अवसर पर गीत नहीं गाया जाता। इसमें भाव प्रदर्शन के द्वारा प्राचीन रीति-रिवाज़ों तथा प्रथाओं पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। राजपूतों के विवाह के अवसर पर किए जानेवाले छोलिया नृत्य में दो-चार नर्तक अपने हाथों में ढ़ाल-तलवार लेकर चलते हैं। यह नृत्य उस प्राचीन प्रथा का द्योतक है जब राजपूत

1. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा पृ. 249-250

लोग कन्याओं का अपहरण किया करते थे। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से यह नृत्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

छ. विदेसिया नृत्य

उत्तर प्रदेश तथा बिहार में 'विदेसिया नृत्य' अत्यंत प्रचलित तथा लोकप्रिय है। इसका निर्माता भिखारी ठाकुर नामक लोक नर्तक माना जाता है। इस नृत्य का विषय सामाजिक जीवन है। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बेटी बेचना आदि इस नृत्य के विशिष्ट विषय है। समाज में प्रचलित अंधविश्वासों एवं अनाचारों के खिलाफ जन मानस में नव जागरण उत्पन्न करने में इस नृत्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह नृत्य खुले मैदान में केवल पुरुषों के द्वारा ही अभिनीत किया जाता है। इसकी सजावट साधारण है परंतु प्रभाव सार्वजनीन होता है।

4.3 केरल और हिन्दी प्रदेश के लोकनृत्यों की तुलना

केरल में प्रचलित लोकनृत्यों का विवेचन इस बात को साबित करता है कि केरल में प्रचलित ज़्यादातर लोकनृत्यों पर धार्मिक विचारधाराओं और अनुष्ठानों का प्रभाव दर्शनीय है जबकि हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोकनृत्यों में धार्मिक भावना उतनी प्रबल नहीं है कि उन्हें अनुष्ठान कहें। ये नृत्य जाति विशेष के होते हुए भी धार्मिक अनुष्ठान की कोटि में नहीं आते। उदाहरणतया, केरल के 'तिरुवातिरा नृत्य' का आयोजन एक अनुष्ठान के रूप में हिन्दू घरानों में किया जाता है। मुसलमानों का 'ओप्पना' नृत्य तथा ईसाइयों का 'मार्गम् कळि' को भी धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मान्यता प्राप्त है। हिन्दी प्रदेशों के लोकनृत्यों में सामाजिक भावना का पुट ज़्यादा है। स्त्री-पुरुष,बाल-वृद्ध सभी समान रूप से ऐसे नृत्यों में मिलजुलकर भाग लेते हैं। ऋतु विशेष से संबंधित नृत्यों का काफी प्रचलन यहाँ है। किन्तु केरल में ऋतु संबंधी नृत्यों की संख्या बहुत कम है। इन दोनों नृत्य परंपराओं में समान रूप से दर्शनीय लोक तत्त्व ही इनको आपस में जोडनेवाली सबसे प्रमुख विशेषता है। प्रांतीय विभिन्नता के होते हुए भी भाव प्रेषण का अलौकिक सौंदर्य दोनों में विद्यमान है। हँसी-मज़ाक, मनोरंजन तथा सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों पर तीखा व्यंग्य करना आदि इन नृत्यों के प्रमुख लक्ष्य हैं। भाषापरक भिन्नता के दीवार के टूट जाने से दोनों प्रदेशों के लोकनृत्यों में कई समानताएँ नज़र आने लगती हैं।

4.4 केरल के लोकनाट्य

"जनपदीय लोक जीवन में उत्साह, ज्ञान एवं मनोरंजन के महत्त्वपूर्ण साधनों में लोक नाट्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बालक आदि सभी को अपने स्वभाव एवं रुचि के अनुसार रस सामग्री किसी न किसी रूप में प्राप्त हो जाती

है।''[1]''लोक जीवन में लोकनाट्य के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता, बल्कि यह कहना सर्वाधिक प्रासंगिक होगा कि लोक प्रहसन और मनोरंजन के लिए भरपूर सामग्री आदि काल से मौजूद है। पारंपरिक संगीत, नृत्य, अभिनय और कथानक से मिलकर लोकनाट्य की सर्जना होती है। जीवन के आसपास घटित हर घटना लोकनाट्य का विषय हो सकती है। लोकनाट्य लोकजीवन का संपूर्ण प्रतिबिंब है। लोकनाट्य सामाजिक अभिव्यक्ति का सबसे बडा साधन है।''[2]

'लोकनाट्य' शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से 'लोक' और'नाट्य' इन दो शब्दों के योग से बना है। 'लोक' शब्द की व्याख्या अन्यत्र की जा चुकी है इसलिए यहाँ पर सिर्फ नाट्य शब्द की व्याख्या करना काफी है। संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर में 'नाट्य' शब्द के तीन अर्थ दिए गए हैं

1. नटों का कार्य/नृत्य/नृत्य-गीत और वाद्य
2. स्वाँग द्वारा अभिनय/चरित्र प्रदर्शन
3. स्वाँग ।[3]

नट शब्द अति प्राचीन है। यह अभिनेता का पर्याय है। यहाँ नट का कार्य अभिनय करना है और यह अभिनय नट का मुख्य तत्त्व है। नृत्य, गीत एवं वाद्य उसके सहायक तत्त्व हैं।

स्वाँग से तात्पर्य नकल उतारने या नकल करने से है। अर्थात् अनुकरण करना ही स्वाँग है। दूसरे की वेशभूषा एवं रूप को धारण करके इस प्रकार से चरित्र प्रदर्शन करना जिसमें मूल और अनुकरण में ज़रा भी अंतर परिलक्षित न हो, स्वाँग कहलाता है।

''इस प्रकार, अभिनय, नृत्य, गीत, संगीत एवं कथानक से युक्त लोक की कृति ही लोकनाट्य है। वास्तव में लोक का नाट्य ही लोक नाट्य है। 'लोक की अभिव्यक्ति लोक के लिए'इसका आधार है। अर्थात् लोकनाट्य में अभिनय करनेवाला पात्र अति साधारण, आधुनिक चकाचौंध से परे, साधारण वेशभूषा में विशेष रंगमंच के अभाव में ही संवाद एवं हाव-भाव द्वारा लोक का मनोरंजन करता है। उसका कथानक पौराणिक या ऐतिहासिक, किसी महापुरुष के जीवन और आदर्श पर या किसी लोक प्रसिद्ध व्यक्ति की किसी साहसपूर्ण घटना पर, या प्रेम या त्याग पर आधारित होता है। लोकनाट्य को रुचिकर बनाने में संगीत एवं नृत्य का विशेष योगदान रहता है।'' [4]

---

1. डॉ महेश गुप्त, लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन पृ. 308
2. डॉ वसंत निरगुणे, लोक संस्कृति पृ. 101-102
3. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर पृ. 539
4. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन पृ. 308-309

लोकनाट्यों में लोक रंगमंच की रचना अत्यंत सरल होती है। गाँव का चौराहा या चौपाल जहाँ ओटलों, गलियों या सड़क पर लोग खुले में अपनी सुविधा से बैठ पाएँ, बस वहीं लोकनाट्य का मंच बन जाता है। बीच में एक खंभा गाडकर उस पर रस्सियों से सफ़ेद चद्दरें बाँध लीं, बस यही मंच चन्दोवा हो गया। लोक रंगमंचों में पर्दे जैसी कोई आड़ नहीं होती। पात्र पास के किसी घर से शृंगार या मेकअप करके आ जाते हैं। शृंगार की सामग्री भी देहातीय होती है। कलाकार भी गाँव के पारंपरिक अभिनेता होते हैं, उन्हें अपने काम में दक्षता हासिल होती है। लोकनाट्य कर्म में एक सामूहिक सहभागिता होती है। लोक नाट्यों में संपूर्ण गाँव सक्रिय भागीदारी निभाता है। निर्देशक से लेकर दर्शक तक गाँव की प्रतिभाओं का अद्भुत समन्वय लोक नाट्यों की प्रस्तुति में देखा जाता है।

आंचलिक रूढ़ी लोकनाट्य की मौलिक पहचान होती है। हर आंचल के पारंपरिक लोक नाट्यों की अपनी निजी शैली होती है, उसका निश्चित स्वरूप होता है, यह तक कि उसका निश्चित उद्देश्य भी होता है। सारे लोकनाट्य किसी न किसी अनुष्ठान और पर्व से जुडे होते हैं। अनुष्ठान और पर्व के बहाने समाज की विशेषताओं और विसंगतियों को उजागर करने के लिए इससे अच्छा अवसर कथापि नहीं हो सकता था। लोकनाट्यों का स्वभाव और भाषा सामयिक होती है। बंधी-बंधाई या लिखी-लिखाई विषयवस्तु न होने के कारण पात्रों को नाट्य के केन्द्रीय बिंदु तक भाषा के किसी भी रास्ते से पहुँचने में आज़ादी होती है। इसलिए लोकनाट्य में विषय अनायास आ जाते हैं, वे पूर्व निर्धारित नहीं होते, वे पात्रों के दिमाग की तात्कालिक उपज होती है। संगीत, नृत्य, अभिनय और संवाद से मिलकर लोकनाट्य बनता है।

लोकनाट्यों का प्रारंभ पारंपरिक अनुष्ठानिक रीतियों से होता है और अन्त सामूहिक गायन, वादन और नर्तन से होता है। मध्य में भी स्वांग या नकल में कड़वा-मीठा, कहा-सुना दिखाया जाता है। उसका अंत भी गीत संगीत अनुगूंज में होता है। यह लोकनाट्य की चरम प्राप्ति होती है।

लोकनाट्यों का उद्देश्य मनोरंजन के साथ समाज की अच्छाई और बुराई की नब्ज पर हाथ रखना है। लोकानुरंजन लोकनाट्यों की पहली शर्त होती है लेकिन हास्य के माध्यम से उनमें तिलमिला देनेवाली व्यंग्यात्मकता भी होती है। लोकनाट्य अपने प्रारंभिक विद्रूप, अभिनय से गुदगुदाने का कार्य करते हैं वहीं सासामयिक चुटीले-संवादों से तीखी मार भी करते हैं। ये सब हँसी-हँसी में होते हैं और इसकी चपेट में राजा-रंक सभी आ जाते हैं। अन्य लोक विधाओं की बजाय जिसे सुनाना है उसे सब कुछ कह देने की सुविधा और स्वतंत्रता लोकनाट्य विधा में सबसे अधिक है और यही लोकनाट्य की सबसे बडी ताकत है।

लोक नाट्य से संबंधित बातों का विश्लेषण करने से तद्‌विषयक निम्नलिखित विशेषताएँ सामने आ जाती हैं -[1]

1. लोकनाट्य में प्रत्येक बात को बहुत ही सीधे-सादे ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, क्योंकि इसका रसास्वादन करनेवाले सामान्य बुद्धि के तथा साधारण वर्ग से संबंधित होते हैं।

2. इसमें सामाजिक एवं धार्मिक परंपराओं, मान्यताओं और रूढ़ियों को विशेष स्थान दिया जाता है, क्योंकि इसका आस्वादन करनेवाले इन सबके प्रति आस्थावान होते हैं।

3. इसका कथानक धार्मिक, ऐतिहासिक या किसी ऐसे व्यक्ति से संबंधित होता है, जिसे लोकमानव आदर्श रूप में देखता है।

4. इसमें अभिनय करनेवाले पात्र लोक-समाज से ही संबंधित होते हैं, इसलिए उनके अभिनय का स्तर लोक के अनुरूप ही होता है।

5. जिस तरह लोक-मानव तड़क-भड़क (कृत्रिमता) से दूर साधारण रंगमंच एवं सामान्य वेशभूषा को महत्व देता है।

6. जिस तरह लोक-मानव किसी घटना का वर्णन अपने सीधे-सादे शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं, उसी तरह लोकनाट्य के संवाद भी सीधे और सरल होते हैं।

7. लोकमानव अपने जीवन में हास-परिहास के विशेष महत्त्व देता है। वह अपने हृदय की सारी कुत्सा एवं मस्तिष्क की थकान को हास-परिहास के माध्यम से शीघ्र ही मिटा देता है। इसी प्रकार लोकनाट्य में भी हास-परिहास को विशेष स्थान दिया जाता है, जिससे इसका दर्शक शीघ्र ही अपनी थकान को भूलकर आनंदित होने लगता है।

इस प्रकार लोकमानव की समस्त विशेषताएँ लोकनाट्य में परिलक्षित होती हैं।

लोकनाट्य की उपर्युक्त विशेषताओं की भूमिका पर यदि केरल के लोकनाट्यों का विश्लेषण करें तो हमें साफ-साफ मालूम हो जायेगा कि इस कसौटी पर वे भी खरे उतरते हैं। धार्मिक या सामाजिक विषयों पर सामान्य जन जीवन से घनिष्ठ संबंध रखनेवाली यहाँ की नाट्य कला सच में अनोखा अनुभव प्रदान करती है। प्रांतीय भेदों के होते हुए भी सामान्य रूप से बहुत सारी समानताएँ भी यहाँ के लोकनाट्य की विशेषता है। यहाँ कुछ मशहूर लोकनाट्यों का विश्लेषण किया जा रहा है जिनका यहाँ की संस्कृति से अभिन्न संबंध है।

1. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन - पृ. 311-312

4.4.1 चविट्टु नाटकम्[1]

क़ोटुङ्ङल्लूर से लेकर अंबलप्पुषा तक के ईसाई लोगों के बीच 'चविट्टु नाटकम्'का काफी प्रचार था। 'चविट्टुका' का अर्थ है - ज़ोर से पैर रखना, लात मारना आदि। लकड़ी से बनाए गए मंचपर ताल बद्ध पदन्यास के साथ ज़ोर से पैर रखकर अभिनय करने के कारण ही इसका नाम 'चविट्टु नाटकम्'(नाटक) पडा होगा। गीतों के अनुसार किए जानेवाले नृत्त-नृत्य और पदन्यास ही इसकी आत्मा है।

वीररस प्रधान कथाओं की प्रस्तुति 'चविट्टुनाटकम्'में होती है। बाइबिल, पाश्चात्य इतिहास, ईसाई धर्म आदि से संबंधित कथानक प्रमुख होता है। तुर्कियों के खिलाफ शूली युद्ध चलानेवाला राजा कार्‌लमान की कथा पर आधारित 'कार्‌लमान नाटकम्' 'चविट्टुनाटकों' की ऐतिहासिक रचना मानी जाती है।

'चविट्टुनाटकों' के प्रशिक्षण केन्द्र को 'कळरि' कहते है जहाँ अभिनेताओं के लिए कायिक व अभिनय संबंधी प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण देनेवाले गुरु को 'अण्णावि' कहते हैं। सबसे पहले हथियार चलाना सिखाया जाता है और उसके बाद नाटक संबंधी प्रशिक्षण। नाटक संपूर्ण से पद्यात्मक है तथा गद्य का बिलकुल प्रयोग नहीं होता। नाटक के कई चरणों में रचना होती है जैसे 'विरुतम्','कवि','.काप्पॅु', 'नूपुरम' 'कळित्तुरा' 'इन्निशे' 'चिंत' आदि। गीत गाते हुए पदान्यास के अभ्यास करने को 'चोल्लियाट्टम'कहते हैं। इस प्रकार 12 'चोल्लियाट्टम्' सीखने होंगे और प्रत्येक 'चोल्लियाट्टम्' के लिए अलग गीत भी सीखना होगा।

प्रमुख पात्रों के लिए मुकुट, झालरदार कपडे व पैजामा (Pants), टोपी आदि निर्धारित है। मुखलेपन और कृत्रिम मूछों की भी ज़रूरत है। नेपथ्य में 'चेंडा' 'कैमणि' आदि वाद्यों का भी वादन होता है। मंच पर्दा या यवनिका से आच्छादित रहता है। इस नाट्य में संगीत, संवाद, नृत्य, नृत्त आदिका सामंजस्य दर्शनीय है।

नाटक में सबसे पहले ईश्वर प्रार्थना है जिसे 'नांदि' कहते हैं। उसके बाद विदूषक का आगमन है जो 'कट्टियन' या'कट्टिक्कारन' नाम से जाना जाता है। विदूषक प्रस्तावना गीत तथा रसीले अभिनय द्वारा 'पुऱप्पाटॅु' प्रस्तुत करता है। तदुपरांत कथा की प्रस्तुति है। पात्र मंच पर गीत तथा नृत्य के द्वारा अभिनय करते हैं और वाद्यों की सहायता से प्रभावोत्पादकता और बढ़ जाती है। अभिनय के अंत में सारे पात्र मंच पर आकर मंगल गीत गाते हैं।

1. संबीना राफी, चविट्टुनाटकम्

'चविट्टु नाटकम्' में केरल की शास्त्रीय नृत्य कथकळि तथा यूरोप के 'ओपरा'[1] का समायोजन देखा जा सकता है। फिर भी ज़्यादा संबंध 'ओपरा'से ही मान लेना चाहिए। तमिळ संगीत नाटकों के केरल आगमन के पश्चात् ही 'चविट्टु नाटकों' का प्रचार कम होने लगा और आजकल इसकी प्रस्तुति न के बराबर है।

4.4.2 काक्कारशी नाटकम्[2]

'काक्कारशी' 'काक्कालन' जाति का द्योतक है। यह नाट्य मुख्य रूप से तिरुवनन्तपुरम जिले में खेला जाता है। मधुर संगीत, नृत्याभिनय तथा हँसी-मज़ाक आदि'काक्काशी नाटकम्' की प्रमुख विशेषताएँ हैं। 'काक्कालन नाटकम्', 'काक्कालिच्ची नाटकम्','काक्करु कळि' आदि नाम भी इसके लिए प्रचलित है। इस नाटक की उत्पत्ति के संबंध एक दंतकथा है - पृथ्वी में सभी प्रकार के अत्याचार और विध्वंस बढ़ने लगे। तब नारद का उपदेश सुनकर परमशिव 'काक्कालन' का रूप धारण कर पृथ्वी पर आए और उनके साथ 'काक्काल' स्त्रियों के रूप में पार्वती और गंगा भी धरती पर आ गई। इसी संकल्पना के साथ 'काक्कारशी नाटकम्' खेला जाता है।

नाटक शुरू करने से पहले 'मृदंगम्','इलत्तालम्','हार्मोणियम्','गंचिरा' आदि वाद्यों का वादन होता है। इस कार्यक्रम को 'अरङ्ङु वाष़्त्तल' कहते है जिसका अर्थ है रंगमंच की पूजा। इसके बाद सभी पात्र आकर वंदना गीत गाते हैं और इस गीत में गुरुजनों, देवी-देवताओं तथा सहृदय दर्शकों की वंदना की जाती है। वंदनागीत के पश्चात विदूषक आकर सरस संवाद तथा गीतों के ज़रिए नाटक का सामान्य परिचय देता है। प्रस्तावना के बाद एक डंडे पर बाँधे गट्ठा कंधे पर रखकर तथा हाथ में मशाल लेकर गीत गाते हुए दर्शकों के बीचों-बीच से 'काक्कालन' मंच पर प्रवेश करता है। तदुपरांत मंच का एक पात्र, जो सामंती राजा की भूमिका अदा करता है, काक्कालन से तरह-तरह के प्रश्न पूछता है। काक्कालन के उत्तर अत्यंत रसीले होते हैं। इसके बाद कथानक के अनुसार अन्य पात्र भी मंच पर आते हैं जैसे 'सुन्दर काक्कान' 'काक्कालत्ती','अष़केशन' आदि।

'काक्कालन' का मुखलेपन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। चेहरे पर काला रंग लगाकर उसके ऊपर सफेद रंग की बिंदियाँ तथा त्रिशूल के चित्र भी बनाते हैं। अन्य पात्रों का भी मुखलेपन किया जाता है। मनोरंजन के साथ सामाजिक विसंगतियों की खिल्ली उठाना इस नाट्यकला का एक प्रमुख उद्देश्य है। इस कला रूप में तमिल लोकनाट्यों का भी प्रभाव दर्शनीय है। यद्यपि इसका नाम 'काक्कारशी

---

1. ओपरा - यूरोप में प्रचलित संगीत नृत्य नाटक
2. वेलूर नारायणन नंपूतिरि, कला पठनम् - पृ. 53-55

नाटकम्'(काक्कारश/काक्कालन जाति के) है फिर भी अन्य जाति के लोगों के द्वारा भी इसकी प्रस्तुति की जाती है।

4.4.3 तोलप्पावक्कूत्तुं [1]

मध्यकेरल के काळी मंदिरों तथा अन्य स्थानों में इसका आयोजन किया जाता है।'तोल्'शब्द का अर्थ है चमडी, 'पावा' कटपुतली या गुडिया के लिए प्रयुक्त शब्द है और 'कूत्तुं' से खेल या तमाशा निष्पन्न होता है। इसलिए 'तोलपावाक्कूत्तुं' का संज्ञा परक अर्थ है चमडी की कठपुतलियों का खेल या तमाशा। कठपुतलियों के निर्माण के लिए हिरणों की चमडी इस्तेमाल की जाती है।

कठपुतलियों को दीपक के सामने दिखाकर उनकी परछाइयों को सफेद पर्दे पर गिराकर ही इस खेल की प्रस्तुति होती है। इसके लिए कठपुतलियों में अनेक छोटे-छोटे छिद्र बनाए जाते है और इन छिद्रों से प्रकाश गुज़रते समय दर्शकों को इनके आकार का आभास होता है। कठपुतलियों के अंगों को नाजुक डोरों के द्वारा बांसों से बाँधते हैं और इन बाँसों के ज़रिए डोरों को हिलाने से कठपुतलियाँ भी हिलने लगती हैं। पर्दे के पीछे खडे होकर कथानुकूल संवाद पेश करने से वास्तविक अभिनय का आभास दर्शकों को होता है। वाद्य के रूप में 'परा', 'चेंडा' और'मद्दलम्' का प्रयोग होता है। मुख्य रूप से रामायण ही खेली जाती है। संपूर्ण कहानी की प्रस्तुति 21 दिनों तक चलती है और इसके लिए रामायण का गद्य-पद्य मिश्रितरूप तैयार करते है जो 'आटलप्पाट्टुं' नाम से जाना जाता है।

रंग पूजा, गुरु वंदना आदि के बाद खेल शुरू होता है। प्रत्येक अंग के लिए कई प्रकार की कठपुतलियाँ तैयार की जाती है। इन कठपुतलियों को डोरे के सहारे नृत्त या अभिनय कराने के लिए कठिन प्रशिक्षण की आवश्यकता है। संवाद, गीत, वाद्य, कथाकथन आदि के समन्वय से दर्शक को रामायण नाटक देखने जैसा आनन्द मिलता है। इन कठपुतलियों द्वारा नृत्य, युद्ध आदि प्रस्तुत किए जाते हैं। दर्शक पर्दे पर केवल परछाइयाँ ही देखते हैं इसलिए यह कला 'निषलक्कूत्तुं' (परछाइयों का खेल) नाम से भी कुछ इलाकों में जानी जाती है। श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, रावण, देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों तथा राक्षस वानरों का अभिनय देखते ही बनता है।

4.4.4 कोतमूरियाट्टम

'कोतमूरियाट्टम' उत्तर केरल की एक ग्रामीण नाट्य कला है। 'कोतमूरियाट्टम' का शाब्दिक अर्थ है 'कोतमूरी का नृत्य'। 'गोदावरी' शब्द ही कालान्तर में 'कोतमूरी' बन गया और वह एक दिव्य धेनु मानी जाती है। इसमें प्रमुख है 'कोतमूरितेय्यम'। एक लडके के कमर पर गाय के मुखाकारवाले

1. नारायण पिषारडी, कला लोकम् - पृ. 40

कृत्रिम कठपुतली बाँधकर 'कोतमूरितेय्यम' तैयार करते हैं। इस लडके को रंगीन कपडे और मुकुट भी पहनाते है। इसके साथ दो या चार 'मारिप्पनियन' भी होंगे। वे कमर में नारियल के कोमल पत्ते और उससे बने बडे कान तथा 'पाळा' के मुखौटे धारण करते हैं। वे वास्तव में हँसी-मज़ाक के पात्र होते हैं। इन पनियनों का कर्तव्य है गोदावरी या कोतमूरी नामक दिव्य धेनु की रक्षा करना।

फसल के कटाव के समय घर-घर जाकर 'कोतमूरियाट्टम' प्रस्तुत करने की रीति है। कलाकार वाद्यों के साथ घर के आंगन में आ जाते हैं। गीत गाते हुए, चुटकले बोलते हुए तथा दर्शकों से सवाल पूछते हुए 'पनियन' गोदावरी को नचाते हैं। इस समय वाद्य के रूप में चेंडा इस्तेमाल होता है। समृद्धि का समय होने के कारण इन्हें घर-घर से चावल, धन और कपडे मिल जाते हैं।

ग्रामीण कला संस्कृति की सारी विशेषताएँ इसमें दृष्टव्य है इसमें प्रस्तुत सारी बातें तत्कालीन सामाजिक जीवन से जुडी रहती है। हँसी-मज़ाक के द्वारा सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विसंगतियों की पोल खोलने में वे सफल हो जाते हैं। वेदान्त सरीखे गहन विषयों से लेकर अश्लीलादि असभ्य माननेवाले कार्य भी संवाद का विषय बन जाता है। कभी-कभी वैयक्तिक आलोचना भी की जाती है। पात्रों और दर्शकों के आपसी संवाद से जीवन्तता का संचार होता है। यहाँ पात्र और दर्शक के बीच की खाइयाँ पाटी जाती है। ग्रामीण लोगों का विश्वास है कि घर के आंगन में 'कोतमूरी' के उछलने-कूदने से घर में सारें ऐश्वर्य और समृद्धि का भरमार होगा।

'कोतमूरियाट्टम' में प्रयुक्त गीतों में हरिनारायण स्तुति, श्रीकृष्ण स्तुति, तिरुवरक्काट्टु भगवती स्तुति, 'कलशम- पोलिप्पाट्टुँ','वित्तुँ पोलिप्पाट्टुँ','पशु पोलिप्पाट्टुँ','पूप्पाट्टुँ','अन्न पूर्णेश्वरी चरितम्' आदि प्रमुख हैं। इन गीतों से समृद्धि का सन्देश हमें मिलता है। समृद्धि की यही कामना ही इस कला की प्रस्तुति का मूल उद्देश्य भी है।

4.4.5 पोराट्टुँ नाटकम्[1]

विभिन्न वेश धारण मनोरंजन के लिए किए जानेवाला हास्यानुकरण ही 'पोराट्टुँ/पुराट्टुँ नाटकम्'है। पालक्काट्टुँ जिले में इसका काफी प्रचार है। फसल के कटाव के बाद खेतों में ही इसकी प्रस्तुति होती है। इसमें पुरुष ही स्त्री पात्रों की भूमिका निभाते हैं। संवाद तथा गीतों के ज़रिए नाटक खेला जाता है। हँसी मज़ाक द्वारा दर्शकों का मनोरंजन करने के साथ साथ तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक विसंगतियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी इससे होता है।

1. भार्गवन पिल्लै जी, पोराट्टु नाटकङ्ङलुम् मर्‍रुम्

नाटक के आरंभ से अंत तक विदूषक मंच पर रहता है और मंच पर आनेवाले सभी पात्रों से हास्य तथा व्यंग्य भरे प्रश्न पूछता रहता है। पात्र उन सवालों का जवाब अत्यंत रसीले ढंग से देते हैं। इस प्रकार के सवाल जवाब की शैली द्वारा संपूर्ण कथा दर्शकों के सामने पेश की जाती है। सरस तथा चुटीले संवाद ही 'पोराट्टु नाटकम्' की जान है। प्रभावात्मकता बढ़ाने के लिए 'चेंडा','मृदंगम्','इलत्ताळम्' आदि वाद्यों का प्रयोग होता है।

सबसे पहले 'मण्णात्ती' (मण्णान स्त्री) का आगमन है। वह गीतों के द्वारा गुरु, गणेश, सरस्वती, प्रिय देवता आदि की वंदना करती है। इसके बाद विदूषक के साथ संवाद है। इसके पश्चात् एक-एक होकर पात्र मंच पर आने लगता है और विदूषक के साथ गद्य या पद्य में संवाद करता है। मंच पर आनेवाले प्रमुख पात्र है - 'दाशि' 'मण्णान','कुऱवन - कुऱत्ती','चेरुमन - चेरुमी','कवरा-कवऱच्ची','चक्किलियन-चक्किलिच्ची' 'पूक्कारी' 'मातु अच्ची' आदि। 'पोराट्टु नाटकम्','पांकळि' 'देशक्कळि' 'तेक्कत्ति नाटकम्','कुऱत्तियाट्टम','काक्कारशि नाटकम्' इन सभी को हास्य-व्यंग्य के अलग-अलग नाट्य रूप माननेवाले बहुत सारे पंडित यहाँ हैं। इसमें तर्क की कोई गुंजाइस नहीं है क्योंकि इन कलारूपों के लक्ष्य और परिणति ही इसका सूचक है।

4.4.6 यक्षगानम्

यद्यपि 'यक्षगानम्' कर्नाटक राज्य का लोकनाट्य है फिर भी कासर्गोड तथा उत्तर केरल के कुछ इलाकों में इसका प्रचार है। केरल की शास्त्रीय नृत्य कला कथकळि से इसकी कुछ समानताएँ पायी जाती है। 'यक्षगानम्' में पात्र संवाद और हस्तमुद्राओं का प्रयोग करते हैं इसलिए इसे संवादयुक्त कथकळि भी कहते हैं। इसके लिए कन्नड में 'बयलाट्टम्' नाम भी प्रचलित है जिसका शाब्दिक अर्थ है खेत का नृत्य। फसल के कटाव के बाद खेत में ही इसका आयोजन होता था इसलिए ही 'बयलाट्टम्' (खेत का नृत्य) नाम मिला होगा।

'यक्षगानम्' की उत्पत्ति के संबंध में एक लोक कथा प्रचलित है कामदेव को क्रोधाग्नि में जलाने के बाद भी शिव का क्रोध शांत नहीं हुआ तब कुबेरन ने नृत्य-गान द्वारा शिव को शांत कराने का आदेश दिया। यक्षों ने तरह-तरह के वेश धारण करके वाद्य गीतों के साथ नृत्य करके शिव को शांत कराया। इस नृत्य की स्मृति में 'यक्षगानम्' खेला जाता है।

रामायण, महाभारत आदि पुराणों को आधार बनाकर ही 'यक्षगानम्' प्रस्तुत किया जाता है। पात्र खुद संवाद प्रस्तुत करते हैं और गायक नेपथ्य में खडे होकर गीत गाते हैं।'चेंडा','इलत्ताळम','चेंड्डिला'आदि वाद्यों का भी प्रयोग होता है। स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुषों द्वारा निभाई जाती है।

पात्र सभी प्रकार की वेशभूषाओं (मुकुट, आभूषण, हथियार) तथा मुखलेपन के साथ मंच पर आते हैं। पात्रों की वेशभूषा और साज-सजावट में कथकळि का स्पष्ट प्रभाव दर्शनीय है। आसुरी तथा तमोगुण प्रधान पात्र मुखौटे धारण करते हैं। स्त्री पात्रों के लिए लास्य तथा पुरुष पात्रों के लिए तांडव शैली निर्धारित है।

4.4.7 पुलि कळि या कटुवाकळि

'पुलि' या 'कटुवा' का शाब्दिक अर्थ है तेंदुआ, चीता या बाघ और 'कळि' से खेल या नृत्य निष्पन्न होता है। 'पुलिकळि' अर्थात् तेंदुआ नृत्य या चीतों का खेल। इसमें प्रमुख दो पात्र है चीता और शिकारी (वेट्टक्कारन)। बाघ या चीता का वेश धारण करनेवाले व्यक्तियों के शरीर पर पीला रंग चढ़ाया जाता है और उसके ऊपर काली रेखायें और बिंदियाँ भी लगाई जाती हैं। स्वाभाविकता के लिए बाघ का मुखौटा और पूंछ भी पहनते हैं। शिकारी के हाथ में बंदूक होती है और सर पर टोपी। एक दल में दो-चार बाघ और एक शिकारी होते हैं। ऐसे कई झुंड हो सकते हैं। बाघ उछलते कूदते भागते हैं और शिकारी पर हमला करने का अभिनय भी करते हैं। शिकारी छिप-छिपकर बाघों का पीछा करता है, निशाना लगता है और मौका पाकर गोलियाँ चलाने का स्वांग रचाता है। बाघ भी गोली खाकर मरने का अभिनय करता है। इसके लिए किसी मंच की ज़रूरत नहीं है। कलाकार सड़क से खेलते हुए चले जाएँगे और सड़क के किनारे खडे होकर दर्शक इसका आस्वादन करेंगे। वाद्य के रूप में 'चेंडा' का प्रयोग होता है।

4.4.8 कुऱत्तियाट्टम्

'कुऱत्तियाट्टम्' का शाब्दिक अर्थ है कुऱत्तियों (कुऱव स्त्री) का नृत्य। कुऱव जाति के लोगों के द्वारा इसका आयोजन होता है। यहएक संगीत प्रधान नृत्य है। इसके 'उत्तर कुऱत्तियाट्टम्' और 'दक्षिण कुऱत्तियाट्टम्' जैसे दो भेद हैं। उत्तर कुऱत्तियाट्टम मलयालम नाटक प्रवृत्तियों से संबंध रखनेवाली एक ग्रामीण कला है। इस नाट्य रूप में संवादों से बढ़कर गीतों की प्रधानता है। 'कुऱवन' 'कुऱत्ती' 'शराबखाने का मालिक' 'बूढ़ा' जैसे कई पात्र मंच पर आते हैं।

कुऱवन और कुऱत्ती 'तृशूर पूरम' देखने के लिए घर से निकलते हैं। लेकिन भीड में पडकर दोनों बिजुड जाते हैं। एक दूसरे की खोज में इधर उधर भटकते हैं और अंत में दोनों की मुलाकात होती है। बिजुड जाने के कारण को लेकर दोनों के बीच में लडाई होती है, वाद विवाद के बाद आपसी समझौता होता है। यही इसका कथानक है। मद्यपान, छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयों की आलोचना इसकी प्रमुख विशेषता है। प्रायः पुरुष ही स्त्रीवेश धारण करते हैं। पात्र ही गीत गाते हैं और नेपथ्य में खडे गायक इन्हें दुहराते हैं। वाद्य के रूप में 'मृदंगम्' तथा 'कैमणि' का प्रयोग होता है।

'दक्षिण कुऱत्तियाट्टम्' एक अनुष्ठान कला के रूप में स्वीकृत है। इसमें 'कुऱत्ती' 'कुऱवन' 'मुत्तियम्मा' आदि पात्र मंच पर आते हैं। पार्वती तथा महालक्ष्मी इसके प्रमुख पात्र हैं। वे दोनों एक दूसरे के पतियों का भला बुरा कहती हैं और आपस में झगडने लगती हैं। इस समय सरस्वती आकर दोनों में समझौता कराती है। कुऱवन की माँ की भूमिका निभानेवाली 'मुत्तियम्मा' हास्य रस का संचार करनेवाली पात्र है।

4.9 हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोक नाट्य

लोकनाट्य लोक के मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम है। प्रत्येक प्रांत के लोग अपनी विशिष्ट परंपराएँ, भौगोलिक विशेषताएँ तथा धार्मिक आचार-विचार आदि के आधार पर लोकनाट्यों का सृजन करते हैं। लोक नाट्य का कथानक लोकधर्मी रूढ़ियों से प्रभावित होता है तथा धार्मिक कथाओं के नायकों के चरित्रों एवं सामाजिक घटनाओं पर आधारित होता है। इसमें लोक-मान्यताओं एवं सामाजिक परंपराओं को ससम्मान स्थान दिया जाता है। कभी-कभी सामाजिक बुराइयों पर कठोर प्रहार भी किया जाता है। इस दृष्टि से हिन्दी प्रदेशों के लोकनाट्य की विवेचना करें तो निम्नप्रकार के विभिन्न लोकनाट्यों से हमारा परिचय होता है

1. लीलाएँ
   - क. रामलीला
   - ख. कृष्णलीला
   - ग. रासलीला
2. स्वाँग
3. खोड़िया
4. कठपुतली का तमासा
5. डिरामा
6. ढ़ोला
7 नौटंकी [1]

4.9.1 लीलाएँ

पौराणिक आख्यानों पर आधारित अलौकिक नायक के चरित्र को उजागर करने के लिए पात्रों द्वारा खुले एवं विस्तृत रंगमंच पर जो अभिनय किया जाता है, वह लीला के अंतर्गत आता है। भारतीय

1. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन -पृ. 312

संस्कृति में राम और कृष्ण ऐसे दो लोक नायक है, जिनसे सर्वाधिक लोकमानव प्रभावित हुआ है और सहस्रों वर्षों से जिनके आदर्शों से प्रेरणा एवं मानसिक शांति प्राप्त करता चला आ रहा है।

'लीला' शब्द विशेष रूप से अवतारों के चरित के अभिनय के लिए ही प्रयुक्त होता है। किसी लौकिक पात्र के चरित पर किए जानेवाले अभिनय को लीला नहीं कहा जा सकता। वास्तव में किसी भी अलौकिक नायक के द्वारा की गयी समस्त लौकिक क्रियाओं को लीला कहा जाता है। हिन्दी प्रदेश में राम लीला और कृष्ण लीला दोनों का प्रचार है।

(क) रामलीला

इसमें राम के जन्म से लेकर, उनके राज्याभिषेक तक की समस्त घटनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। उत्तर भारत में कई स्थानों पर रामलीला का आयोजन बडी धूमधाम के साथ होता है। बीसलपुर नगर की रामलीला की प्रसिद्धि दूर-दूर तक है। रामलीला कब शुरू हुई यह कहना मुश्किल है, केवल इतना ही ज्ञात होता है कि इसकी परंपरा कई सौ वर्षों से चली आ रही है। वर्तमान समय में रामलीला का एक निश्चित मैदान होता है या बनाया जाता है। इसमें अयोध्या, लंका, पंचवटी, अशोकवाटिका आदि तैयार किए जाते हैं। दर्शकों के बैठने का भी निर्धारित स्थान होता है। काफी बडे मैदान में रामलीला के पात्र जिन्हें सरूप (स्वरूप) कहा जाता है, घूम-घूमकर अभिनय करते हैं। रामचरितमानस के आधार पर पात्रों को निर्देश देता है और यदा कदा उनमें परस्पर संभाषण भी करवाता है। दर्शक उनके संवादों पर अधिक ध्यान न देकर, उनके अभिनय को ही बडी श्रद्धा के साथ देखते हैं।

राम की कथा जन-जन में व्याप्त है इसलिए वे स्वरूपों को बडी श्रद्धा एवं आदर प्रदान करते हैं। रावण आदि को छोड़कर शेष पात्र ब्राह्मण जाति से ही संबंधित होते हैं। इसमें सीता आदि स्त्री पात्रों की भूमिका पुरष ही करते हैं। अभिनय से पूर्व सभी पात्रों का मुख सुसज्जित किया जाता है। पात्रों की साज-सज्जा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसमें कृत्रिम केशों एवं मुकुटों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। कुछ पात्र मुखौटों का भी प्रयोग करते हैं। इन पात्रों में हनुमान, अंगद, गणेश एवं रावण आदि होते हैं। काष्ठ एवं कागज़ से निर्मित घोडे, हिरण, जटायु आदि पशु-पक्षी, विभिन्न देवताओं की झाँकियाँ आदि इसका दूसरा आकर्षण है।

लंकादहन एवं रावणवध के दिन आतिशबाजी का विशेष आयोजन होता है। रावण, मेघनाद आदि के बड़े-बड़े पुतले बनाये जाते हैं तथा उन्हें जलाया जाता है। कुछ इलाकों में इसका आयोजन विस्तृत मैदान में न होकर रंगमंच पर होता है।

(ख) कृष्णलीला

उत्तर भारत में कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर अनेक स्थानों पर कृष्णलीला का आयोजन होता है। कृष्ण लीला का आयोजन खुले मैदानों या रंगमंच पर किया जाता है। इसके पात्रों की मुख-सज्जा साधारण होते हुए भी पात्रों के अनुरूप होती है। वेशभूषा के आधार पर आसानी से पात्रों को पहचाना जा सकता है। श्रीकृष्ण का अभिनय करनेवाला पात्र पीले रंग के कपडे तथा कृत्रिम केश व मुकुट भी धारण करता है। पात्रों में परस्पर संवाद न के बराबर ही होते हैं। एक प्रकार से इसका पात्र आंगिक प्रदर्शन द्वारा ही अभिनय करते हैं। इसमें कृष्ण-जीवन से संबंधित अनेक लीलाओं का आयोजन होता है तथा भक्तगण सारी रात जाग-जागकर इन लीलाओं को देखते हैं और रसानुभूति करते हैं।

(ग) रासलीला

रासलीला ब्रज क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य है। ब्रज की रास-मण्डलियों द्वारा प्रायः रासलीला का प्रदर्शन होता रहता है। कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर अनेक जगह रासलीला का आयोजन होता है। रासलीला की प्रस्तुति साधारण सा मंच बनाकर किया जाता है। इसमें कम आयु के लडके ही कृष्ण-राधा का अभिनय करते हैं तथा स्वयं ही संवाद बोलते हैं। रासलीला के बीच बीच में कृष्ण-राधिका तथा अन्य पात्रों द्वारा नृत्य भी किया जाता है। इसमें ढ़ोलक, हारमोनियम् आदि लोकवाद्यों का भी उपयोग होता है। पात्रों की बोली ब्रजभाषा से प्रभावित होती है। पात्रों की वेशभूषा तथा मुख-सज्जा साधारण किन्तु आकर्षक होती है। इसका रंगमंच अति साधारण तख्त डालकर ही बना लिया जाता है। सामने एक पर्दा पडा रहता है जो दृश्य-परिवर्तन हेतु उपयोग में लाया जाता है। रासलीला ब्रजक्षेत्र का लोकनाट्य होने के कारण इसका प्रचार रामलीला की अपेक्षा कम है।

4.9.2 स्वाँग

'स्वाँग' शब्द का अर्थ वेश धारण करके नकल उतारने या रूप भरने से है। होली के तुरंत बाद ही ग्रामीण क्षेत्रों में मनोरंजन की दृष्टि से जगह-जगह स्वाँगों का आयोजन होने लगता है। इसमें प्रायः भद्दे एवं अश्लील प्रसंगों का प्रदर्शन होता है। शिक्षा के विकास के फलस्वरूप शनैः शनैः इसका प्रचलन कम होता जा रहा है। चैत्र मास में तो स्वाँगों का आयोजन विशेष रूप से होता है। इसमें अभिनय तेली, चमार, कहार आदि निम्न जाति के लोग करते हैं। स्वाँग शुद्ध ग्रामीण मनोरंजन का साधन है। इसके आयोजन के लिए रंगमंच की आवश्यकता नहीं पड़ती। खुले सड़क पर, बाग में या किसी भी जगह इसका आयोजन आसानी से हो जाता है। दर्शक चारों ओर लंबे घेरे में खड़े या बैठ जाते हैं तथा स्वाँग करनेवाले अपना प्रदर्शन करते हैं। इसे स्त्री-पुरुष दोनों ही देखते हैं।

स्वाँग में अभिनय करनेवाले पात्र पुरुष ही होते हैं। इसमें दो पात्र जिनमें से एक स्त्रियों का वस्त्र पहनता है और दूसरा पुरुषों का। अन्य दो पात्र ढ़ोलक और चिमटा बजानेवाले होते हैं। कुछ स्वाँगों में ढोलक की जगह धातिंगा का भी प्रयोग होता है इसलिए स्वाँग को धातिंगा भी कहते हैं। इसमें अभिनय करनेवाले पात्र विचित्र एवं निम्नकोटि की मुखमुद्रा बनाकर, कमर चलाकर एक दूसरे के चपत मारकर तथा विभिन्न प्रकार से दूसरों की नकल करके हास्य उत्पन्न करते हैं। यह अधिकतर जाति संबंधी नकल उतारते हैं। जैसे - भंगी की नकल, भिश्ती की नकल, तेली की नकल, भुर्जी की नकल आदि। स्वाँग के बीच में नृत्य-गान भी होता रहता है। इसमें पात्रों के वस्त्र आदि साधारण होते हैं। मुखसज्जा आदि की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती। इसमें कथानक का नितांत अभाव होता है। यह अश्लीलता से अधिक प्रभावित रहता है। इसमें निम्नकोटि का अभिनय तथा संवाद के स्थान पर अश्लीलता युक्त निम्नकोटि की बातचीत होती है।

4.9.3 खोड़िया

बारात-प्रस्तान के पश्चात घर की स्त्रियाँ रात्रि में खोड़िया का आयोजन करती हैं। इस नाट्य में मात्र स्त्रियाँ ही सम्मिलित होती हैं। स्त्रियाँ ही इसमें अभिनय करती और स्त्रियाँ ही इसकी दर्शक होती हैं। इसमें कुछ स्त्रियाँ पुरुषों के वस्त्र पहनकर पुरुषों की नकलें करती हैं। बीच-बीच में नृत्य भी करती हैं। इसमें अभिनय अत्यंत फूहड़ होता है और अश्लीलता का पुट अधिक होता है। ननद-भाभी का एक दूसरे के प्रति हास-परिहास करना, एक दूसरे को छेडना इसका मुख्य उद्देश्य होता है। खोड़िया का मुख्य उद्देश्य सुरक्षा की दृष्टि से रात्रि जागरण होता है, क्योंकि घर के समस्त पुरुष बारात में गए होते हैं।

4.9.4 कठपुतली का नृत्य

यह राजस्थान का लोकप्रिय लोकनाट्य है। कठपुतली का नृत्य दिखानेवाले लोग राजस्थान से आते थे और कला का प्रदर्शन करके जनपदीय मानव का मनोरंजन करते थे। उत्तर प्रदेश के भी अनेक व्यक्ति कठपुतली का नृत्य दिखाते थे। आजकल इसका प्रचलन न के बराबर है। इसमें 'गुलब्बो-सितब्बो' नामक खेल बहुत ही लोकप्रिय है। 'गुलब्बो' और 'सितब्बो' सास एवं बहु है। ये प्रायः लडती-झगडती रहती थीं। खेल के प्रदर्शन के समय खेल दिखानेवाला खेल से संबंधित छन्द गाता जाता है। ये कठपुतलियाँ सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित होती है। आज भी इस कला का प्रचलन है, किन्तु काफी कम है। विभिन्न मेलों के अवसर पर अब कठपुतलियों का खेल टिकट लगाकर होता है।

4.9.5 डिरामा (ड्रामा)

हिन्दी प्रदेशों में नाटक मंडलियाँ प्रायः अनेक नाटकों का आयोजन कर के लोगों का मनोरंजन करती हैं। लोकमानव इन्हें डिरामा के नाम से संबोधित करता है। इन ड्रामा-मंडलियों के समस्त पात्र

पुरुष ही होते हैं। स्त्रियों की भूमिका भी पुरुष पात्र ही करते हैं। इन नाटक मंडलियों का रंगमंच काफी बडा तथा आकर्षक होता है। दृश्य-परिवर्तन हेतु अनेक सुन्दर पर्दों की व्यवस्था होती है। पात्रों की मुख-सज्जा तथा वेशभूषा भी आकर्षक होती है। इसमें भी बीच-बीच में नृत्य का आयोजन होता है तथा अनेक लोकगीतों के आधार पर पात्र नृत्य करते हैं।

4.9.6 ढ़ोला

उत्तर भारत में मनोरंजन के साधनों में ढ़ोला अपना एक विशेष स्थान रखता है। मनोरंजन के क्षेत्र में यह विशुद्ध ग्रामीण मनोरंजन है। फुरसत के समय अल्हा के समान इसे गा-गाकर भी लोग अपना मनोरंजन करते हैं। रामलीला मेला, कृष्ण-जन्मोत्सव एवं इलाबास आदि मेलों के अवसर पर बहुधा ढ़ोला-मंडलियाँ ढ़ोला का मंचन करती हैं, जिसमें रात-रात भर ग्रामीण दर्शकों का जमघट लगा रहता है। यहाँ ढ़ोला खेलनेवाली कई मंडलियाँ हैं। पूरी मंडली में कुल सात या आठ व्यक्ति ही होते हैं। इसमें समस्त पात्र पुरुष ही होते हैं, स्त्रियाँ इसमें भाग नहीं लेतीं। पुरुष ही जनानी वेशभूषा धारण करते हैं। इसमें एक हारमोनियम बजानेवाला, एक ढ़ोलक बजानेवाला, एक चिमटा बजानेवाला, एक या दो नचकइया होते हैं, जो जनाना पार्ट अदा करते हैं तथा शेष एक या दो व्यक्ति पुरुष पात्रों की भूमिका अदा करते हैं।

ढ़ोला का रंगमंच एकदम साधारण तथा कामचलाऊ होता है। मंच पर पर्दे आदि की कोई व्यवस्था नहीं होती। दर्शक भूमि पर बैठकर ही नाट्य का आनन्द लेते हैं। पात्रों की मुख-सज्जा तथा वेशभूषा भी अति साधारण होती हैं। नचकइया जो जनाने वस्त्र पहिने होता है, इन्हीं वस्त्रों से वह रानी की भूमिका करता है तथा वही वस्त्र पहने हुए अश्लील हरकतें करता हुआ बीच-बीच में नाचता-गाता भी है, ताकि दर्शक बोर न हो। पुरुष पात्र चुड़ीदार पैजामा, ऊपर अंगरखा तथा उसके ऊपर कामदार जाकिट पहनते हैं।[1]

इसमें पात्रों की कोई निश्चित भूमिका नहीं होती है। आवश्यकता पड़ने पर कोई भी व्यक्ति राजा नल से लेकर नौकर तक की भूमिका कर लेता है। इसमें अभिनय करनेवाले पात्र तथा वाद्य बजानेवाले दोनों ढ़ोला गाते हैं। इसके छंद हरैया नाम से पुकारा जाता है। ढ़ोला गाने का ढंग बिलकुल अलग है। इसकी अपनी एक विशेष लय है। ढ़ोला गानेवाला व्यक्ति गाते समय हाय, अरु आदि शब्द जोड़कर इसकी लय को और भी मोहक बना देता है।

1. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन -पृ. 320-321

4.9.7 नौटंकी

नौटंकी को पहले 'स्वाँग' या 'संगीत' कहा जाता था। नौटंकी की परंपरा अधिक पुरानी नहीं है। आज से लगभग 100 वर्ष पहले उत्तरप्रदेश के जहाँगीराबाद (बुलंदशहर) नगर के उस्ताद इन्दरमन ने इसकी शुरूआत की थी। बाद में नौटंकी की दो शैलियाँ हो गयीं -1. हाथरस शैली और 2. कानपुर शैली। कुछ कंपनियाँ हाथरस शैली पर आधारित नौटंकी का खेल खेलती है तो कुछ कानपुरी शैली पर। इनमें कानपुरी शैली पर आधारित नौटंकियों को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। [1]

नौटंकी के आयोजन में किसी नियमित प्रेक्षागृह की आवश्यकता नहीं होती। किसी भी उपयुक्त स्थान पर तख्त डालकर उस पर दरी बिछाकर मंच बना लिया जाता है। दर्शक मंच के आगे ज़मीन पर बैठ जाते हैं। कुछ नौटंकियों में लड़के ही स्त्री की वेशभूषा धारण कर स्त्रियों की भूमिका करते हैं। अधिकांश नौटंकियों में एक या दो नाचनेवाली अवश्य होती हैं। इनमें से ही कोई नायिका की भूमिका करती है। खेल प्रारंभ होने से पूर्व सभी पात्र मंच पर आकर मंगलाचण गाते हैं। मंच के एक तरफ विभिन्न साजों के साथ साजिन्दे बैठते हैं। इन साजों में नगाड़ा, हारमोनियम् एवं ढ़ोलक प्रमुख हैं। नगाड़े दो होते हैं एक छोटा और एक बड़ा।

नौटंकी में बीच-बीच में नृत्य भी होता है, जिससे इसके दर्शकों में अरुचि पैदा नहीं होने पाती। जोकर भी नौटंकी में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अव्यवस्थित कपड़े पहने हुए, सिर पर बड़ा सा टोप लगाए हुए, नाक और गालों में खड़िया पोते हुए वह अपनी असामान्य हरकतों से दर्शकों का मनोरंजन करता है।

नौटंकी में मंगलाचरण से लेकर अंत तक लोक-छन्द में ही सारा कथानक वर्णित होता है, जिन्हें गा-गाकर पात्र संवाद के रूप में कहते हैं। इस प्रकार नौटंकी गेय लोकनाट्यों के क्रम में आता है। इन छंदों में दोहा, चौबोला, लावनी, बहरेतवील,कव्वाली, कढा, गज़ल, शेर, ख्याल आदि प्रमुख हैं। इनकी भाषा हिन्दी-उर्दू मिश्रित सरल लोकभाषा होती है। इसी कारण नौटंकी अधिक लोकप्रिय है।

प्रारंभ में नौटंकी के पात्र साधारण ढंग का मुख-सज्जा किया करते थे। इधर 35-40 वर्षों से नौटंकी के पात्रों की मुख सज्जा में काफी परिवर्तन आया है। अब पुरुष पात्र मुख पर गुलाबी रंग लिए हुए सफेद रंग की पर्त चढ़ाते हैं। माथे पर लाल रंग के तिलक लगाते हैं। मूँछें दाढ़ी आदि को काले रंग से बनाते हैं। कानों में बड़े-बड़े कुंडल, सिर पर बड़े किन्तु व्यवस्थित केश एवं आँखों में काजल आदि

1. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन -पृ. 323-324

के द्वारा मुखमंडल को प्रभावी बनाते हैं। पहले नौटंकी में लड़कियाँ काम नहीं करती थीं। लेकिन आजकल इसमें लड़कियों की संख्या बढ़ती गयीं। इसलिए इसकी मुखसज्जा में भी काफी बदलाव आया। सूखे रंगों के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार की प्रसाधन-सामग्री मुख-सज्जा हेतु काम में आने लगी। सिर पर बड़े ही कायदे से बँधा जूड़ा, जूड़े में गजरा, आँखों में महीन काजल, कँटीली कमानदार भौंहें, हल्के गुलाबी रंग से पुता मुख, गालों पर रुज की अपूर्व सुर्खी, ओठों पर लाली आदि, ये सब आज मुख-सज्जा के आवश्यक अंग बन चुके हैं।

नौटंकी की वेशभूषा नौटंकी के स्तर पर निर्भर करती है। व्यावसायिक नौटंकियों को छोड़कर शेष नौटंकियों के पात्रों की वेशभूषा सामान्य होती है। वेशभूषा के आधार पर पात्रों का स्तर विदित नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा की भूमिका करनेवाले और सेवक की भूमिका करनेवाले व्यक्तियों की वेशभूषा में कोई विशेष अंतर नहीं होता है। सेवक भी चूड़ीदार पायजामा पहने होता है और राजा भी। प्रायः अंगरखा और साधारण मुकुट ही इन दोनों में भेद स्पष्ट करने का संबल है। जबकि दूसरी ओर व्यावसायिक नौटंकियों में वेशभूषा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। भूमिका के अनुसार ही इनके पात्र वेशभूषा धारण करते हैं। सुन्दर जड़ाऊ अंगरखे, साफ पैजामे, सिर पर जड़ाऊ मुकुट, अनेक आभूषणों आदि का प्रयोग करके इसका नायक विशिष्ट श्रेणी में आता है। अन्य पात्रों की वेशभूषा भी स्तर के अनुसार ही होती है। इन नौटंकियों में स्त्री-पात्रों की वेशभूषा बहुत ही आकर्षक होती है। नृत्य के समय पहने जानेवाले वस्त्र बहुत ही भडकीले आकर्षक होते हैं।

हिन्दी प्रदेशों में नौटंकी का प्रचार सबसे अधिक है। नौटंकी के प्रति अनुराग रखनेवाले लोकमानव इसमें बजनेवाले नगाडे की ध्वनि से आकृष्ट होकर रात्रि में मीलों पैदल चलकर, दूसरे गाँव में होनेवाली नौटंकी को देखने पहुँच जाते हैं। इसका प्रदर्शन सदैव रात्रि में ही होता है।

4.10 केरल और हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोकनाट्यों की तुलना

लोकनाट्यों की परंपरा बहुत पुरानी है। लोकमानव का मनोरंजन इनका प्रमुख उद्देश्य है। केरल में प्रचलित लोकनृत्यों में धार्मिक विचारधारा का जितना प्रभाव है उतना लोकनाट्यों में नज़र नहीं आता। ग्रामीण परिवेश में खेले जानेवाले इन नाट्यों में सरसता, सरलता एवं सहजता ही नज़र आती है। कृत्रिम रूप से भाव संचालन का प्रयास इन नाट्यों में न के बराबर है। दर्शक और कलाकार के बीच किसी प्रकार का अंतराल न होने के कारण वे भी नाट्य का अंग बनकर ही इनका आस्वादन करते हैं।

हिन्दी प्रदेश की तुलना में केरल में प्रचलित लोकनाट्यों में काफी विविधता नज़र आती है। उत्तर भारत में लीलाओं तथा नौटंकी का काफी प्रचार है। अन्य नाट्य, जैसे स्वाँग, खोड़िया, ढ़ोला आदि का

उतना प्रचार आज नहीं है। केरल में प्रांत विशेष के आधार पर आयोजित लोकनाट्यों में काफी विविधता है। उदाहरण स्वरूप देखिए, 'कोतमूरियाट्टम्' का काफी प्रचलन उत्तर केरल में है तो 'कुरत्तियाट्टम्' दक्षिण केरल में बहुप्रचलित है। 'पुलिकळि'का काफी प्रचार मध्यकेरल में है। 'यक्षगानम्' कर्नाटक के होते हुए भी कासरगोड जिले में इसके बहुत दर्शक होते हैं। 'चविट्टु नाटकम्' ईसाइयों की अपनी विरासत मानी जाती है। उत्तर भारत में लीलाओं का जितना प्रचार है उतना अन्य नाट्यों का नहीं हैं। रामलीला, कृष्णलीला, रासलीला आदि नाट्यों का आयोजन गाँव-गाँवों में होता है। नौटंकी की लोकप्रियता आज भी कम नहीं हुई है। नाट्य, नृत्य, संवाद, वेशभूषा एवं रंग-सज्जा का ऐसा सामंजस्य अन्य नाट्यों में देखना मुश्किल है। दिन भर खेत-खलिहानों पर काम करते-करते थके ग्रामीणों का मनोरंजन ऐसे लोकनाट्यों से ही संभव है। राजस्थान का कठपुतली का तमासा एवं केरल के 'तोलपावक्कूत्तु'में काफी समानता है। लेकिन एक भिन्नता यह है कि कठपुतली तमासा में कठपुतली सीधे दर्शक के सामने आ जाते हैं जबकि 'तोलपावक्कूत्तु'में कठपुतलियों की परछाइयाँ ही दर्शक के सामने आ जाती है या दर्शक देख पाते हैं। दोनों में संवादों की प्रस्तुति समान रूप से की जाती है। 'कोतमूरियाट्टम्'की प्रस्तुति के पीछे भी केरल की विशिष्ट संस्कृति जुडी हुई है। फसल कटाव के बाद ग्राम्य जीवन में छाई प्रसन्नता का भरपूर लाभ उठाने के लिए ही इसका आयोजन किया जाता है, साथ ही साथ सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफाश करने का प्रयास भी ज़ारी रहता है। इस प्रकार दोनों प्रदेशों की लोकनाट्य परंपरा ग्रामीण एवं कृषक जीवन से किसी न किसी अंश में संबद्ध रखती है। धार्मिक विचार धारा से ओतप्रोत होते हुए भी सामाजिक जीवन की विभिन्न पहलुओं का चित्रांकन से इस विशेष कला रूप का महत्त्व और बढ़ जाता है।

4.11 मलयालम और हिन्दी के मुहावरे

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषाओं की विशिष्ट संपत्ति है। साहित्य के लिए मुहावरों तथा लोकोक्तियों का योगदान असंदिग्ध है साथ ही साथ ये प्रत्येक प्रांत व क्षेत्र की संस्कृति एवं सामाजिक परिचायक भी हैं। सांस्कृतिक शब्दावली के अध्ययन के दौरान मुहावरे तथा लोकोक्तियों का विवेचन अनिवार्य भी है।

मुहावरे तथा लोकोक्ति में तो स्पष्ट अन्तर है। मुहावरे को संस्कृत में 'वागरीति' और अंग्रेज़ी में 'इडियम्' कहा जाता है। डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने मुहावरे की परिभाषा यों दी है -"मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होनेवाला वह अपूर्व वाक्य खंड अथवा वाक्यांश है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज रोचक तथा चुस्त बना देता है।"[1]

1. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसंस्कृति की रूपरेखा -पृ. 303

डॉ कुन्दनलाल उप्रेती के अनुसार - "मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होनेवाले अपूर्व वाक्य खंड है, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को विशिष्ट शक्ति प्रदान करता है। मुहावरा लोकोक्ति के समान अपने में पूर्ण नहीं होता हैं और उसकी सार्थकता वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही होती है। उसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता। यह सदैव अपने मूल रूप में प्रयुक्त होता है। शब्द में परिवर्तन करने से अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोकव्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बहुत कौशल से देखा समझा और बार-बार उनका अनुभव किया, उन्हीं को शब्दों में बाँधा है। यही मुहावरे कहलाते हैं।"[1]

वास्तव में मुहावरा शब्द अरबी भाषा का है जो 'हौर' शब्द से बना है। इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है 'परस्पर बातचीत करना' या 'एक दूसरे से सवाल-जवाब करना'। हिन्दी शब्दसागर में मुहावरे का अर्थ इस प्रकार दिया गया है कि मुहावरा लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या वह प्रयोग है जो किसी एक ही बोली या लिखी जानेवाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका प्रत्यक्ष अभिधेय अर्थ से विलक्षण हो।[2] किसी एक भाषा में दिखाई पडनेवाली असाधारण शब्दयोजना अथवा प्रयोग मुहावरे के नाम से अभिहित की जा सकती है।

प्रकीर्ण साहित्य में मुहावरों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुहावरों के बिना साहित्य अधूरा ही रह जाता है। 'मुहावरेदार शैली' ऐसा प्रयोग ही इसके महत्त्व का द्योतक है। जो भी हो, किसी भी बोली में जितने अधिक मुहावरे होंगे, वह उतनी ही अधिक सशक्त होगी। मुहावरों तथा लोकोक्तियों का निर्माण साहित्यकारों द्वारा नहीं किया जाता बल्कि जनसाधारण के अनुभव ही इनकी आधारशिला है। इसलिए मुहावरों के प्रयोग का संबंध व्यक्तियों से है। व्यक्तियों से संबंध रखने के कारण मुहावरे बदलते रहते हैं। यह विलक्षण तथ्य है कि पांडित्य के बढ़ते-बढ़ते भाषा की सरसता और मुहावरेदारी कम होती जाती है। पंडित गंभीर बातें परिमार्जित भाषा में बोलते हैं परंतु उसका सौष्ठव पंडितों के लिए ही सुलभ होता है। मगर आम आदमी चारों तरफ की ज़िन्दगी से अनेक उदाहरण लेते हैं, बातों का बढ़ा-चढ़ाकर या उदाहरण-प्रत्युदाहरण से समझाते हैं। इसके लिए मुहावरों का सुलभ प्रयोग किया जाता है।

अर्थ चमत्कार का विभाजन दो कोटियों में किया जा सकता है - (1) सामान्य (2) क्षेत्रीय। हम अपने सहज व्यवहार में कई ऐसे वाक्यांश और शब्द प्रयोग करते हैं जो मुहावरा बनते हैं। इनके वक्तागण मन में जो भाव रखते हैं वे समान रहते हैं, भाषा चाहे कोई भी हो। कुछ उदाहरणः-

---

1. कुन्दनलाल उप्रेती, लोकसाहित्य के प्रतिमान -पृ. 206

2. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर -पृ. 828

हिन्दी मुहावरे	अर्थ	मलयालम मुहावरे
सिर पर चढ़ना	अधिक आज़ादी लेना	तलयिल केरुक
पाँव तोड़ना	रोक देना	काल् ओटिक्कुक
नाच नचाना	इच्छानुसार काम कराना	इष्टत्तिनु तुळ्ळिक्कुक
आँखों का तारा	प्यारा	कण्णिल उण्णि

लेकिन ऐसे सामान्य मुहावरे भी किसी क्षण क्षेत्रीय मुहावरों की शक्ल ले सकते हैं। क्षेत्रीय मुहावरे मातृभाषा में हमें चिरपरिचित लगते हैं लेकिन अन्य भाषा-भाषियों को अपरिचित लग सकते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी के कुछ मुहावरे लीजिए - लोहे के चने चबाना, ईद का चाँद, ईंट से ईंट बजाना, नौ दो ग्यारह होना, पानी-पानी होना ये सब मलयालम भाषा में अनूदित होने पर भाव का बोध करा नहीं सकते। उसके लिए मलयालम के अपने मुहावरे ढूँढने पडते हैं। इसी प्रकार के मलयालम मुहावरों के उदाहरणः-

मलयालम मुहावरे	शब्दार्थ	हिन्दी में भावार्थ
तल पुकयुक	सिर से धुँआँ निकलना	बडी दिमागी मेहनत करना
चंकु वेळ्ळम् आक्कुक	हृदय को पानी बनाना	कड़ी मेहनत करना
कुळम् कोरुक	तालाब खोदना	(किसी का) सब कुछ नष्ट करना
पंप कटक्कुक	पंपा नदी पार करना	चंपत हो जाना

जहाँ समान भाव और लगभग समान शब्द दोनों भाषाओं में आते हैं वहाँ भी भाषा की संरचना व परंपरा के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रयोग मुहावरों में मिलते हैं। उदाहरणः-

हिन्दी मुहावरे	मलयालम अर्थ	मलयालम का भावार्थ
हवा खाना	कार्रु कोळ्ळुक	हवा लगना
जलपान करना	वेळ्ळम् कुटिक्कुक	पानी पीना
साँस फूलना	श्वासम् मुट्टुक	साँस घुटना
कान भरना	चेवि कटिक्कुक	कान काटना

4.11.1 मलयालम मुहावरों की परंपरा

प्रत्येक भाषा के मुहावरे परंपरा से प्राप्त होते हैं। मलयालम का प्रारंभिक गहन संबंध तमिल से था। आगे संस्कृत के विद्वानों ने मलयालम का रूप गढ़ लिया। इधर अरबी भाषा केरल के खासकर उत्तरी केरल के कुछ प्रदेशों के मुसलमानों पर प्रभाव डाल गई। थोड़े से दिनों तक और सीमित प्रशासनिक क्षेत्र में फारसी से मलयालम का थोड़ा संबंध था। आगे चलकर अंग्रेज़ी का पूरा प्रभाव छा जाने लगा। अतएव मलयालम के मुहावरों में तमिल, संस्कृत, फारसी, अंग्रेज़ी मुहावरों के अनूदित रूपान्तर न्यूनाधिक मात्रा में मिलते हैं।

हिन्दी मुहावरों की परंपरा

हिन्दी की कई बोलियाँ मिलती हैं जो विभिन्न अपभ्रंशों से निष्पन्न हुई हैं अतः हिन्दी के मुहावरों में इन सभी बोलियों के तथा अपभ्रंश से प्राप्त मुहावरे शामिल हैं। हिन्दी पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है। जनभाषा के रूप में हिन्दी का जो विकास हुआ उसमें अरबी भाषा का प्रभाव भी स्पष्ट है। आधुनिक खडीबोली पर अंग्रेज़ी का ज़बरदस्त प्रभाव सुविदित रहा है। ऐसी हालत में हिन्दी मुहावरों में इन सभी भाषाओं के मुहावरों की सुगंध किसी न किसी रूप में ज़रूर मिलती है।

इस प्रकार हिन्दी तथा मलयालम के मुहावरों में संस्कृत तथा उपर्युक्त विदेशी भाषाओं के मुहावरों का न्यूनाधिक रूप से प्रभाव दृष्टव्य है। इसलिए तुलनात्मक अध्ययन के दौरान विषमता से बढ़कर समानता अधिक नज़र आती है। अंग्रेज़ी का प्रभाव दोनों भाषाओं में सबसे ज़्यादा है। इसलिए मलयालम और हिन्दी दोनों में अंग्रेज़ी मुहावरे अनूदित रूप में चले हैं। उदाहरण:-

अंग्रेज़ी मुहावरे	मलयालम मुहावरे	हिन्दी मुहावरे
Black Market	करिंचंता	काला बाज़ार
In broad day light	पट्टाप्पकल	दिन दहाड़े
Betwen the devil and the sea	चेकुत्तानुम्-कटलिनुम् नटुक्कु	शैतान और खाई के बीच
To stand on one's own leg	स्वंतम् कालिल निल्क्कुक	अपने पैरों पर खड़ा होना

4.11.2 मुहावरों के प्रकार या आधार

मुहावरों के आधार से मतलब उस विषय से है जिससे मुहावरा संबंधित है। वैसे मानव जीवन ही सभी भाषाओं में मुहावरों का आधार होता है। फिर भी वातावरण, प्रकृति, जलवायु, खानपान, पेशा,

धर्म, संस्कृति आदि में प्रदेश-प्रदेश में अंतर रहता है। मलयालम में नारियल शब्द से गढ़े मुहावरे बहु प्रचलित हैं। हिन्दी क्षेत्र में गरी या खोपरे के रूप में नारियल भले ही परिचित हो, फिर भी हिन्दी में नारियल शब्द से बने मुहावरे न के बराबर है।

आगे विभिन्न आधार के अनुसार हिन्दी और मलयालम मुहावरों की तुलना की जा रही है।

4.11.2.1 दिनचर्या संबंधी मुहावरे

वातावरण और प्रदेश के अंतर के अनुसार दिनचर्या की चीज़ों, क्रियाओं के तरीकों और प्रयुक्त मुहावरों में भी फरक पड़ता है। यह भी ज़रूरी नहीं है कि एक भाषा में एक बात बतानेवाले सारे मुहावरे दूसरी भाषा में मिलें। कम से कम शब्द-प्रयोग बदल जाता है। उदाहरणः-

हिन्दी मुहावरे	मलयालम मुहावरे	मलयालम मुहावरे का भाव
नींद खुलना	उऱक्कम् उणरुक	नींद से जागना
अंगड़ाइयाँ लेना	मूरि निवरुक	अंगडाइयाँ लेना
बिस्तर छोडना	किटक्कयिल निन्नु एणीक्कुक	बिस्तर से उठना
आँख खुलना	कण्णु तुऱक्कुक	आँख खुलना

4.11.1.2 खान-पान संबंधी मुहावरे

खान-पान दैनिक जीवन का मुख्य अंग है। यहीं से मलयालम और हिन्दी के मुहावरों में अंतर शुरू होता है। हिन्दी में खान-पान के अपने शब्दों से व्यापक क्षेत्र के अनेक मुहावरे बनते हैं। मलयालम में भी इसी प्रकार के अनेक मुहावरे प्राप्त होते हैं। उदाहरण -

मलयालम मुहावरे	शब्दार्थ	हिन्दी भावार्थ
कञ्ञि कुटिक्कुक[1]	कञ्ञि पीना	सूखी रोटी खाना
कञ्ञियिल पाऱ्ऱा वीषुक	कञ्ञि में तिलचट्टा गिरना	आटा गीला होना
पुलिश्शेरी वेक्कुक	कढ़ी बनाना	गुलछर्रे उडाना
मनप्पायसम्[2] उण्णुका	मन का खीर पीना	मन का लड्डू खाना
इंचि तिन्न कुरङ्ङन	अदरक खाया बंदर	चिडचिड़ा आदमी
अवियल [3] परुवम्	अवियल जैसा	सब कुछ मिलाकर खिचड़ी सी

1. कञ्ञि चावल की माँड

2. पायसम् - खीर

3. अवियल विभिन्न प्रकार के साग-सब्जियों से तैयार की गई एक विशेष सब्जी।

4.11.1.3 **वेश-भूषा संबंधी मुहावरे**

वेशभूषा के विषय में हिन्दी क्षेत्र और मलयालम क्षेत्र के परंपरागत तरीके भिन्न-भिन्न हैं। आजकल कुछ अंग्रेज़ों के और अधिकतर फिल्मों के प्रभाव से भारत की नई पीढ़ी एक सी पोशाक अपनाती जा रही है। फिर भी मुहावरे परंपरा पर आश्रित होते हैं। पहनावे से संबंधित हिन्दी के कुछ सामान्य शब्द निम्नलिखित है - पगडी, कुर्ता, दुपट्टा, रूमाल, लंगोटी, साड़ी, घूँघट, चुनरिया, आंचल आदि। इनसे बने कुछ मुहावरे भी ले- पगड़ी उतारना, आस्तीन का सांप, लंगोटिया यार, आंचल पसारना, चोली-दामन का साथ, चुनरिया रंगना आदि। इसी के समान मलयालम में प्रयुक्त मुहावरे देखें -

मलयालम मुहावरे	शब्दार्थ	हिन्दी में भावार्थ
मुंडु मुरुक्कि उटुक्कुक	धोती कसकर पहनना	भूखी हाल छिपाना
कोणकम् एटुत्तु तलेल् केट्टुक	लंगोटी लेकर पगडी बाँधना	दिखावा करना
तुणि उरियुक	कपडे/धोती उतारना	अपमानित करना
मुण्डु कोटुत्तु पुतप्पु वाङ्ङुक	धोती देकर चादर खरीदना	झगडा मोल लेना
मुण्डु विरिच्चिरिक्कुक	धोती पसारकर बैठना	भीख माँगना
नेरियतु अरयिल केट्टुक	दुपट्टा कमर पर बाँधना	विनय दिखाना
कच्च केट्टुका	कमर का कपडा बाँधना	कमर कसना

इसी प्रकार दैनिक जीवन में कितने ही छोटे बडे व्यापार होते हैं। कड़ी मेहनत करना, बीच में कुछ आराम करना और एकदम सुस्त आवारा रहना, दैनिक जीवन की ही प्रवृत्तियाँ हैं। दोनों भाषाओं में प्रयुक्त ऐसे कुछ मुहावरे देखेंः-

मलयालम मुहावरे	समान हिन्दी मुहावरे
ईच्चयाट्टुक	मक्खी मारना
तिण्ण निरङ्ङुक	मटरगश्ती करना
एल्लु मुरिए पणियुक	जी तोड मेहनत करना
नटुवोटियुक	हड्डी पसली चूर होना
तेंडि नटक्कुक	आवारा रहना

नक्षत्रमेण्णुक	हवाइयाँ उडना
चोर नीराक्कुक	खून पसीना एक करना

4.11.1.4 शरीर के अंग और जानवरों के नाम से संबंधित मुहावरे

सामान्य जीवन के हिस्से के रूप में शरीर के अंग, जानवरों के नाम आदि मुहावरों का आधार बने हैं। ऐसे कुछ मुहावरे निम्नलिखित हैं-

मलयालम मुहावरे	शब्दार्थ	हिन्दी मुहावरे
मूक्कु मुरिक्कुक	नाक काटना	नाक काटना
तल कळयुक	सिर गँवाना	सिर खपना
कण्णिटुक	आँख डालना	नज़र लगना
कै अयच्चु	हाथ ढीला करके	हाथ खोलकर
तल इटुक	सिर डालना	दखल देना
मूक्कत्तु विरल वेक्कुक	नाक पर उंगली रखना	दाँतोंतले उंगली दबाना
तल मरन्नु एण्णा तेक्कुक	सिर भुलाकर तेल मलना	चादर के बाहर पैर पसारना
कैय्यूक्कुळ्ळवन कार्यक्कारन	जिसमें शक्ति है, वही प्रधान होता है।	जिसकी लाठी उसकी भैंस
कै कषुकुक	हाथ धोना	हाथ मलना

4.11.1.5 पशु-पक्षी संबंधी मुहावरे

पशु-पक्षी पर आधारित मुहावरे हर भाषा में बड़ी संख्या में मिलते हैं। खास-खास जीव के विषय में प्रचलित संकल्पनाओं व रूढ़ियों पर ये मुहावरे आधारित होते हैं। उदाहरणार्थ 'बैल' हिन्दी व मलयालम में 'आवारा' अर्थ व्यंजित करता है। पर अंग्रेज़ी में बैल ऐसा अर्थ नहीं रखता है। हिन्दी में जिस अर्थ में उल्लू प्रयुक्त होता है उसी के लिए मलयालम में गधा (कषुत) शब्द प्रयुक्त है। इसका मतलब यह नहीं कि केरल में उल्लू नहीं होते और हिन्दी प्रदेश में गधों की कमी है। दोनों भाषाओं के कुछ भिन्न मुहावरे निम्नलिखित हैं

मलयालम मुहावरे	शब्दार्थ	हिन्दी भावार्थ
मिंडाप्पूच्च	मौन बिल्ली	छुपा चोर, अविश्वसनीय

पुलिवालु पिटिक्कुक	चीते की पूंछ पकडना	खतरा मोल लेना
मरक्कषुता	लकड़ी का गधा	उल्लू
ओलपांपु	पत्ते का सांप	गीदड़ भभकी
ऐट्टिले पशु	कागज़ की गाय	बेकार चीज़
कुरक्कुन्न पट्टी कटिक्किल्ल	भौंकनेवाला कुत्ता काटता नहीं	अधिक बोलनेवाला काम नहीं करते

इसके समान प्रयुक्त हिन्दी मुहावरे देखिए - अपना उल्लू सीधा करना, कोल्हू का बैल, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का, भीगी बिल्ली, मक्खी मारना, दाल की मक्खी।

इसी प्रकार रंगों पर आधारित बहुत सारे मुहावरे मलयालम और हिन्दी में समान रूप से मिलते है। रंग पर आधारित कुछ हिन्दी मुहावरे सफेद झूठ, हाथ पीला करना, आँखें लाल होना, रंग बदलना, रंग खेलना, रंग जमाना।

मलायलम मुहावरे	शब्दार्थ	हिन्दी भावार्थ
मञ्ञळिक्कुक	पीला होना	चेहरा पीला पडना
पच्च पिटिक्कुक	हरा होना	धीरे पनपना
पच्चयायि परयुक	हरा बोलना	खोलकर बोलना
वेळ्ळयटिक्कुक	सफेद बनाना	सफेदी पोतना
मुखम् करुक्कुक	चेहरा काला होना	उदासीन होना

4.11.1.6 स्थान संबंधी मुहावरे

भिन्न-भिन्न स्थान अपनी खासियत के लिए प्रसिद्ध होते हैं वैसे ही प्रत्येक स्थान की विशेषता को लेकर मुहावरे गढ़े जाते हैं। यहाँ मुहावरे 'क्लिषे' का काम करते हैं। उदाहरणः-

मलयालम मुहावरे	शब्दार्थ	भावार्थ
कोल्लत्तु पोवुका	कोल्लम शहर जाना	कोई बात पूरी समझे बिना सुनी हुई बात करना
कायंकुळम् वाळ	कायंकुळम् की तलवार	अविश्वसनीय

पांडिच्चरक्कु	पांड्य देश का माल	उमदा माल
ऊळंपारक्कु अयक्कुक	ऊळंपारा नामक स्थान को भेजना[1]	पागलखाने में भर्ती करना
कोच्चि कंटवनच्चि वेंट	जिसने कोच्चि शहर देखा वह पत्नी को भूल जाता है।	कोच्ची शहर की सुन्दरता की ओर संकेत
वयनाट्टु मोरॅ	वयनाडु का मट्ठा	अलभ्य वस्तु

प्रशासन और राजनीति के क्षेत्र में अंग्रेज़ी शब्दों का अनुवाद हिन्दी और मलयालम - दोनों में प्रचलित है। लेकिन इससे पहले ही प्राचीन स्थानीय परंपरा के बोधक मलयालम मुहावरे ही लोकप्रिय थे। इनका अनुवाद हिन्दी में करना भ्रमजनक हो सकता है।

मलयालम मुहावरे	**हिन्दी में भाव**
तिरुवुळ्ळक्केटु	प्रभु के मन में क्रोध
मुखम् काणिक्कुक	राजाओं के दर्शन मिलना
श्री पद्मनाभन्टे काशुॅ	सरकारी पैसा
वीर शृंखला मेटिक्कुक	राजा के हाथ से पुरस्कार पाना
तुल्यम् चार्तुक	राजा द्वारा हस्ताक्षर किया जाना
पट्टयम् पिटिक्कुक	ज़मीन पर अधिकार प्राप्त करना
राजमान्य राजश्री	विशिष्ट व्यक्ति

4.11.1.7 कला संबंधी मुहावरे

प्रत्येक प्रांत में प्रचलित कलाओं से संबंधित शब्दों से भी मुहावरों का निर्माण होता है। कथकळि जैसे केरल के विशिष्ट कलारूपों से संबंधित कुछ मुहावरे निम्नलिखित हैं -

मलयालम मुहावरे	**हिन्दी में भावार्थ**
केळिकोट्टुका	प्रारंभ की सूचना

1. अलंपारा वही जगह है जहाँ केरल का प्रसिद्ध पागलखाना स्थित है।

चुट्टि कुत्तुक	तैयारियाँ करना
श्लोकत्तिल कष़िक्कुक	संक्षेप में करना
धनाशि पाटुक	हार मानना
वटक्कन पाट्टु पाटुक	खुशी मनाना
अष्टकलाशम् चविट्टुक	सारे उपाय करना
कच्च केट्टुक	तैयार होना
कत्ति वेषम्	रौद्र रूप
कलाशम् चविट्टुक	समाप्त होना
कुम्माट्टिक्कळि	कृत्रिम
कोट्टुन्न कोलिनु तुळ्ळुक	दूसरों के इशारों पर चलना
कोमरम् तुळ्ळुक	बिना सोचे समझे कार्य करना
कोलम केट्टुक	अपने स्वार्थ लब्धि के लिए रंग बदलते रहना
चोल्लियाटुक	प्रारंभ करना
पल्लवि पाटुक	दुहराना
पुराट्टु नाटकम्	कपटी व्यवहार
राजा पार्टु	प्रमुख, प्रधान

4.11.1.8 त्योहार-पर्व संबंधी मुहावरे

केरल के कुछ विशिष्ट त्योहार-पर्व होते हैं जिनका यहाँ की संस्कृति से अटूट संबंध है। ऐसे त्योहार-पर्वो से संबंधित बहुत मुहावरे यहाँ प्रचलित हैं। इनके समान मुहावरों को हिन्दी में पाना बहुत कठिन है। 'ओणम','विषु' तथा 'पूरम' जैसे त्योहारों से संबंधित कुछ मुहावरे निम्नलिखित हैं

मलयालम मुहावरे	हिन्दी भावार्थ
काणम् विर्रुम् ओणम् उण्णणम्	ज़मीन-जायदाद बेचकर भी ओणम मनाना है
ओणत्तुंपि	हर्ष-उल्लास का प्रतीक

ओणत्तिनिटयिल पूट्टु कच्चवटम्	किसी मुख्य कार्य के बीच अप्रधान बात का आ जाना।
ओणत्तिनुम्- संक्रांतिक्कुम्	दुर्लभ रूप से
ओणम केरा मूल	बहुत अपरिष्कृत प्रदेश
ओणम वरानोरु मूलम्	प्रत्यक्ष कारण
काणान पोकुन्न पूरम् परञ्ञरियिक्कणो	आनेवाले का अभी वर्णन ज़रूरी नहीं
पूरप्परंपु पोले	बडी भीड़ जहाँ किसी पर नियंत्रण नहीं
आनयिल्लात्त पूरम्	अनिवार्य बात का अभाव
आलुवा मणप्पुरत्ते परिचयम्	बिलकुल अपरिचित
भरणिप्पाट्टु पाटुक	अश्लीलगीत का गायन

इस प्रकार दोनों भाषाओं के मुहावरों में विविधता ही विविधता है। प्रांतीय एवं भाषापरक विभिन्नताओं के कारण ये अपनी खास विशिष्टताओं को लेकर सामने आ जाते हैं।

4.12 मलयालम हिन्दी मुहावरों की तुलना

मुहावरों का क्षेत्र काफी विस्तृत है। जीवन के विभिन्न पक्षों से जुडे रहने के कारण इसकी व्यापकता और बढ़ जाती है। इसलिए मुहावरों की तुलना सिर्फ दो भाषाओं की तुलना का रूप धारण कर लेती हैं। फलतः संस्कृति के विभिन्न अंगों को परखे बिना यह कार्य पूर्णतः सफल नहीं हो पाता। हिन्दी और मलयालम भाषा में प्रचलित मुहावरों की तुलना भी इस बात को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विश्लेषण से पता चलता है कि मलयालम और हिन्दी दोनों भाषाओं के मुहावरों में भाषागत एवं संस्कृतिपरक बहुत सारी भिन्नताएँ दृष्टव्य हैं। विशाल भारत का एक अटूट अंग होने के कारण हिन्दी भाषा में प्रचलित बहुत सारे मुहावरे जैसे के वैसे मलयालम में भी देखने को मिलते हैं। उसी के समान कुछ इने गिने मलयालम मुहावरों को भी हिन्दी में स्थान मिला है। संस्कृत भाषा का दोनों भाषाओं में जो प्रभाव हुआ है, यह भी इस समानता का एक कारण होगा। लेकिन केरल की विशिष्ट भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रूपायित होनेवाले अनेक मुहावरों के हिन्दी अनुवाद के संदर्भ में अनुवादक को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यहाँ अध्ययन का विषय मलयालम-हिन्दी अनुवाद होने के कारण हिन्दी-मलयालम अनुवाद की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। बहुत सारे ऐसे मुहावरे हैं जिनका मलयालम तथा हिन्दी में समान रूप से प्रचलित और प्रयुक्त हैं। लेकिन केरल

की विशिष्ट परिस्थितियों से जुडे हुए मुहावरे जैसे - खान-पान, वेश-भूषा, जानवरों के नाम, स्थान, कला, पर्व एवं त्योहार, पेड-पौधे आदि से संबंधित मुहावरों का हिन्दी में नितांत अभाव है। ऐसे मुहावरों का अनुवाद भी आसान नहीं है। मुहावरों में शब्द प्रयोग का अधिक महत्त्व होने के कारण सिर्फ भावार्थ देने से या संकेत देने से पूर्ण रूप से अर्थ निष्पत्ति संभव नहीं हो पाएगी। इसलिए इस विषय में गहन चिंतन मनन की आवश्यकता है।

4.13 हिन्दी और मलयालम की लोकोक्तियाँ/कहावतें

शब्दार्थ की दृष्टि से किसी भी प्रकार के लोक की उक्ति, लोकोक्ति है। इस प्रकार अपने विस्तृत अर्थ में लोक की प्रत्येक उक्ति, चाहे वह गीत के रूप में हो, कहावत के रूप में हो, पहेली के रूप में हो, या किसी भी रूप में हो, लोकोक्ति है।

लोकोक्ति-साहित्य संसार के नीति-साहित्य का एक प्रमुख अंग है। कहावतें लोकोक्तियाँ हो सकती है, किन्तु सभी लोकोक्तियाँ कहावतें नहीं हो सकती, क्योंकि लोकोक्तियों में प्रत्येक प्रकार की 'लोकोक्ति' सम्मिलित है जिसके अंतर्गत कहावतें, पहेलियाँ, सूक्तियाँ आदि भी आ सकती है।[1]

कुछ लोग लोकोक्ति और कहावत में अन्तर नहीं मानते, जबकि इनमें मौलिक अन्तर है। वास्तव में कहावतें लोकोक्ति का एक अंग है जैसे कि पहेली। लोकोक्तियाँ अन्य लोक-साहित्य से, स्वभाव और प्रयोग में बिलकुल भिन्न होती हैं। लोकोक्तियों में 'गागर में सागर भरने' की प्रवृत्ति होती है। इनमें जीवन की सच्चाई बडी खूबी से प्रकट होती है। ये ग्रामीण जनता के लिए नीतिशास्त्र हैं। लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटनेवाली ज्योति प्राप्त होती है।

इस प्रकार लोकोक्ति और कहावत में पर्याप्त अन्तर है तथा कहावत की अपेक्षा लोकोक्ति का क्षेत्र विस्तृत है। डॉ कुन्दनलाल उप्रेती ने 'लोकसाहित्य के प्रतिमान' में कहावतों के लिए विभिन्न भाषाओं में प्रचलित शब्दों का परिचय इस प्रकार दिया है संस्कृत में कहावत के लिए 'लोकोक्ति','प्रवाद' 'आमाणक' 'प्रयोवाद' 'लोक प्रवाद' 'लौकिकी', 'गाथा' आदि कहते है। लैटिन में 'प्रोवरबियो (Proverbio), ग्रीक में 'पारोनिया'(Paronia) तुर्की में 'अटालर सोगर' (Atalar Sogar) रूसी में 'पोस्टोविस्टा' (Postovista) अरबी में 'मातल', हिब्रू में 'माशल' (Mashal) फारसी में 'अमसाल' (Amsal) अंग्रेज़ी में 'प्रोवर्ब'(Proverb) उर्दू में 'जुर्बल' 'मिस्ल' लहँदा में 'अखाण' राजस्थानी में

1. डॉ मुक्तेश्वर तिवारी बेसुध, भोजपुरी लोकोक्तियाँ और मुहावरे -पृ. 57

'ओखाणो' तथा 'कहबर' गढ़वाली में 'पखाणा' गुजराती में 'कहेवत' तथा 'उखाणु' बंगला में 'प्रवाद' 'लोकोक्ती'तथा 'प्रवचन', मराठी में 'आणा' 'न्याय' तथा 'लोकोक्ति', तेलुगु में 'समीटा' मलयालम में 'पषंचोल्लुं', तमिल में 'पषमोषि' तथा हिन्दी में 'लोकोक्ति' 'कहनावत' 'उपाखान' 'पाखान' आदि कहते हैं।[1]

लोकोक्ति के विस्तृत अर्थ को ध्यान में रखते हुए यहाँ कहावत और पहेलियों पर अलग से विवेचन किया जाएगा।

कहावत के संबंध में कुछ विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं।

"जिस प्रकार व्याकरण में सूत्र, गणित में कुंजी होती है, उसी प्रकार भाषा में अभिप्राय को पुष्ट करने को कहावत कहते हैं।"[2]

"कहावतें जंगली पौधे की भाँति उस धरती की उपज होती है, जहाँ की बोली में जिनका निर्माण होता है। वस्तुतः कहावतें स्थानीय धरातल की भावात्मक सन्तानें हैं।" [3]

"कहावतें लोककण्ठों से मुखरित वे लोकोक्तियाँ हैं, जिनमें युग-युग से संचित मानव-अनुभूतियों को सूत्रबद्ध किया गया है और वे किसी व्यक्ति विशेष की उक्ति न होकर सारे मानव समाज की उक्ति है।"[4]

"संक्षिप्तता, सारगर्भिता और सजीवता से युक्त जन-जन के कंठ पर विराजित प्रसंगानुकूल चुभती हुई उक्ति, लोकोक्ति अथवा कहावत की संज्ञा प्राप्त करती है।"[5]

इस प्रकार लोकोक्तियों से तात्पर्य लोक की उन उक्तियों से है, जिनकी गंध भले ही शिक्षित समाज में न मिली हो, परन्तु साधारण वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति का मानस उससे सुभाषित होता रहता है, क्योंकि उसमें लोक-जीवन के अनुभवों की सारी पूंजी होती है।

प्रत्येक गाँव का प्रायः हर एक मनुष्य कहावतों से परिचित होता है। ग्रामीण मनुष्यों की जबान पर प्रत्येक बात पर कोई-न-कोई कहावत आ ही जाती है। इन कहावतों में दुनिया भर की बातें भरी है। साहित्य एवं विज्ञान की कोई ऐसी बात नहीं है, जो इन छोटी-छोटी देहाती कहावतों के सरल शब्दों

1. डॉ कुन्दनलाल उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान -पृ. 206
2. पी एल दर्याव सिंह, कहावत कल्पद्रुम, भूमिका
3. वैजनाथ सिंह विनोद, भोजपुरी लोक साहित्य -पृ. 177
4. डॉ मुक्तेश्वर तिवारी बेसुध, भोजपुरी लोकोक्तियाँ और मुहावरे -पृ. 57
5. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन -पृ. 274

में न भरी हो। लोकसाहित्य की अन्य सभी विधाओं की अपेक्षा लोकोक्तियों का क्षेत्र अधिक व्यापक है। ये मानव जीवन के समस्त क्रिया-कलापों के वे सूक्ष्म अंश है, जिनसे लोक-मानव का समस्त जीवन प्रभावित होता रहता है।

कहावतों में विषय के अनुसार विविधता ही विविधता है। स्थान, नदी, पहाड, धंधे, जाति, धर्म, पशु-पक्षी, त्योहार-पर्व, बाढ़, सर्दी, ओले, पतझड, लू, सूखा, इतिहास, पुराण आदि से संबंधित कहावतें दोनों भाषाओं में प्रचलित हैं। संस्कृत तथा विदेशी भाषाओं से अनूदित कहावतों की संख्या भी कम नहीं है। सबसे पहले मलयालम तथा हिन्दी में समान रूप से पाए जानेवाली कुछ कहावतों का परिचय दिया जाएगा।

मानव में प्रेम, दया जैसे गुण एवं लोभ, क्रोध जैसे अवगुण सहज ही होते हैं, चाहे हिन्दी भाषी हो चाहे मलयालम भाषी। ऐसे गुण-अवगुण पर प्रकाश डालनेवाली कहावतों के शब्द कभी स्थानीय भूगोल, वातावरण व संस्कृति से संबंधित रहते हैं। उदाहरणः-

मलयालम	हिन्दी
अकत्तु कत्तियुम् पुऱत्तु पत्तियुम्	मुँह में राम बगल में छुरी
चाञ्ञ मरत्तिल ओटिक्कयराम्	गरीब की जोरू गॉव की साली
ताषे भूमि मुकळिल आकाशम्	आसमान ने डाला धरती ने झेला
पशुविने कोन्नेच्चु चेरुप्पु दानम् चेय्तु	गाय मारकर जूता दान
करयुन्न कुञ्ञिने पालोळ्ळु	रो दे, बनिया गुड देगा
नखम् कोंटुंडाल वयरु निऱयुमो	ओस चाटे प्यास नहीं बुझती
कय्यूकुळ्ळवन कार्यक्कारन	जिसकी लाठी उसकी भैंस
अङ्ङाटियिल तोऱ्राल् अम्मयोटुं	चोर का गुस्सा दाढ़ी पर
निरकुटम् तुळुंपुकयिल्ला	अधजल गगरी झलकत जाए
तनिक्कु तानुम् पुरक्कु तूणुम्	अपना हाथ जगन्नाथ

अनुभवी लोग कहावतों के ज़रिए हमें उपदेश देते हैं। जो करना है, जो करना मना है, किस प्रकार का व्यवहार वांछनीय है, ऐसे उपदेश हर भाषा में मिलते हैं। कुछ उहाहरण देखें

मलायालम	**हिन्दी**
अप्पम् तिन्नामति, कुषियेण्णन्टा	आम खाने से मतलब कि गुठली गिनने से
वेणमेंकिल चक्क वेरिलुम् काय्क्कुम्	जहाँ चाह है वहाँ राह है
ओरु विरल गोटि कूडुकयिल्ला	अकेला चना भाड़ नहीं फोड सकता
वष़क्कु विलय्क्कु वाङ्ङरुतुं	आ बैल मुझे मार
मुळ्ळु कोंडाल मुळ्ळाले	काँटे को काँटे से
कार्यम् काण्णान कषुतक्कालुम् पिटिक्कणम्	काम पडे बाँका तो गधे को कहे काका
कंटंत्तटिक्कु मुंडंत्तटि	ईंट का जवाब पत्थर से
विळयिन परुवम् मुळयिल अरियाम्	होनहार बिरवान के होत चिकने गात।
गोहत्याक्कारनु ब्रह्महत्याक्कारन साक्षि	चोर का साथ गिरहकट
अकत्तूट्टिये पुरत्तूट्टाऊ	पहले आत्मा फिर परमात्मा
एल्लारुम् पल्लक्केरियाल चुमक्कान आलु वेंटे	तू भी रानी मैं भी रानी कौन भरेगा पानी

इस प्रकार बहुत सारी ऐसी कहावतें है जो दोनों भाषाओं में समान रूप से प्राप्त होती हैं। आगे केरल की विशिष्ट संस्कृति से जुडी हुई कुछ कहावतें दी जा रही हैं। जहाँ तक हो सके समान अर्थवाली हिन्दी कहावतें दी गई है अन्यतः भावार्थ देने का प्रयास किया गया है।

मलयालम	**हिन्दी**
अंकवुम् काण्णाम् ताळियुम् ओटिक्काम्	एक पंथ से दो काज
कोटुत्ताल कोल्लतुम् किट्टुम्	जैसी करनी वैसी भरनी
तिन वितच्चाल तिन कोय्युम्	वही
विन वितच्चाल विन कोय्युम्	वही
आनवायिल अंपषङ्ङ	ऊँट के मुँह में जीरा
उण्णियये कण्टाल अरियाम् ऊरिले पञ्ञम	कपड़े फटे गरीबी आई
उप्पुम् कोळ्ळाम् वावुम् कुळिक्काम्	एक पंथ से दो काज

अरियेरिञ्ञाल आयिरम् काक्क	गुड होंगे तो मक्खियाँ बहुत आएँगे
चुण्टक्का काल् पणम् चुमट्टु कूलि मुक्काल पणम्	अरहर की टट्टी,गुजराती ताला
पेरु पोन्नम्मा, कषुत्तिल वाष़नारु	आँख के अँधे, नाम नयन सुख
चेकुत्तानुम् कटलिनुमिटयिल	आगे कुआँ, पीछे खाई
नाटोटुम्बोळ नटुवे	गंगा गए गंगादास जमुना गए जमुनादास
पट्टिणि वीट्टिल पुलिचक्क इरिक्किल्ला	चील के घोंसले में माँस कहाँ
तल्लुकोळ्ळान चेंडयुम् काशु वाङ्ङान मारारुम्	खेल किलाडी का पैसा मदारी का
वेंणमेंकिल चक्क वेरिलुम काय्क्कुम्	जहाँ चाह वहाँ राह
चक्करयुळ्ळप्पोळ तविटिल्ल तविटुळ्ळप्पोळ चक्करयिल्ल	जब चने थे तब दाँत न थे जब दाँत हुए तब चने नहीं
मुऱ्ऱत्ते मुल्लक्कु मणमिल्ला	घर का जोगी जोगडा, आन गाँव का सिद्ध
ओरु नाषियिल मऱ्ऱोरु नाषि पोकिल्ला	एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकती है।
ओरु चक्कयिट्टप्पोळ मुयल चत्तु	बिल्ली के भागों छींका टूटा
वाय् वाष़प्पष़म् कै काट्टुचेन	गुड़ न दे, गुड की सी बात करे
पोट्टने चेट्टि चतिच्चाल् चेट्टिये दैवम् चतिक्कुम	गरीब की हाय बुरी होती है।
पापि चेल्लुन्निटम् पाताळम्	जहाँ जाए भूखा वहाँ पड़े सूखा
अत्तम करुत्ताल ओणम वेळुक्कुम	अत्तम के दिन वर्षा है तो ओणम के दिन धूप होगी।
रोगी इच्छिच्चतुम् वैद्यन कल्पिच्चतुम् पाल	जो रोगी भावे वही वैद फरमावे

उरलुँ चेन्नुँ मद्दळत्तोटुँ	धोबी रोवे धुलाई को, मियाँ रोवे कपडे को
अषकुळ्ळ चक्कयिल चुळयिल्ल	नाम बड़ा और दर्शन छोटा
एरियुन्न पुरयिल निन्नुम् ऊरुन्न वारि लाभम्	भागते भूत की लंगोटी भली
पोन्निनकुटत्तिनु पोट्टुँ	सोने में सुगन्ध
चक्किनु वेच्चतुँ कोक्किनुँ	करे कल्लू भले लल्लू
ओरु कळरिक्कु पत्ताशान	कार्य एक नेता अनेक
कणियानुम् वरुम् कालक्केटु	ज्योतिषियों का भी बुरा समय आता है।
वंचि पिन्नेयुम् तिरुनक्करे	कार्य में कोई बदलाव नहीं
मोङ्ङानिरुन्न नायुटे तलयिल तेङ्ङा वीणु	अवश्यंभावि कार्य के हो जाने का एक कारण
कोलम् केट्टियाल तुळ्ळणम्	किसी कार्य के लिए तैयार हो जाए तो करना ही होगा
तम्मिल् भेदम् तोम्मन्	गुणहीनों में थोड़ा गुणवाला भला
तेङ्ङा पत्तरच्चालुम् ताळल्ले करि	बुरी चीज़ों में अच्छा मिलाने से कोई फायदा नहीं

4.14 मलयालम और हिन्दी कहावतों की तुलना

जहाँ तक कहावतों का सवाल है, हिन्दी प्रदेश की विस्तृति एवं बोलियों तथा उपबोलियों की बहुलता के कारण इनकी संख्या अनगिनत है। मलयालम में कहावतों की संख्या कम नहीं है। उपदेशात्मकता कहावतों की सबसे बडी विशेषता होने के कारण दोनों प्रदेशों की कहावतों में समानता बहुत ज़्यादा है। लेकिन उपदेश देने के लिए जिन उपादेयों का सहारा लिया है उनमें थोड़ा अन्तर है। कहने का मतलब है कि लक्ष्य एक किन्तु मार्ग अलग, तथ्य एक किन्तु कहने का तरीका अलग। प्रादेशिक विशेषताओं के आधार पर जो वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं उन्हीं के नींव पर कहावतों का निर्माण होता है। फलतः इनमें प्रांतीयता का संस्पर्श होना स्वाभाविक मात्र है। यदि इन प्रादेशिक विशिष्टताओं को नज़रअंदाज़ करके दोनों भाषाओं की कहावतों का विश्लेषण करें तो इन्हें पृथक करके परखने की ज़रूरत ही नहीं पडती। दोनों भाषाओं की कहावतों पर संस्कृत भाषा एवं साहित्य की स्पष्ट छाप है। इसलिए अनुवाद कार्य में काफी मदद मिलने की संभावना है। मलयालम से हिन्दी में अनुवाद करते समय यहाँ की भाषिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं की वजह से थोडी अड़चनें आ खेरती हैं। इसलिए इस समस्या का यथोचित समाधान ढूँढना अनुवादक का दायित्व बनता है।

4.15 मलयालम और हिन्दी की पहेलियाँ

पहले ही बताया जा चुका है कि लोकोक्तियों के अंतर्गत पहेलियों को भी स्थान दिया गया है। प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्गत आनेवाले और एक विधा है पहेलियाँ। मानव अपने जीवन में मनोरंजन के लिए अनेक साधनों को उपयोग में लाता है। पहेलियाँ भी उनमें एक है। पहेली का अर्थ विषम अवस्था या उलझन है। संस्कृत में इसे 'प्रहेलिका' कहते हैं। अन्य भाषाओं में पहेली इसप्रकार जाना जाता है - भोजपुरी में 'बुझौवल' तथा अंग्रेज़ी में 'रिडिल्स' कहते हैं। मलयालम में पहेलियों के लिए 'कटंकथा' शब्द प्रचलित है।

लोकसाहित्य और संस्कृति में दिनेश्वर प्रसाद ने पहेली को लोकमानस की एक पुरातन अभिव्यक्ति माना है। उनके अनुसार ये उतनी पुरातन नहीं जितनी कि लोककथा और लोकगीत क्योंकि इसमें मानव बुद्धि का अपेक्षाकृत अधिक विकसित और जटिल उपयोग मिलता है।[1]

त्रिलोचन पाण्डेय के अनुसार - "पहेलियाँ मानव जाति की आरंभिक अवस्था में उत्पन्न हुई जिनमें गोपनीयता, सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता की प्रवृत्ति लक्षित होती है।"[2]

मलयालम में भी श्री एम वी विष्णु नंबूतिरि जैसे आलोचकों ने भी पहेली के उद्भव का कारण मानव की गोपनीयता ही मान लिया है। आवश्यकताओं से प्रेरित होकर भी लोग पहेली की ओर उन्मुख हो गए होंगे। कई अवसरों में शारीरिक क्षमता के अलावा बुद्धि परीक्षण की भी ज़रूरत होती तो इसके लिए पहेलियों का प्रयोग किया जाता था। भारत के विभिन्न प्रदेशों में इस प्रकार पहेलियाँ पूछकर बुद्धि परीक्षण करने की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। अनेक ऐसे राजा थे जिन्होंने अपनी पुत्रियों के लिए वर ढूँढते समय बुद्धि परीक्षा के लिए पहेलियों का प्रयोग किया था।[3]

पहेलियाँ मनोरंजन की सामग्री हैं साथ ही साथ बौद्धिक व्यायाम भी। डॉ. सत्या गुप्ता के अनुसार "पहेलियों में एक शब्द चित्र होता है । प्रश्नकर्ता उस चित्र को उपस्थित करके अर्थात् पूर्व पक्ष की

---

1. दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति -पृ. 121
2. त्रिलोचन पांड्य, कुमाऊँ लोक साहित्य का अध्ययन -पृ. 27
3. डॉ एम वी विष्णु नंबूतिरि - नाटन कळिकळ्ळुम् विनोदङ्ङळ्ळुम् -पृ. 70
4. डॉ सत्या गुप्ता, खड़ीबोली का लोक साहित्य -पृ. 271

स्थापना करके अपने विपक्षी से उस चित्र के उत्तर की अपेक्षा करता है। पहेलियों में छिपाने की प्रवृत्ति रहती है जिससे बुद्धि कौशल के द्वारा ही उनके मर्म को जाना जा सके।"[4]

मलयालम के सुप्रसिद्ध महाकवि उळ्ळूर के अनुसार "पहेलियाँ मनोरंजन के साथ-साथ बौद्धिक विकास देनेवाला विनोद है।"[1]

उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट होता है कि पहेलियाँ मनोरंजन का साधन है साथ ही साथ बुद्धि मापने का भी। इसकी मूल प्रवृत्ति गोपनीयता है जो मानव स्वभाव का एक अंग है। इस गोपनीयता की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति ही पहेलियों का रूप धारण करके बाहर आता है।

4.15.1 पहेलियों का वर्गीकरण

पहेलियाँ अधिकतर अलिखित रूप में ही प्राप्त हैं। इनके अध्ययन तथा संकलन ज़्यादातर नहीं हुआ है। लोकसाहित्य के संदर्भ में ही इनका अध्ययन और वर्गीकरण हुआ है। अनेक विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर पहेलियों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। पहेलियों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है इसलिए इसके विभाजन की कोई स्पष्ट रेखा खींचना बहुत मुश्किल है। दुनिया की सभी चीज़ें पहेली का विषय रहा है। मानव संस्कृति के आरंभ के साथ पहेलियाँ भी बनीं और आज भी बन रही हैं। उन्होंने अध्ययन की सुविधा के लिए पहेलियों को मोटे रूप से विभक्त किया है। इन वर्गीकरणों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें अधिकांश वर्गीकरण सामान्यतः समान तौर पर किया गया है जैसे- खेती संबंधी पहेलियाँ, भोजन पदार्थ संबंधी पहेलियाँ, प्रकृति संबंधी पहेलियाँ, घरेलू वस्तु संबंधी पहेलियाँ, प्राणी संबंधी पहेलियाँ, शरीर के अवयव संबंधी पहेलियाँ तथा अन्य पहेलियाँ। भौगोलिक भिन्नता एवं सांस्कृतिक विविधता को नज़र में रखते हुए मलयालम् की पहेलियों का निम्नलिखित वर्गीकरण अधिक समीचीन होगा।

1. पशु-पक्षी संबंधी पहेलियाँ
2. पेड-पौधे तथा फल-फूल संबंधी पहेलियाँ
3. प्रकृति संबंधी पहेलियाँ
4. शरीर संबंधी पहेलियाँ
5. खाद्य वस्तुओं से संबंधित पहेलियाँ
6. घर-गृहस्थी संबंधी पहेलियाँ
7. विज्ञान-गीत-पुराण संबंधी पहेलियाँ

1. उळ्ळूर, केरल साहित्य चरित्रम, पहला भाग -पृ. 501

8. अन्य पहेलियाँ।

4.15.2 पशु-पक्षी संबंधी पहेलियाँ

इन पहेलियों में पशु-पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं से संबंधित प्रश्न पूछा जाता है तथा उत्तर भी इससे संबंधित है। इसके अंतर्गत पालतू तथा जंगली पशु-पक्षियों से संबंधित पहेलियाँ आती हैं।

क. बिल्ली संबंधी पहेली -

"कण्णु पळुंकु पोले,

तला पंतु पोले

वाल पुलिवाल"[1] अर्थात् आँखें मोती जैसी, सिर गेंद सा और पूंछ बाघ सी।

हिन्दी में एक उदाहरण देखिए

"बस चुपचाप लगाऊँ धात

करूँ न मैं ज़्यादा उत्पाद

दूध मलाई की शौकीन,

ढूँढा करती हूँ दिन रात।"

ख. गिलहरी संबंधी

मलयालम में -

"मुऱ्‌ऱत्ते तैमाविन कोम्पिल कुरुवटियोटिक्कळिक्कुन्नु" [2]

अर्थात् - आंगन के आम के पेड पर एक गुल्ली दौडकर खेल रहा है।

हिन्दी में एक दूसरा चित्र प्रस्तुत किया गया है -

"लंबी पूंछ, पीठ पर रेखा

दो-दो हाथों खाते देखा।"

---

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथाकळ -पृ. 25

2. वही -पृ. 25

पहली पहेली में गिलहरी के चरित्र और रूप दोनों के बारे बताया गया है तो दूसरी पहेली में उसकी शारीरिक विशेषता का वर्णन है।

ग. मच्छर संबंधी पहेली

मलयालम में मच्छर से संबंधित एक पहेली यों है -

"कण्णिल पिटिक्कात्त कळवाणि पेण्णिन्नु
कर्णाटकसंगीतोम् कुत्तिवेप्पुम्।" [1]

अर्थात् बहुत छोटी किन्तु सुरीली छोकरी करती है टीकाकरण और कर्नाटक संगीतालाप।

हिन्दी में

"कद के छोटे, कर्म के हीन
बीन बजाने के शोकीन"

इन दोनों में मच्छर के छोटा शरीर, खून पीना तथा गाने की विशेषताओं का परिचय मिलता है।

घ.मेंढक संबंधी पहेली

मलयालम में -

"वट्टक्कुळत्तिल् नीन्तुम् मिटुक्कन्
पोट्टक्कुळत्तिल् चाडुम् मिटुक्कन्
वट्टक्कण्णन् कोच्चु मिटुक्कन्"

अर्थात् तालाब में तैरनेवाला, पोखरे में कूदनेवाला, गोल-गोल आँखोंवाला छोटा होनहार।

हिन्दी में

"हमने देखा ऐसा बंदर
जो उछले पानी के अन्दर"

इन दोनों पहेलियों में मेंढकों की इस चारित्रिक विशेषता को दिखाया है कि ये अक्सर पानी में उछलते कूदते हैं।

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथकळ -पृ. 26

इसी प्रकार मोर, मधुमक्खी, हाथी, गाय, चींटी आदि सभी जानवरों से संबंधित बहुत सारी पहेलियाँ मलयालम और हिन्दी दोनों भाषाओं में मिलती हैं।

4.15.3 पेड़-पौधे तथा फल-फूल संबंधी पहेलियाँ

ऐसी पहेलियों में विषय फल-फूल तथा पेड-पौधे होते हैं। इनमें भी फल-फूलों तथा पेड़-पौधों से संबंधित सूक्ष्म जानकारियाँ मिलती हैं। इन्हें पहचानने तथा इनकी विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए ऐसी पहेलियाँ बहुत उपयोगी हैं।

क. नारियल संबंधी पहेली

मलयालम में,

"वेळ्ळमुण्टु, वेळ्ळियुण्टु, कूटुण्टु, काटुमुण्टु"[1]

अर्थात् - पानी है, चाँदी है, नीड है और कानन भी है।

हिन्दी में,

"जडा जूट है मेरे सिर पर, और
लंबी सी दाढ़ी
पड़ा पेट में मेरे पानी
यों तकदीर बिगाड़ी।"

मलयालम की तुलना में हिन्दी में नारियल संबंधी पहेलियाँ बहुत कम है। केरल में सबसे अधिक दिखाई देनेवाले पेड़ है नारियल तथा लोग सबसे अधिक इसका उपयोग भी करते हैं। इसलिए केरल में नारियल संबंधी पहेलियाँ बहुत अधिक हैं।

ख. केले संबंधी पहेली

केले से संबंधित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में है।

मलयालम में -

"तूशि पोले मुळ वन्नु
पाया पोले इल विरिञ्ञु

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथकळ -पृ. 63

तूणु पोले तटि वन्नु।'' [1]

अर्थात् - सूई सा अंकुर आया, चटाई सा पत्ता निकला और खंभा सा डंडल आया।

हिन्दी में यों मिलती है

''पेड सटका, डांढ लटका

फूल गुलाबी, फल नवाबी''

केले का पेड़ भी लंबा-सीधा होता है। इसकी पत्तियाँ बडी-बडी होती है। इसमें एक ही बार फूल लगती है तथा इसका फल बहुत मीठा हाता है। केले के पेड़ की रूप रेखा तथा उसके फलने-फूलने की विधि, फल के आकार-स्वाद आदि का वर्णन इससे संबंधित पहेलियों में होता है।

ग. कटहल से संबंधित पहेली

कटहल के फल का बाहरी छिलका कांटेदार है। इसके अंदर का भाग बहुत मीठे, स्वादिष्ट और बूदार है। कटहल से संबंधित पहेलियों में कटहल के फल का रूप, रंग, स्वाद, गन्ध आदि की जानकारी मिलती है।

उदाहरण

''पेट्टि पेट्टकम् मुरिक्किन पेट्टकम्

पेट्टि तुऱक्कुम्पोऴ् कस्तूरी गंधम्'' [2]

अर्थात् - पेटी यह पेटी सहजन की पेटी, पेटी के खुलने पर कस्तूरी गंध।

हिन्दी में,

''किर-किर कांटा, कपूर चो बास

तोची-मोची घंदा छै-छै मास?''

इन दोनों पहेलियों में कटहल के ऊपरी भाग के कांटेदार छिलके तथा अन्दर की सुगंध का वर्णन है।

घ. मिर्च संबंधी पहेली

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथकळ -पृ. 42

2. वही -पृ. 50

वर्ण्य की दृष्टि से, रूप तथा भाव में बिलकुल समान पहेलियाँ दोनों भाषाओं में मिलती हैं।

मिर्च संबंधी एक पहेली मलयालम में -

"मुऱ्ऱत्तु निल्कुन्न सुन्दरक्कुट्टन
पिळ्ळेरे करयिक्कुम्" [1]

अर्थात् - आंगन में खडे सुन्दर छोकरे बच्चों को रुलाता है।

हिन्दी में

"अगर कहीं मुझको मिल जाता
बडे प्रेम से तोता खाता
बच्चे बूढ़े यदि खा जाएँ
व्याकुल होकर जल मंगवाएँ।"

प्रांतीय एवं भौगोलिक भिन्नताओं के होते हुए भी दोनों भाषाओं में पेड़-पौधे संबंधी हज़ारों पहेलियाँ बिखरी पड़ी हुई हैं।

4.15.4 प्रकृति से संबंधित पहेलियाँ

प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। जिसके विभिन्न रूप मानव के लिए हमेशा जिज्ञासा का विषय रहा है। इन विविध रूपों में सूर्य, चन्द्र, आकाश, आग, वर्षा, ऋतुएँ आदि से संबंधित अनेक विषय आते हैं। ऐसी अनेक पहेलियाँ मलयालम तथा हिन्दी में हैं।

क. आग संबंधी पहेली

आग दाहक एवं प्रज्वलनशील है। इसमें जल को छोड़कर बाकी सारी वस्तुओं को जलाने की क्षमता है। लेकिन जल के डालते ही आग बुझ जाती है। आग की इस विशेषता को ज़्यादातर पहेलियों में वर्णित किया गया है।

मलयालम की कुछ पहेलियाँ देखिए

"आरोडुम् मल्लटिक्कुम मल्लन

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथकळ -पृ. 56

वेळ्ळम् कुटिच्चाल चत्तुपोकुम" [1]

अर्थात् - हर किसी से लडनेवाला पहलवान पानी के पीने से मर जाता है।

इसी प्रकार हिन्दी में -

"पैर बिना ऊपर चढ़ै, बिन मुख भोजन खाय

एक अंचमा मैं ने सुना, जल पीते मर जाय।"

ख. चन्द्रमा से संबंधित पहेलियाँ

चाँद से संबंधित अनेक मनोरम कल्पनाएँ लोक में मिलती हैं जो गीतों, कहानियों और पहेलियों में दृष्टव्य है।

मलयालम में चन्द्र को चावल के बीच रखे हुए पापड या नारियल का टुकडा बताया गया है। जैसे

"नूरु परयरिक्कु ओरु पप्पटम्" [2]

या

"नूरु परयरियुम् ओरु तेङ्ङाप्पूलुम्" [3]

उत्तर भारत में चावल से अधिक गेहूँ का उपयोग होता है। इसलिए चाँद को गेहूँ के बीच रखी गई रोटी बतायी है

"गाडा भर गेहूँ में एठ ठन रोटी।"

ग. तारों से संबंधित पहेलियाँ

तारों से संबंधित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा मलयालम में हैं।

मलयालम में -

"करुत्त पट्टिल वेळुत्त पूक्कळ" अर्थात् काले रेशम पर सफेद फूल।

हिन्दी उदाहरण "काली चटाइयों पर मोती बिखरे"

तारों से संबंधित पहेलियों में रात में इनकी चमक, सुदूरता, असंख्यता आदि का वर्णन है।

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथकळ -पृ. 12
2. वही -पृ. 45
3. वही -पृ. 46

घ. सूरज से संबंधित पहेलियाँ

मलयालम में सूरज से संबंधित बहुत पहेलियाँ प्रचलित हैं, उनमें से एक यहाँ दृष्टव्य है

"पकलेल्लाम चिरिच्चु नटक्कुम्

रात्रियायाल् कटलिल् मुङ्ङुम"[1]

अर्थात् दिन भर हँसते-हँसते चलता है,

रात को समुन्दर में डूबता है।

हिन्दी में,

"बिना तेल का, बिना बाती का,

दिन भर दिया जलता है

और दीप जलने से पहले

पश्चिम जाकर ढलता है।"

यहाँ सूरज का उदय, भ्रमण, पश्चिम समुन्दर में डूबना आदि का वर्णन है।

4.15.5 शरीर संबंधी पहेलियाँ

शरीर के अवयवों से संबंधित बहुत सारी पहेलियाँ हिन्दी और मलयालम में मिलती हैं।

क. आँख संबंधी पहेली

मलयालम में -

"पकलेल्लाम मिन्निमिन्नि, रात्रि इरुट्टऱयिल"

अर्थात् - दिन भर झिलमिल, रात को अँधेरी गुफा में।

हिन्दी में

"ज़रा-सी तलिया काँसन धाई,

बत कहे डुबक-डुबक भर आई।"

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथकळ -पृ. 46

ख. बाल से संबंधित पहेली

मलयालम में एक उदाहरण देखिए-

"पूक्कात्त कायक्कात्त,
वेट्टियाल वीण्टुम तळिर्क्कुन्न काटुं।"[1]

अर्थात् वह जंगल है जो न फलता है, न फूलता है, काटने पर दोबारा उगता है।

यहाँ बाल की इस विशेषता का वर्णन है कि बाल काटने पर भी बढ़ता है। हिन्दी का एक उदाहरण यों है-

"एक खेतकी शान निराली,
फसल सबकी देख भाली
बेशक काटो जितनी बार
अपने आप हो तैयार।"

4.15.6 खाद्य पदार्थ संबंधी पहेली

हिन्दी तथा मलयालम में खाद्य पदार्थ संबंधी अनेक पहेलियाँ हैं। दोनों प्रदेशों में बनाए जाने वाले खाद्य पदार्थों में बहुत अंतर है। इसलिए पहेलियों को समझना दोनों भाषा-भाषियों के लिए कठिन होगा। इसलिए अंडे संबंधी दो पहेलियाँ उदाहरण के लिए दिए जाते हैं।

मलयालम -

"ओरु कुप्पियिल रण्टु तरम् एण्णा"

अर्थात् - एक बोतल में दो किस्म के तेल।

हिन्दी

"राजरानी की सुनो कहानी
एक घडे में दो रंग का पानी"

अंडे की अन्तर्वस्तु दो रंगों की होती है, इसी विशेषता के बारे में इन पहेलियों में बताया गया है।

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथकळ -पृ. 50

4.15.7 घर-गृहस्थी संबंधी पहेलियाँ

इस प्रकार की पहेलियों में परिवार और घर से संबंधित विभिन्न वस्तुओं के बारे में पहेलियाँ आती हैं। भारतीय संस्कृति में परिवार का अत्यधिक महत्त्व है इसलिए मलयालम तथा हिन्दी में ऐसी अनेक पहेलियाँ मिलती हैं। इन सभी का विश्लेषण असंभव है इसलिए उदाहरण के तौर पर चूल्हा संबंधी दो पहेलियाँ निम्नलिखित, है:-

मलयालम में

"मून्नम्ममारिरुन्नु वेन्तु नीरुन्नु"[1]

अर्थात् - तीन माताएँ बैठकर जल रही है।

हिन्दी में

"माथ पर मोटरी । मुँह में लकड़ी।"

इन दोनों पहेलियों में चूल्हे की आकृति, आग में तपने तथा लकड़ी डालने आदि बातें बतायी गयी हैं।

4.15.8 विज्ञान, गणित तथा पुराण संबंधी पहेलियाँ

पहेलियाँ मनोरंजन के साथ ज्ञान भी प्रदान करती है। पहेली जानकारियों की पोटली है। इसमें गणित, विज्ञान, इतिहास तथा पुराण से संबंधित अनेक पहेलियाँ हैं। वर्ष और महीनों के नाम एवं प्रकृति से संबंधित पहेलियाँ उदाहरणार्थ दी जा रही हैं जिनसे महीनों व दिनों की संख्या का बोध होता है।

मलयालम में -

"ओरांडयेन्नोरु मरम्
ईरारु पन्त्रण्टु कोम्पुं
अतिलारु पच्च, अतिलारुणक्क।"[2]

अर्थात् - ऐसा है एक पेड
जिसके हैं बारह डालियाँ
छः हैं हरी, छः हैं सूखी।

1. जोबी जोस, 1001 कटंकथकळ -पृ. 56
2. डॉ एम वी विष्णु नंबूतिरि, कटंकथकळ ओरु पठनम् -पृ. 24

हिन्दी में

"एक बूढ़े को बारह बेटे

कोई बड़ा तो कोई छोटा

कोई गरम तो कोई ठंडा

बताओ जल्दी नहीं खाओगे डंडा।"

इनमें बताया गया है कि बारह डालियाँ याने बारह महीने। छह महीनों को हरा तथा छह महीनों को सूखा बताया गया है। याने छह महीने ठंडे तथा छह महीने गर्म है। दूसरे में बारह बेटे बारह महीने हैं। कुछ महीने ठंडे होते है और कुछ महीने गर्म। इसी बात को इसमें बताया गया है।

4.15.9 ओणम्

केरल का सबसे प्रमुख और विशिष्ट त्योहार है 'ओणम'। कहते है केरल में महाबलि नामक एक अच्छे तथा दयावान राजा थे। महाबलि से रुष्ट होकर महाविष्णु ने वामन रूप धारण करके उनसे तीन पग ज़मीन माँगी। वामन ने आकार बढ़ाकर दो पगों में तीन लोकों को नापा। तीसरे पग के रूप में उसने पैर महाबलि के सिर पर रखा और उसे पाताल में रौंद दिया। महाबलि से संबंधित एक पहेली निम्नलिखित है-

"दानम् कोट्टुत्तु मुटिञ्ञवन"

अर्थात् दान देकर दिवालिया बना।

हिन्दी प्रदेश में दीपावली, होली जैसे त्योहार प्रमुख हैं जबकि केरल में 'ओणम' तथा 'विषु' की प्रधानता है। इसलिए त्योहार-पर्व संबंधी पहेलियों में दोनों भाषाओं में पर्याप्त अंतर है।

4.16 मलयालम-हिन्दी पहेलियों की तुलना

मलयालम तथा हिन्दी पहेलियों के विश्लेषण से पता चलता है कि दोनों भाषाओं अनेक पहेलियाँ समान रूप से उपलब्ध हैं। प्रांत, भूगोल, जल-वायु और सांस्कृतिक भिन्नता के कारण ही कुछ अन्तर पाए जाते हैं।

विषय की दृष्टि से समानताएँ दिखानेवाली अनेक पहेलियाँ मलयालम और हिन्दी में हैं। मानव की साधारण सी साधारण वस्तु भी पहेलियों का विषय बना है। पहेलियों के विषय में पर्याप्त विविधता एवं व्यापकता भी हैं। इसमें वर्णित वस्तुओं की विशेषताओं को समान रूप से प्रस्तुत किया गया है।

सवाल करने की शैली भी समान है। पहेलियों में वर्णित वस्तु के रूप, रंग, आकार, प्रकार, उपयोग तथा स्वभाव के संबंध में संकेत मिलते हैं और इस संकेतों के आधार पर जवाब देने का प्रयास किया जाता है। पहेलियों की अनेक भूमिकाएँ हैं, जिनमें प्रमुख तथा उल्लेखनीय चार भूमिकाएँ निम्नलिखित हैं प्रतिफलन, शिक्षण, बुद्धि-परीक्षा तथा मनोरंजन। इसमें कल्पना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति मिलती है। मलयालम तथा हिन्दी की पहेलियों में ये विशेषताएँ विद्यमान हैं। दोनों भाषाओं की पहेलियों में प्रायः सार्थक शब्दों का ही प्रयोग मिलता है जिससे सूचित वस्तुओं का संकेत मिलता है। लेकिन प्रादेशिक भिन्नता के कारण इन संकेतों पर पर्याप्त अंतर देखा जा सकता है।

पहेलियाँ चिंतन मनन के साथ सांस्कृतिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति का साधन भी हैं। इसलिए इसमें क्षेत्रीय विशेषताएँ जुडी रहती हैं। फिर भी ऐसी पहलुओं को त्यागने के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मुहावरे व कहावतों की तुलना में एकाध पहलुओं को छोड़कर मलयालम तथा हिन्दी पहेलियों में समानता का पुट ज़्यादा है।

4.17 लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ

किसी भी देश की लोककला एवं साहित्य उस देश की संस्कृति का ही दर्पण है। संस्कृति से तात्पर्य उन सब क्रिया-कलापों से हैं, जो किसी भी देश के सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में किए जाते हैं। संस्कृति में धार्मिक एवं सांस्कृतिक आचार विचार, ज्ञान, विश्वास, कला, कानून, संस्कार मान्यताएँ और प्रथाओं का समावेश होता है। लोक साहित्य एवं लोककलाओं में लोकसंस्कृति को पर्याप्त स्थान दिया गया है। यही कारण है कि लोक कला एवं लोक साहित्य में संस्कृति के समग्र रूप के दर्शन होते हैं। किसी स्थान विशेष की संस्कृति के अध्ययन में ये अपनी सहज भूमिका निभाते हैं। लोककला एवं साहित्य के अध्ययन के द्वारा किसी देश या स्थान की संस्कृति का सूक्ष्म अवलोकन किया जा सकता है।

इसी पृष्ठभूमि में केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यहाँ लोकनृत्य, लोकनाट्य, मुहावरे, कहावत एवं पहेलियों का परिचय दिया गया है। तब समस्या यही उठ खडी होती है कि इस शब्दावली का अनुवाद कैसे किया जाए।

4.17.1 लोकनृत्य एवं लोकनाट्यों से संबंधित शब्दावली का अनुवाद

जहाँ तक लोकनृत्य एवं लोकनाट्यों का सवाल है, ये केरल की निजी संपत्ति हैं। इनमें केरल की जनता के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आचार-विचारों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि लोकनृत्यों तथा लोकनाट्यों से जुडी हुई शब्दावली ही अनुवाद का विषय बन गया है न कि लोकनृत्यों तथा लोकनाट्यों का रूपांतरण। तब शब्दावली के अनुवाद से संबंधित

समस्याओं की ओर हमारा ध्यान जाता है। मलयालम् की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद करते समय सामान्य तौर पर अनुवादक के सामने निम्नलिखित समस्याएँ आ जाती हैं

क. सांस्कृतिक पृष्ठबूमि का आकलन

ख. सामाजिक विशेषताओं का हिन्दी में प्रस्तुतिकरण

ग. धार्मिक विचारधारा की यथासंभव परिचयात्मक प्रस्तुति

घ. व्याकरणिक एवं भाषावैज्ञानिक जटिलताएँ

ङ. रंगमंच एवं साज-सज्जा संबंधी समस्याएँ।

क. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का आकलन

प्रत्येक लोकनृत्य एवं लोकनाट्य प्रांत विशेष की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में सृजित, पल्लवित एवं प्रफुल्लित होते हैं। इसलिए इन सांस्कृतिक विशेषताओं से अवगत हुए बिना इनसे जुडी हुई शब्दावली का अनुवाद निरर्थक एवं हास्यास्पद होगा। उदाहरणतया केरल में प्रचलित 'कोलकळि' को लें। इसका संबंध मूल रूप 'कळरिप्पयऱ्ऱु'से है और इसकी प्रस्तुति मनोरंजन तथा शारीरिक व्यायाम को दृष्टि में रखकर की जाती है। इसके कई पडाव होते हैं जैसे -'चुट्टिक्कोल','तेऱ्ऱिक्कोल','इरुन्नु कळि' 'कोटुत्तो-पोन्नो कळि' 'तटुत्तुं कळि' 'ताळक्कळि' 'नटत्तुं तेऱ्ऱिक्कोल' 'चविट्टि चुऱ्ऱल', 'चुऱ्ऱ्ञ्ञु चुऱ्ऱल' आदि। 'कळरिप्पयऱ्ऱु' के ज्ञाता ही आसानी से इन पड़ावों या चरणों को समझ सकते हैं। यहाँ भाषांतरण से पूर्ण अर्थ निष्पत्ति संभव नहीं है। दूसरा एक नृत्य 'मार्गमकळि' है जो ईसाइयों का एक अनुष्ठान प्रधान नृत्य है जिसकी प्रस्तुति विवाह की पूर्व संध्या में की जाती है। लेकिन 'तिरुवातिर कळि' आर्द्रनक्षत्र के लगने पर हिन्दू स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत अनुष्ठान नृत्य है। इसलिए अनुवादक प्रत्येक नृत्य के पीछे छिपी हुई सांस्कृतिक विशेषताओं को सबसे पहले परखना होगा और उसके बाद तत्संबंधी शब्दावली का अनुवाद करने का प्रयास ज़ारी रखना होगा।

इसके समान लोकनाट्यों से संबंधित शब्दावली को लें। प्रत्येक लोकनाट्य में प्रयुक्त शब्दावली और उसकी प्रस्तुति भी अलग-अलग होती है। 'चविट्टुनाटकम्' जिस उद्देश्य से खेला जाता है उसी उद्देश्य से 'कोतमूरियाट्टम्' या'काक्करशी नाटकम्' नहीं खेले जाते। 'चविट्टुनाटकम्'सभी प्रकार की साज सजावट के साथ रंगमंच पर खेले जानेवाले लोकनाट्य है जबकि 'कोतमूरियाट्टम्'फसल कटाव के समय निरे ग्रामीण परिवेश में किसी घर के आंगन में या खुले मैदान में साधारण से साधारण वेशभूषा एवं साज-सजावट में खेला जाता है। इसके संवाद भी अलिखित एवं प्रसंगानुसार होते हैं। 'तोलपावक्कूत्तुं'में

कठपुतलियों को दिखाकर मानव के संवाद द्वारा नाट्य की प्रस्तुति होती है। इसलिए अभिनय का कोई गुंजाइश भी नहीं होता। यहाँ रसीले संवाद ही सब कुछ होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक लोकनाट्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अलग होती है। फलतः संस्कृति से जुडी हुई इन बिंदुओं पर अनुवादक को सबसे अधिक ध्यान देना होगा।

ख. सामाजिक विशेषताओं का हिन्दी में प्रस्तुतिकरण

प्रत्येक समाज की अपनी कुछ खास विशेषताएँ होती हैं जिनके बल पर वह समाज अपने सहज व्यक्तित्व को कायम करता रहता है। केरल की सामाजिक परिस्थितियाँ हिन्दी प्रदेश से बिलकुल भिन्न हैं। यहाँ के लोगों के रहन-सहन एवं आचार-विचार संबंधी विशेषताओं को हिन्दी प्रदेश में ढूँढ लेना कठिन है। आज के वैश्वीकरण की दौर में कुछ सामान्य बातों को लेकर समानता नज़र आने लगी है लेकिन लोकनृत्य एवं लोकनाट्यों के संदर्भ में ऐसी समानता दृष्टव्य नहीं है। वहाँ भिन्नता ही भिन्नता है। इसलिए शब्दावली का चयन एवं अनुवाद सामाजिक पक्षों को महत्त्व देकर ही किया जाना चाहिए।

ग. धार्मिक विचारधारा की यथासंभव परिचयात्मक प्रस्तुति

कला संबंधी शब्दावली का अनुवाद करते समय उसमें निहित धार्मिक विचारधारा का जैसे के वैसे पुनःरोपण दूसरी भाषा में संभव नहीं है। केरल जैसे बहुधर्मवाले राज्य में ऐसे कई नृत्य और नाट्य हैं, जिनकी प्रस्तुति समाज की निम्नजाति के लोगों के द्वारा की जाती है। कई ऐसे कला रूप हैं जो अवर्ण वर्ग की अपनी विरासत के रूप में स्वीकार किए गए हैं और जिनकी प्रस्तुति सवर्ण लोगों के घरानों में या मंदिरों में होती है। उत्तर भारत में ऐसा होना संभव नहीं है। इसलिए अनुवाद केरल की विशिष्ट धार्मिक सहिष्णुता एवं ऊँच-नीच भाव रहित आस्था को दृष्टि में रखकर ही किया जाना चाहिए।

घ. व्याकरणिक एवं भाषावैज्ञानिक जटिलताएँ

मलयालम तथा हिन्दी भाषाओं से संबंधित पहले अध्याय में दोनों भाषाओं के विकास एवं विशेषताओं का सामान्य परिचय दिया गया था। मलयालम जैसी द्रविड़ भाषा से हिन्दी जैसी आर्य भाषा में अनुवाद करते समय बहुत सारी व्याकरणिक एवं भाषा वैज्ञानिक समस्याएँ आ घेरती हैं। व्याकरण के अंतर्गत लिंग, वचन, कारक एवं वाच्य संबंधी जटिलताएँ आ जाती हैं तो ध्वनि, रूप, शब्द, अर्थ एवं वाक्य आदि से जुडी हुई समस्याएँ भाषाविज्ञान के अंतर्गत आ जाती हैं। वास्तव में एक अनुवादक की सबसे बडी चुनौती भी इन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ना है। अंतिम अध्याय में इसके संबंध में विस्तृत चर्चा की जाएगी।

ङ. रंगमंच एवं साज-सज्जा संबंधी समस्याएँ

लोककलाओं से संबंधित शब्दावली का अनुवाद करते समय रंगमंच एवं साज-सज्जा संबंधी जानकारी भी लक्ष्य भाषा के पाठकों को प्रदान करना बहुत ज़रूरी है। रंगमंच की सजावट एवं कलाकारों की वेशभूषा भी केरल में सामान्य रूप से उपलब्ध वस्तुओं से तैयार की जाती हैं। इनमें ऐसी कई चीज़ें हैं जिनको हिन्दी प्रदेशों में पाना बहुत कठिन है। तब समस्या यह उत्पन्न होती है कि पाठकों को इसके संबंध में कैसे अवगत किया जाए। उदाहरण के लिए केरल की कई लोक कलाओं की सजावट के लिए केले के फल, नारियल का किसलय, सुपारी का किसलय, नारियल के कोमल पत्ते (कुरुत्तोल), सुपारी के किसलय का आवरण (पाळ) आदि का प्रयोग किया जाता है। ऐसी चीज़ों से हिन्दी प्रदेश के लोग बिलकुल अवगत नहीं हैं। तो इसके संबंध में संकेत देना पड़ता है। कलाकारों की मुख सज्जा भी प्रत्येक कला के अनुसार विशिष्ट केरलीय शैली में की जाती है। अतः यह भी अनुवादक के लिए एक गंभीर समस्या है।

4.17.2 मुहावरे, कहावत एवं पहेलियों के अनुवाद की समस्याएँ

मुहावरे, कहावत एवं पहेलियों के संबंध में भी बहुत सारी समस्याएँ अनुवादक के सामने आ जाती हैं। सामान्य शब्दावली के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति की तुलना में मुहावरों के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति जितनी प्रभावशाली तथा व्यंजक होती है, उसका अनुवाद भी उतना कठिन होता है। शब्द और अर्थ दोनों की दृष्टियों से समान मुहावरे मलयालम तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में मिल जाते हैं। लेकिन इनकी संख्या बहुत कम है। प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता के कारण शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से समान मुहावरों का दोनों भाषाओं में मिलना आसान नहीं है। लेकिन अर्थ की दृष्टि से समान मुहावरे बहुतायत में मिल जाते हैं। यदि ऐसे मुहावरे भी न मिले तो अनुवादक का दायित्व बढ़ जाता है। मुहावरे को एक भाषिक इकाई मानकर उसमें व्यंजित अर्थ को सही रूप से पहचानकर ही अनुवाद किया जाना चाहिए। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि मलयालम के मुहावरों में व्यंजित बातों के मूल में केरल की विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशेषताएँ प्रस्फुटित हो तो हिन्दी में अनुवाद करना बहुत कठिन होगा। सिर्फ भावार्थ देने से या संकेत देने से मुहावरों के रूप सौंदर्य एवं अर्थ सौष्ठव नष्ट हो जाता है। उदाहरण के रूप में केरल की विशिष्ट सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रूपायित कुछ मुहावरे नीचे दिए जा रहे हैं, जिनके समान मुहावरे हिन्दी में उपलब्ध नहीं हैं।

मुहावरे	हिन्दी भावार्थ
1. कञ्ञि कुटिक्कुक	सूखी रोटी खाना

2. अवियल परुवम्	सब मिलकर खिचड़ी सा
3. पुळिश्शेरी वेक्कुक	गुलछरे उड़ाना
4. मुंडुं मुरुक्कि उटुक्कुक	भूखी हालत छिपाना
5. ओलपांपु	गीदड भभकी
6. कोल्लत्तु पोवुक	बात समझे बिना सुनी हुई बात करना
7. वयनाट्टु मोरुँ	अलभ्य वस्तु
8. केळि कोट्टुका	प्रारंभ की सूचना
9. वटक्कन पाट्टु पाटुक	खुशी मनाना
10. कत्ति वेषम्	रौद्र रूप
11. कोमरम तुळ्ळुक	बिना सोचे समझे कार्य करना
12. कोलम् केट्टुक	अपने स्वार्थलब्धि केलिए रंग बदलते रहना
13. कलाशम् चविट्टुक	समाप्त होना
14. ओणत्तिनिटयिल पूट्टु कच्चवटम्	किसी मुख्य कार्य के बीच अप्रधान बात का आ जाना
15. ओणम् केरा मूल	बहुत अपरिष्कृत प्रदेश
16. पूरप्परंपु पोले	बड़ी भीड जहाँ किसी पर नियंत्रण नहीं
17 आनयिल्लात्त पूरम्	अनिवार्य बात का अभाव
18. काणान पोकुन्न पूरम्	आनेवाले कार्य का अभी वर्णन

उपर्युक्त सभी मुहावरों में केरलीय संस्कृति का स्पष्ट छाप है। इनके हिन्दी में भावार्थ दे सकते हैं और पाठक समझ भी सकते हैं। लेकिन केरलवासी जिस लक्ष्य को सामने रखकर इनका प्रयोग करते हैं वैसी अर्थाभिव्यक्ति भावार्थ देने से प्राप्त नहीं होती। इसका कारण यह है कि हिन्दी भाषी केरल की सांस्कृतिक परिवेश से अपरिचित है।

4.17.2.1 कहावतों के अनुवाद की समस्याएँ

कहावतें प्रायः सभी भाषाओं में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। किंतु वे अभिव्यंजना की

दृष्टि से जितनी सशक्त होती है, कुछ ही अपवादों को छोड़कर अनुवाद करने की दृष्टि से उतनी ही कठिन होती है। कहावतों की जड़ें भाषा विशेष के जीवन और संस्कृति में बहुत गहरी होती हैं। प्रत्येक प्रांत के जीवन को पूरी तरह जिए बिना, उनकी परंपराओं से परिचित हुए बिना, उनकी अनेक लोकोक्तियों को ठीक से समझा नहीं जा सकता। यही बात मलयालम-हिन्दी लोकोक्तियों के अनुवाद पर भी लागू है। जीवन की सभी पहलुओं से संबंधित अनेक कहावतें हैं जिनके समान कहावतों का दूसरी भाषा में ढूँढ पाना सरल कार्य नहीं है। अनुवादक के सामने सबसे कठिन समस्या तब आती है जब उसे मलयालम भाषा की किसी लोकोक्ति के लिए हिन्दी भाषा में न तो शब्द और भाव की समानतावाली लोकोक्ति मिलती है,और न केवल भाव की समानतावाली। अर्थात् उपर्युक्त दोनों वर्गों में किसी प्रकार की नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में उनके सामने तीन ही रास्ते रह जाते हैं (1) लोकोक्ति का शब्दानुवाद कर दें (2) लोकोक्ति का भावानुवाद कर दे, अथवा (3) लोकोक्ति के भाव को व्यक्त करनेवाली कोई नई लोकोक्ति गढ़ ले। ऐसे करते समय भी अनुवादक को यह ध्यान देना होगा कि कहावतों से जुड़ी हुई सांस्कृतिक विशेषता को ठेस नहीं पहूँचनी चाहिए। केरल की कुछ विशिष्ट कहावतें नीचे दी जा रही हैं जिनका हिन्दी अनुवाद बहुत कठिन माना जाता है।

कहावत	हिन्दी भावार्थ
काणम् विऱ्ऱुम ओणम् उण्णणम	ज़मीन जायदाद बेचकर भी ओणम मनाना है
अषकुळ्ळ चक्कयिल चुळयिल्ल	जो सुन्दर होता है उसमें गुण कम
ओरु कळरिक्कु पत्ताशान	कार्य एक नेता अनेक
वंचि पिन्नेयुम् तिरुनक्करे	कार्य में कोई बदलाव नहीं
मोड्ङानिरुन्न नायुटे तलयिल तेङ्ङा वीणु	अवश्यंभावी कार्य के हो जाने का एक कारण
तेङ्ङा पत्तरच्चालुम ताळल्ले करि	बुरी चीज़ों में अच्छा साधन मिलाने से कोई फायदा नहीं
कोलम केट्टियाल तुळ्ळणम्	किसी कार्य के लिए तैयार हो जाए तो करना ही होगा
अच्चिक्कु कोंचु पक्षम्, नायरक्कु इंचि पक्षम्	बिलकुल भिन्न स्वभाववाले
अटय्क्का मटियिल वय्क्काम् अटय्क्कामरम् मटियिल वय्क्कामो	बचपन में नियंत्रण संभव है बड़े होने पर नहीं
अरियेत्र ? पयऱ्ञाषि	बिलकुल विपरीत उत्तर देना
आन पोय वषिए वालुम	मालिक पीछे सेवक

आशान वीणाल अतुमोरटवुं	चालाक लोग गलतियों को भी नए उपाय के रूप में पेश करते हैं।
वेणमेंकिल चक्क वेरिलुम् काय्क्कुम्	यदि सच्ची चाह है तो कठिन कार्य भा आसान हो जाता है।
वीषान नित्र तेङ्ङिल चाकान नित्र आळ केरी	विपत्तियाँ अवश्यंभावी हैं।
पञ्ञत्तुं ओणम् वन्नाल उळ्ळतुकोण्टुं ओणम	परिस्थिति के अनुसार जीना।
तेङ्ङा चोरुन्नतरियिल्ल एळ्ळु चोरुन्नतरियुम्	बड़ी नुकसान को अनदेखा करके छोटी बातों को पकड़ना।

उपर्युक्त सभी कहावतें केरल की सांस्कृतिक विशेषताओं का वहन करनेवाली हैं। इसलिए भावार्थ से अर्थ निष्पत्ति पूर्ण रूप से संभव नहीं है। जहाँ तक हो सके इस विषय में आवश्यक सूचना या संकेत पहले दिया जाना चाहिए ताकि बात भली भाँति पाठकों की समझ में आ जाए।

4.17.2.2 पहेलियों का अनुवाद

पहेलियों के संबंध में अक्सर यह कहा जाता है कि मानव जीवन से संबंधित छोटी सी छोटी वस्तु भी इनकी पकड़ से परे नहीं है। पृथ्वी से लेकर आकाश तक अनेक वस्तुएँ पहेलियों का विषय हैं। ग्रह, नक्षत्र आदि भी इनकी पकड़ से नहीं छूटे है। इस प्रकार पहेलियों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसलिए भी भाषाओं में पहेलियों की संख्या बहुत ज़्यादा है। मलयालम और हिन्दी में विभिन्न प्रकार की हज़ारों पहेलियाँ हैं। इनमें प्रांतीय विभिन्नता को छोड़कर समान पहेलियाँ दोनों भाषाओं में अधिक मात्रा में उपलब्ध है। केरल की विशिष्ट परिस्थितियों में जन्मी पहेलियों का हिन्दी अनुवाद थोड़ा कठिन है। इसका मूल कारण यह है कि ऐसी पहेलियों में वर्णित चीज़ों से हिन्दी भाषी लोग बिलकुल अनभिज्ञ होते हैं। इसलिए ऐसी पहेलियों का अनुवाद भी पहेली ही बन जाती है। मलयालम की कुछ ऐसी पहेलियाँ उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित है:-

अकत्तरुत्ताले पुऱत्तरियुम् - कटहल

(अन्दर काटने से बाहर पता चलता है)

अच्छनोरु पट्टु तन्नु, ननच्चीट्टुम-ननच्चीट्टुम ननयुन्निल्ळ - कमल का पत्ता

(पिताजी ने रेशमी कपड़ा दिया, जो भिगोने से भीगता नहीं)

अटियिल वट्टक्किण्णम् मुकळिल पच्चपन्तल - सूरन

(नीचे थाली और ऊपर हरा शमियान)

अम्म मलर्न्नु किटक्कुम् मकळ ओटिक्कळिक्कुम् सिल और सिलबट्टा

(मां लेटी है और बेटी छाती पर दौड़कर खेलती है)

वेळ्ळत्तिलिट्टाल ननयिल्ल वेयिलत्तिट्टाल वाटुम् - धुइयाँ का पत्ता

(पानी से भीगता नहीं, धूप में मुरझाता है)

वटियेटुत्ताल काळ ओटुम् - नाव

(डंडा लेते, बैल भागते)

पोकुंपोळ नालाळ नालु निऱम् , वरुंपोळ ओरु निऱम् - पान खाना

(जाते समय चार लोग चार रंग के वापस आते समय एक रंग)

वरंपत्तिरुन्नु वालु कोंटु वेळ्ळम् कुटिच्चु - भद्रदीप

(मेंड पर बैठकर पूँछ से पानी पिया)

कंटाल मुंडन कार्यत्तिल वंपन - काली मिर्च

(देखने में नाटा काम में होशियार)

ओरु कुंतत्तिल आयिरम् कुंतम् नारियल के पत्ते

(एक बरछी पर हज़ार बरछियाँ)

ओरम्म पेऱ्ऱतेल्लाम् मुक्कणन्मार नारियल

(एक माँ के सारे बच्चे तीन नेत्रोंवाले)

चिल्लिक्कोंपिल मञ्ञपक्षी काजू का फल

(टहनी पर पीली चिड़िया)

इलयिल्ला मरत्तिल निन्नुम पू कोषि़युन्नु - खुरचनी से नारियल खुरचना

काट्टिलम्म पोन्नणिञ्ञु निलकुन्नु कनेर

(जंगल में देवी सोना पहनकर खड़ी है) इस प्रकार हजारों पहेलियाँ मलयालम में उपलब्ध हैं।

लोक गीत लोकसांस्कृतिक शब्दावली का अभिन्न अंग है। इसका अध्ययन इस अध्याय के दूसरे खंड में किया जाएगा।

चौथा अध्याय

केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ

खण्ड-ख

चौथा अध्याय
केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ खण्ड-ख

लोकगीतों का अध्ययन विश्लेषण करने से पूर्व यह जानना ज़रूरी है कि लोकगीत क्या है ? लोकसाहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जन जीवन में व्यापकता तथा प्रचुरता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है।

डॉ. सत्येन्द्र ने इसे सामान्य जन से जोडते हुए कहा है "वह गीत जो लोक मानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमें लोकमानस की तस्वीर हो, लोकगीत के अंतर्गत आयेगा।"[1]
एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका में लोकगीत को मानव का स्वतः स्फूर्त उल्लासमय संगीत कहा गया है।[2]

"लोकगीत उस नदी की धारा के समान है, जो ग्रामीण संस्कृति के गर्भ से निकलकर न केवल ग्रामीण संस्कृति को अप्लावित करती है, वरन् जो अपने शीतल वाणी रूपी जल से समग्र मानव समाज को शीतलता प्रदान करती है और राह पर आनेवाले कंकड, पत्थर और गन्दगी को जिस प्रकार से नदी की धारा बहा ले जाती है, उसी प्रकार से ग्रामीण जन भी इन गीतों के द्वारा अपने जीवन की विषमताओं और दुःखों को भुला देते हैं।"[3]

लोकगीत ग्राम्य संस्कृति की प्रहरी होते हैं। इस बात को ध्यान में रखकर ही विभिन्न विद्वानों ने इसे परिभाषित किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है - "ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार है। उनमें अलंकार नहीं,केवल रस हैं, छन्द नहीं, केवल लय हैं।"[4] आचार्य गुलाब राय के शब्दों में - "लोकगीत लोकभावना की अभिव्यक्ति है।"[5] डां.कुंज बिहारीदास इसे आदिम अवस्था में निवास करनेवाले लोगों की अभिव्यक्ति मानते हुए कहते हैं "लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रभावात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।"[6]

1. लोक साहित्य विज्ञान -पृ. 390
2. The spontaneous music has been called folk songs
   एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका :15 वाँ संस्करण -पृ. 862
3. डॉ पूर्णिमा श्रीवास्तव, लोकगीतों में समाज -पृ. 11
4. कविता कौमुदी : भाग-पाँच, ग्रामगीतों का परिचय प्रकरण :प्रस्तावना - पृ. 1
5. काव्य के रूप -पृ. 123
6. ए स्टडी ऑफ उडीसन फोकलोर -पृ. 25

डॉ. सरोजिनी रोहतगी ने लोकगीत को ज़्यादा स्पष्ट करते हुए इस प्रकार परिभाषित किया है "लोकगीत वे हैं जो अपनी एक प्राचीन परंपरा के लिये, पीढ़ी-दर-पीढ़ी रचनाकार के व्यक्तित्व से निर्लिप्त, पर समस्त लोक के व्यक्तित्व को समेटते हुए लोक मानस से तादात्म्य स्थापित करते हुए आगे बढ़ रहे हैं।"[1] एक अन्य विद्वान लोकगीत की परिभाषा आलंकारिक भाषा में देते हुए लिखते हैं "लोकगीत जन-मानस के अन्तराल में आलोडित होनेवाली वे भावोर्मियाँ हैं जो कि अपनी विशिष्ट स्थिति में लय एवं स्वरों के आरोहवरोहों के साथ लोकवाणी में निबद्ध होकर कल-कल, छल-छल करती गोमुखी गंगा की भाँति द्रुत, बिलंबित एवं मध्यम गति में तरंगित होती रहती है। लोकानुभूतियों के इस सामूहिक स्वरमय प्रवाह को लोकगीत की संज्ञा दी जाती है।"[2] उपर्युक्त परिभाषाओं से लोकगीत की सामान्य विशेषताओं का परिचय हमें मिलता है।

4.18 केरल के लोकगीत

लोकगीत सामान्य जनजीवन के बीच गूँजनेवाली बाँसुरी की तान है, उसके अन्दर की धड़कन है और उसके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद तथा संस्कृति की एक साफ सुधरी तस्वीर। वैसे तो संपूर्ण लोकवार्ता या लोक साहित्य ही लोक जीवन की परंपरागत विरासत है परंतु उसके लोकगीत अपने माधुर्य एवं प्रभावोद्पादकता के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि किसी समुदाय, वर्ग या जाति की भावनाओं, आस्थाओं एवं संस्कारों को जानना हो तो उसके लोकगीतों का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि लोकजीवन की वास्तविक भावनाओं की वास्तविक तस्वीर लोकगीतों में ही मिलती है। लोकगीत में जन-जीवन के हर्ष और विषाद, आशा और निराशा, सुख और दुःख सभी की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कल्पना के साथ रसवृत्ति, भावना और नृत्य की हिलोर भी अपना काम करती है। परन्तु ये सब खाद हैं। लोकगीत हृदय के खेत में उगते हैं। इसमें हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे प्रेम में आकर्षण श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिंबित होता है जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमय है। लोकगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश है। चूँकि लोकगीत सामान्य लोगों के कंठ से स्वतः स्फूर्त एक भावात्मक अभिव्यक्ति है इसलिए इसका प्रभाव क्षेत्र भी व्यापक है। प्रत्येक प्रांत के लोकगीतों का विश्लेषण करें तो सभियों में कुछ सामान्य विशेषताएँ उभरकर आएँगी, जैसे -

1. लोकगीत में मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं एवं विभिन्न रागवृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है।
2. भावों को प्रकट करने केलिए वाणी का जो आश्रय लिया जाता है, वह लयात्मक होता है।
3. गीतों में सामूहिकता का भाव निहित होता है।

---

1. अवधी लोक साहित्य -पृ. 149
2. श्री भगवान, श्री शर्मा रेणु, ग्वालियरी लोकगीतों का अध्ययन -पृ. 47

4. लोकगीतों के रचयिता अज्ञात होते हैं, व्यक्ति विशेष की रचनायें भी समष्टि में विलीन हो जाती हैं।
5. लोकगीतों में शास्त्रीय नियमों की उपेक्षा होती है लेकिन लय और सुर का ध्यान रखा जाता है।
6. लोकगीतों में प्राचीनता होती है।
7. लोकगीतों में अत्यंत शिक्षित एवं सुसंस्कृत लोगों की जीवन पद्धति तथा भावों का चित्रण प्रायः नहीं होता।
8. लोकगीतों में मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित रहते हैं।
9. लोकगीतों में मनोरंजन होता है।[1]

हिन्दी साहित्य कोश में लोकगीत शब्द के तीन अर्थ दिये गए हैं - [2]

क. लोक में प्रचलित गीत।

ख. लोकनिर्मित गीत तथा

ग. लोकविषयक गीत।

इस तरह ऐसे गीत जो लोक द्वारा निर्मित हो, लोक विषयक हो तथा लोक में प्रचलित हो लोकगीत कहे जाते हैं।[3]

किसी भी देश के राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन में वहाँ के लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। लोकगीत मूल रूप से मौखिक साहित्य हैं, यह अलग बात है कि आधुनिक काल में विलुप्त होने के खतरे से बचाने के लिए उनको संगृहीत करने तथा पुस्तकाकार रूप में लाने का स्तुत्य कार्य हो रहा है। लोकगीत लोकजीवन की सच्ची झाँकी प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य के सामाजिक,पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन से जुडे हुए अनेक मार्मिक चित्र लोकगीत में ही उतर पाते हैं। लोकजीवन एवं लोकभाषा के मूल रूप को जानने केलिए लोकगीत जितने सहायक है, उतने ही जो सामाजिक जीवन में भावात्मक एकता कायम करने में भी। ऐतिहासिक दृष्टि से लोकगीतों का विशेष महत्त्व है। उसमें इतिहास संबंधी प्रचुर सामग्री भरी रहती है। लोकगीत किसी देश या समाज के प्राचीन स्वरूप को जानने का सर्वोत्तम साधन है क्योंकि इसमें बनावटीपन नहीं होता बल्कि इसमें स्थानीय इतिहास का गहरा पुट पाया जाता है।

इतिहास के अलावा भूगोल का भी ज्ञान हमें लोकगीतों में प्राप्त होता है। शहर, नदी, देश, गाँव,

---

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाज शास्त्रीय अध्ययन - पृ. 12
2. हिन्दी साहित्य कोश -पृ. 689
3. वही

प्राकृतिक विशेषताओं तथा घटनाओं का वर्णन इन गीतों में मिलता है। लोकगीतों में भूगोल संबंधी बातों का विस्तृत विवेचन तो नहीं मिलता है परन्तु स्थानीय भूगोल के विषय में बहुत सी जानकारी मिलती है।

लोकगीतों का सामाजिक दृष्टि से काफी महत्त्व है। इनमें मानव जीवन का जितना सजीव और स्वाभाविक चित्र उपलब्ध होता है, उतना अन्यत्र नहीं। अगर हम किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना चाहते हो तो हमें लोकगीतों का अध्ययन करना चाहिए। लोक-कवि समाज को जिस रूप में देखता है, वह उसे उसी रूप में चित्रित करता है। इसलिए लोकगीतों में वर्णित चित्र सत्य से अलग केवल निराकल्पना नहीं होता बल्कि इनमें मानव जीवन के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीति-रिवाज़, संस्कृति, धार्मिक-विश्वास, रूढ़ी, आपसी संबंध आदि का वास्तविक चित्र मिलता है।

"धार्मिक दृष्टि से भी लोकगीतों का महत्त्व निर्विवाद है। विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं से संबद्ध लोकगीत तथा विभिन्न व्रत-त्योहारों से संबंधित लोकगीत ऐसे हैं जो उनकी धार्मिक भावना को व्यक्त करते हैं। भारत में शायद ही कोई समाज या जाति ऐसी हो जो किसी भी प्रकार का धर्म न मानता हो या धार्मिक अनुष्ठान न करता हो। इसलिए जब सामान्य लोगों में धार्मिक विश्वास एवं आस्था की जड़ें गहरी हो तो यह संभव ही नहीं है कि उनके लोकगीतों में इन बातों की झलक न मिले।"[1] धार्मिक भजनों से संसार की अनित्यता, मानवजीवन की क्षण भंगुरता तथा वैभव की निस्सारता का उल्लेख अनेक बार हुआ है। किसी समाज में किन-किन देवी-देवताओं की पूजा की जाती है इसका ज्ञान भी लोकगीतों के अध्ययन से मिलता है।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी भाषा शास्त्री के लिए यह अमूल्य निधि है। अनेक शब्दों के विकास इतिहास को जानने के लिए लोकगीतों का अध्ययन अत्यंत उपादेय है। लोकगीतों में प्रयुक्त शब्दों को ग्रहण करने से प्रत्येक भाषा के साहित्य की श्रीवृद्धि होगी, उनका शब्द भंडार विशाल होगा। इस प्रकार के लोकगीतों में जो अक्षय संपत्ति छिपी पड़ी है, उससे हमारा भाषा भंडार भरा जा सकता है। लोकगीतों का मूलाधार संस्कृति है। विश्व की संस्कृतियाँ कैसे उद्भूत एवं विकसित हुई, उसका इतिहास लोकगीतों के संयक अध्ययन से मिलता है। लोकगीत लोक संस्कृति के वाहक ही नहीं, अमर प्रहरी भी है। किसी भी संस्कृति का अध्ययन करने के लिए उस देश के लोकगीतों का अध्ययन आवश्यक है। वस्तुतः लोक जीवन का संपूर्ण संस्कृति पक्ष इन लोकगीतों में सुरक्षित रहता हैं, जिनके अध्ययन से तत्कालीन संस्कृति का बहुत स्पष्ट ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाज शास्त्रीय अध्ययन - पृ. 18

4.18.1 लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों के अध्ययन से पूर्व लोक गीतों के वर्गीकरण की परंपरा-सी चल पड़ी है। लोकसाहित्य के सभी विद्वानों ने अपने-अपने संकलन के आधार पर लोकगीतों का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। किसी साहित्यिक विधा के अध्ययन का महत्त्व तभी है जब उसे वैज्ञानिक ढंग से भी वर्गीकृत किया गया हो। डॉ. रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ.सत्येन्द्र, डॉ.सत्या गुप्ता, डॉ.कृष्णानन्द जोशी तथा डॉ.सन्ताराम आदि विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण अपनी-अपनी ढंग से किया है और प्रत्येक वर्गीकरण की कुछ खूबियाँ और सीमाएँ भी होती हैं। उपरोक्त विद्वानों के वर्गीकरणों को ध्यान में रखकर सामान्य तौर पर लोकगीतों का वर्गीकरण इसप्रकार किया जा सकता है -

1. धर्मपरक गीत	2. जातिपरक गीत	3. श्रमगीत
4. ऋतु गीत	5. बाल गीत	6. विविध [1]

1. धर्मपरक गीत

धर्मपरक गीतों से तात्पर्य उन गीतों से है जो किसी न किसी रूप में धर्म से संबंधित है। संस्कार, अनुष्ठान, व्रत, पर्व और विभिन्न देवी-देवता आदि धर्म से ही संबंधित है या यों कहा जा सकता है कि ये सब धर्म के अंग हैं। इसलिए संस्कार, अनुष्ठान, व्रत आदि के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को पुनः निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है (अ) संस्कार संबंधी गीत, (आ) अनुष्ठान संबंधी गीत, (इ) व्रत, पर्व एवं त्योहार संबंधी गीत।

2. जातिपरक गीत

जाति विशेष द्वारा गाये जानेवाले गीत जातिगीत के वर्ग में आते हैं। कुछ गीतों पर कुछ जाति विशेष का एकाधिकार होता है। जातिगीत रूपी संपत्ति को जाति का प्रत्येक सदस्य कंठ एवं हृदय में संभालकर रखता है और अवसर विशेष पर या फुरसत के क्षणों में इनका उपयोग करता है।

3. श्रमगीत

श्रम करते समय श्रमजन्य थकान से अपने को मुक्त रखने के लिए स्त्रियों और पुरुषों द्वारा जो गीत गाए जाते हैं, वे श्रमगीत कहलाते हैं। इन गीतों के माध्यम से कार्य के प्रति रुचि बनी रहती है।

4. ऋतु गीत

ऋतुगीतों के क्रम में उन गीतों को स्थान दिया गया है जो किसी ऋतु विशेष पर गाए जाते हैं। इन गीतों को ऋतुओं के आधार पर विभाजित किया जा सकता है।

---

1. डॉ महेश गुप्त, लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन- पृ. 118-119

5. बाल गीत

किसी भी अवसर पर या खेल के समय बालक-बालिकाओं के द्वारा गाए जानेवाले गीत इस श्रेणी में आते हैं। उन्हें खेल से संबंधित गीत तथा खेल से असंबंधित गीत जैसे भी विभाजित कर सकते हैं।

6. विविध गीत

वे समस्त गीत जो उपर्युक्त श्रेणियों में आने से रह गए हैं, उन गीतों को विविध श्रेणी में स्थान दिया जाता है।

कहा गया है लोकगीत लोकजीवन के विचारों, आशाओं, आकाँक्षाओं, विश्वासों, अंधविश्वासों आदि की सहज अभिव्यक्ति है। उनमें लोकजीवन की झंकार मुखरित होती है। सुख-दुखों का जीता-जागता प्रतिबिंब इन गीतों में प्राप्त है। युद्ध क्षेत्र में अस्त्र-शस्त्रों की टंकार, वीरों का गर्जन, मृत सैनिकों का रोदन, विजयी सैनिकों का आह्लाद - सबके सब लोकगीतों में अभिव्यंजना पाते हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का चित्र, जितनी स्वाभाविकता के साथ लोकगीतों में अवतरित होता है, अन्य गीतों में नहीं होता। अर्थात् ये गीत भावों का सहज उद्वेलन हैं।

सामाजिक जीवन व्यक्ति जीवन का समूह जीवन ही रहा था। अर्थात् प्राचीन युग में व्यक्ति अपना अलग अस्तित्व नहीं मानता था। वह स्वयं को समाज का अभिन्न अंग समझता था। पृथकता का विचार था ही नहीं। इसलिए ही होगा कि लोकगीतों में सामाजिक भावबोध एवं वैयक्तिक अस्मिता का सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है।

केरल के ज़्यादातर लोकगीत अनुष्ठानों से संबंधित है। इसके संबंध में लोकनृत्य और लोकनाट्य के विश्लेषण को दौरान सूचना दी गयी है। अनुष्ठान-कर्म, अनुष्ठान-कला, मंत्रवाद, पूजा, त्योहार और पर्वों से संबंधित बहुत लोकगीत केरल की अपनी संस्कृति का परिचायक है।

केरल में प्रचलित धर्मपरक लोकगीत बहुधा धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर गाए जाते हैं। ये गीत गानेवाले अधिकतर निम्न जाति के गायक हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि इन गीतों में लोकप्रचलित शब्दों, कहावतों और मुहावरों की अपनी एक दुनिया है। कहावतों में अनुभूति की तीव्रता होती है, मुहावरों में भाषा की भंगिमा बढ़ती है। अन्य एक कार्य है कि टेढ़ मलयालम ही इन गाथाओं की भाषा है। इन कलाकारों ने संस्कृत शब्दावली को जनता से अलग रखा।

4.18.1.1 तोऱ़म् पाट्टुकळ (तोऱ़म् गीत)[1]

केरल के अनुष्ठान प्रधान गीतों में 'तोऱ़म्' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'तोऱ़म्' को स्तोत्र, स्तुति,

1. एम.वी विष्णु नंपूतिरि, उत्तर केरलत्तिले तोऱ़मपाट्टुकळ

भजन आदि नामों से भी अभिहित किया जा सकता है। 'तोऽऽम्' के नाम से अनेक प्रकार के लोकगीत या प्राक्गीत केरल में प्रचलित है। दक्षिण केरल में 'वेलन' जाति के लोगों के द्वारा गानेवाले 'भगवतिप्पाट्टुँ' मध्यकेरल में 'मण्णान' लोगों के 'भगवतित्तोऽऽम्', पुलय जाति के 'कण्णकी तोऽऽम्', 'कुरुप्पुँ'तथा 'तीयाट्टुण्णियों' के द्वारा गानेवाले 'दारिवधत्तोऽऽम्','महिषवधत्तोऽऽम्','यक्षित्तोऽऽम्', 'नागत्तोऽऽम्', 'अय्यप्पन तोऽऽम्', तीयाटि नंपियार के 'शास्ताम् तोऽऽम्', पुळ्ळुवर द्वारा प्रस्तुत 'कळमेषुत्तुँ तोऽऽम्', पाणान, मण्णान तथा 'मुन्नूट्टान' द्वारा मंत्र-तंत्र-बलिकर्मों के दौरान गानेवाले 'बलक्कल् तोऽऽम्' आदि इसमें कुछ मात्र है।[1] 'तेय्यम्-तिरा' के दौरान विशेष प्रकार के 'तोऽऽम्' गाए जाते हैं। कथानक और शैली में उत्तर केरल के ये गीत अन्य तोऽऽम् गीतों से भिन्न हैं।

दक्षिण केरल में मुख्य रूप से 'काळी' तथा'कण्णकी' से संबंधित गीतों को 'तोऽऽम् गीत' कहते हैं। लेकिन मध्यकेरल में' काळी' तथा 'कण्णकी' के अलावा 'अय्यप्पन' 'नागदेवता' तथा 'कुट्टिच्चात्तन' आदि देवता भी 'तोऽऽम्' की दुनिया में पहुँचते हैं। पालघाट तक पहुँचते ही 'पांडव कथा' तथा 'निषलकूत्तुँ'आदि भी 'तोऽऽम्' के विषय बनते हैं। उत्तर केरल में देवी-देवताओं के अलावा वीर पुरुष, यक्षी, नाग, भूत-प्रेत आदि भी 'तोऽऽम्' में वर्णित होते हैं।

'तोऽऽम्' गीतों में देवताओं का उद्भव, महिमा, रूप विशेष, चरित्रगत विशेषताएँ तथा वीरता आदि का वर्णन होता है। आम जनता में देवता के प्रति भक्ति, आराधना भाव, विश्वास आदि जगाने की शक्ति इन गीतों में है। 'तोऽऽम्' गीतों की प्रस्तुति में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का भी प्रयोग होता है।

'तोऽऽम्' गीतों में 'तेय्यम्' के दौरान गाए जानेवाले गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन 'तोऽऽम्' गीतों को 'परविळित्तोऽऽम्', 'स्तुति' 'अंचटि तोऽऽम्', 'पोलिच्चु पाट्टुँ', 'उऽच्चिल तोऽऽम्', 'नीट्टुकवि' 'ताळवृत्तम्', 'पतिकम् 'आदि कई वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। अपने प्रिय देवता को निमंत्रण देकर बुलाना ही 'परविळित्तोऽऽम्' है। विनयप्रधान गीतों की प्रस्तुति 'स्तुति' और 'अंचटित्तोऽऽम्' में होती है। देवताओं का गुणगान तथा महिमावर्णन ही 'पोलिच्चु पाट्टुँ' का विषय है। 'तेय्यम्' कलाकार द्वारा तांडव के समान तेज़ गति से नृत्य करते समय 'उऽच्चिल तोऽऽम्' गाए जाते हैं। साधारण से लंबा करके गानेवाले गीतों को 'नीट्टु कवि' कहते हैं। (नीट्टुका लंबा करना, बढ़ाना)'तायिप्पर देवता' 'पुतिय भगवति' 'पणक्काटुटु भगवति' आदि देवताओं से संबंधित तोऽऽम् गीतों में 'ताळवृत्तम्' नामक एक स्तुतिपरक पद्यखंड की प्रस्तुति होती है। इसी प्रकार के दूसरा पद्य खंड है 'पतिकम्'। जब 'तेय्यम्' की साजसज्जा नेपथ्य में की जाती है तब गानेवाले गीतों को 'अणियरा तोऽऽम्' कहते हैं। 'अणियरा' का

1.एम.वी विष्णु नंपूतिरि, फोकलोर निघंटु- पृ. 343-344

मतलब है नेपथ्य। ज़्यादातर 'तोऱ्ऱम्' की शुरुवात गणेश स्तुति से होती है, इसे 'गणपति तोऱ्ऱम्'कहते हैं। यहाँ 'तोऱ्ऱम्'का सामान्य परिचय दिया गया है। आगे कुछ मशहूर तोऱ्ऱम् गीतों का विश्लेषण किया जाएगा।

4.18.1.2 भद्रकाळी तोऱ्ऱम् या भद्रकाळी पाट्टुं

केरल में भद्रकाळी की आराधना बहुत प्रमुख है। इन लोकगीतों में प्रयुक्त कई शब्द लुप्त हो गए हैं, तथापि अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होगी। शब्द चयन के विशेष ढ़ंग से देवी का कराल और प्रचण्ड रूप हमारे सामने आता है। काळी की आराधना मातृ भाव से की जाती आ रही है। दुनिया के मंगल के लिए देवी ने कई अवतार लिए। दारुक नामक असुर को मारने के लिए देवी का काळी अवतार हुआ। विश्वास किया जाता है कि यह अवतार शिव के तीसरे नेत्र से हुआ। भद्रकाळी का अर्थ है, मंगलदायिनी देवी। चेचक जैसे महारोगों से मुक्ति देनेवाली देवी भी है काळी। केरल में लगभग 108 दुर्गा मंदिर है। इन मंदिरों में देवी को भिन्न-भिन्न रूपों में 'भद्रकाळिप्पाट्टुं' बडी श्रद्धा से गाए जाते हैं। इन्हें 'भद्रकाळित्तोऱ्ऱम्'भी कहते हैं। मुख्य रूप से मध्यकेरल के 'वेलन' लोगों के द्वारा इसकी प्रस्तुति की जाती है। 'कुरुप्पन' 'माराऱ' 'वात्ति' 'कोल्लन' 'मलयरयन' आदि लोग भी 'भद्रकालिप्पाट्टुं' प्रस्तुत करते हैं। भगवति के 'कळम्' तैयार हो जाने के बाद उसके चारों ओर बैठकर ही 'तोऱ्ऱम्' गाए जाते हैं। सबसे पहले काळी को 'कळम्'में बिठाने हेतु निमंत्रणात्मक गीत गाते हैं। उसके बाद स्तुतिपरक गीत गाए जाते हैं। बाद में 'दारिक वध','कण्णकी चरितम्' आदि से संबंधित गीत गाए जाते हैं।

भद्रकाळित्तोऱ्ऱम् का एक पद उदाहरण स्वरूप यहाँ प्रस्तुत है जिसमें काळी और दारिकासुर के बीच के घनघोर युद्ध का वर्णन है -

अर्द्धचन्द्रक्कलाधरन परमेश्वरन पुर मर्द्धनन
अन्पिलुंपर तोषुम् पुरारि मनोहरन तिरुनेऱ्ऱिमेल
कत्तुमग्नि निरञ्ज कोपमोटोत्तु वन्नुदिचेटितटुम्
करियुटेयुरिपूण्डरक्करवङ्ङळ केट्टि मुरुक्कियें
चित्रमेऱ्ऱिन तृक्कुषक्कषकेरुम् आनयुम् सिंहवुम्
चिल्पमाकयणिन्तरन कनिवोटु नल्किन आयुधम्
भक्तियोटु पणितुं वाङ्ङि निन्नरुळुम् निन्पद पंकजम्
भैरवी तोषुतेनेनिक्किटर वन्निटातरुळीटम्मे !
अत्तितन तोलुटुत्तोररन अद्‌भुतम् मुप्पुरत्तवर
मुटिञ्ञनल चोऱिञ्ञ विषियिल वन्नु पुरन्नवळ

अटलसुरकुलमरुति पेटुवतिन्नत्तत्तिशक्तिच्चित्र-
शूलम् कोण्टेत्तित्तत्ति अट्टिक्किट्टोक्के पोट्ट
तोट्टिट्टटङ्ङोट्टक्कारि- अटरिल पिटिपेट्टुट-
नसुरप्पटयोक्कङ्ङला झटुतिक्कटिपेट्टवर
तलयोङ्ङकलेच्चितरा धारणियिल पिटिपेटा
अटिपिटियोटु नरि कषुकविटे वन्ने तृप्पोरितिट्टु
मटयवर कुरुतिकल अतिशयमोटु कुटुकुटे
वयरिळङ्ङिङनतोरुपटि निऱञ्ञिट्टुमाटु-
माकाळिमा कोपमोटाया पोराटिनाळे [1]

अर्थात् अर्द्ध चन्द्र की शोभा से युक्त परमेश्वर शिव के पैरों पर देवगण वन्दना करते हैं। उस शिव के माथे अग्नि समान नेत्र है। उस नेत्र से कोप के कारण आग उगलती है। दंति चर्म पहने हुए है और कर्णाभरण हाथी और सिंह के चित्रवाले हैं। इन्द्र ने उनको हथियार दिए हैं। उस शिव के चरणों पर वन्दना करनेवाली भैरवी आपके चरणों में, मैं सिर झुकाता हूँ। मुझ पर कृपा करो कि मुझे कोई कष्ट न हो।

दंति चर्म पहननेवाले शिव का आश्चर्यजनक चित्र है। उसके नेत्र से निकलनेवाली आग के मार्ग में, देवी, आपका जन्म हुआ है। देवी से लडकर सब असुरगण पराजित हुए। इनका युद्ध भयानक था। सारी दिशाएँ काँपने लगीं। सिर के सिर धरती पर लोटने लगे। रक्त की नदियाँ बहने लगीं। उस समय गीध अपनी चोंच से सिरों को खींचने लगे। गीधों के साथ सियार भी इकट्टे हुए। तब भी काळी का क्रोध शांत न हुआ। क्रोध से युद्ध चलता रहा। इसके बाद उस भयंकर युद्ध का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

कत्तिवाळ पत्तिरम् विल गदा केट्टुपाशक्कय-
रोक्कवळ करुकरिने वरुमसुरर तल चिल कळञ्ञु
चेन्नु वळञ्ञुसुरर तलवने-कररज्जटयिटयिल
ओररप्पिरयतिने केट्टिट्टित्तिरुकुम
कच्चिट्टम्मुलयाळेच्चिट्टेषुमिटयिल केट्टिप्पुलियुरि
करुतित्तोषुमटियर दुरितत्तळवतिनेक्कळयुम्
भगवति कटुकुररमरारिकळ मुटुकोट्टवरवरुटे

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ भाग-दो - पृ. 16

तलयोक्केयरियुम् करिरथमतु कुतमोटु मदकरि-
-युटलतिलनिन्नुम् वरुम् नल्ल कुरुतिकल करिकरनख-
मतुकोंटु तेरुतेरे विरवोटु पुळर्न्निटुमतिनोटु
निकर कालियुम् दारिकन नन्नुटल कारवे कीऱिनाळे
अमृत चोरिञ्ञपटि अति कृपयोटु पाटि
अतिश्रुतियोटुनाटिन सुनिश्रुति तेटि्
समश्रुतियाल करटि तमिलटि किंटुपिटि
तकृतियोटटनटि श्रुति नागस्वरम् मोटि
कटलिटि पटिवेटि कटिय मकुटमटि करधृतियोटु धाटि
कणक्किल तिमिलयटि मटयवर पलर कूटि कुरवकळ
पोटिपोटि मलरमाला ओरु कोटि मंडपत्तिल
पलकोटि वटिविल धूपिक्कुम् पोटिवासनामंकिल
पोटि झटुति पनिनीराटि सदिर पलतुटनटि
पाटि वराटियुम् तोटि पंतुवराटियुम् पाटि
पाटवत्ताल दैवम् पाटि भंगियाल संगीतमोटि
आश्चर्यघोषमोटि ईश्वर कालभूतम् नाटि
शाश्वतमायि तुळ्ळियाटि आश्वसिप्पानहम् पाटि। [1]

अर्थात् छुरी, खडग, धनु, मूसल आदि कई प्रकार के हथियार लेकर आए असुरों को देवी ने अकेले काट डाला। इसके उपरांत उन्होंने उनके सिरों को अपने बालों में छिपा लिया। शत्रु के सिरों को काट-काटकर आगे बढ़ी। तब दारिकासुर ने देवी का सामना किया। अपने शस्त्रों के द्वारा देवी ने दारिकासुर को मार डाला। उस समय देव लोक में विजय नृत्य हुआ। नागस्वर, तिमिला जैसे वाद्य बजाकर तरह-तरह के रागों में गीत गाने लगे। पुष्प वृष्टि हुई। सारे लोग आनन्द विभोर हे गए।

इस पद की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसकी भाषा ओजगुण संपन्न है। काव्य शास्त्रियों ने ओज गुण के लिए किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करने का आदेश दिया है उनका पालन कवि ने किया है। इसका गायन सुनते समय श्रोता के सामने काळि-दारिक युद्ध साकार होकर उभरने लगता है।

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ भाग-दो - पृ. 17-18

4.18.1.3 अय्यप्पन पाट्टुं

अय्यप्पन पाट्टु के लिए 'अय्यप्पन तोऱ्ऱम्','शास्ताम पाट्टुं' 'उटुक्कुं पाट्टुं' आदि नाम भी प्रचलित है। अय्यप्पन (शबरिमला अय्यप्पन) से संबंधित आराधना और अनुष्ठान कलाओं का बहुत प्रचलन केरल में है। 'अय्यप्पन पाट्टुं' 'अय्यप्पन तीयाट्टुं' 'अय्यप्पन विळक्कुं' आदि इनमें कुछ है। आंचलिकता के आधार पर इन गीतों में थोड़ा कुछ अन्तर पाया जाता है। फिर भी इन गीतों को अय्यप्पन पाट्टुं से अभिहित करना ही अधिक समीचीन है। 'मंडलकाल' (शबरिमला दर्शन के समय) के दौरान अय्यप्पन के भक्त व्रत लेकर माला धारणकर तथा काले कपड़े पहनकर अपने आप को अय्यप्पन की भक्ति में लीन होने देते हैं। इस व्रत के दौरान अय्यप्पन मंदिरों तथा गृहों में अय्यप्पन गीत का आयोजन होता है। इसके लिए एक शमियान तैयार कर नारियल के कोमल पत्तों से उसे अलंकृत करते हैं। उसके बाद अय्यप्पन, वावर, गणेश, सुब्रह्मणियन, माळिकप्पुरत्तम्मा आदि की पूजा की जाती है। तदुपरांत अय्यप्पन गीत का आयोजन होता है। 'अय्यप्पस्वामी' (व्रत लेनेवालों को अय्यप्पस्वामी कहते हैं) एक घेरे में बैठकर 'उटुक्कुं' 'कैमणि' 'गिंजरा' आदि वाद्य बजाकर गीत प्रस्तुत करते हैं। बीच-बीच में 'शरणम् विळि' भी होती है। (शरणम् विळि किसी एक द्वारा नारे जैसे अय्यप्पन का नाम पुकारना तथा अन्यों का दुहराना) गणेश, सरस्वती, सुब्रह्मणियन आदि से संबंधित स्तुतिपरक गीत गाने के बाद क्षीरसागर मंथन, अय्यप्पन का जन्म, शूर्पक की तपस्या, शूर्पक बध, महिषि मर्द्दनम् , पंतलशोवुकम्, पांडिशोवुकम् जैसे कथानकों से संबंधित गीत गाए जाते हैं। सभी धर्मवाले लोग इसमें भाग लेते हैं। अय्यप्पन गीतों का कथानक कुछ इस प्रकार है।

अपनी उत्पत्ति के बाद पिता शिव का आशीर्वाद पाकर अय्यप्पन पंपा नदी के किनारे बच्चे के रूप में लेटता रहा। इसी ओर शिकार के लिए राजा आया। उन्होंने रोते हुए शिशु को देखा स्वयं निःसंतान होने के कारण यह अपना महान भाग्य समझकर बच्चे को महल ले आए। एक बूढ़े ब्राह्मण ने राजा के सामने आकर कहा कि बारह वर्षों के बाद तुम्हें इस बालक का महत्त्व समझ में आएगा।

बालक को पाकर राजा ने उसके लिए जातकर्मादि करवाया। वह घोड़े पर सवारी करने लगा। शस्त्रों का संचालन सीखा। उनमें छुरी का संचालन विशेष रूप से पढ़ा। गुरु को दक्षिणा दिलवायी। तब गुरुवर ने कहा कि मेरा एक अंधा बालक है, अतः मैं बहुत दुखी हूँ। तब मणिकंठन (अय्यप्पन) ने उस बालक को अपने पास ले आने को कहा। जब अंधा बालक लाया गया, उसने अपने हाथ से उसके नेत्रों का स्पर्श किया। आश्चर्य की बात हुई कि उसकी आँखों को दर्शन का सौभाग्य मिला। गुरु ने मणिकंठन को आशीर्वाद दिया और कहा कि तेरा यश दुनिया भर में फैलेगा।

इसके बाद हरिहरात्मज अय्यप्पन पांड्य राज्य की सेवा के लिए भेजा गया। अय्यप्पन के पांड्य राज्य में आगमन के बाद राजधानी में ये चर्चा का विषय बन गया। उनकी अपूर्व शोभा से अन्य राजकर्मचारी ईर्ष्यालु हो गए। अय्यप्पन को वहाँ से निकालने का षड्यंत्र सोचने लगे। उन्होंने रानी के पास जाकर सारी असुविधाएँ बताई और किसी न किसी प्रकार उसे छुड़ाने के मार्ग पर विचार किया। आखिर रानी ने एक उपाय सोचि कि वह बीमार होने का अभिनय करेगी। वैद्य से उसके इलाज के लिए चीते का दूध मँगवाने का सुझाव दिलाया। वैद्य के निर्देश पर राजा ने चीते का दूध लाने के लिए अय्यप्पन को भेजा। अय्यप्पन सहर्ष धनुष-बाण धारण कर चीते की खोज में निकले। उन्होंने जंगल में प्रवेश किया और दूर चीतों का झुंड देखा और उन्हें लेकर राजमहल में आए। चीतों को लेकर आनेवाले अय्यप्पन को देखकर सारे नौकर-चाकर डर गए और रानी ने अपना अपराध कबूल किया। अय्यप्पन ने राजा से कहा कि जल्दी दूध दुहने का प्रबंध करो। इन चीतों को वापस भेजना है, नहीं तो उनके खाने की समस्या का सामना करना पडेगा। तब राजा ने अय्यप्पन से पूछा कि आप कौन है ? यह बताने की कृपा कीजिए। पत्नी की बीमारी दूर हो गयी है, अब दूध की ज़रूरत नहीं। अतः इन्हें जल्दी वन भेज दीजिए। इसी समय अगस्त्य महर्षि वहाँ आए और उन्होंने मणिकंठ का सारा इतिहास कह सुनाया।

अय्यप्पन के बाघों को लेकर आने का प्रसंग इस गीत में इस प्रकार वर्णित है -

“अंतकारि हरिसुतनप्पोळ
पंतळेशनु चिन्तमुषुत्तुं
अंतकारिए हलक्कमत्तिल
चिंतिच्चिरुन्नु अखिलेशनुमप्पोळ
अय्यनायुध जालमेटुत्तु
पय्यनेन्नोरु भांडवुमेन्ति
पय्यवे नटकोंडिटुम्बोळ
चेय्युन्नु परिहासड़ड़ळेल्लाम्
पुलिकळे भवान कोण्टुवरुम्पोळ
चिलतोक्के नमुक्कुम् तरेणम्
चिल नारिमारेवम् पल पल
परिहासमुरच्चितिनय्यन
तरुवेनेन्नु मात्रमुरच्चु

हर सूनु तिरिंच्चु वनत्तिल
मंत्रि तन्टे मनस्सु तेळिञ्ञु
पंतलेशनु चिन्त मुषुत्तु
इन्द्रनप्पोळ महा व्याघ्रमायो
वन्नु नाथने वन्दनम् चेय्तु
एन्नतु कण्टु देवांगनमार
वन्नु पेणपुलि वृंदवुमायि
पिन्नयाप्पुलि कूट्टङ्ङलाय्
अन्नमरकलोटियणञ्ञु
वनपुलि चुमलेरियतय्यप्पन
पेणपुलिकळुम् पिंपे नटन्नु
पंतळत्तिनटुत्तीटुम्पोळ
संतापिच्चलयुन्नु जनङ्ङ्ळ
पेटि पूण्टवरोटियोळिच्चु ।[1]

इसका मतलब है कि हरिहर पुत्र अय्यप्पन शिव को स्मरण करके, आयुध लेकर बाघ लेने के लिए महल से निकले। पंतलेश को बड़ी चिंता हुई। जाते समय कुछ लोगों ने उनकी हँसी उठाई। कुछ स्त्रियों ने कहा कि आप बाघों को ले आते समय एक-दो हमें भी देना। अय्यप्पन ने कहा ज़रूर दूँगा। अय्यप्पन जंगल पहूँच गए तब इन्द्र ने महा व्याघ्र का रूप धारण कर सामने आया। देव स्त्रियाँ बाघिन बनी। उनके बच्चे बाघ के बच्चे बने। तब अय्यप्पन बाघ की पीठ पर बैठकर पंतळम् की ओर बढ़े। बाघिनों और बच्चे उनके पीछे आए। यह दृश्य देखकर पंतळम् की जनता डरकर इधर-उधर भागने लगी। तब लोगों ने कहा

''श्रेष्ठनाम् मणिकंठने भूपन
काट्टिलयक्कुक मूलम्
नाट्टिलेङ्ङुम् पार्कान मेला
कूट्टमोटे पुलिकळ वरुन्ने
केट्टु-केट्टु जनङ्ङळ विरच्चुं
ओट्टङ्ङळ तुटङ्ङिय नेरम्

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ - पृ. 57-58

केट्टु नृपतीन्द्रनवस्थकळ
ओट्टु भयम् पूण्डुटनप्पोळ
गोपुरत्तिन द्वारत्तूटे
भूपतीन्द्रन नोक्कुन्नेरम्
चापसायकम् कय्यिल धरिच्चुं
हा ! पुलियुटे कण्ठममर्न्नु
पंटु कंटत्तिलेट्टम् दीप्तिया
कंटु भक्ति मुषुत्तु भयन्नु
व्याघ्र कंठमतिल निन्निरङ्ङि
शीघ्रम् भुवने कूप्पियुर्णत्ति
राज मौले भवत् कृपयाल ञान
व्याजमल्ल, पुलि कोंटुवन्नेन ।" [1]

अर्थात् लोगोंने कहा श्रेष्ठ मणिकंठ को वन में भेजने के कारण देश में चीतों का झुंड आ गया। यह सुनकर लोगों में भागदौड मच गई। जब राजा को यह खबर लग गई तब उन्होंने महल के द्वार से देखा। अन्य अनेक व्याघ्र भी उनके पीछे पीछे आ रहे हैं। उन्होंने अय्यप्पन की अपूर्व शोभा देखी। तब अय्यप्पन व्याघ्र की पीठ से उतरकर राजा के सामने आकर कहा "राजन् यह झूठ नहीं, सच है आपकी कृपा से मैं व्याघ्र लाया हूँ।"

तब पंतळम् राजा को यह मालूम हुआ कि मेरा पुत्र मणिकंठ दिव्य ज्योति से संपन्न भगवान ही है। मणिकंठ एकदम वहाँ से गायब हो गए। शबरी गिरि पर उनके नाम का मंदिर बनवाने की आज्ञा दी। तदनुसार मनोहर मंदिर बन गया। आज यह मंदिर करोड़ों भक्तों का अभयकेन्द्र है। मंदिर निर्माण का वर्णन कुछ इसप्रकार है

"उग्रमाम् शबर्याद्रियतिंकल
उग्रमाम् क्षुरिकायुध मध्ये
उग्रमाय तीर्त्त प्रस्तरमीते
उग्रमायुळ्ळ क्षेत्रमतिंकल
उग्राम् मुनिमारुम् सुरन्मारुम्

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ - पृ. 58

जाग्रतयायी समस्तरुम् निन्नु
मित्रनुम् मकरम् शशि तन्निल
उत्रमेन्न नक्षत्रवुमोत्तु
वन्नु पंचमियाय तिथियुम्
मन्दवारवुम् वन्नु शुभमाय्
उन्नतनान्दन भक्तियोटेल्लाम्
निन्निटुन्न समयत्तिकल
धन्यनायोरु भार्गवरामन
वंद्य मूर्ति प्रतिष्ठा कषिच्चु ।"[1]

अर्थात् उग्र शबरी गिरि के ऊपर छुरिका के मध्य तैयार किए हुए पत्थर के पीठ पर मंदिर बनवाया। इसके बाद भार्गवराम ने माघ महीने के उत्र नक्षत्र जब पंचमी तिथि में आया और शनिवार भी था, उस दिन अय्यप्पन की मूर्ति को स्थापना की।

इन लोकगीतों में अय्यप्पन को अपूर्व उपलब्धियों का उल्लेख मिलता है। मंदिर निर्माण के बाद केरल और बाहर में अय्यप्पन भक्ति का प्रचार हुआ। हर वर्ष माघ महीने में मणिकंठ के दर्शन के लिए लाखों लोग शबरी गिरि में आते रहते हैं। केरल की लोक संस्कृति भी अय्यप्पन गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। केवल भक्ति के प्रचार की दृष्टि से ही नहीं बल्कि यहाँ के लोगों के आचार-विचार एवं विश्वास का जीता जागता चित्र इन गीतों में उपलब्ध है।

4.18.1.4 गंधर्वन पाट्टुं

'गंधर्वन पाट्टुं' (गीत) गंधर्व प्रीति के लिए किए जानेवाला एक अनुष्ठान है। प्रांत भेद और जाति भेद के अनुसार इसके आयोजन में भिन्नता पायी जाती है। कुछ प्रसिद्ध हिन्दू घरानों में साल में एक बार इसका आयोजन होता है। अलंकृत शमियान (पन्तल) में मंत्र-तंत्र जाननेवाले लोग ही इसका गायन करते हैं। शमियान के मुख्य कोने में 'कदळी' (एक किस्म का केला) का फलदार पौधा रखते हैं और शमियान नारियल के कोमल पत्तों (कुरुत्तोला) से बनाए गए पक्षी, सांप, गोलकंद आदि से अलंकृत करते हैं। 'यंत्र' (मंत्रवाद के लिए प्रयुक्त चित्र और रेखाओं वाला फलक) की पूर्वी दिशा में गायक बैठते हैं। कोंपलों तथा पुष्पों से अलंकृत पीठ में 'पिणियाळ' बैठते है और इस पीठ को 'शरकूटम्' कहते हैं।

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ - पृ. 64

अर्चना करनेवालों को 'पिणियाळ' कहलाते हैं जो विशेष प्रकार की वेशभूषा धारण कर आता है। इसके साथ सात कन्याएँ भी आती हैं। 'पिणियाळ' हाथ में गन्ने का धनुष लेता है और तीन बार शमियान की प्रदिक्षणा करने के बाद पूर्वी दिशा की ओर बैठकर अर्चना करता है। तब कन्याएँ आकर उसकी देहपूजा करती हैं और हाथ में 'काप्पुँ' नामक कंकण पहनाती है। इस समय मंत्रवादियों के द्वारा गंधर्व के स्तुतिपरक गीत गाए जाते हैं। गीत के समय 'पिणियाळ' नाचने लगता है और नाच नाचकर नीचे गिर जाता है। वास्तव में यह एक प्रकार की कामपूजा ही है।

उत्तर केरल में 'मण्णान' 'पुलयर','मुन्नूट्टान्' जैसे जाति के लोगों के द्वारा प्रस्तुत 'केंत्रोन पाट्टुँ'(केंत्रोन गीत) भी गंधर्व गीत ही है। 'गंधर्वन' का प्राकृत रूप है 'केंत्रोन'। कभी-कभी गंधर्वोच्चाटन के लिए भी इसका आयोजन होता है। सामान्यतः सुन्दर यौवनयुक्त कन्याओं पर गंधर्व मोहित होता है। तब वह कन्या पागल जैसे व्यवहार करने लगती है। उसे गंधर्व से मुक्ति दिलाने के लिए उच्चाटन क्रिया की जाती है। धोबी या गणक समुदाय के मांत्रिक यह कर्म करता है। उस समय गाये जानेवाला एक गीत है 'मारनपाट्टुँ' । 'मारन पाट्टुँ' माने कामदेव की स्तुति में गाये जानेवाले गीत। पूजा के साधन तैयार किए जाते हैं। तब जिस सुन्दरी पर गंधर्व का कोप है उसे एक पीठ पर बिठाता है और उसके बाद गणपति की प्रार्थना से गीत शुरू होता है। जैसे

"अंचलरंपने वंचन चेय्तरन
शंकरसूनु गजानने! जय
अंचित वान्मुखनंचिल वरुम् विन
वंचन चेय्येणमंचितवा
अंच हस्तन परब्रह्महस्तन पर !
धर्म कृत्यन परज्ञान भक्ता! परा!
शशिकरधरनेळपोरियुम्
मलरङ्ङोडु शर्करयुम्
कटतटमुखवनु वच्चभयमिरन्ने ञान
वानोरनदी पूजितवामुखने
मूलगणनायकने तोषुन्नेन
अत्यानंदम् जगत्तिनधिपति भगवान
पार्वती सूनु देवा
विघ्नम् तीर्त्तन्टे नावेल् हृदयपतिन

नाय्पोषुम् निल्कवेंटि
भक्त्या चित्तत्तोषुन्नेन गणपति भगवान्टे
पादपद्मम् तोषुन्नेन ।"[1]

अर्थात् शिव ने कामदेव को पराजित किया, भस्माकार दिया उस शंकर के पुत्र गजानन की जय हो। परज्ञान भक्त की परब्रह्म हस्त की जय हो। चन्द्रमा को पराजित करनेवाले और गंगानदी से पूजित शिव के पुत्र गणनायक को रंगवाले पुष्प और गुड़ से वंदना करता हूँ। सारी दुनिया को अत्याह्लाद देनेवाले एवं सारे विघ्नों को दूर करनेवाले पार्वती पुत्र गणपति की वंदना करता हू। आप मेरी जीभ पर रहे। मैं उनके चरणकमलों की वंदना करता हूँ।

इसके बाद वीणावादिनी, विद्या की देवी सरस्वती की प्रार्थना करते हैं।

"सरस्वतिये, सर्वदेवी"!
चतुर्वेदप्पोरुळे, तायें"!
कुळुर्त्तपालाषि तन्निल
कूंपिन मलरुमाते
कळिच्चु वन्नीक्कळत्तिल
कनिवोटु पूज कोळ्ळेन्टे
ऐश्वर्य गन्धर्वा !" [2]

अर्थात् हे सरस्वती, सर्वदेवी, चारों वेदों का सार सर्वस्व माता ठंडे क्षीर सागर में विकसित कमल में रहनेवाली माता, क्रीड़ारत होकर मेरे इस पूजा मंडप में आकर विराजिए। हे ऐश्वर्य गंधर्व आप भी आइए। आगे गणक गंधर्व और सुन्दरियों की क्रीड़ा का वर्णन करता है-

बाले! कोकिले कुल मौली
बालिके बाले
मारानुकूले मनोमोहन-
मेन्नेवेन्टू
मारा ! वीरातिरेका
कार्यकारण लाभे
मलयजमलयतिलुम् मालती

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 29
2. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 30-31

मलरनिरचोरियुम् वनमतिले
मानससरसिलुम्
वानवरपुरत्तिलुम्
पालाष़ियिलुम् पिन्ने
प्रालेयाचलत्तिलुम्
पलदिशि नदिकळिलुम्
विटविकळ पलतल
निबिटाटवियत्तिलुम्
संचरिक्कुम्पोळुण्डो
वांछित गुणगणमियलुम निज
संचयवुम् नीयुम् कूटे
पूंचोलवारितन्निल्
ऊँञ्आलेल वसिक्कुम्पोळ
वामनयनमारुटे मानस-
कामरसम तस्मितमाकुम्
मुल्लमुकुळ मोट्टोटु मुत्तुकळ
पल्लुकळोटु तुल्यतयिल्ला
चोल्लावतल्लो कुलम्
एल्लाम् कोकिलप्पेण्णे !
शिशु शशि निकराभमेषुन्नोरु
कुटिलमताम् निटिल तटत्तिल
निस्तुलतरमाय कस्तूरी तिलकङ्ङळ
वस्तुत निरूपिच्चाल्
एन्नयुम् विमोहनम्
कुसुमशरन कथयुरचेरवान
कच भरमोलिवतिलमुरळुन्न
इन्निन्नेरङ्ङळ नल्ल
मंदारकुसुमङ्ङळ ।[1]

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 30-31

अर्थात् - हे बालिके, कोकिलवाणी, कुल का भूषण! तू कामदेव के अनुकूल और मनमोहक है। कैलास में, मालती पुष्प संचय में, मानसरोवर में, स्वर्ग में, क्षीरसागर में, पूर्व पर्वत में, कई दिशाओं में बहनेवाली नदियों में, वन में, घनघोर जंगल में क्या तूने कामदेव को देखा ? अभिसिप्त सुख तुझे मिले। जब सुन्दरियाँ झूले पर झूलती है तब उनकी मुस्कुराहट रूपी कामविकार झलकता होगा। इन सुन्दरियों के दाँत कुन्द पुष्प की शोभा को पराजित करते हैं। इन ललनाओं के माथे पर कस्तूरी तिलक शोभित है। इनकी शोभा कितनी मोहक है। उनके काले काले बादलों में गुंजारते भ्रमर मानो कामदेव की कथा बता रहे हैं।

फिर यह अज्ञात कवि गंधर्व के उत्सव में जाने का वर्णन करते है। उनकी वेशभूषा देखते ही बनती है।

अलरशरविरुतन पंचबाणनुम्
अरिवयरमणियाम् रतियुमायुटन
अष़कोटु पुरविशेषसंगरे
परिचोटु पोवतिन्नाय् मुतिर्न्नुटन
मुत्तुमाला, मलरमाल पतक्कम्
कुंकुमक्कुऱियणिञ्ञु ललाटे
पंकजाक्षिकळॆयोन्नु नोक्कियुम्
कुरवकळ, नन्तुणि, वीणनादवुम्
अरिकिलिट्ट कुरव ध्वनिकळुम्
तकिलिटय्क्कयोटु पंचवाद्यवुम्
तरिवळ, पिरिवळ कंकणङ्ङलुम्
तरमियलुन्न मालनूपुरम्
मारिपेय्युन्नतुपोले नारिमार
तेरिल निन्नु पनिनीरुवीशियुम्
इल्लयिल्लितु पोलोरुत्सवम्
कण्टतिल्ल भुवनत्तिलेङ्ङमे
वेलकंटु पुनरावषिक्कुमट-
नावषिक्कुमितिले गमिच्चिटुम्। [1]

अर्थात् - पुष्पबाणों से सज्जित कामदेव और रति, सज धजकर उत्सव के लिए महल से निकला। तरह-तरह की मालाएँ गले में शोभित है। ललाट पर कुंकुम लगा हुआ है। गंधर्व सुन्दरी नारियों को देखने

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 31

निकले। तरह-तरह के बाजे बजते हैं। गानालाप ताळयुक्त होकर चलता है। पचवाद्य का स्वर सुनाई देता है। दासियाँ दोनों पर बारिश के समान गुलाब जल झिटकती हैं। इसी प्रकार के उत्सव किसी ने इस भूतल पर नहीं देखा है। भिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ देखते-देखते गंधर्व और रति इधर-उधर चलते हैं।

गणकों की गंधर्व पूजा के लिए पंडाल (शमियान) बनाने की प्रक्रिया का भी बयान कुछ गीतों में मिलता है। निम्न गीत में इसका सुन्दर वर्णन मिलता है।

मंदारमामलतन मुकळिलच्चेन्नु
चन्दनमामरम् तन्ने वेट्टि
मषुकोण्टु वेट्टि पोषिच्चेरिच्चन्पोटु
कुषिच्चु कालनाट्टि एष़यिरुत्ति
दंतिमार तन्नुटे दंतत्तिनालमरम्
उन्ति उरुट्टि कामरमोट्टि
एरिच्च नूलाले अरुत्तु कालुम् पटि
पेरुक्किच्चु मंदिरम् पाटुवच्चुँ
उत्तममाय मुहूर्त्तवुम् कल्पिच्चु
चेत्तियुम् कुत्तियुम् पणि तुटङ्ङि
उत्तरक्कालुम् करुत्तुळळ कषुक्कोलुम्
उरुट्टिय तूणुम् पणितु वच्चुँ
एषुत्तोल केट्टि मुरुक्कि मुकळिलिट्टुँ
अटुक्कि, वारियालिऱयर्ुक्कि
चेलयाले कालु नालुम् पोतिञ्ञिट्टुँ
चेम्मे वितानिच्चु पंतलेल्लाम्
तूक्कि कुरुत्तोल पूक्किल पुष्पङ्ङळ
नोक्कि नोक्किच्चमयिच्चु नन्नायि
आलिल माविल अरयन्न पैंकिळि
आवोळम् पुष्पङ्ङळ तूक्कि नन्नायि
पन्तलकम् अटिच्चु तळिच्चुटन
कुरिच्चु कोलम् गन्धर्वन्टे रूपम्
पंचवर्णप्पोटिकोण्टिटभागत्तुं
पंचबाणन्टे कळम् कुरिच्चु

आर्पे कुरवयलंकारत्तोटे

अंगजन्टे वरवेयुण्टु।[1]

अर्थात् मंदार पर्वत के ऊपर चढ़कर चन्दन का पेड काट लाया गया। परशु से काटकर ठीक करके हाथी से ज़मीन के गढ्डे में लगवाया। उत्तम मुहूर्त्त शोधकर खंभे भी लगाए। फिर इन खंभों को मिलाकर बेड़े रखे फिर ताड पत्र से वह चौखटा ढंका गया। इस प्रकार पंडाल तैयार हुआ। फिर खंभों को कपड़े से ढाँक दिया। उसके बाद पंडाल पुष्पों तथा पुष्पगुच्छों से सजाया गया। पीपल के पत्ते, पत्तों से बने हंस सब तोरण के रूप में बिछाए। फिर पंडाल के अन्दर पाँच रंगों की धूलियों से गंधर्व का 'कळम' बनाया।

इस प्रकार केरल के गंधर्व गीतों में यहाँ की संस्कृति की झाँकी देखने को मिलती है।

4.18.1.5 नागप्पाट्टुं - (नाग गीत)

नागपूजा एक प्राचीन आराधना शैली है। शिला पूजा, सर्प पूजा, वृक्ष-पूजा आदि परस्पर संबंध रखनेवाली पूजा रीतियाँ हैं। पुराने ज़माने में केरल में नागपूजा विशेष रूप से की जाती थी। यहाँ के लोगों में ऐसा विश्वास रूढ़ हो गया था कि सर्प के क्रुद्ध हो जाने से तरह-तरह की बीमारियाँ आ जाएँगी तथा ऐश्वर्य का नाश होगा और संतानों को हानि पहुँचेगी। इतना ही नहीं नागपूजा से सभी प्रकार के ऐश्वर्य की कामना भी ये लोग रखते थे। इसी प्रकार के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हिन्दू घरानों में नागप्रीति के लिए वृक्ष-लताओं से भरपूर कुछ ज़मीन नागों के निवास के लिए छोड़ देते थे जिसे 'सर्पक्कावुं' कहते हैं। यद्यपि प्रादेशिक भिन्नता होने पर भी अंतिम रूप से इन अनुष्ठानों का उद्देश्य एक ही है। ब्राह्मण लोगों की' सर्पबलि' 'तेय्यम् पाटियों' का 'नागप्पाट्टुं' (नागगीत) 'मण्णान' लोगों के 'कुरुंतुनिप्पाट्टुं' 'पुळ्ळुवन' लोगों के 'सर्पप्पाट्टुं', 'मुन्नूट्टान' 'वण्णान' 'पुलयर' आदि के द्वारा प्रस्तुत 'नागत्तोऱ्ऱम्' आदि इसके उदाहरण हैं

नागगीत की प्रस्तुति के लिए 'कळम्' तैयार करते हैं। 'कळम्' नागों के विभिन्न आकार एवं स्वरूपवाले चित्र तैयार करते हैं जिन्हें 'नागक्केट्टुं' भी कहते हैं। नाग से संबंधित गीतों के अनुसार कन्याएँ नृत्य करते हुए इन चित्रों को मिटा देतो हैं। नागों को दूध का नैवेद्य देने की रीति भी है। एक मशहूर 'नागत्तोऱ्ऱम्' का एक अंश नीचे दिया जाता है जिससे इसप्रकार गीतों का परिचय हो जाएगा।

"अंडमाय ञान तन्निलिरुन्नोरु कालम्

आनन्दशक्ति तन स्वरूपम् तोन्नि

अंडत्तिल निन्नुटनुद्भविच्चुंडाया

आकाशवुम् भूमियुम् रण्डायिप्पिरिन्जल्लो

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 32

उण्डाई भूमियिल नागड्ड्ळेल्लामे
कूटेरे चोल्लेन्डे नागक्कन्नी!
ओन्नांत्तिक्कळिलोरु रूपमायी
रण्डांत्तिक्कळिलोरु रूपमायी
मून्नांत्तिक्कळिल मुट्ट विरिञ्ञु
नालांत्तिक्कळिल नागरसमोति
अंचात्तिक्कळिल नञ्ञुमतेररु
आरांत्तिक्कळिलमृतुमतेट्टु
एषात्तिक्कळिलेषन्नु मुषड्ड़
एट्टांत्तिक्कळिल ञेट्टियुणर्न्नु
ओंपतांतिक्कळिल ओतित्तेळिन्जु
पत्तांतिक्कळिल पाल्क्कटल पूकि।"[1]

यहाँ अंडों से नागों की उत्पत्ति के बारे में वर्णन किया गया है। अंडे के रूप में रहते समय, आनन्द शक्ति का रूप महसूस हुआ। अंडे से आकाश और भूमि उद्भूत हुए। भूमि सब नाग हुए, हे कन्या नाग, कह। प्रथम दिन में एक रूप हुआ। दूसरे दिन दो रूप बने तीसरे दिन अंडा फूट पड़ा। चौथे सोमवार को नाग ने नहा, पाँचवें सोमवार को रूप बदला, छठे सोमवार को अमृत स्वीकार किया। सातवें सोमवार को गूँज उठा। आठवें सोमवार को कांपकर उठा। नवें सोमवार को बोलने लगा और दसवें सोमवार को क्षीर सागर में घुस गया।

कहा जा सकता हे कि भारत का इतिहास नागों और नागकथाओं का विश्वकोश है। अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए नागपूजा अब भी चलती रहती है। केरल में दो मशहूर नाग मंदिर है मण्णार्शाला और पांपुमेक्काट्ट। इन मंदिरों में मनौती चढ़ाने के लिए माघ और फागुन महीनों में हज़ारों श्रद्धालु आते हैं। मण्णर्शाला में पूजारिन एक इल्लम (नंपूतिरियों का घर) की सबसे बूढ़ी महिला है। उसका आशीर्वाद लेना ही अहोभाग्य समझनेवाले भक्त होते हैं। नागपूजा के लिए केरल में विशिष्ट पूजाक्रम है।

4.18.1.6. गोदावरी तोर्रम्

केरल की सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशेषताओं की ओर पर्याप्त प्रकाश डालनेवाला एक मशहूर लोकगीत है 'गोदावरी तोर्रम्' जिसे 'मलयन तोर्रम्' भी कहते हैं। गोदावरी का अर्थ है गायों

1. चिरक्कल टी बालकृष्णन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-1-पृ. 78-78

का झुंड। नायर जाति के अंतर्गत एक उपजाति है 'मणियाणिमार' अथवा 'कोलायन्मार' जिसका रोज़गार गायों का पालन-पोषण, दूध, दही और मक्खन के व्यापार से चलता था। वे मकान बनाने में भी मदद करते थे। कहा जाता है कि गाय के चारों थनों में से एक बछडे को, एक देवता के और दो मालिक को है।

'गोदावरी पाट्टुं' (गीत) के बारे में एक किंवदंती और भी है कि ये 'कोलायन्मार' गोदावरी नदी के किनारों से गायों को लेकर उत्तर केरल में आकर बसने लगे थे। उनके देश को कोलत्तुनाटु नाम आया। कहा जाता है कि 'कोलायन्मारों' के मुखिया कोलवंश का संस्थापक है। 'कोलायन्मार' गायों की पूजा करते थे। इस दृष्टि से गोदावरी गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गोवृद्धि के लिए जो पूजा की जाती है तब ये गीत गाए जाते हैं। इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है।

"नारायणा हरिनारायणा
वासुदेवायेन्नुँ कैतोषुन्नेन
गोतावरिन विळि मकळे
कोयिलमारुन्नु पटिप्पोरयिल
शंकियाते पोय विळि मकळे
ओन्नु विळिच्चुटन रंडामतुम्
गोतावरियेन्न पय्युम् वन्नु ;
आलप्पुरक्कड्ड्टुत्तार तोषि़
किंडियिल वेळ्ळवुम् पालक्कुरि्रयुम्
ताणुटन नोक्कुंपोळ नाले मुला,
ओन्नु कुटिक्कुम् कटच्चिक्कल्लो
ओन्नड्ङ्टुते देवन्मार्क्कुम्
मून्नुम् नालूम् कुट्टियाळ करन्नु
वेळ्ळिक्कलत्तिलो पालु काच्चुन्नु
पोन्नुम् तळिकयिल पालु तणिच्चु
चीनी पंचारयुम् पारि़र पालिल्
चिन्नंपष़वुम् चिरटि कूट्टि
कामनु पालमृतुम् ओरुक्कि
कामन वेरुंपोळ चमयमेन्तुँ
पोंतोप्पियुम् पोन्निन्टालवट्टम्

तत्तिकयुम् तष वेंचामरम् ,
कामनुम् वन्नु पटि कयरि
कामन्टे मुंपिल पालु तणिच्चु
कामनेट्टुत्तङ्ङमृतुं चेय्तु
कामन्टे पैदाहम् तीर्न्न पोले
इस्थलम् नन्नायि कुळिर्न्निरिक्क
कन्नोट्टु कालि गुणम् वरिका
पैतंङ्ङलोक्कयुमेर्‌र्‌म् वाष्‌का
नारायणा हरिनारायणा
वासुदेवायेन्नुम् कैतोषुन्नेन''[1]

इसका मतलब है - पहले भगवान नारायण की वन्दना करते हुए अज्ञात कवि कहता है कि हे बेटी गेदावरी को ले आओ (गोदावरी गाय का नाम है) घर के द्वार गृह में कोमलियार आए हैं। जल्दी गाय को लो आओ। जल्दी गोदावरी लायी गई। दासी दोहन का पात्र लायी साथ हो पानी का बर्तन भी लाया गया। गाय के चार थन हैं। एक बछड़े को पीने के लिए नियत है। दूसरा देवार्पण के लिए, बाकि दोनों का दूध दासी ने मालिक के लिए दुहा। चांदी के बर्तन में दूध उबाला। सोने की तझरी में दूध डालकर, शक्कर मिला दिया। इसके बाद केले के फल भी ले आयी। तदनन्तर ये सब कामदेव को नैवेद्य के रूप में रखे गए। कामदेव के स्वागात केलिए सोने की टोपी 'वेंचामरम्','आलवट्ट्म्'आदि से सजावट की गयी। कामदेव आया और उसने दूध का पान किया। कामदेव की प्यास बुझ गयी। जिसप्रकार कामदेव प्रसन्न हुए है उसी के समान इस घर में सभी प्रकार के ऐश्वर्य हो, गायों की वृद्धि हो। हे भगवान ऐसा वर दो।

जैसे पहले कहा गया है, इसे 'मलयन तोऱ्ऱम्' भी कहते हैं। गीत में लय रहता है। कई तरह के बाजे बजाकर इस तरह के गीत गाए जाते हैं। इन गीतों से यह भी माना जा सकता है कि केरल की संस्कृति में गायों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है।

यहाँ केरल के प्रमुख धर्मपरक गीतों (तोऱ्ऱम् गीत) का उल्लेख किया है और यह देखा भी जा सकता है कि इन गीतों का केरलीय जीवन में बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है, अब भी पड़ता है। जो इन गीतों से प्रभावित होता है उसके जीवन का हर पल इन गीतों में वर्णित विश्वासों से परिचालित है।

1. चिरक्कल टी बालकृष्णन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ - भाग -1 पृ. 291-292

4.18.2 केरल के जातिपरक गीत

कुछ गीत ऐसे भी हैं, जो किसी जाति विशेष की धरोहर होते हैं। ये गीत परंपरागत रूप से एक ही जाति के लोगों के द्वारा गाए जाते हैं। जैसे दीपावली के बाद गोधन की पूजा होती है और गोधन को जगाने का कार्य अहीर जाति बरधिया (चरवाहे या ग्वाले) के द्वारा होता है। वे गोधन पूजा के अगले दिन लोगों के घर जाते हैं और गोधन संबंधी गीत गाते हैं। भेंट स्वरूप उन्हें खील, खिलौने तथा पैसे मिलते हैं। इस प्रकार हर प्रांत की ऐसी कुछ जातियाँ है, जिनके अपने निजी गीत है तथा उन गीतों को गाने का उनका अलग-अलग ढंग है। फुरसत के क्षणों में या किसी विशेष अवसर पर ये गीत गाए जाते हैं।

केरल की विशिष्ट सांस्कृतिक परंपरा के कारण यहाँ इस प्रकार के गीत गानेवाली विभिन्न जातियाँ हैं, जिनका रहन-सहन, संस्कार प्रथाएँ और गीत-नृत्य आदि नितांत पृथक है। इन जातियों के गीत बडे ही मधुर तथा मनोरम होते हैं जिनसे इनकी संस्कृति के ऊपर प्रचुर प्रकाश पड़ते हैं। यहाँ इन्हीं जातियों के गीतों का अत्यंत संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

4.18.2.1. वेलन पाट्टु (वेलन जाति के गीत)[1]

केरल में वेलन जाति के लोगों के द्वारा भूत-प्रेतादि की बाधा दूर करने की क्रिया को 'वेलन प्रवृत्ति' कहते हैं। 'वेलन' को छोड़कर 'पाणन' 'मण्णान' आदि जाति के लोग भी यह कर्म करते हैं। उन्होंने इन कर्मों के लिए मलयालम में मंत्रादि को रचना की है। आज भी कुछ लोगों का विश्वास है कि किसी दुश्मन उसके घर के आँगन में या अहाते में मनुष्य की हड्डी, मुर्गे का सिर, मनुष्य का बाल आदि छिरकर मिट्टी खोदकर रख देता है तो घरवालों की बुराई होती है। इस नोच कर्म को 'क्षुद्र' रखना कहते हैं। 'क्षुद्र' से बचने के लिए 'पिणिप्पाट्टु' गाए जाते हैं। मनुष्य का यह अंधविश्वास है कि कुछ लोगों की जीभ से अपने बारे में, या बच्चों या स्त्रियों के बारे में अच्छी बातें निकलती हैं तो वे वचन उनके लिए हानिकारक होंगे। उसे ''नाविन् दोषम्'' (जीभ की त्रुटि) कहते हैं। उसे दूर करने के लिए भी वेलन गीत गाते हैं। आज भी ऐसा माना जाता है कि जब ये वेलन आते हैं और गीत गाते हैं तब घरवालों का सब संकट दूर हो जाता है। किसी ने क्षुद्र किया है तो उससे घरवालों को बचाने के लिए वेलन उस घर में आता है और अपने नगाडा जैसे वाद्य बजाकर गीत गाता है। संध्या होते ही मिट्टी खोदकर 'क्षुद्र' (हड्डी, मुर्गे का सिर, बाल आदि) निकालता है। विश्वास है कि इसके घरवालों को किसी प्रकार का भौतिक या दैहिक दुख न होगा।'वेलन प्रवृत्ति' शीर्षक एक गीत में वेलन की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है। एक बार महाविष्णु को असुरों से शत्रु दोष हुआ। तब उसको दूर करने के लिए शिव ने वेलन

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 93-133

का वेश धारण किया और विष्णु का दोष दूर किया। इस गीत एक अंश नीचे दिया जाता है। गीत के आरंभ में वेलन द्वारा गणेश आदि देवी-देवताओं की वंदना की जाती है।

आलमुण्डोरु नीलकंठनो-
रानयायि नडन्न नाळ्
अचलमलमकळ पिडिवटिवतायी-
ट्टवर्कल् कळिविळयाटिनार
कुंभिवेषमोटन्नॅु वन्नॅु
पिरन्न वराण वक्त्रनॅु
कुतुकमोडु पल कनिकळषकोटु
तरुवनडियनितादराल्
इंपमोडु नुकर्न्नु मानस-
कंपमुळ्ळताकट्टुवान
तेळिवोटुरु वरमरुळुक
मुरहरचरितमुरचेय्युवान् [1]

अर्थात् विष खाकर एक दिन नीलकंठ हाथी बनकर वन में निकला। तब पार्वती हथिनी बनकर पास आयी। उनकी क्रीडा से गजवदन का जन्म हुआ। मैं उस गणेश की कई प्रकार के फल बडे आदर के साथ समर्पण करता हूँ। इन फलों को रुचि के साथ ग्रहण कर मुझे ऐसा वर दे ताकि मैं विष्णु भगवान की कीर्तिगाथा गाऊँ।

इसके बाद सरस्वती की वन्दना की जाती है, जैसे

"वाणिमात सरस्वती मटियाते नाविलुदिक्कणे
मनस्सु तेळिवोटु सकल गुरुवरन्मामररुम् ऋषिमारकळुम्
असुररोटति चतिवुकोण्ड-
वरमृतपहरिञ्ञतु कारणाल
अतिनुपषिपोटियाभिचारकम् चूर्णम् चेय्तासुरादिकळ्
असुरर चेय्तोरु शत्रुयेरु मयङ्ङियबुजलोचनन
असुररा विनयतु करुतियमरकलुम् विषण्णारतायुटन
माधवन पिणिपेट्टा वार्ता
यरिञ्ञु महामुनिमार्कळुम्

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 95

मनस्सिलषलोटु मारावैरी
विरिन्जनुम् वन्नेत्तिनान्
विष्णु रोगमकर्‌रुवान क्रिया
ओट्टु चेर्तु निष्फलम् ।"[1]

अर्थात् - वाणी माता सरस्वती मेरी जीभ पर उदित हो। प्रसन्न चित्त सब गुरुजनों और ऋषिजनों की कृपा से विष्णु ने धोखे से असुरों से अमृत का अपहरण किया। इसके बदले में असुरों ने आभिचार कर्म किया और जिससे महाविष्णु बेहोश हो गए। देवताओं को मालूम हुआ कि यह असुरों का कुकर्म है। माधव को लगी भूतबाधा से दुखी होकर शिव और ब्रह्मा आए। विष्णु को रोग से मुक्ति दिलाने के लिए खूब परिश्रम किया, परंतु सब बेकाम हुआ।

उनको मालूम हुआ कि विष्णु को आभिचार दोष से मुक्त करने के लिए वेलन को बुलाना चाहिए। षण्मुख ने ज्योतिष देखकर कहा जल्दी वेलन को बुलाए

"अभिचारमोषिच्चुकोळवतिनाय् वरुत्तुका वेलने ।"[2]

पार्वतीवल्लभ शिव ने वेलन का रूप धारण किया और अभिचार का कर्म आरंभ किया।

"वेण्मयेरिय नीरु तेच्चु
मर्‌च्चु देहमशेषवुम्
चन्दनक्कुरियिट्टु पोट्टुकळ
तोट्टु पट्टुकळ चार्तिनान्
चन्तमुळ्ळ गलत्तिल माल-
यणिन्जु शंकरनारुटन।
गंगयुम् मलमातुमोत्तु नटन्नुटन
वेयिलन्तियाय्
गणपतियुमरुमुखनिरुवरुम्
इळयवेलनमारकळाय्
दंतशोधनचेय्तु, पोट्टुकळ
तोट्टु मिषियतिल मषिकळुम्
कातिलोलयणिन्जु मालकळ

---

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 95

2. वही -पृ.97

तोलयुम् कटकङ्ङळुम्
पोकयेन्नु नटन्नुभूत-
गणत्तेयुम् पुऱङ्ङाटियाम् ।"[1]

इसका मतलब यह है कि वेलन रूपी शिव ने श्वेत भस्म से अपने शरीर को टांक लिया। माथे पर चंदन का तिलक लगाया और रेशमी कपड़े पहने। अपने सुन्दर गले में मालाएँ पहनी। गंगा और पार्वती भी वेलन के रूप में सज्जित हुई और शिव के साथ जाने लगी। सांझ हो गया। गणेश तथा सुब्रह्मणियन ने छोटे वेलन का रूप धारण किया। दांत मांझन करके, चंदन का तिलक लगाकर, आँखों में काजल लगाकर कानों में कर्णभूषण पहनकर, मालाओं से सज्जित होकर निकले। तब वेलन रूपी शिव अपने भूत गणों को साथ लेकर निकले।

आगे अज्ञात कवि वेलन कर्मों को यों समझाते हैं

"भक्तियोटु मनस्सु नण्णि-
युऱच्चु निन्निटु सेवकर
भारतम् पऱ शंखु कोम्पुमताय्
अटुत्तितु वेलनुम्
शक्तनाम् निलवय्यानारुटे
मेय्यिल विट्टितु पे कलि
शंभु नन्दनन मेय्यिल वारि-
येऱिञ्ञु वित्तिनेयालुटन
चेन्नु कुऱिऱयषिच्चु वच्चु
वणङ्ङि निन्निटु सेवकन
वच्च शत्रु एटुत्तु कोळका-
येन्नु देवकळ चोल्लिनार
विट्ट वित्तु शरङ्ङलुम्
कोटुत्तीटिनान नाळिकेरवुम्
चपलतकळ कूटाते तुळ्ळि
हितत्तोटङ्ङु पऱञ्ञुटन
चन्तमोटिव वच्चितङ्ङु

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 96-97

कषिच्चु तन्रुटे कर्मवुम्
बाधकूटियिरुन्रु मारणमवन
शिरस्सुमेट्टुत्तुटन
शंकरन पिणि तीर्तु काप्पुम्
इरुत्तु देवकळप्पोषे
शंकयोक्केयोषिच्चु यात्र-
ययच्चु देवकळादराल
अन्रु माधवनेररोरु
निरुनाविन दोषमतोक्कयुम्
शूलधरनतु तीर्त्तपोले
इविटे ओति ञान तीर्क्कुन्रेन ।"[1]

इसका संक्षिप्त अर्थ यह होता है कि सेवक भक्ति के साथ विश्वस्त होकर खडा रहा। तब वेलन तरह-तरह के बाजे बजाकर बेहोश विष्णु के पास आया। उसने विष्णु के शरीर से दुर्देवताओं को दूर करने के लिए उसकी देह पर चावल के बीज फेंके। उस समय सेवक ने ज़मीन पर खूंटि निकालकर वेलन की वन्दना की। देवताओं ने कहा: अब विष्णु के शरीर से दोष को दूर करो। उन्होंने वेलन को चावल, बाण और नारियल के फल दिए। वेलन कूद-कूद कर दोष दूर करने हेतु अपने कर्म करने लगा। भूमि में छिपाए रखे सिर के बाल आदि निकाल दूर फेंका। वेलन रूपी शंकर ने भूत-बाधाओं से विष्णु को मुक्त किया। माधव को जो जीभ का दोष हुआ, उसे जिस प्रकार वेलन ने दूर किया, आज मैं उसी प्रकार जपजपा करके इसके दोषों को दूर करता हूँ।

वेलन के गीतों में 'दशावतार कथा' 'प्रह्लादमोक्षम् कथा' 'कुचेलमोक्षम् कथा' आदि भी प्रमुख है। वेलन भूतबाधा दूर करने के लिए जो पूजा पाठ करता है, इसका वर्णन 'वेलनप्पाट्टु' में मिलता है। वे लोकगीतों की सभी खूबियों से संपन्न है। भाषा की ऋजुता, सरलता आदि की दृष्टि से वेलन के गीत बहुत आकर्षक है।

एक उदाहरण देखिए

"मलमकळ तानुम् पिन्ने मारारी तुणक्केनिक्कु
अलरमकळ गरुडराजननन्तरम् वेदव्यासन
निनविनु गणेशन तानुम् गुरुक्कन्मार परदेवतयुम्

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 98

वेलन्टे पिऱवि चोल्वान विरवोटु तुणक्केल्लोरुम्
एल्लारुम् चमञ्ञु भंगियिलेन्नुटे अरङ्ङत्तेत्तिप्पोळ
नल्लोरोट्टेऱेयुण्टु नायन्मार नारिमारुम्
चेल्लषम् कवितक्कार चोऱकुऱरमरियुन्नोरुम्
मानसम् कोटुक्कुमारु मऱरोरु कुरुमार कूट्टम्
पानक्कु[1] पर परत्वम् परत्वम् पंडिवर्क्किल्लयेन्नुम्''[2]

अर्थात् पार्वती, शिव, लक्ष्मी, गरुड़राज, वेदव्यास, गणेश और गुरुजन मुझे अनुग्रहीत करें ताकि मैं वेलन के जन्म की कथा कहूँ। सब सज धजकर मेरे सामने हैं। सज्जन हैं, नारियाँ हैं, कविजन हैं और हमारे दोषों को समझनेवाले भी हैं। अच्छी तरह हम सबका आदर करते हैं। 'पाना' के लिए हम सब मिले।

वेलन शिव की प्रार्थना करता है। इन गीतों में दीप जलाकर, पूजा का आरंभ करना, नैवेद्य चढ़ाना, पुष्पों से अलंकृत करना आदि सब होते हैं। देव प्रीति के लिए दुष्ट संहार के लिए, वेलन एक दिन से लेकर सप्ताह भर तक पूजादि करते हैं।

4.18.2.2 पाणन पाट्टुं (पाणन के गीत)[3]

'पाणन्मार' 'वेलन' जाति के जैसे एक जाति विशेष हैं। ये लोग एक विशेष प्रकार का ढ़ोले बजाकर देवताओं की प्रार्थना के गीत गाते हैं। वे हिन्दू घरों में विशेषकर 'नायर' जाति के घरों में आकर यह बाजा बजाते हैं और गाते हैं। ये लोग बहुधा श्रावण और भाद्रपद महीनों में घर-घर आते हैं। इनके बाजे को मलयालम में 'तुटि' कहते हैं। पाणन जाति के गायक सूर्योदय के पहले आकर घर के आंगन में बैठते हैं और घरवालों को जगाते हैं। ये गीत प्रायः पुराणों से संबंधित होते हैं। कृष्णलीला, पूतना मोक्ष, रामायण कथा, क्षीर सागर मंथन, 'तिरुवरकन पाट्टु' आदि गीतात्मक ढंग से सुनाते हैं।

कृष्णलीला में कृष्ण के बचपन की लीलाओं का उल्लेख है। नमूने के लिए गीत का एक अंश देखिए -

''पुलर्शा वरुत्तुवेन ञान
आयार कुलत्तिलेक्कुं
भूतलम् तन्निलुळ्ळ
मालायालीशनाक्कु

1. पाना - 'पाना' कर्म के लिए हल्दी, चुनाम, शक्कर आदि मिलाकर जो तरल पदार्थ तैयार किया जाता है उसे 'पाना' कहते हैं।
2. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 118
3. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 67-91

चुऴरि़य कारकुऴलु-
अऴिञ्ञिट्टु मेय्वु चेर्न्नु
पोवुन्न बालकनो
पोयि वरुन्नुंडल्लो
एन्टे मकनिनी ञान
एन्तु कोडुप्पतेन्नु
अम्मयकत्तु चेन्नु
नालार पऴमिरिञ्ञु
किण्णत्तिल पालुम कोण्डु
वच्चाल कुडिक्कयिल्ल
कोप्पोट्टु नोक्कि नोक्कि
उऱक्कवुम् तूङ्ङी तूङ्ङी,
वेदनप्पेट्टिट्टाणु
पोराञ्ञिरिक्कुन्नुण्णि
अम्मयडुत्तिरुत्ति
अञ्चु रसङ्ङळ कूट्टि
अन्न रसम् कोडुत्तु
आवतु निरकयोळम्
आनकळिच्चिङ्ङने
कूत्ताडिनिल्कुंबऴु
नीलाम्मे निन कृष्णन्टे
शोभितमेन्तु चोल्लाम् !
ञानेन्नुम् पोय् वरुंबोळ
पोऴत्तम् काणिक्करुते
सारम् पऱञ्ञिरुन्नु
नेरमड्डुच्चयायि
पिळ्ळेरु वैकिच्चेन्नु
कालिकळ तामसिच्चु
कालिकळेयडिक्कान

अम्मयाराञ्ञु पोयी
अम्म पोयोरु शेषम्
पय्येप्पुर तुऱन्नु
पय्येप्पुर तुऱन्नु
उऱियेल्लाम् नोक्किकोण्डु
नालञ्चुऱिक्कलत्तिल
पालु-मोर-वेण्णयुण्टु
नालुपेरक्केत्तयिल्ल
नालुपेरक्केत्तयिल्ल
पालु-मोर-वेण्णयिंकल
अड्ड़ने तूक्किवच्चुं
पक्किले नोक्कि निन्नु
एतुमे मोशमिल्ला
पय्येयुरळुरुट्टि
कोण्डु चेन्निट्टुम् कोण्टुं
पलक वच्चतिन् मुकळिल
पीठम् वच्चतिन् मुकळिल
वाल किण्डि तन मुकळिल
चविट्टिक्करेरि निन्नु
कुष़लु कोण्डोन्नु कुत्ति
पाल्कलत्तिन्टे कीषि़ल
गोविन्दन वा पिळर्न्नि-
ट्टाकवे कुटिच्चु तीर्त्तु
ओन्नोण्डतिन मुकळि़ल
तिड्ङ्ङ निऱञ्ञिरिप्पु
शर्क्कर तेनिरुन्ना
नक्कुडवुमोषि़च्चु
तानितु काणुकिले
अम्मयार कोन्निटुमे

तल्लियिट्टम्मयारो
कोल्लुमेन्नाकिलय्यो
इन्नेन्टे पशियटक्काम्
अम्मयार वन्निटट्टे"[1]

इस गीत में बालकृष्ण की माखनचोरी का वर्णन है। सवेरे कृष्ण बालकों के साथ गाय चराने जाता है। तब माता सोचती है कि मैं उसको क्या खाने दूँ। सवेरे गोकुल की ओर आनेवाले बालकों के केश बाँधे हुए हैं। माता घर के अन्दर जाकर दस बोध फल और दूध लाती है। लेकिन कृष्ण दूध नहीं पीता। सिर नीचा करके ऊँधता-ऊँधता रहता है। तब माता उसे अपने पास बिठाकर पाँच रसों के साथ भात खिलाती है। भरपेट खिलाकर उसके साथ खेल खेलकर उसे पुचकारती है। माता यह कहकर जाती है कि मेरे आने तक कोई नटखटपन न करना। दोपहर हो गया तब माता गाय की खोज में घर से निकली। माता के जाने पर कृष्ण ने धीरे-धीरे कमरा खोला और देखा कि ताक् पर दूध, मट्ठा और मक्खन के घड़े लटक रहे हैं। ताक् इतना ऊँचा है कि हाथ नहीं पहुँचता। तब ऊखल लाकर घड़े के नीचे रखा। फिर भी पहुँचता नहीं तो उस पर फलक रखा और फलक पर पीठ भी। उसके बाद उस पर चढ़कर अपनी मुरली घड़े पर मारा तो दूध बहने लगा। तब मुँह खोलकर सारा दूध पी लिया। इसके बाद ताक् पर रखा हुआ मधु भी पा लिया। इसके बाद सोचा कि माता आकर देखेंगी तो मार खाना पडेगा। जो भी हो, मैं पहले अपनी भूख मिटा दूँ।

यह गीत सुमधुर एवं सुग्राह्य है। सुग्राह्यता पाणन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है।

4.18.2.3. कुऱवर पाट्टु (कुऱवर जाति के गीत)

'कुऱवर' एक तीसरा जाति विशेष है। इनके गीत मधुर एवं मनोरंजक है। इन गीतों में भी केरल की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का परिचय मिलता है। हिन्दू जनता कोई भी कार्य प्रारं भ करने से पहले ईश्वर की वंदना करती हैं। इसके लिए 'कुऱवर' जैसी जातियों के लोगों को घर बुलाकर ईश्वर वन्दना करने की प्रथा प्रचलित है। देवी पूजा हो या श्रीराम पूजा सर्वप्रथम गणपति को नैवेद्य चढ़ाते हैं। फिर पूजा का श्रीगणेश करते हैं। 'कुऱवर' भी प्रार्थना शुरु करने के पहले गणेश की प्रार्थना के गीत आलापते हैं

"आनमुकवन गिणपथी वाषुका
आयानुम् वाषुका तैवम्-वाषुके-तै
तानत्तन्नेन, तन्नाना, तन्नाताना
तानत्तन्नेन, तन्नाना, तन्नाताना

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 72-74

नाणिच्चु ञङ्ङळ कळिक्कानिऱङ्ङुम्बोल
मानिच्चिरिक्कुन्न लोकर वाष्कै   तै (तानत्तानेन)
देवनुम् पूमलरिट्टु वणङ्ङुन्नेन
तैवम् तुण नमुक्कोन्नुम् वरिक   तै (तानत्तन्नेन)
ऊनमिल्लातुळ्ळोरु नाटु विळङ्ङुक
उत्तमरायुळ्ळोरु वेदिकर वाषुक   तै (तानत्तान्नेन)[1]

अर्थात् - हाथी का मुँहवाला गणपति की जय हो, मेरे गुरुवर की जय हो। (आगे विशेष तान लगाते है।) जब हम खेलने निकलते तब दर्शक गण की भी जय हो (विशेष तान) देव को पुष्प चढ़ाकर वन्दना करते है। देव, हम पर कृपा करे (विशेष तान) यह देश भी शोभित रहे, वेदज्ञ भी शोभित रहे। (विशेष तान)

जाति गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये गीत जाति विशेष की धरोहर होती है। ये गीत परंपरागत रूप से एक ही जाति के व्यक्तियों के द्वारा गाए जाते हैं। इस प्रकार जनपद में कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जिनके अपने निजी गीत हैं तथा उन गीतों को गाने का उनका अलग-अलग ढंग है। फुरसत के क्षणों में या किसी अवसर विशेष पर ये गीत गाए जाते हैं। आगे कुछ ऐसे जाति गीतों का उल्लेख किया जा रहा है।

4.18.2.4 पुलयर पाट्टुं (पुलयर जाति के गीत)

केरल की प्राचीन तथाकथित अस्पृश्य जातियों में पुलयर प्रमुख है। बहुधा केरल के खेतों में काम करनेवालों में पुलयर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः खेती संबंधी गीतों में ज़्यादातर इनके द्वारा गाए जाते हैं। इनके गीतों को कृषि गीतों के अन्दर भी रखा जा सकता है। पुलयर गीतों का नमूना देखिए -

"नेरम् वेळुत्त नेरत्तिलल्ल-त्तंपुरान वन्नु विळिक्कुन्नु
अरुकरुक, चेरुकरुक, वित्तुवारियळन्नु
मुत्तिमार्कुम् मुतुमिमार्क्कुमोन्नर वित्तु कूलियुम्
कुञ्ञुळ्ळोरु तळ्ळमारिक्कंजाष़ि नेल्लु कूलि
ओरूतरप्पटि पेण्णुङ्ङळक्केल्लाम् चंकाष़ूरिनेल्लु कूलियुम्
मुत्तिमारुम्, मुतुमिमारुम् विऱकुचूट्टु पेरुक्कुन्नु
कुंजल्लोरु तळ्ळमारेल्लामे पाटिप्पोकुन्नु
ओरुतरप्पटि पेण्णुङ्ङळेल्लाम् चतुर भंगि नोक्कुन्नु"

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 136

अर्थात् सवेरे-सवेरे खेत का मालिक झोंपड़ी में आकर पुलयों को पुकारते है। पुलयर बाहर आकर इकट्टे हो जाते हैं और मालिक के खलिहान में जाकर बोने के लिए तथा मज़दूरी देने के लिए चावल नापकर ले लेते है। बूढ़े और बूढ़ियों के लिए डेढ़ मन बीज मज़दूरी, संतानवाली औरतों को पाँच सेर चावल मज़दूरी दी जाती है। बूढ़ो औरतें नारियल में सूखे पत्ते बटोरते हैं। संतानवाली औरतें गा-गाकर जाती हैं। समान उम्रवाली युवतियाँ चारों ओर का प्राकृतिक सौंदर्य देखकर चलती है।

पुलयरों का एक अन्य गीत निम्नलिखित है। इसको प्रायः पुरुष ही गाते हैं। यह एक मनोरंजन प्रधान गीत है जिसका कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता

"इन्नलयेनोरु चोप्पनम् कन्टे
पाळ पयित्तु चणङ्ङोटे वीणे
पेय्यान्टेनिक्कोरु पोयित्तम् पच्ची
पाच्चोरेन्नुम् चोल्लि पयंतोट्टम् तिन्टे
ञानुमेन्टळियनुम् कळि कामान पोये
अविटेवेच्चळियने वेयमूक्कन तोट्टे
अविटुन्नेन्टळियने केयक्कोट्टेटुत्ते
अविटुत्ते वेयवारियविटयिल्लाञ्ञु
अविटुन्नेन्टळियने तेक्कोट्टेटुत्ते
अविटुत्ते वेयवारियविटेयिल्लाञ्ञु
अविटुन्नेन्टळियने कुयिक्कोट्टेटुत्ते
तेक्कु वटक्कायि कुयियङ्ङु वेट्टि
अविटुन्नेन्टळियने कुयियिलुम् वच्चे"[1]

इसका मतलब हे कि मैंने कल एक सपना देखा, सपने में सुपारी के पेड़ से सूखे पत्ते आदि गिर पड़ते हैं। पिछले वर्ष मुझे एक बेवकूफी का फल भोगना पडा। खीर समझकर मैं ने मल खाया। मैं और मेरा साला खेल देखने गए। खेल के मैदान में साले को विषैले साँप ने डस लिया। इलाज के लिए साले को पूर्व की ओर ले गया लेकिन विष वैद्य वहाँ नहीं था इसलिए उसे दक्षिण की ओर ले गया जहाँ दूसरे विष वेद्य रहता था। परंतु वह भी वहाँ नहीं था। तब मैं मृत साले को गढ़े की ओर ले गया और उसमें दफना दिया।

पुलयर जाति के इस प्रकार के बहुत सारे गीत केरल में प्रचलित हैं

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 327

4.18.2.5 मार्गम्क्कळि पाट्टुकळ

'मार्गम्कळि' नामक नृत्य के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को 'मार्गम्कळि पाट्टुं' या गीत कहा जाता है।[1] ईसाइयों के विवाह के अवसर पर ये गीत प्रायः गाए जाते हैं। इसलिए इन्हें वैवैहिक गीत भी कहा जा सकता है। विवाह की पूर्व संध्या पर खासकर ये गीत गाए जाते हैं। उसमें से एक प्रसिद्ध गीत नीचे दिया जाता है। इसका उद्देश्य केरल में ईसाई धर्म की स्थापना करनेवाले 'मारत्तोमा' का स्मरण करना तथा उनकी कृपा माँगना है।

"मारत्तोम्मान नन्मयालोन्नु तुटङ्ङुन्नु
नन्नाय् वरणमेयिन्नुँ
उत्तमनाय मिशिहा तिरुवुळ्ळम्
उण्मैयेषुन्नुळ्ळ वेणम्
कन्तीशानायनतेषुन्नळिळ बन्निटु
कर्पूरप्पन्तलकमे
कैकूप्पि नेन्नुं ञान पेर्रु वळर्त्तोरु-
कन्नी मकळे ञान निन्ने
तोळुम्, तुटयुम्,मुखवुम्, मणिमारुम्
योगत्ताले परिशुण्टु
एण्टे मकळे परमेर्री वय्योळम्
एन मनसो पतरुन्नु।
नेल्लुमा नीरुम् परमेरिर वच्चारे
एन मनसो तेळियुन्नु
चेम्पकप्पूविन निरम् चोल्लाम् पेण्णिनु -
चेम्मेयरुळपेर्र पेण्णुं
पेण्णिनेक्कण्टवरेल्लारुम् चोल्लुन्नु-
ईयुलकिलवळक्कोत्तवरिल्ला
नल्लोरु नेरम् मलरक्कोलम् पुक्कारे
नन्नाय्कवेणमितेन्नुँ
कारणमायवरेल्लारुम् कूटीट्टु-
नन्म वरुत्तितरेणम्

1. मार्गम्कळि का उल्लेख पृ .210 में किया गया है।

आलाहानायनुम्, अंय्पन मिशिहायुम्
कूटेत्तुणय्क्कायिवक्कुं ।"[1]

अर्थात् मारत्तोमा के आशीर्वाद प्रारंभ करता हूँ। सब ठीक-ठीक संपन्न हो जाए। श्रेष्ठ ईसा मसीह का आशीर्वाद हो। ईसा कपूर चंदोवे में पधारे। मैं अपनी बेटी की भलाई के लिए प्रार्थना करता हूँ। उसके कंधा, जाँघ, मुख और वक्ष अपूर्व सौंदर्यमय है। अपनी बेटी को शादी के अवसर पर विदा करते समय मेरा मन घबराता है। विवाह की तैयारियाँ करते समय मेरा मन उल्लसित होता है। मेरी बेटी बहुत सुन्दर है और जो भी उसे देखकर कहते है कि उसके समान कोई लड़की नही है। प्रार्थना करता हूँ कि विवाह के शुभ अवसर पर सब कुछ मंगलमय हो। ईश्वर और श्रेष्ठ ईसा मसीह की कृपा सदा उस पर बनाए रखे।

एक अन्य गीत विवाह के बाद का है। विवाह के बाद दुल्हन बहुत श्री संपन्न होकर कमरे में प्रविष्ट होती है। तब सगे संबंधी बन्द कमरे के बाहर खडे होकर जो गीत गाया जाता है उसे 'अटच्चुतुऱप्पाट्टु' (बंद कमरे को खोलने का गीत) कहते हैं।

"मंक तंकुम् मणवऱयिल मणवाळन कतकटच्चु
एंकुम् पुकळ पेऱरोने एन्रुटे मणवळा !
संतोषत्ताल मावितानम् उऱरुटय मंकमारुम्
ताशियोटे नीयटच्च मणवऱेटे वातल चुऱरुम्
पेरारम् पूण्ट पेरुम् तायऱवन्रु वातल मुट्टि
मणिमोतिरक्कैयाले मावि वन्रु वातल मुट्टि
पूमोतिरक्कैयाले नात्तून वन्रु वातल मुट्टि
उऱ्ऱोरु चङ्ङाति वन्रुतियोटे वातल मुट्टि
पेऱऱ नायार मणिविळक्कुम् पिटिच्चु निन्रु वातल मुट्टि
वट्टकयुम् किंटि तराम् वट्टमोत्त तालम् तराम्
पट्टु चेल ञान तरुवेन भंगियोत्त मेलवितानम्
कट्टिल तराम्, मेत्त तराम् कंटिरिप्पान विळक्कु तराम्
इष्टमेरुमेन वकयुम् हितत्तिनोत्तु ञान तरुवेन
ओत्तवण्णम् ञान तरुवेन ओन्निनोन्नुम् कुऱविल्लाते
एन मकने मणवाळा, मणवरेटे वातिल तुऱ।"[2]

---

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङ्ल -भाग-2-पृ. 259-260
2. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 248

इस गीत का मतलब है वधु के कमरे प्रविष्ट होने पर वर ने दरवाज़ा बंद कर दिया। मेरा दामाद तो बहुत ही कीर्तिमान है। मौसी अन्य स्त्री जनों के साथ दरवाज़े के सामने खडी हो गई। बडे हारवाली नानी ने आकर दरवाज़े पर दस्तक दी। सुन्दर अंगूठी पहनी हुई मौसी ने दस्तक दी। ननद ने भी दस्तक दी। बहिन ने दस्तक दी। माँ दीप हाथ में लेकर आयी और उसने फिर दस्तक दी। उसने कहा अच्छी तश्तरी दूँगी, पानी लेने के लिए बर्तन दूँगी, चरपाई दूँगी, बिछौना दूँगी, मसनद दूँगी, रेश्मी कपड़े दूँगी, देखने के लिए सुन्दर दीप दूँगी, जो भी पसंद हो सब दे दूँगी। हे मेरे बेटे, वर, कमरे का दरवाज़ा खोल।

मार्गम्कळिप्पाट्टु के अंतर्गत इसप्रकार के बहुत गीत हैं जो विभिन्न अवसरों पर गाए जाते हैं। इसके कुछ नाम निम्नलिखित हैं-

1. मंगलगीत	मंगलाचरण के गीत
2. मंगल्यम् वट्टक्कळि	सगाई के गीत
3. अन्तम् चार्त्तु पाट्टुँ/चन्तम् चार्त्तु पाट्टुँ	हजामत का गीत
4. मयिलांचिप्पाट्टुँ	मेहन्दी का गीत
5. अयनिप्पाट्टुँ	विवाह के दिन वर की बहन एक प्रकार का पकवान (अयनि) लेकर गिरिजाघर जाती है, उस अवसर पर गानेवाले गीत।
6. नल्लोरोरोशलम् पाट्टुँ	शादी के बाद दूल्हा और दुल्हन को मंडप में बिठाकर गानेवाला गीत
7 वाटिमनम् वट्टक्कळि पाट्टुँ	शादी के बाद दूल्हा और दुल्हन को मंडप में बिठाकर गानेवाला गीत
8. वाष्वु पाट्टुँ	आशीर्वाद का गीत
9. पन्तल पाट्टुँ	शमियान का गीत
10. एण्णाप्पाट्टुँ	- तेल का गीत
11. कुळिप्पाट्टुँ	नहाने का गीत
12. विळक्कु तोटील पाट्टुँ	दीपछूने का गीत
13.अट्च्चु तुऱप्पाट्टुँ	बंद कमरे को खोलने का गीत

इन सभी गीतों के गाने का अलग-अलग ढंग होते हैं। इसके लय और तान प्रसंग के आधार पर बदलता रहता है।

4.18.2.6 माप्पिळ पाट्टुं (मुसलमानों के गीत)

'माप्पिळ पाट्टुं', मलबार के मुसलमानों के मनोरंजन के लोकगीत हैं। इन गीतों में अधिकतर 700 वर्ष पहले मौखिक रूप से प्रचार में रहे थे। इन गीतों की भाषा ठेठ मलयालम नहीं है। उसमें फारसी, उर्दू, हिन्दी, तमिल, कन्नड़ और अरबी के शब्द भी मिलते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि ये मुसलमान रचयिता उत्तर भारत से लेकर मलबार तक व्यापार के लिए यात्रा करते थे। वे जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ की भाषा के शब्द अपनाकर अपने गीतों में प्रयुक्त करते थे।

सबसे प्राचीन माप्पिळ गीत 'मुहियुद्धीन माला' शीर्षक काव्य माना जाता है। इसका रचनाकाल 1600 ई. माना जाता है। एक संत के बारे में प्रतिपादित अतिशयोक्तिपूर्ण कार्य इसमें आता है। दूसरा एक काव्य 'नूलमाला' है जिसके रचयिता कुञ्ञायन मुसलियार है। इसमें मुहम्मद नबी की कीर्तिगाथा का वर्णन है और 16 इशलों में 666 पंक्तियाँ हैं। मुसलमानों के जीवन की रीति का उल्लेख भी मिलता है। कुञ्ञायन मुसलियार की एक अन्य रचना है 'कप्पप्पाट्टुं' (जहाज़ के गीत)। मानव शरीर को एक जहाज़ से उपमा करके आध्यात्मिक भावों का वर्णन इस गीत में हुआ है।

'माप्पिळप्पाट्टुं' के रचयिताओं में मोयिनकुट्टी वैद्यर का प्रमुख स्थान है। उनका 'बदरुल मुनीर' एक प्रेमाख्यान काव्य है। माहासिले नामक राजा की पुत्री हुसुनुल और मंत्री का पुत्र बदरुल मुनीर बचपन से एकसाथ खेलते रहते थे। जब दोनों जवानी में प्रविष्ट हुए तब यह बाल्य प्रेम अनुराग में परिणत हो गया। लेकिन राजा यह पसंद न करते थे। यही उस काव्य का प्रतिपाद्य है। काव्य चमत्कार की दृष्टि से यह श्रेष्ठ काव्य है। मुसलमान आज भी इसको गाते हैं और भावविभोर हो जाते हैं। माप्पिल गीतों में सर्वप्रधान 'केस गीत' होते हैं। शृंगार प्रधान रचनाओं का प्रारंभ इन गीतों से हुआ। केस गीतों के पहले दार्शनिक और कीर्ति के गीत 'माप्पिळप्पाट्टुं' में आए थे। मोयिनकुट्टि वैद्यर ने शृंगार को माप्पिळ गीतों में स्थान दिया। आज 'ओप्पना'[1] नृत्य विशेष में शृंगार प्रधान गीतों की अधिकता है। केस गीतों का एक विशिष्ट छन्द है, इनको इशल कहते हैं। चमत्कार भंगिमा, इतिहास का गंध, जीवन का सौंदर्य, सामाजिक जीवन का परिदृश्य एवं ठोसपन माप्पिळ गीतों की सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं।

माप्पिळप्पाट्टुं (गीत) के विविध रूपों में 'मालप्पाट्टु' 'किसाप्पाट्टु' 'कल्याणप्पाट्टु' 'तटिउरुट्टिप्पाट्टु', 'विरुत्तड्ड़ळ', 'केस्सुकळ', 'कत्तु पाट्टु', 'नूल माला' आदि प्रमुख है।

1. इसके बारे में पृ .211 में उल्लेख हुआ है।

इन गीतों में इतिहास, धर्म, सभ्यता मुसलमान संप्रदाय में प्रचलित रीतिरिवाज़ सबके महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्राप्त होंगे। पुलिक्कोट्टी हैदर नामक एक गीतकार जिनके गीतों में ग्राम की सादगी, अकृत्रिमता, सहृदयता और पारंपरिक मैत्री के चित्र अंकित है। निम्नलिखित माप्पिळा गीत से यह बात प्रामाणिक होगी। इसका शीर्षक है बेळ्ळप्पोक्कमाला (बाढ़ माला)

"कोल्लम् अरुन्नूर्र मुप्पत्तियारि़ल
वेळ्ळप्पोक्कम् कोन्टुळ्ळाफत-पिण-
न्जल्लो वळरेयिक्कालत्तुं-
कुन्नुम् मलयिटिंजु, कन्जिपोट्टि
मण्णुम् कल्लुम् मणलपाटत्तु चाटि
वन्नेरे नष्टम् वंपादित्तु
तुळ्ळिमुरियाते मारि चोरिन्जु
तारुम् उरङ्ङ-तोटुम् पुषकळुम्
पाटम् निरन्जु रोडुम् कविन्जु वन्नु
पुरयिल कटन्नु, चुमरुम् कुतुन्नु-
पोट्टिप्पोर्लिंतिटे मनमुर्रुंतमन्नांते
मुर्रंतमन्नेतिल वीटुम्पामानम्
ओट्टाके-इट्टेच्चु पोटिट्टे-मुतल
ओट्टुक्कुम् वेळ्ळत्तिलान्टिट्टे
मुट्टिमरम मुळयुम तेरप्पङ्ङल
केट्टिप्पुरक्कल कोन्टोयिट्टे-सर्वम्
केट्टर्रु वेळ्ळत्तिललिन्जिट्टे"

उपर्युक्त गीत में बाढ़ के प्रकोप का यथार्थ चित्रण देखा जा सकता है। वर्ष 636 में केरल जो महाप्रलय हुआ था उसका वर्णन इसमें हुआ है। पहाडियाँ, टीले सब टूटकर नदी में लीन हो गये। घनघोर वर्षा के कारण नदी, तालाब, सड़क सब भर गए। नदी किनारा तोड़कर घर में प्रविष्ट हुई और घर की दीवारें भीगकर गिर गयीं। खेत भर गए और सब कुछ पानी में विलीन हो गये।

केरल में आकर मुसलमान खेती भी करने लगे थे। अतः खेती के संबंध में अनेक लोकगीत यहाँ प्रचलित है। हैदर का एक गीत है - काळपूट्ट पाट्टु (बैल को जोतने की गीत)। गीत इसप्रकार है -

"काळपूट्टिन्टेयतिशयम् पलरुमे
पर्न्जोति पन्टे

कालिकल कोन्टोरु दिनम्
ञान चेन्नणञ्ञुपूति-काल-
आळ एण्णम् अनवधियुन्टु
आके वीति अतिलोरु कुन्टुम्
काळकळ् मऱ्ऱनवधियुन्टु, कन्न्-
ओरु जोडि तेलिच्चु कटन्न्
वटियोळ्ळवरोक्केयुम् बन्नु नुकम्
वेच्चु अमच्चु केणिच्चु तत्तिच्चु-
नेरम् मूलन्टतवरे वटि वच्चुरच्चुवेट्टि कन्निने
निन्नुमिटातिट कोटुक्काते जलड्ड्ळ पारिऱ
चेरि कोळ्ळे अट्टहसिच्चु अटिच्चटिच्चु
पिरियुळ्ळ मुटिक्कोल वटियुम्
ओरो वाल पिरिच्चिट्टु कटियुम्
पूट्टु तीन्नाल मटक्कत्तिनियुम्, पेटि
कटन्निट्टोरु चुऱ्ऱत्तिलोटि, वटि-
युळ्ळवरेल्लारुम् कूटि, केत्ति-
मुऱ्ऱटि परिऱ्टुम् ओऱ्ऱटि मुट्ट-
तच्चुरियल अवनधि पेरि-
तेलिच्चु वरुन्न ओप्पम्
तन्ने पट्टुम्-वळयुम् कोटुत्तिटुन्नुटने।"

यहाँ बैलों के द्वारा खेत जोतने का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत है। बैल का जोतना एक आश्चर्यजनक कार्य है। बैलों को हाँककर हल गले में रखकर, खेत में आता है। फिर कही गड्ढा वाला खेत जोतने लगता है। एक जोडा बैल खेत में उतरता है। कृषक के हाथ में दण्ड है। कभी कभी बैल को मारता है। कभी कभी पूँछ पकड़कर मरोडता या काटता है जिससे कि वे सरपट दौड़कर खेत अच्छी तरह जोते। जोतना पूरा होने के बाद भी बैल डर के मारे एक और चक्कर काटते हैं। जोतना पूरा होने के बाद मालिक की ओर से पुरस्कार भी प्राप्त करता है।

हैदर ने अनेक प्रेमगाथाएँ लिखी हैं। ये प्रेमी-प्रेमिका विवाहित दंपति है। अतः कहीं कहीं उनके प्रेम व्यापार में अविहित कुछ रहता है। लेकिन मुसलमानों के बीच बहुपत्नीत्व की प्रथा प्रचलित है इसलिए

उनका यह अविहित कहा जानेवाला प्रेमव्यापार, अविहित नहीं कहा जा सकता। दैनिक जीवन से ही उन्होंने ये गीत रचे हैं। 'तत्तम्मक्किळियोटु' (तोते से) शीर्षक गीत उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा है

"कट्टिपोन्नारमुखम् कनिंतिपम् कविञ्ञु ञान
कुट्टितत्तम्मक्किळियोटु एन्टे
कारियम पऱयुन्न समयत्तोक्केयुम्
एन्तो वीरियम् पिटिक्कर्न्नेन्नोटु
मट्टिल्ला मुहिब्बेन्नतेर पोट्टि मरञ्ञु
माऱकत्तुदिच्चे पंकज पुष्पम् विरिन्जि-
ट्टूरुऱम् तेनोरुवट्टम् कुटिप्पिक्कान पऱन्जि-
ट्टोन्नुम् मिन्टाते मनम् वेरुते विट्टोषिञ्ञु
निन्नुळ्ळ कारणम् कऱऱोवल्ल मारणम्
चेय्ताणे, सुबहानळ्ळा ! पेशुवलात्
कोण्टिन्नले एशिय व्यसनम् विट्टु पोवकिल्ला-
उऱक्कम्, ऊणुम् ओषिच्चिट्टिरिक्कुन्नितामुषिच्च
मऱरोन्नालेन्ने कुरिपरञ्ञु कोण्टिन्नुम् आळे
चुरिऱक्कुन्नुतु वेटिप्पल्ला, उण्णि मम्मद फसाटुन्नतु
केट्टु मुषियन्टा अम्मातिरिप्पणि चेय्कयिल्ल
परिऱच्चु चाटि मुन्ने परन्जुळ्ळ करारुकळ-
तेरिऱच्चु एन्नु निनक्कन्टा, ओरु
पत्तिनिकळोटुम् न्जान इतेवरे अरमाकुम्
वित्तियासम् काणिच्योनल्ला
कूट्टुकारोटु चोदिक्कामेंकिल पूंकरळे !
कुट्टिक्केन्टेयवस्थकळ अरियालो, तरुले ! "

यहाँ प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है - जब मैं अपने तोते (प्रेमिका) से सब कुछ कह देना चाहता हूँ तो तू क्या मान करती है ? मेरी छाती में प्रेम का बाँध टूटकर बहता है। उसमें एक कमल खिला हे। उसमें से निकले शहद पिलाने की बात कही तो, तू क्यों चुपचाप बैठी है ? यह क्या खतरे का सूचक है? हे अल्लाह! इससे मेरे मन में कितनी पीड़ा है जानती नहीं ? अब तक मैं ने किसी दूसरे से प्रेम नहीं किया। शायद मम्मद ने तेरा कान भरा होगा। लेकिन उस पर विश्वास मत करना। मैं अपने वचन पर

अटल रहता हूँ। अर्थात् तुझे मन से प्रेम करता हूँ। मैंने अब तक अन्य पत्नियों से भेद भाव नहीं दिखाया है। तू अपनी सहेलियों से पूछ, मेरी प्यारी ! तब तू मेरी हालत समझेगी।

मापिल गीतों में 'कत्तुं पाट्टु' (खत गीत) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हैदर का 'मरियक्कुट्टियुटे कत्तु'(मरियक्कुट्टी का खत) प्रसिद्ध खत गीत है। मरियक्कुट्टि का पति मलबार झगड़े के समय बंदी बना दिया गया और बेल्लारि जेल भेजा गया। जेल में उसने अपनी पत्नी के बारे में कुछ अरुचिकर खबरें सुनीं। तब उसने अपनी सास को पत्र लिखकर पत्नी की शिकायत की। उस पर मरियक्कुट्टि ने यह पत्र गीत अपने पति को भेजा

"आलड्ड़ल अरुमुण्टु अलीफुम् 'कुन' इटकोन्टु
अमैत्तेकोन तिरुनामम् वतक्कम् विण्टु स्तुतियाल्
अतुम् सल्ला सलामायुम् मोळितु कोन्टु
बोलुन्नेन इरु कण्णिल मणि मारन हसनकुट्टि
पूमनम् तेलितुणर्न्निटुवान केट्टि कत्ते
पोट्टिटुन्निता स्वंतम् मरियक्कुट्टि
जेलिल निन्नुमे इन्नाळते उम्मक्कयच्चिट्टे
चोट्टुन्टु कत्तिनाल अणयप्पेट्ट व्यसनम्
तीराते एनै दुखक्कटलिल पेट्टे।"

अर्थात् 'कुन' नाम अवकाश के समय खुदा ने इन अठारह लोकों की सृष्टि की। उस खुदा का मैं पहले ही प्रणाम करती हूँ। मेरे प्रिय हसनकुट्टि, तुम्हारे मन प्रसन्न हो इसलिए तुम्हारे नाम में यह पत्र लिखती हूँ। उस दिन तुमने अपनी माँ को पत्र लिखकर मेरी शिकायत की थी, उससे मैं अनंत दुख सागर में पड़ी हुई हूँ।

इस प्रकार शुरू करके वह अपनी ईमानदारी और अपने पति के प्रति एकांत प्रेम का उल्लेख करती है

"अल्ललाये चेरमान्टे चोति केट्टिट्टिल्ले ?
ओक्कयुम् कण्णुम् चेविटिल्लाते काणुम रब्ब
ओनरियाम् एन्निलुंकल मेलिलुळ्ळ हुब्ब
वेक्कमेन्ने पुक्कमिक्कुयिन्न करक्काक्कि
वेत्तिटानपेक्षा विटिक्कम् मतियाक्कि ।"

एक किंवदन्ती है कि चेरमान पेरुमाल नामक राजा अपनी पत्नी के कुतंत्र में पड़कर सेना नायक को फाँसी

पर चढ़ाया। पत्नी सेनानायक पर आकृष्ट हुई। लेकिन वह अपने राजा की पत्नी पर आसक्त नहीं था। तो नाराज़ होकर उसने चेरमान पेरुमाल का कान भर दिया। दंतकथा इस प्रकार आगे चलती है कि फांसी में देवदूत ने उसे सांत्वना दी। इस पर चेरमान पेरुमाल दुखी हुए। हे मेरे प्रिय इस प्रकार दूसरों के दुर्वचनों पर विश्वास न रखना। अल्लाह, मुझे इस दुख के गड़े से निकालो।

'माप्पिळप्पाट्टु' ने मलयालम भाषा को प्रभावित किया है। उनके प्रकरणों की आत्मा और प्रस्तुतिकरण न केरल के कवियों को भी प्रभावित किया है। उनके बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातों को सीधी-सादी शैली में अभिव्यक्त करने को प्रेरित किया है। 'माप्पिळप्पाट्टु' मुसलमानों के सामाजिक जीवन का एक अंग बन गए हैं। वे बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक कई अवसरों पर ये गीत गाते हैं। फलतः उत्तर केरल के अन्य धर्मवाले लोगों में भी इनका प्रभाव देखा जा सकता है।

4.18.3 बालगीत

बच्चों के लिए जिन गीतों का निर्माण किया गया है, वे बालगीत हैं। बालगीतों की सबसे बड़ी विशेषताएँ सरलता, सहजता एवं गेयता हैं। बालगीत उपदेशात्मकता से अधिक मनोरंजक होता हैं। बालगीत भी विभिन्न प्रकार के हैं। लोरियाँ और शिशु गीत इसकी लयात्मकता के कारण बच्चों को आकर्षित करते हैं तो वन्दना गीत, राष्ट्रीय गीत, प्रयाण गीत आदि विशेष प्रवृत्ति को लेकर लिखे गए हैं। वन्दना गीत ईश्वर, गुरुजनों, माता-पिता के प्रति विनय का भाव जगाने, राष्ट्रीय गीत राष्ट्र के प्रति अर्पण मनोभाव जगाने तथा देशप्रेम, एकता आदि को बढ़ाने के लिए लिखे गए हैं। गिनती के गीत बच्चों को मनोरंजन के माध्यम से अंकों से परिचित करवाने के लिए लिखे गए हैं। हास्य गीत एवं खेल के गीत मनोरंजन प्रधान हैं। उपदेशात्मक गीत नाम से हो स्पष्ट है कि उपदेश देने के लिए ही लिखे गए हैं तथा पशु-पक्षियों से संबंधित गीत भी मनोरंजन तथा ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से लिखे गए हैं। यह भी सबसे प्रिय एवं पुराना विषय है। संक्षिप्त रूप में बालगीत की प्रमुख प्रवृत्तियाँ मनोरंजन, उपदेशात्मकता, कल्पनाशीलता की वृद्धि, जिज्ञासा की तृप्ति, यथार्थ चित्रण आदि हैं।

बालगीत बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में बहुत सहायक होते हैं इन गीतों से बच्चों को अनेक शिक्षा मिलती है जो उनके आगे के जीवन में बहुत सफल सिद्ध होती हैं। लोकगीत बच्चों को समाज के निकट रखते हैं। बच्चों को प्रकृति से जोड़कर रखते हैं। पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों तथा फूलों से संबंधित गीत बच्चों को प्रकृति के निकट लाते हैं। बाल स्वभाव की एक बडी विशेषता है उत्सुकता। बालगीत बच्चों की उत्सुकता को एक हद तक शांत करते हैं।

केरल संस्कृति में बालगीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ विद्वानों ने बालगीतों को लोकगीतों के अंतर्गत स्थान दिया है। उन्होंने लोकगीतों के अन्तर्गत आनेवाले बालगीतों का चयन करके इकट्ठा

किया है तथा इस पर आलोचना करके अपना विचार प्रस्तुत किया है।

अधिकांश विद्वानों ने आयु की दृष्टि से बालगीतों को दो वर्गों में बाँट दिया है - 1) छोटे बच्चों के गीत तथा 2) बड़े बच्चों के गीत। इनमें खेल के गीत, पालने या लोरियों के गीत, पशु-पक्षियाँ और पेड़-पौधों से संबंधित गीत, शिशु गीत, जानकारी बढ़ानेवाले गीत आदि शामिल हैं।

क. खेल के गीत

मलयालम बालगीतों में जितनी अधिक मात्रा में खेल के गीत पाये जाते हैं उतने अन्य गीत नहीं। इसका कारण यह हो सकता है कि बच्चे छोटे हो या बडे,वे खेलना अधिक पसन्द करते हैं। केरल में सौ के आसपास बच्चों के खेल है और उनसे ज़्यादा खेल संबंधी गीत भी है।

उदाहरण के लिए

"अत्तिक्कुत्तिप्पतिनारु
आरु परञ्ञु पतिनारु
ञान परञ्ञु पतिनारु
पतिनारल्ले एण्णिक्को"[1]

अर्थात् अत्तिकुत्ति सोलह रे, किसने बताया सेलह रे, मैं ने बताया सोलह रे, सोलह नहीं है तो गिन लो रे।

केरल में ओणम् जैसे त्योहार से संबंधित अनेक बालगीत हैं। ओणम् के समय लोग फूलों से घर का आंगन सजाते हैं। इस के लिए फूलों तोड़ने के लिए बच्चे एकत्रित होकर दो गुटों में विभक्त होकर खेलते हुए गाते हैं। ऐसा एक गीत निम्नलिखित है

"पू परिक्कान पोरुमो
पोरुमो अति राविले ?
आरे निङ्ङलक्कावश्यम्
....ने ञङ्ङळक्कावश्यम् ?
आरु वन्नु कोण्टुपोकुम् ?
....वन्नु कोण्टु पोकुम्
एन्नालोन्नु काणट्टे
एन्नालिप्पो कण्टोळू"[2]

1. वर्गीस पॉल , 501 अक्षय गानङ्ङळ -पृ. 15
2. वही -पृ. 16

अर्थात् फूलतोडने के लिए बहुत सवेरे आते हो ? इसके लिए तुम्हें कौन चहिए ? हमें ...चाहिए। कौन लेकर जाएगा ? ....लेकर जाएगा। तो तुम लेकर जाओ ने ? फिर मैं लेकर जाता हूँ।

आँख मिचौनी खेलते समय गानेवाला एक गीत इक प्रकार है -

"कण्णारम् पोत्ति - पोत्ति
कण्णिन्टुळ्ळिल सूर्यन कुत्ति
वायो......वायो......" [1]

अर्थात् आंखें बंद कीं, आँखों में सूरज चुभा, आओ..., आओ......।

इस प्रकार अनेक सुन्दर और सरल खेल के गीत मलयालम में पाये जाते हैं।

ख) लोरियाँ या पालने के गीत

छोटे बच्चों को सुलाने के लिए गाये जाने गीतों को लोरी गीत कहते हैं। बच्चे के रोते उसे रोकने और सुलाने के लिए माँ ऐसे गीत गाती हैं। जैसे

"करयल्ले करयल्ले पोन्मकळे
नित्रे केट्टानाळु वरुम्
आनक्केटुक्के पोत्रु वरुम्
वेळ्ळित्ताक्कोलोटि वरुम्
कुञ्ञिक्किण्णम् तुळ्ळिवरुम्
पूट्टिट्टा पत्तायम् मूटि वरुम्
करयल्ले करयल्ले"[2]

अर्थात् हे मेरी प्यारी बिटिया रोओ मत। एक दिन तेरा दुल्हा आएगा और तेरे लिए बहुत सारा सोना लाएगा। चाँदी की चाबि और थाली आएगी साथ ही तालाबंद भरा-पूरा कोठार भी मिलेगा। इसलिए रोना बंदकर बिटिया। इस गीत में सुलाते समय रोनेवाली बिटिया को अनेक चीज़ों की लालच देकर उसका रोना बन्द करने तथा सुलाने की कोशिश की जाती है।

दूसरे गीत में जीवन का कटु यथार्थ का चित्रण मिलता है। घर में माँ-बाप नहीं है, वे काम पर चले गए हैं। बडी बहन छोटे बच्चे को ये सुलाती है -

"वावावम् वावावम् वावावम् वाओ
सूर्यन मऱ्ञ्ञे, इरुळुम् परन्ने

1. विश्वंभरन किळिमानूर, नम्मुटे नाटन पाट्टुकळ -पृ. 17
2. एस मोहन चन्द्रन, नाटन पाट्टुकळ -2-पृ. 25

निन्टम्मा मेच्चेरी पाटत्तुम् पोये
कूवाते करयातिरियेन्टे पुळ्ळे
पुळ्ळे ओऱ्ङ्ङन्टे पुळ्ळे ओऱ्ङ्ङन्टे पुळ्ळे
वावावम् वावावम् वावावम् वाओ।''[1]

अर्थात् - सो जाओ, सो जाओ, सो जाओ बेटे, सूरज डूबा है,और अँधेरा छा गया है, तेरी माँ तो मेचेरी खेत में काम करने के लिए गयी है। रोओ मत, रोओ मत मेरे बबुओ, सो जाओ, सो जाओ ।

इन गीतों में ऐसी शब्दों का प्रयोग होता है जो कानों के लिए सुखद है। कभी-कभी निरर्थक शब्दों से भी ऐसे गीतों का सृजन होता है। जैसे

''वावो वावो वावाओ
रारी रारी रारारी
रारम् रारम् रारारो
वावो वावो वावाओ।''

ग) पशु-पक्षियों तथा पेड़ पौधों से संबंधित गीत

बच्चे अपने बाह्य जगत् से परिचित होते ही उन्हें सबसे पहले पशु-पक्षी आकर्षित कर देते हैं। इसलिए उनसे संबंधित अनेक गीत भी प्रचलित हैं

''तवळक्कुरुमालि कोट्टुकालि, पिन्ने
एरे चन्तमिल्लात्त कुटवयरों
कुञ्ञिक्कलम् पोले कविळु रण्टुम्, पिन्ने
तण्णीर कुटम् पोले पळ्ळयुमाय्।''[2]

अर्थत् - हे मेंढ़क तू तो लंगडा रे, तुम इतना सुन्दर नहीं हो और ऊपर से पेटू हो। तुम्हारी चीक तो कटोरी जैसी है और कोठार जैसा पेट है तुम्हारा। इस गीत में मेंढ़क का वर्णन है। बालक इसे लंगडा कहता है। उससे बोलता है कि तुम सुन्दर नहीं हो और तुम्हारा बहुत बड़ा पेट है। इस प्रकार पेड़-पौधों और फूलों से संबंधित अनेक गीत मलयालम लोकगीत के क्षेत्र में प्रचलित हैं।

घ) शिशु गीत

शिशु गीत बच्चों को ज़्यादा मनोरंजन प्रदान करते हैं। बच्चे विभित्र चीज़ों, पशु-पक्षियों आदि का अनुकरण करते हुए अंग मुद्राओं के साथ गीत गाते हैं जैसे -

1. नाटन पाट्टुकळ, केरला चिल्ड्रंस पब्लिकेशन ट्रस्ट, तिरुवनन्तपुरम -पृ. 48
2. वही -पृ. 80

"चक्कि परुन्ते कियो-कियो
नीयेन्टे मक्कळे कियो-कियो
नेरम् वेळुत्तोट्टे कियो-कियो
ञान निन्टे मक्कळे कियो-कियो।"[1]

यह गीत मुर्गी का अनुकरण करते हुए गाते हैं। वह परिन्दे से कहती है कि तू ने मेरे बच्चों को उडा लिया, दिन होने दो तेरे बच्चों को मैं छोड़ूँगा नहीं। शिशु गीत ललित होते हैं। बच्चे अंग मुद्राओं द्वारा इसको गाकर प्रस्तुत करते हैं।

ङ) जानकारी बढ़ानेवाला गीत

ऐसे गीत बच्चों को अनजाने ही शिक्षा प्रदान करते हैं। इसप्रकार के अनेक लोकगीत मलयालम लोकगीतों में मिलते हैं, जैसे -

"ञानुम् ञायरुम् ओरुमिच्चु
ञड्ड़टे वीट्टिलिरिक्कुंपोळ
तिंकळ वन्नु विळिक्कुन्नु
माड्ड़ा पेरुक्कान पोरुन्नो"[2]

अर्थात् मैं और रवि एक साथ बैठे थे तब सोम आकर पूछा आम लेने आते हो। इस गीत से दिनों के नाम का परिचय बच्चों को मिलता है।

च) अन्य गीत

इनके अलावा विषय की दृष्टि से और भी अनेक गीत मलयालम लोकगीतों में पाये जाते हैं। इनमें प्रमुख हैं

अ) खिलाने के गीत

बच्चों के खिलाते समय जो गाए जाते हैं वे खिलाने के गीतों के अंतर्गत आते हैं। जैसे -

"काक्के काक्के कूटेविटे ?
तेक्के माविन्टे कॆंपत्तु ।
कूट्टिनु कावल आरुण्टु ?
कूट्टिनु कावल कुञ्ञुण्टु।
कुञ्ञु किटन्नु करञ्ञीटिल ?

1. सिप्पा पळ्ळिप्पुरम, नाटन पाट्टुकळ-पृ. 43
2. वर्गीस पॉल , 501 अक्षय गानड्ङळ -पृ. 05

कुञ्ञिन्टे कय्यिल नेय्यप्पम्।
अय्यो काक्के पऱ्ऱिच्चे
कुञ्ञिन्टे कय्यिले नेय्यप्पम्।"[1]

इसमें माँ कौए को दिखाकर यह गाना गाती है, और माँ पूछती है हे कौए तेरा नीड़ कहाँ है ? कौए के स्थान माँ ही जवाब देती है, दक्षिण में जो आम का पेड है उसमें मेरा नीड़ है। नीड़ में कौन है ? नीड़ में मेरा बच्चा है। यदि बच्चा रोये तो ? इतने में माँ खाना छिपाती है और कौआ द्वारा उठा ले जाने का अभिनय करके कहती है - हाय रे कौआ, ले गया तुम बच्चे के हाथ का पकवान।

इसमें माँ, कौआ को दिखाकर यह गाना गाती है और बीच में बच्चे को खिलाती है। कौआ बहुत होशियारी पक्षी है, बच्चों के हाथ से खाने की चीज़ों को चोन लेता है। इस गीत में कौए की इस चारित्रिक विशेषता का वर्णन किया गया है।

गिनती के गीत

ऐसे गीत बच्चों को संख्या बोध कराते हैं। इनमें एक से लेकर दस तक की संख्या क्रमानुसार आती हैं। फूलों के नामों के माध्यम से, विभिन्न जानवरों के माध्यम से, आदि कई प्रकारों के विभिन्न माध्यमों के ज़रिए संख्या को क्रमानुसार प्रस्तुत करते हैं जिससे बच्चों को संख्या का बोध होता है और मनोरंजन भी मिलता है।

उदाहरण

"ओन्नेन्नु परयुम्पोळ ओन्निच्चु निल्क्कणम्
रण्टेन्नु परयुम्पोळ कै रण्टुम् पोक्कणम्
मून्नेन्नु परयुम्पोळ मूक्कोन्नु पोत्तणम्
नालेन्नु परयुम्पोळ नाणिच्चु निल्क्कणम्
अंचेन्नु परयुम्पोळ बेंचिलिरिक्कणम्
आरेन्नु परयुम्पोळ आटिक्कळिक्कणम्
एषेन्नु परयुम्पोळ एषुन्नेररु निल्क्कणम्
एट्टेन्नु परयुम्पोळ पोट्टिच्चिरिक्कणम्
ओन्पतेन्नु परयुम्पोळ ओटिक्कळिक्कणम्

1. विश्वंभरन किळिमानूर, नम्मुटे नाटन पाट्टुकळ -पृ. 17
2. ए. बी. वी. काविलप्पाडु, 101 नाटन पाट्टुकळ -पृ. 10

पत्तेन्नु परयुम्पोळ पोत्तोन्निरिक्कणम् ।"[2]

इसका अनुवाद देखिए-

"एक बोला तो एकता में रहना
दो बोला तो दोनों हाथ उठाना
तीन बोला तो नाक छिपाना
चार बोला तो शरमाके रहना
पाँच बोला तो बेंच पर बैठना
छह बोला तो हिलाना-डुलाना
सात बोला तो जल्दी उठना
आठ बोला तो ठहाका मारना
नौ बोला तो दौड़के खेलना
दस बोला तो जल्दी बैठना।"

इस गीत में एक से लेकर दस तक की संख्या को विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जो बच्चों को बहुत आकर्षित करने लायक है।

उपर्युक्त बालगीतों के अलावा हिंडोले के गीत, हास्य गीत, ऋतुगीत तथा प्रकृति संबंधी गीत तथा निरर्थक गीत भी मलयाळम में प्रचलित हैं। इन बालगीतों का आधार बाल मनोविज्ञान होने के नाते सरलता, सहजता एवं स्वाभाविकता इनके विशेष गुण मान सकते हैं। फलतः बच्चे अनायास ये गीत कंठस्थ करते हैं और गाते हैं।

4.18.4 त्योहार तथा पर्वों से संबंधित गीत

भारतीय संस्कृति अद्योपान्त प्रकृति से जुडी हुई है। इसके प्रत्येक क्रिया व्यापार में प्रकृति का संस्पर्श आवश्यक है। संपूर्ण वर्ष के त्योहार तथा पर्व भी प्रकृति के अनुसार ही निर्धारित है। प्रत्येक ऋतु-परिवर्तन के साथ कोई न कोई त्योहार या पर्व जुडा हुआ है। अनेक त्योहारों और व्रतों के क्रम में लोक-जीवन निरंतर गतिशील रहता है। केरल में मनाए जानेवाले त्योहारों में 'ओणम्' तथा 'विषु'सबसे प्रमुख है। केरल के प्रमुख त्योहार 'ओणम्' है। इससे संबंधित बहुत सारे गीत और कलारूप प्रचलित हैं। इन कलारूपों का केरलीय जन जीवन व संस्कृति में अटूट स्थान है।

4.18.4.1 ओणप्पाट्टुकळ (ओणम् के गीत)

ओणम् समृद्धि एवं ऐश्वर्य का द्योतक है। खेत कट चुका है, मौसम सुहावना है, खलिहान भर गए हैं। खेती मज़दूरों की झोंपडियों में भी धान की कमी नहीं है। उल्लास के इस अवसर पर अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, वृद्ध-युवा, मालिक-मज़दूर -सब 'ओणम्' का त्योहार बडे हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।

'ओणम्' से संबंधित अनुष्ठानों से जुड़े हुए गीत तथा अन्य कलारूपों की प्रस्तुति के अवसर पर गाए जानेवाले गीत आदि ओणम् के गीतों की कोटि में आते हैं। 'ओणम्' के दिनों में घर के आँगन को 'पूक्कळम' (रंगोली) को सजाने की प्रथा है। इसके लिए गाँव-गाँव घूमकर फूल इकट्टा करने की परंपरा थी। इस समय गानेवाले 'पूविळिप्पाट्टु' या'पूप्पाट्टुं' (फूल के गीत, पुवुं-फूल) बहुत मशहूर है। उत्तर केरल में 'वण्णान' जाति के लोगों के द्वारा गाए जानेवाले 'ओणत्तार पाट्टुं' तथा दक्षिण केरल में 'वेलन' जाति के लोगों के द्वारा गाए जानेवाले 'ओणत्तुळ्ळल पाट्टुं' भी प्रसिद्ध है। दोनों प्रकार के गीतों में केरल के राजा 'महाबलि' से संबंधित गीतों की प्रस्तुति होती है। 'कैकोट्टिक्कळि' 'तुंपि तुळ्ळल' 'ऊञ्ञालाट्टम्' (झूला) आदि से संबंधित गीतों को भी 'ओणम्' के गीतों के अन्दर रखा जा सकता है। 'ओणम्' से संबंधित विभिन्न प्रकार के खेलों के दौरान गाए जानेवाले मनोरंजन प्रधान निरर्थक गीत भी 'ओणम्' के गीत कहा जा सकते हैं। ओणम् के गीतों का कुछ उदाहरण निम्नलिखित है -

'ओणम्' आया फिर भी उसकी तैयारियाँ अभी तक पूरी नहीं हुई है। तब इसकी शिकायत करती हुई बालिकाएँ यों गाती हैं

''चन्तत्तिल मुऱऱम् चेत्तिप्पऱिच्चोल
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु ?
चन्तक्कु पोयीला, नेंत्रक्क वाङ्ङीला
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु ?
पन्तुकळिच्चील, पन्तलुमिट्टीला
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु?
अम्मावन वन्नील, सम्मानम् तन्नीला
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु ?
अच्छनुम् वन्नीला, आटकळ तन्नीला
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु ?
नेल्लु पुष़ुङ्ङीला, तेल्लुमुणङ्ङीला
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु ?
पिळ्ळेरुम वन्नीला, पाठम् निरुत्तीला
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु?
तट्टानुम् वन्नीला, तालिकळ तीर्त्तीला

एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु ?
कुञ्ञेलिप्पेण्णिन्टे मुञ्ञि करुक्कुन्नु
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नु ?
नङ्ङेलिप्पेण्णिन्टे अङ्ङेरुम् वन्नीला
एन्तेन्टे मावेली ओणम् वन्नू"[1]

अर्थात् घास काटकर आँगन साफ नहीं किया फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ? बाज़ार नहीं गया, केला नहीं लाया, फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ? गेंद नहीं खेली, पंडाल नहीं बिछाया, फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ? मामा नहीं आए, पुरस्कार नहीं दिया फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ? पिताजी नहीं आए, कपड़े नहीं दिए फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ? चावल नहीं उबाला उसे थोड़ा सुखाया भी नहीं फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ? बच्चे नहीं आए, पढ़ाई नहीं छोडी फिर क्यों है मावेली ओणम् आया? सुनार नहीं आया, आभूषण नहीं बनाया फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ? कुञ्ञेली नामक युवति उदास हो जाती है फिर फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ? नङ्ङेली का पति भी घर नहीं आया फिर क्यों है मावेली ओणम् आया ?

इस गीत में ओणम् के समय में केरल के घरों में की जानेवाली तैयारियों का सामान्य परिचय भी मिलता है।

दूसरा मशहूर गीत 'पूप्पोलि पाट्टु' (फूलों का गीत) है। इसमें बालक फूलों को संबोधित करते हुए रंगोली बनाने के लिए फूल माँगते है और पुष्पों के संवर्द्धन की कामना करते हैं। इसके लिए हर चार पंक्तियों के बाद "पूवे पोलि ! पूवे पोलि !" ऐसे दुहराते हैं जैसे

तुंपप्पूवे पूत्तिरळे
नाळेक्कोरुवट्टि पू तरणे
आक्किल, ईक्किल, इळमकोटि पूक्किल
पिन्ने आनेङ्ङने पू तरेन्दु
पूवे पोलि ! पूवे पोलि ! पूवे पोलि!
काक्कप्पूवे पूत्तिरळे
नाळेक्कोरुवट्टि पू तरणे
आक्किल, ईक्किल, इळमकोटि पूक्किल
पिन्ने आनेङ्ङने पू तरेन्दु
पूवे पोलि ! पूवे पोलि ! पूवे पोलि !

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 165-166

अरिप्पूवे पूत्तिरळे
नाळेक्कोरुवट्टि पू तरणे
आक्किल, ईक्किल, इळमकोटि पूक्किल
पित्रे ञानेङ्ङने पू तरेन्टु
पूवे पोलि ! पूवे पोलि ! पूवे पोलि !

पूवाय पूवेल्लाम् पिळ्ळेररुत्तु
पूवाम् कुरुंतल ञानुम् परिच्चु
पिळ्ळेरे पूवोक्के कत्तिक्करिञ्ञु पोय
ञङ्ङटे पूवोक्के मुङ्ङत्तेलिञ्ञु पोय
पूवे पोलि ! पूवे पोलि ! पूवे पोलि ![1]

अर्थात् बालक गाते हैं हे तुंपा (एक पौधा विशेष) हमें कल एक डलिया भर फूल दे देना ताकि हम रंगोली बना सकें। तो पौधा पूछता है, विभिन्न प्रकार के पत्तों के बीच में से मैं कैसे फूल दे सकूँ ? फिर अन्य फूलों से भी (काक्कप्पू, अरिप्पू) यही सवाल करते है और वही जवाब ही मिलते हैं। अंत में कहते हैं सारे फूलों को बच्चों ने तोड़ लिया और गानेवालों ने बची हुई कलियों को तोड़ लिया। बच्चों ने जो फूल तोड़े, सब सूख गए लेकिन हमारे फूल अब भी सुन्दर और शोभित हैं।

'ओणम्' के दौरान केरल भर में गूँजने दूसरा एक गीत निम्नलिखित है। इसमें महाबलि के शासनकाल की सुख समृद्धि एवं शांति का वर्णन है।

''मावेलि नाटु वाणिटुम् कालम्
मानुषरेल्लारुमोन्नुपोले
आमोदत्तोटे वसिक्कुम् कालम्
आपत्तेङ्ङाक्कोट्टुमिल्लतानुम्
कळ्ळवुमिल्ल, चतियुमिल्ल
एळ्ळोळमिल्ल पोळिवचनम्
कळ्ळम् परयुम् चेरु नाषियुम्

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग-2-पृ. 165

कळ्ळत्तरङ्ङळ मर्रोन्नुमिल्ल।"[1]

अर्थात् मावेलि (महाबलि) के शासनकाल में ऊँच-नीच के भाव से रहित सभी लोग समान रूप से रहते थे। आनन्द के साथ रहते समय किसी को भी कोई विपत्ति नहीं थी। कहीं भी कपट और धोखा नज़र नहीं आते थे। रत्ती भर झूठ नहीं बोला जाता था। नाप-तोल सही से होता था। किसी भी प्रकार का छल-कपट दिखाई नहीं देता था।

'ओणम्' के अनुष्ठानों से संबंधित बहुत सारे गीत भी इसके अंतर्गत आते हैं।

4.18.4.2 तिरुवातिरप्पाट्टु (तिरुवातिर गीत)

'तिरुवातिरा' [2] केरल का दूसरा प्रमुख त्योहार है। इस त्योहार के दौरान स्त्रियाँ घर के आंगन में रखे हुए भद्रदीप के चारों ओर हस्तमुद्राएँ दिखाते हुए, तालियाँ बजाते हुए, गीत गाते हुए, विशेष प्रकार के पदान्यास के साथ जो नृत्य प्रस्तुत करती है उसे 'तिरुवातिरा कळि' या 'कैकोट्टि कळि' कहते हैं। इस नृत्य के समय गानेवाले गीत तिरुवातिर गीत कहलाते हैं। इस नृत्य की प्रस्तुति ओणम् के समय भी बहुतायत में देखने को मिलती है। 'गंगयुणर्त्तु पाट्टु' (गंगा को जगानेवाले गीत) 'कुळम्तुटि पाट्टु' (नहाने का गीत) 'स्तुति गानङ्ङळ' (स्तुति के गीत) तिरुवातिर के इतिहास व उससे संबंधित लोककथाओं से जुडे हुए गीत, पौराणिक गीत, मनोरंजन के गीत आदि कई प्रकार के गीत इसके अंतर्गत आते हैं।

प्रायः इस नृत्य का प्रारंभ गणेश स्तुति के साथ होता है। ऐसा एक गीत निम्नलिखित है। इसमें गणेशोत्पत्ति का वर्णन है ।

"नरक वैरि भगवानुम्
काननत्ति लानयायि
पार्वत्ति पिटियुमायी
काननम् कळिक्कुम् कालम्
अद्भुतांगी पार्वतिक्कु
गर्भमुंटायि वन्नु
मून्नाम् मासम् तिङ्ङळायी
मुट्टयुटे रूपमायी
नालाम् मासम् तिङ्ङळायी
कोंकयिल मषि करुत्तु

1. जी कमलम्मा, पषमयुटे अर्थतलङ्ङ्ळ -पृ. 139-140
2. इसका उल्लेख पृ.212 में किया गया है।

अँचाम् मासम् तिङ्ङळायी
पंच गर्भम् पकुतियायी
आराम मासम् तिङ्ङळायी
आमयुटे रुपमायी
एषाम् मासम् तिङ्ङळायी
पुळिकुटियुमाघोषिच्चु
एट्टाम् मासम् तिङ्ङळायी
एषुत्तुपिळ्ळ पणियोरुक्कि
ओंपताम् मासम् तिङ्ङळायी
बालकन वळर्च्चयायी
पत्ताम् मासम् तिङ्ङळायी
उत्रत्तिल कालुच्चयायी
गणपतियुद्भविच्चु
वरिकयुण्णि गणपतिये
वरिनेल्लिन्टे अविल तरुवन
वरिकयुण्णि गणपतिये
कदळिप्पषक्कुल तरुवन
वरिकयुण्णि गणपतिये
वरिक्कच्चक्कच्चुळ तरुवन
वरिकयुण्णि गणपतिये
नल् करिंपु आन तरुवन ।"[1]

अर्थात् नरक के शत्रु महेश्वर हाथी बनकर तथा श्री पार्वती हथिनी बनकर जंगल में विचरण करते थे। तब रूपवती पार्वती को गर्भ हुआ। तीसरे महीने में बच्चे ने अंडे का रूप धारण किया। चौथे महीना भी बीत गया। पाँचवीं महीने गर्भ का आधा विकास हो गया। छठीं महीने में अनुष्ठानों की पूर्ति हो गयी। आठवीं महीने में ज्योतिषियों ने जन्मकुंडली तैयार की। नवीं महीने में बच्चे का पूर्ण विकास हो गया और दसवीं महीने में श्रेष्ठ नक्षत्र में गणेश का जन्म हुआ। हे बालक गणेश, मेरे पास आओ मैं तुम्हें चिऊडा खिलाऊँगी, मेरे पास आओ, मैं तुम्हें कदळी का फल खिलाऊँगी, मेरे पास आओ, मैं तुम्हें कटहल का मीठा फल खिलाऊँगी, मेरे पास आओ मैं तुम्हें अच्छे गन्ने खिलाऊँगी।

1. एम वी विष्णुनंपूतिरि, नम्मुटे पन्टत्ते पाट्टुकळ - पृ. 239

पूरे भारत में नल-दमयन्ती की कथा बहुप्रचलित है। निम्नलिखित तिरुवातिर गीत में नल-दमयन्ती की कथा संक्षिप्त रूप में बतायी गयी है।

"नारिमारिल केळियेरुम् बाल दमयन्ती
मोदमोटे कान्तनुमाय सादरम् सुखिच्चु
अन्नोरु दिवसम् नलन तन्नुटे सहजन
पुष्करन चूतु पोरुवान सत्वरम् विळिच्चु
दुष्टनाम् कलियुटेय कपटधर्मत्ताले
वेच्चु चूतिलोक्के नलन तोल्क्कयुम् तुटङ्ङी
भार्यये वेटिञ्ञु नलन खेदमोटुम् कूटि
भार्य दमयन्तियप्पोळ कूटवे नटन्नु
उन्नतमायोरु गिरि तन्निल वसिक्कुम्पोळ
काट्टु पेरुम्पाम्पु वन्नु कालु रण्टुम चुरिर
आरुमिल्लेनिक्कु सखे कान्तनुम् वेटिञ्ञु
इत्तरम् विलापम् केट्टु वेट राजनतीनुम्
पापिने वधिच्चवळे वेट्टु कोळकवेणम्
एन्नुटन विचारिच्चवन पाम्पिने वधिच्चु
कामिनी नी कान्तयाय् पोन्निटवेणम् बाले
ई वचनमेन्नोटुरियाटरुते वेटा
ञानोरु कुलस्त्रीमणि, नीचनल्लो नीयुम्
एन्न वाक्कु केट्ट नेरम् पाञ्ञटुत्तु वेटन
कामशरम्कोण्टु वेटन पाञ्ञटुक्कुन्नेरम्
एन्नुटे मनस्सिल पातिव्रत्यमुण्टेन्नाकिल
भस्ममायिप्पोकनीयुमेन्नवळ शपिच्चु
अप्पोषुते भस्ममायि वेटराजन तानुम्
तापसन वसिच्चीटुन्न पर्णशाला कण्टु
मोदमोटविटेच्चेन्नु सौख्यमायि वाणु।"[1]

अर्थात् - नारियों में श्रेष्ठ किशोरी दमयन्ती अपने पति नल के साथ बहुत आनन्द के साथ रह रही है। एक दिन नल का मित्र पुष्करन ने नल को जुआ खेलने का निमंत्रण दिया। दुष्ट कलि की कपटता की

1. एम वी विष्णुनंपूतिरि, नम्मुटे पन्टत्ते पाट्टुकळ - पृ. 251

वजह से नल जुआ में हार गया। इसी दुख के कारण नल अपनी पत्नी दमयन्ती को त्यागकर चला गया। लेकिन दमयन्ती अपने पति के साथ चल पडी। दमयन्ती एक उन्नत पर्वत शिखर पर रहती थी। एक दिन एक बड़ा जंगली अजगर दमयन्ती के पैरों पर लिपट गया। तब दमयन्ती इस प्रकार चिल्लाने लगी -"मुझे मेरे पति ने त्याग दिया और अब मुझे बचाने के लिए कोई नहीं है।" यह रुदन सुनकर एक निषाद राजा वहाँ आ गया और साँप को मारकर दमयन्ती को अपनी पत्नी बनाने की चाह में साँप को मार डाला। उसने दमयन्ती से पत्नी बनकर उसके साथ जाने को कहा । तब दमयन्ती ने उसे रोककर कहा - "ऐसे कटुवचन मत बोलो मैं उच्च कुलोत्पन्ना हूँ, तुम नीच जाति के हो।" यह सुनकर काम से पीड़ित निषाद बहुत तेज़ी से दमयन्ती की ओर बढ़ा तब दमयन्ती से ऐसा शाप दिया -"मेरे मन में पातिव्रत्य है तो तुम भस्म हो जाओगे।" शाप से निषाद भस्म हो गया। दमयन्ती ने वहाँ ऋषियों की एक पर्णशाला देखी और वहाँ जाकर सुख से रहने लगी।

इस प्रकार तिरुतिरा संबंधी गीतों में पर्याप्त विभिन्नता देखी जा सकती है।

4.18.5 विविध गीत

उपर्युक्त विवेचन के अन्तर्गत केरल में प्रचलित प्रमुख लोकगीतों का सामान्य विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के प्रारंभ में जो वर्गीकरण किया गया है उसमें आनेवाले भेद हैं ऋतु संबंधी गीत। केरल की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति एवं सुन्दर जलवायु के कारण उत्तर भारत के समान ऋतु गीतों का प्रचलन केरल में नहीं के बराबर है। अतः ऋतुगीतों का विश्लेषण नहीं किया गया है। लेकिन इस वर्गीकरण के अंतर्गत न आनेवाले, किन्तु अत्यंत महत्त्व रखनेवाले कुछ लोकगीत हैं जिनका विवेचन करना अत्यंत ज़रूरी भी है जैसे कृषि गीत, वटक्कन पाट्टु, वंचिप्पाट्टु (नौका गीत) आदि।

क) कृषि गीत (कृषिप्पाट्टुकळ)

केरल एक कृषिप्रधान राज्य है। इसलिए कृषक जीवन से संबंधित बहुत सारे लोकगीतों का प्रचलन यहाँ है। आम लोगों की ज़िन्दगी से जुडे हुए ग्रामीण गीत ही इस कोटि में आते हैं। सरलता इन गीतों की सबसे बडी विशेषता है अतः इनमें साहित्यिक गुणों को ढूँढ़ना बेवकूफी है। खेती के हर पडावों से संबंधित गीत हैं जैसे रोपनी गीत, सोहनी या निरौनी गीत, सिंचाई के गीत, फसल कटते समय गानेवाले गीत। अनाज की पूलों से धान को समेटते समय गानेवाले गीत आदि। इन गीतों के प्रतिपाद्य में विषयगत विविधता दर्शनीय है। इन गीतों के गायन में भी थकान दूर करने एवं मनोरंजन करते हुए लगन के साथ काम करने की भावना रहती है।

अ) रोपनी के गीत

खेत में पानी लगा है। वर्षा हो रही है, चारों ओर कीचड़ का दृश्य विराजमान है, सारे खेत रोपनी के लिए तैयार हैं। ऐसे समय में स्त्रियाँ रोपनी का काम करती हुई अपने कोमल गीतों से जलसिक्त श्रोताओं को रससिक्त बनाती रहती हैं। जैसे -

"अरयरयो........ किङ्ङणियरयो......
नम्मकंडम्..........कारक्कंडम्........
कारक्कंडम्........ नट्टीटुवे...........
अरयरयो........ किङ्ङणियरयो......
ओरायिरम्.....काळें वन्नु.................
ओरायिरम्.........आळुम् वन्नु.............
ओरायिरम् वेऱ्ऱकोटुत्तु
अरयरयो........ किङ्ङणियरयो......
नम्मक्कंडम्.............कारक्कंडम्
कारक्कंडम्.............नट्टीटुवे.....
वेळ्ळिकोण्टु वेंळ्ळि नुकम्
पोन्नु कोण्टु पोनकलप्प
ईयम् कोन्टु ईयक्कोलुँ (अरयरयो...........)
नटुवानोळ्ळ आऱेरिन्जु
आऱेटुत्तु चेळिकलक्की
नटुवानोळ्ळ नटवोक्कयुम्
अरयरयो........................"[1]

अर्थात् हमारा खेत, काली मिट्टीवाला उपजाऊ खेत तैयार है, सभी रोपन के लिए आ जाओ। हज़ारों बैल आए, हज़ारों आदमी आये और उन्हें हज़ारों पान के पत्ते भी दिए गए, सभी रोपन के लिए आ जाओ। चाँदी, सोने और सीसे से हल भी बनाए गए। खेत में काम करने केलिए (रोपन) हज़ारों आदमी उतरे और रोपन के लिए पादप भी प्रदान किए गए, सभी आ जाओ।

दूसरा एक गीत देखिए -

मारी मषकळ ननन्जे.....चेरु
वयलुकळोक्के ननन्जे

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -पृ. 147-148

पूट्टियोरुक्किप्परन्जे....चेरु
आरुकळ केट्टियेरिन्जे
ओमल, चेन्तिल, माल....चेरु
कण्णम्म, काळी, करुंपि
चात्त, चटयन्माराया.....चेरु
मच्चिकळेल्लाम् वन्ते
वन्तु निरंतवर निन्टे.....केट्टि
आरेल्लाम् केट्टि पकुत्ते
ओप्पत्तिल नट्टु करेनवर
कुत्तियेटुत्तु कुनिन्जे
कण्णच्चेरुमियोत्रप्पोळ.....अवळ
ओमलोयेत्रु विळिच्चे
"पाट्टोत्रु पाटीट्टु वेणम् निङ्ङळ
नट्टु करय्क्कङ्ङु केरान"
अप्पोळोरु तत्तप्पेण्णु अवळ
मेमरमेरिक्करन्जे
मेल्पोट्टु नोक्किप्परन्जे कोच्चु
ओमलक्कुट्टीच्चेरुमी
तत्तम्मप्पेण्णे, नीयिप्पोळ इन्के
वन्तोरु कारियम् चोल्लू।[1]

अर्थात् - बारिश से सारा खेत भीग गया, जोतकर खेत तैयार किया गया और रोपने के लिए पादप भी बाँधकर खेत में बिखेर दिए गए। ओमला, चेन्तिला, माला, चेरुकण्णम्मा, काळी, करुंपी आदि पुलय जाति की स्त्रियों ने आकर पादपों को बाँट दिया। एक साथ रोपन करने के लिए वे आगे की ओर झुकीं तब कण्णम्मा ओमला को पुकारकर कहती है - "एक गीत गाने के बाद ही तुम लोग खेत से बाहर आना।" उस समय एक शुकी पेड़ के ऊपर बैठकर रोने लगी तब ओमला ने ऊपर की ओर देखकर कहा -" हे शुकी, तुम इधर आकर मुझसे एक बात बताओ।"

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गान ङ्ङळ -पृ. 143- 144

आ) सिंचाई के गीत

पुराने ज़माने में खेतों में सिंचाई के लिए आज के समान मोटरों का उपयोग नहीं होता था। तब नदियों तथा तालाबों से पहियों के द्वारा खेतों में पानी डाला जाता था। उस समय मज़दूरों द्वारा गाए जानेवाले गीतों को 'चक्रप्पाट्टु' या पहिया गीत कहते हैं। निम्नलिखित पहिया गीत में रामायण के श्रीराम-सुग्रीव संबंध तथा श्रीराम विरह का वर्णन है

तैत्तात्त तक तक तकत्तै
तकुर तित्तेय्यम् तकतै तकताम्
वालिये श्रीरामदेवन
कुलचेय्तोरनन्तरम्
वाषिच्चु सुग्रीवनेयुम्
तारयेयुम् कूटे
नालु मातम् मलमीते
रामचन्द्रनिरुन्नारे
नल्लपोले किष्किंधयिल
वाणु सुग्रीवन
आरोमल पेण्णाकुमेन्टे
जानकिए निरूपिच्चु
अकतारिल वेन्तुरुकी-
ट्टिरुन्नु रामन ।[1]

अर्थात् बालि का वध करने के बाद श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव को तारा के संग किष्किंधा का राजा बना दिया। चार महीनों तक श्रीराम पहाड़ के ऊपर रहे। सुग्रीव ने किष्किंधा का शासन अच्छी तरह संभाला। अपनी प्राणप्रिया जानकी के बारे में सोचकर श्रीराम बहुत व्याकुल हो उठे।

सिंचाई का दूसरा एक गीत निम्नलिखित है। महाभारत में गाँधारी ने पांडवों को विष देकर मारने की कोशिश की थी। इस प्रसंग का वर्णन इसमें है -

"तत्तनम् तैतनम् तारो
तक तिन्तिनम् तित्तेय्यंतारो
कान्तारियम्मच्ची पन्टे

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग 2- पृ. 148- 149

पंचपाण्डवनमारे चतिक्कान
तंप्रदायङ्ङळुम् चेय्ते
अतु ञानिङ्ङरिवेटि पामे
मक्कळे भीमा, धर्मजा !
निङ्ङळोक्केयुमुण्णान वरिक
कान्तारियम्मच्चो विषम् कूट्टि
ओरु कूट्टम्ँ पलहारमुंटाक्कि
अंचु पेर्क्कडिङरुप्पानाय
अंचु तडुक्कुमङ्ङिट्टु
सूत्रशालियाकुन्नोरा भीमन्
अङ्ङु चोररीन्नु परिरयटुत्तु
सूत्रङ्ङळोक्केयरिञ्ञु
एन्तोरु कौशलमम्मे !
ञङ्ङळेक्कोल्लानो भावम् निनक्कु
पलहारमोक्केयेटुत्तु
ओरो जन्तुक्कळक्किट्टु कोटुत्तु
एल्ला मृगङ्ङळुम् चत्तु।"[1]

अर्थात् - पुराने ज़माने में माँ गाँधारी ने पाण्डवों को धोखा देने की कई कोशिशें कीं। एक दिन उसने भीम, धर्मपुत्र आदि को खाने पर बुलाया और ज़हर मिलाकर एक पकवान भी बनाया। पांडवों को बिठाने के लिए पाँच दरियाँ भी बिछा दीं। लेकिन चालाक भीम ने गाँधारी के सारे भेदों को जान लिया और बिछी गई दरियों को उठाकर फेंकी। उसने गाँधारी से पूछा - माँ, यह कैसी चालाकी है, तुम हमें मारना चाहती हो ? उसके बाद उसने पकवान उठाकर जानवरों को खिलाया और वे सब मर गए ।

सिंचाई के गीतों के लिए मलयालम में 'तेक्कुपाट्टु' नाम भी प्रचलित है।

इ) सोहनी या निरौनी के गात

सोहनी या निरौनी के गीतों के लिए मलयालम में 'कलपरिक्कल पाट्टु' शब्द प्रचलित है। खेत में मुख्य फसल के साथ-साथ कुछ जंगली एवं अनावश्यक घास-पात और पौधे भी उग आते हैं। ये फालतू के पौधे मुख्य फसल को बढ़ने से रोकते हैं। इसलिए, इन्हें खुरपी या हँसिया की मदद से उखाड़ कर फेंक देना आवश्यक होता है। इसी कृषि कार्य को 'सोहनी' या 'निरौनी' कहते हैं। यह कार्य

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ -पृ. 149-150

करनेवाली औरतें मनोरंजन के लिए जो गीत गाती हैं उन्हें सोहनी या निरौनी के गीत कहते हैं।

नीचे एक गीत उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा है। इसमें एक कामचोर काम से बचने के लिए किसी जंगल में छिप जाना चाहता है और दूसरे जंगल जाने का रास्ता पूछता है। यह गीत संवाद शैली में गाया जाता है।

"इन्निनियुम् केळुमेटि चेरुपुलयी
अनन्तपुरम काटेनिक्कु चोल्लित्तरुमो ?
अनन्तपुरम काटेनिक्कु चोल्लित्तन्नान्
अनन्तपुरम काट्टिप्पोयोळिक्कुमे ञान।"

"पत्तायिरप्परक्कण्टवुम् तन्ने
काटुम् कयित केरिक्किटन्न कन्टम्
इन्नु किळच्चिन्नु वितच्च कन्टम्
इन्नु कळयेटुत्तु तीर्निल्लेंकिल
एन्टयोरु वेलक्कूलि किट्टुकयिल्ले
एन्टयोरु वेलक्कूलि किट्टुकयिल्ले।"

"अनन्तपुरम काटेनिक्कु चोल्लित्तन्ना
नेनक्किन्नु सम्मानम् ञान्तन्निटामे"

"अनन्तपुरम काट्टिप्पोयोळिक्कणोंकि
अनन्तपुरम काटु ञानुम् चोल्लीत्तराम्
पत्तुपरक्कंटत्तिन्टे ताप्पटच्चेन्ना
वेट्टुवषियोन्नविटेक्किटप्पुतुन्टे
वेट्टुवषियें केरिच्चेन्नालल्लो
तिरुवाषिक्कोळमोन्नु केटप्पतुन्टे
तिरुवाषिये केरिच्चेन्नालल्लो
आलोन्टिलन्जिलुन्टालत्तरयुन्टे

अनन्तपुरम काट्टिप्पोयोळिक्कणोंकि

अनन्तपुरम काटु आनुम् चोल्लित्ताराम्।"[1]

एक कामचोर पुलय स्त्री से पूछता है -

"अरी, यह भी सुनो क्या तुम मुझे आज अनन्तपुरम जंगल जाने का रास्ता बताओगी ? यदि तुम मुझे रास्ता बताओगी तो मैं वहाँ जाकर छिप जाऊँगा।"

तो वह स्त्री कहती है -"मुझे खेती के लिए झाड-झंखाड़ वाली ज़मीन मिली और उसे जोतकर आज ही धान रोपा है, आज ही सोहनी का कार्य पूरा नहीं हुआ तो मुझे अपनी मज़दूरी नहीं मिलेगी, मज़दूरी नहीं मिलेगी।"

फिर पूछता है -

"यदि तुम अनन्तपुरम जंगल जाने का रास्ता बताओगी तो मैं तुम्हें इनाम दूँगा।"

जवाब में,

"तुम्हें अनन्तपुरम जंगल में जाकर छिपना है तो मैं रास्ता बता दूँगी। वहाँ के खेत के नीचे एक पगडंडी है, उस पगडंडी पर जाने से एक तालाब मिलेगा और आगे जाने से बरगद,'इलन्जी' जैसे पेड़ दिखाई देंगे। यदि तुम्हें अनन्तपुरम जंगल में जाकर छिपना है तो मैं रास्ता बता दूँगी।"

केरल में उत्तर भारत के समान व्यवसाय में विविधता न होने के कारण कृषि गीतों को छोड़कर अन्य प्रकार के श्रमगीतों या व्यवसाय संबंधी गीतों का नितांत अभाव है। कुछ इने गिने गीत अवश्य मिलते हैं लेकिन उनका काफी प्रचार नहीं है।

ख) वटक्कन पाट्टुकळ (उत्तर के गीत)[2]

केरल के लोकगीतों में 'वटक्कन पाट्टुकळ' यानि उत्तर केरल के गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उत्तर केरल में प्रायः कृषिगीतों के रूप में गाए जानेवाले लोकरंजक कथा गीतों को 'वटक्कन पाट्टु' की संज्ञा दी गयी है। वीर काव्यों की लगभग सारी विशषताएँ इन गीतों में देखी जा सकती हैं। किसी भी अनुष्ठान से संबंधित न होकर, जाति और धर्म के दायरे से बाहर, बिना किसी भाषिक बंधन से, स्वच्छन्द रूप में इन गीतों की प्रस्तुति होती है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि 'तच्चोळि ओतेनन' तथा उसके परिवारवालों से संबंधित वीर रसप्रधान गीत ही इसके अंतर्गत आते हैं। लेकिन यह अवधारणा सही नहीं है। ओतेनन की गाथाएँ उत्तर के गीतों का एक अंग मात्र है। उत्तर केरल के भाषा प्रयोग एवं शैली में

1. प्रो.आनन्दकुट्टन नायर, केरल भाषा गानङ्डल - भाग - 2- पृ. 156

2. एम वी विष्णुनंपूतिरि, वटक्कन पाट्टु कथकळ ओरु पठनम्

गाए जाने के कारण ही इन गीतों उत्तर के गीत संज्ञा मिली होगी। इन विख्यात गीतों में कथानक एवं संगीत का अद्‌भुत सामंजस्य देखने को मिलता है।

रसानुभूति की पृष्ठभूमि में इन गीतों का विश्लेषण करें तो इन्हें वीर, शृंगार, शोक तथा हास्य आदि श्रेणी में रखा जा सकता है। लेकिन ऐसे वर्गीकरण करने से कथानक संबंधी विशेषताएँ पृथक हो जाएँगी। इसलिए, गीतों के कथानक के अनुसार इनका वर्गीकरण करे तो - पुत्तूरम गीत, तच्चोळी कथा गीत, राजवंशों से संबंधित गीत, वीरांगनाओं से संबंधित गीत, वीर पुरुषों की गाथा, चमत्कारी कथा गीत, अलौकिक कथागीत, विविध गीत आदि कई भेद मिल जाएँगे।

इन गीतों में उत्तर केरल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से संबंधित बहुत सारी चीज़ें बिखरी पड़ी हैं। रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, धार्मिक अनुष्ठान, त्योहार-पर्व, कर्म-कांड, कृषि, शिकार, आपसी स्पर्धा, युद्ध, धार्मिक सहिष्णुता आदि से संबंधित बहुत कुछ जानकारी हमें इन गीतों से मिल सकती है। उस ज़माने की सामन्तवादी सामाजिक व्यवस्था के गुण-दोषों का वर्णन भी इन गीतों की विशेषता है। समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार की कुरीतियों बहु पत्नीत्व, अविहित यौन-संबंध, जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली सामाजिक व्यवस्था - का चित्रण भी इन गीतों की खासियत है। 'कळरि पयऱ्‌रु' से संबंधित शब्दावली बहुतायत में इन गीतों में दर्शनीय है।

उत्तर के गीतों के उपर्युक्त सभी भेदों के बारे में चर्चा करना नामुमकिन है इसलिए 'पुत्तूरम' तथा 'तच्चोळी' गीतों से कुछ गीतों को उनकी पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

उत्तर केरल में हिन्दू घरानों का मुखिया घर के योगक्षेम का बडी निष्ठा से पालन करता था। केरल में घराने का मुखिया, बहुधा मातृसत्तात्मक परंपरा के कारण गृहणी का बड़ा भाई हुआ करता था। अपने भानजों की देखरेख, शिक्षा-दीक्षा सभी पर उसका सतर्कतापूर्ण ध्यान रहता था। उनके स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए तथा युद्ध तरीकाओं सिखाने के लिए उनको 'कळरि पयऱ्‌रु' सिखाने का प्रबंध भी किया जाता था। 'कळरि पयऱ्‌रु' एक प्रकार का युद्ध तंत्र है। अपने भानजे के 10 वर्ष के होते ही, उसको एक गुरु के अधीन कर देता। जो उसका कठोर शारीरिक व्यायाम करवाता था। इस कोर व्यायाम के लिए उसके शरीर पर तेल की मालिश रोज़ चलता था जिससे कि बालक अपना शरीर जिस तरह चाहता, मोड़ सकता था। वह ऊँचा कूद सकता था, दौड़ सकता था, युद्ध में प्रतिपक्षी को परास्त कर सकता था। खड्‌ग, छुरी, भाल, डंडा आदि को चलाने की शिक्षा भी दी जाती थी।

बचपन से ही उनको रामायण, महाभारत आदि को सुनाकर राम, कृष्ण, रावण, कंस आदि चरित्रों से परिचित कराता था जिससे वीरत्व, शत्रु के प्रति ललकार की भावना एवं स्वाभिमान उनके मन में बीज रूप में रहने लगते हैं और यह आगे चलकर पारिवारिक परंपरा की रक्षा के लिए प्रेरणादायक होगा। इन्हें प्रेरणा देने के लिए भी वीर रस प्रधान वटक्कन गीतों का गायन घरानों में होता था। तच्चोळी ओतेनन, आरोमल चेकवर, उण्णियार्चा आदि की वीरगाथाएँ उनके लिए आदर्श बन जाती हैं।

घरेलू या ग्रामीण बोली में गाए जानेवाले इन गीतों का उद्‌गम हृदय ही है। पहले इन गीतों को मौखिक रूप से एक पीढ़ि गृहीत करती थी। लेकिन आजकल सभी गीतों को लिपिबद्ध किया गया है।

जहाँ तक भाषा का सवाल है, इन गीतों में ठेठ मलयालम शब्द ही आते हैं, संस्कृत के शब्द हैं ही नहीं। महान कवि वळ्ळत्तोळ नारायण मेनोन ने इन लोकगीतों के संबंध में इसप्रकार गाया है

"पेऱ्ऱम्मा तन्नुटे वेण्मुलप्पाल तोऱे
वरिऱयिट्टिल्लात्त पूकंठत्ताल
पाटियिरुन्न पषंकथप्पाट्टुकळ
पालकुषंपल्लो चेंकिट्टिनेल्लाम्
वृत्तव्यवस्थायिल्लक्षरव्यक्ततयि
ल्लर्थोव्याप्तियिल्लेन्नाकिलुम्
आरारेक्कोळमयिर कोळ्ळिक्किल्ली गीत
मारोमलपेण्किलिक्कोंचल पोले।"[1]

अर्थात् - माँ का दूध सूख जाने से पहले अपने कोमल कंठों से जो पुराने गीत सुनाते थे वे कानों में अमृत की वर्षा करनेवाले हैं। इन गीतों में छन्द व्यवस्था न हो, अक्षरों की स्पष्टता न हो, अर्थ स्पष्ट न हो, तो भी सुननेवाले के कानों में पक्षी का कूजन जैसा है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये गीत पंडितों के हाथ पिरे नहीं। अपनी स्वतः सिद्ध सरलता और पवित्रता की वजह से आज भी इन गीतों की धारा टूटी नहीं है।

इन विवेचनों के अंतर्गत आनेवाले गीत प्रमुखतः दो घरानों से संबंधित है। 'पुत्तूरम् वीटु' और 'तच्चोळी वीटु'। अतः सबसे पहले पुत्तूरम् घराने के आरोमल चेकवर से संबंधित गीतों का विश्लेषण करेंगे। चेकवर माने सेवक। इसकी व्युत्पत्ति जाति विशेष से संबंधित मानी जाती है। चेकवर-चोकोर-चोकोन-चोन अर्थातु 'इषव' जाति। उत्तर केरल की 'तीय्य' जाति ईषव जाति का एक अलग नाम है।

1. सी.ए मेनोन, वटक्कन पाट्टुकळ - Ballads of Northern Malabar - पृ. 5

इन गीतों के प्रमुख पात्र हैं, आरोमल चेकवर, उसकी बहन उण्णियार्चा, अरिङ्ङोटर गुरुक्कळ, चेकवर की पत्नी कुञ्ञुण्णूली, चन्तु, उणिक्कोनार, उणिच्चंत्रोर आदि।

कहानी कुछ इसप्रकार है कि उणिक्कोनार उणिच्चंत्रोर के बीच कलह हुआ और इससे निपटाने के लिए राजा के निदेशानुसार 'अंकम्'(युद्ध) करने का निर्णय हुआ। अरिङ्ङोटर उणिच्चंत्रोर की ओर से और आरोमल चेकवर उणिक्कोनार की ओर युद्ध करने के लिए तैयार हुए। पूर्व निश्चित तिथि पर दोनों वीर युद्ध स्थान पहुँचे और मंच (अंकत्तट्टु) की परीक्षा करवायी। आरोमल की बलिष्ठ भुजाएँ, उभरी हुई छाती और वीर भाव देकर अरिङ्ङोटर चकित रह गया। उसने उससे कहा कि कुछ करामत दिखा दे। यह सुनकर आरोमल ने ऐसा किया इसका वर्णन इस गीत में है -

"अविटुन्नेषुन्नेऱ्रु आरोमलुम्
पीठम् वलिच्चिङ्ङु वेच्चु चोकोन
पावाट तन्ने विरिक्कुन्नुन्टु
पावाट मुकळिल तळिक वच्चु
तळिक निऱयोळम् वेळ्ळरियुम्
वेळ्ळरि मेलोरु नाळिकेरम्
नाळिकेरत्तिन्मेल चेंपषुक्का
चेंपषुक्कमेलोरु कोषिमुट्टा
कोषि मुट्टमेले तूशि नाट्टि
तूशि मुन मेले चुरिक नाट्टि
चुरिक मुनमेले मरिन्नु निन्नु
नृत्तङ्ङळेषुम् कुरिच्चवनुम्"

अर्थात् - आरोमल ने उठकर पीठ खींचकर मंच पर रखा। उस पर घोंपरा बिछाया और घोपरे में तश्तरी रखी। तश्तरी श्वेत धान से भरा दी। धान के मध्य में एक नारियल रखा और उसके ऊपर सुपारी का एक पक्का फल रखा। उस पर मुर्गी का एक अंडा रखकर उस पर एक सुई लगा दी। सुई पर छुरी रखी। उस छुरी पर खड़े होकर उसने सात प्रकार के नृत्य दिखाए। इस प्रकार का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन वटक्कन गीतों की विशेषता है।

इसी के समान आरोमल की बहन उण्णियार्चा अल्लिमलर नामक देवी मंदिर में नाच देखने के लिए जाती है तो सास ने आपत्ति प्रकट की कि रास्ते में मुसलमानों की बस्ती है और उधर से रात में

जाना खतरनाक है। तब उण्णियार्चा ने कहा कि मैं चलूँगी और मुसलमानों का सामना करूँगी। वह सज धज कर, खड्ग अपने कमर में बाँधकर निकलती है। उसकी वेश-भूषा का वर्णन इस गीत में मिलता है

"चन्दनम् उरसि कुरि वरच्चु
कण्णाटि नोक्कि तिलकम् तोट्टु
पोलि तिरुमुटि केट्टि वच्चु
कस्तूरि कळभङ्ङळ पूशुन्नुण्टु
मेय्याटपेट्टि तुरन्नु वेच्चु
एषुकटलोटि वन्न पट्टु
पच्चेलप्पट्टु चुळियुम् तीर्त्तु
पूक्कलिन्जेरि वच्चुटुक्कुन्नुण्टु
पोनतोटयेटुत्तु चमयुन्नुण्टु
कोट्टप्पटि वच्च पोन्नरञ्ञाणम्
मोतेयषकिनु पूट्टन्नुण्टे
एषु चुररुळ्ळोरु पोनमालयुम्
मुत्तु पतिच्चुळ्ळ मालयल्ले
कषुत्तिलु तन्नेयुम् चेर्त्तणिञ्ञु
रामायणम् कोत्तिय रंटु वळ
एल्लामे इट्टङ्ङणियुन्नुण्टु
पोन्मुटि तन्नेषुम् चूटुन्नुण्टु
चमयङ्ङळोक्के चमञ्ञोरुङ्ङि
कैविरल्कारिनुम् मोतिरवुम्
चेर्च्चयोटङ्ङणियुन्नुण्टुं
उरुमियेटुत्तङ्ङरयिल पूट्टि ।"[1]

अर्थात् माथे पर चंदन का लेप लगाया। दर्पण देखकर तिलक लगाया और अपने बाल गूँथकर बाँधे। शरीर पर कस्तुरी और चन्दन का लेप किया। वस्त्रों की पेटी खोलकर सात समुद्र पारकर आयी रेश्मी साड़ी लेकर शिकन ठीक करके पहनी। सोने का कर्णाभूषण डाला। कमर में सोने की कमरबंदी पहनी और सात घेरेवाली स्वर्ण-माला गले में डाली। रामायण की कथांकित सोने के कंगन धारण किए और

1. सी.ए मेनोन, वटक्कन पाट्टुकळ - Ballads of Northern Malabar - पृ. 23

ऊँगलियों में छः अंगूठियाँ पहनीं। कमर में 'उरुमि' (विशेष प्रकार की तलवार) बाँधकर जाने के लिए तैयार हो गयी।

उपर्युक्त गीत में उस समय की नारियों की वेशभूषा संबंधी जानकारी प्राप्त होती है साथ ही साथ उनके धैर्य का भी परिचय मिलता है।

आगे तच्चोळी ओतेनन से संबंधित एक लोकगीत प्रस्तुत है। इसका प्रसंग इस प्रकार है - देश शासक को कोटुमल कुञ्ञिक्कणन कर नहीं देता था। इतना ही नहीं जो सेवक कर लेने के लिए भेजे जाते उनको बेगार काम कराता भी था। इससे तंग आकर शासक ने ओतेनन को कर उगाहने के लिए भेजा।

"कोटुमल कुंकियुटे गर्वटक्कि
तच्चोळी नल्लोमल कुञ्ञोतेनन
वेगत्तिल तेच्चु कुळिक्कुन्नल्लो
तन्टे चमयम् चमयुन्नल्लो
मुंपिल पुलिक्कुंतम् कंटयच्चेरी
वय्यमरक्कारन कुञ्ञोतेनन
रण्डाळुम् कूटि पोरुन्नल्लो
कोट्टयकत्तोट्टु पोरुन्नल्लो
कोट्टयकम् वाण तंपुरानो
तिरुमेनि कण्णाले काणुन्नेरम्
अटिक्कुम्, मुटिक्कुम् तिरुमेनिक्कुम्
वळरे कैकूट्टि तोषुतु निन्नु
उटनरुळि चेय्युन्नल्लो
तच्चोळी नल्लोमल कुञ्ञोतेना
कोटुमल वाणुळ्ळ कुञ्ञिक्कण्णन
काळोरी मूवांटिलेरेयायी
पुत्तनमणिप्पेरकीक्कात्ततुम्
पुत्तन मटिशीला पेरुम् इल्ला
एरियोरु नायर परञ्ञयच्चि
कोटुमल वाणुळ्ळ कुञ्ञिक्कण्णन

एळिळले पुल्लु परिप्पक्कयुम्
मुण्डोयन वित्तिने पोतिकेट्टिक्कयुम्
पट्टिणि केटत्तोट्ट कोल्लान्
नो पोयी पाटु पिरिप्पिरक्कणम्
पाटु पिरिच्चु नी वन्नेन्नाल
पाटालप्पाति निनक्कोतेना।"[1]

अर्थात् कोटुमल कुंकी के अहंकार को नष्ट करनेवाला ओतेनन स्नान करने अपने मित्र कंटयच्चेरी चाप्पन के साथ निकला। दोनों पैदल चलकर शासक के गढ़ में पहुँच गए। दोनों ने बड़ी विनम्रता से शासक की वन्दना की। शासक ने ओतेनन से इसप्रकार कहा - कुञ्ञोतेनन, कोटुमल कुञ्ञिक्कण्णन दो-तीन वर्षों से कर नहीं देता। जिनको भी कर वसूल करने के लिए उसके पास भेजते हैं उनसे तरह-तरह के काम करवाकर छोड़ता है। अतः तुम जाओ और उससे कर उगाह लाओ। उसमें से आधा हिस्सा तुम्हें दूँगा।

यहाँ शासक द्वारा प्रांत के मुखियाओं से बलपूर्वक कर उगाहने की ओर संकेत मिलता है।

अपनी भानजी के साथ बुरा व्यवहार करनेवाले नंपियार को मारने के प्रसंग में ओतेनन के कथन से घर की स्त्रियों की इज़्जत को सब कुछ माननेवाले पुरुषों का जीता जागता चित्र हमें मिलता है

"तच्चोळी नल्लोमल कुञ्ञोतेनन
एणीरिरुन्नल्लो कुञ्ञोतेनन
कैनरी ओतेनन 'नाये केल्क
ओरुत्तन्टोरुत्तीने कोतिक्काओ'
अतुम् परञ्ञड्डु कुञ्ञोतेनन
नंपियारे कुत्तीट्टु कोल्लुन्नल्लो"

अर्थात् - तच्चोळी ओतेनन उठकर बैठे और नंपियार से पूछा कि कुत्ते ! क्या कोई किसी दूसरे की पत्नी को चाहता है? यह कहकर ओतेनन ने छुरी की नोक से उसको मार डाला।

इन गीतों में हज़ी-मज़ाक भी काफी मात्रा में मिलता है। ओतेनन और कतिरूर कुरिक्कळ के बीच का एक संवाद देखिए -

"पय्युम् पल्योमल कुञ्ञिच्चंत्वे !
आनोरु केळितम् केट्टिट्टुण्टु

1. सी.ए मेनोन, वटक्कन पाट्टुकळ Ballads of Northern Malabar - पृ. 48-49

तच्चोळी माणिक्कोत्तु कुञ्ञोतेनन
कटत्तुवैनाट्टे पटमुखत्तुं
ओनोरु मुट्टेले पूवनान्नु
पकरम् परञ्ञल्लो कुञ्ञोतेनन
कतिरूर कुरिक्कळे, शिष्यन्मारे
ञानोरु केळितम् केट्टिट्टुण्टु
कतिरूर नाट्टिले पटमुखत्तुं
निङ्ङळोरु मुट्टेल पेटयाणून्नु"[1]

अर्थात् - कतिरूर कुरिक्कल ने अपने साथी से कहा-'हे पय्यम् पल्योमल चन्तु ! मैं ने सुना है कटत्तनाट्टु युद्ध भूमि में ओतेनन एक मुर्गा के समान है।' तब ओतेनन ने जवाब दिया कि कतिरूर कुरिक्कल और शिष्यगण मैं ने भी सुना है कि कतिरूर युद्ध भूमि में कुरिक्कल एक मुर्गी है।

उस ज़माने में भी स्वार्थता और धन लिप्सा को कोई कमी नहीं थी। माँ भी अपनी बेटी से धन कमाने के लिए कुछ भी करने की प्रेरणा देती है। मातुक्कुट्टी नामक एक गीत का एक प्रसंग देखिए। ससुराल जानेवाली मातुक्कुट्टी से माँ कहती है

"अम्मयोटु यात्रयुम् चोल्ली मातु
अप्पप्परयन्नु पेऱ्रोरम्मा
चेऱिय भाग्यम् निनक्किण्टेन्नालुम्
वलिय भाग्यम् वन्नु विळिक्कुन्नेरम्
अतुं कलञ्ञीटल्ले कुञ्ञिमोळे
मानम् केट्टुम् पणम् नेटिक्कोण्टाल
मानक्केटाप्पणम् पोक्कुमल्लो
नल्लोणम् सम्मतम् मूळि पेण्णुं ।"[2]

अर्थात् मातु ने अपनी माँ विदाई की तब माँ ने उससे कहा - 'अब तुम्हें छोटा सा भाग्य मिला है लेकिन कभी भी बडा भाग्य आ सकता है तब उसे टुकराना मत बेटी। अपनी ईमान बेचकर भी धन कमाओ, उसी धन से हमरा कलंक भी दूर होगा।' मातु इससे सहमत हो गयी।

इसी गीत का दूसरा एक प्रसंग देखिए। बाहर जाते समय चन्तु अपनी पत्नी मातु से कहता है -

1. सी.ए मेनोन, वटक्कन पाट्टुकळ Ballads of Northern Malabar - पृ. 66

2. चिरक्कल टी बालकृष्णन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ - भाग -1 पृ. 63-64

"आनङ्ङवटन्नुँ पोयियालुँ
पटिक्कु पुऱत्तु नी कीयरुते,
पोऱम्कुळम् पुक्कुनी कुळिक्करुते
इन्नाटु वाषुन्न तंपुरानो
कण्णु वलुप्पूळ्ळ तंपुराना,
निन्नया तंपुरान कण्टुपोया
निन्नयत्तंपुरान कोण्टुपोकुम्"[1]

अर्थात् - मेरे जाने के बाद तुम घर के बाहर मत जाना और नहाने के लिए बाहर के तालाब में जाना मत। यहाँ का शासक बड़ा लंपट है। यदि उसने तुम्हें देख लिया तो तुम्हें उठाकर ले जाएगा। इससे सामन्त व्यवस्था में स्त्री को भोग्या के रूप में देखनेवाले शासकों का परिचय मिलता है।

इस प्रकार जीवन के विभिन्न पक्षों को समग्र रूप से आँकने का प्रयास वटक्कन गीतों में देख सकता है। इन गीतों का क्षेत्र इतना विशाल है कि सभी विचार करना आसान कार्य नहीं है। इसलिए इसका नामोल्लेख ही यहाँ हुआ है।

ग) वंचिप्पाट्टु (नौका गीत)

'वळ्ळम् कळि' या नौका खेल तिरुवितांकूर के लोगों में सबसे प्रिय खेल एवं मनोरंजन का साधन है। बड़े झीलों तथा नदियों के किनारे पर स्थित मंदिरों में त्योहार के रूप में इसका आयोजन होता है। बड़े-बड़े झीलों तथा रमणीय नदियों से संपन्न इस राज्य में नौका खेल का प्रचार होना स्वाभाविक बात है।[2] नौका खेलनेवाले खिलाड़ियों को गाने के लिए रचे गये गीतों को 'वंचिप्पाट्टुँ'या 'वळ्ळप्पाट्टुँ' कहते हैं। सबसे पहले इन गीतों को मौखिक रूप से गाए जाते थे। लिपिबद्ध न करने के कारण ऐसे गीत आज उपलब्ध नहीं है। लेकिन बाद में मलयालम की एक विशिष्ट साहित्यिक शाखा के रूप नौका गीत विख्यात हुए। इसका श्रेय श्री. रामपुरत्तुँ वार्यर को है जिन्होंने मलयालम के सबसे श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध नौका गीत 'कुचेलवृत्तम्' की रचना की थी। बाद में इस साहित्य शाखा को संपन्न बनानेवाली अन्य रचनाएँ है - 'किरातम्','नलचरितम्', 'सन्तान गोपालम्', 'दक्षयागम्', 'आरन्मुळ चरितम्' आदि। ये गीत विशेष ताल-लय के साथ गाए जाते है इसलिए इसके लिए 'नतोन्नता' नामक छन्द का प्रयोग किया जाता है।

नौका खेल के लिए कई प्रकार के गीत गाए जाते हैं। उनमें एक है 'वच्चु पाट्टुँ'। जब नौकाएँ

1. चिरक्कल टी बालकृष्णन नायर, केरल भाषा गानङ्ङळ - भाग -1 पृ. 63-64

2. कुचेलवृत्तम् (वंच्चिप्पाट्टुँ) भूमिका - पृ. 5

धीरे-धीरे चलती है या गति को कम करना है तो 'वच्चु पाट्टुं' गाते है। प्रतियोगिताओं के समय जोश बढ़ाने के लिए तथा प्रतिद्वन्दियों की खिल्लि उठाने के लिए बहुत तेज़ी से गानेवाले गीतों के 'कुत्तुं पाट्टुं' कहते हैं।

ऊपर बताई गयी बडी रचनाओं को छोड़कर ग्रामीण लोगों के बीच प्रचलित बहुत सारे फुटकल गीत भी हैं। इन गीतों में तत्कालीन जीवन तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का पुट देखने को मिलता है।

पहले ही बता चुका है कि नौका गीतों का प्रणेता रामपुरत्तु वार्यर है। उनकी रचना 'कुचेलवृत्तम' में कृष्ण तथा सुदामा (कुचेलन) की आपसी मित्रता, कृष्ण की दयालुता एवं सहानुभूति का अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है। इस रचना के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

घर की भीषण गरीबी असहनीय होने पर अपनी पत्नी का कहना मानकर सुदामा प्रिय मित्र कृष्ण के पास जाने के लिए तैयार हुआ। किन्तु इतने सालों बाद अपने मित्र से मिलने खाली हाथ जाना उसे पसंद नहीं। इसलिए वह अपनी पत्नी से कहता है

"पऱञ्ञतङ्ङने तन्ने पातिरावायल्लो पत्नी
कुऱञ्ञोन्नुऱङ्ङट्टे ञानुलकिलेषुम्
निऱञ्ञ कृष्णनेक्काण्मान पुलऱक्काले पुऱप्पेटाम्
अऱिञ्ञु वल्लतुम् कूटे तन्नयक्कणम्
त्रिभुवनमटक्कि वाणिरुन्नरुळुन्न महा-
प्रभुविनेक्काण्णान कैक्कलेतुम् कूटाते
स्वभवनत्तिलनिन्नु गमिक्करुतारुम् कैक्क-
लिभवुमामिलयुमाम्, कुसुमवुमाम्
अवलुमाम्, मलरुमाम्, फलवुमाम् यथाशक्ति
मलक्कन्यामणवाळनोक्केयुमाकुम्
मलम् कळ मनस्सिलेन्तुवेन्टेन्नऱियाञ्ञु
मलक्केन्टा, चोन्नतिलोन्नुण्टाक्कियालुम्।"[1]

अर्थात् - हे पत्नी, बातें करते-करते आधी रात हो गयी है, अब थोड़ा सो जाना चाहिए। सात लोकों में प्रभुत्व ज़माने वाले कृष्ण से मिलने के लिए कल सवेरे ही निकलना है। लेकिन भेंट के रूप में कुछ-न-कुछ दिया जाना चाहिए। तीन भुवनों के प्रभु से मिलने केलिए खाली हाथ जाना उचित नहीं है। आम के पत्ते, फल, धान इनमें से कुछ भी अपनी क्षमता के अनुसार दे सकते है। लेकिन इस बात को लेकर

1. रामपुरत्तु वार्यर, कुचेलवृत्तम् पृ. 40

सुबह पत्नी द्वारा दिया गया उपहार लेकर सुदामा द्वारका की ओर रवाना हो गया। द्वारका पहूँचने पर श्रीकृष्ण दूर से ही अपने मित्र को पहचान लेते हैं। इसका वर्णन इसप्रकार है

"आष़िमकळुमोरुमिच्चोरु कट्टिन्मेलन्नेर-
मेष़ाम्माळिकमुकळिलिरुन्नरुळम्
एषुरण्टुलकुवाष़ियाय तंपुरानेत्रयुम्
ताष़त्तन्टे वयस्यने दूरत्तु कण्टु
कण्टालेत्र कष्ठमेत्रयुम् मुषिञ्ञ जीर्णवस्त्रम्-
कोण्टु तऱ्ऱुवुत्तिट्टुत्तरीयवुमिट्टु
मुण्टिल पोतिञ्ञ पोतियुम् मुख्यमाय पुस्तकवुम्
रण्टुम्कूटे कक्षत्तिकलिटुक्किकोण्टु
भद्रमाय भस्मवुम् धरिच्चु नमस्कारकिण-
मुद्रयुम् मुखरमाय पोळिक्कुटयुम्
रुद्राक्ष मालयुमेन्ति; नाम कीर्तनवुम् चेय्तु
चिद्रूपत्तिकलुऱच्चु चेन्जेम्मे चेल्लुम्
अन्तणनेक्कण्टिट्टु सन्तोषम् कोण्टो, तस्य दैन्यम्
चिन्तिच्चिट्टुळ्ळिलुण्टाय संतापम् कोण्टो
एन्तुकोण्टो शौरी कण्णुनीरणिञ्ञु, धीरनाय
चेन्तामरक्कण्णनुण्टो करञ्ञिट्टुळ्ळु।"[1]

अर्थात् - महल की सातवीं मंजिल पर, समुद्र की पुत्री के संग एक ही पलंग पर बैठनेवाले, चौदह लोकों के स्वामी श्रीकृष्ण ने नीचे अपने मित्र को दूर से देखा। फटे-पुराने कपड़े धारण कर, हाथ में ग्रंथ और गठरी लिए, भस्म का टीका लगाकर, फटी और मुखरित छतरी लिए, हाथ में माला फेरकर प्रभु की चिन्ता में मग्न होकर धीरे-धीरे आनेवाले अपने मित्र आई खुशी से हो या उसकी दयनीय अवस्था देखकर हुए दुख से हो, श्रीकृष्ण की आँखों में आँसू आ गए। वीर कमलनयन इससे पहले कब रोए हैं?

इसके बाद सुदामा का स्वागत श्रीकृष्ण किस प्रकार करते हैं, देखिए

"माऱत्ते वियर्प्पुवेळ्ळम् कोण्टु नारुम सतीर्थ्यने
माऱत्तुणमयोटु चेर्त्तु गाढम् पुणर्न्नु
कूरुमूलम तृक्कैकोण्टु कैपिटिच्चु कोण्टु परि-

1. रामपुरत्तु वार्यर, कुचेलवृत्तम् पृ. 48-49

केरिक्कोण्टु लक्ष्मी तल्पत्तिन्मेलिरुत्ति
पळ्ळिप्पाणिकळेकोण्टु पादम् कषुकिच्चु परन
भळ्ळोषिञ्ञु भगवती वेळ्ळमोषिच्चु
तुळ्ळियुम् पाषिलपोकाते पात्रङ्ङळिलेऱ्ऱु तीर्थ
मुळ्ळतुकोण्टु तनिक्कुमार्क्कुम् तळिच्चु।"[1]

अर्थात् श्रीकृष्ण ने पसीने से सने हुए अपने मित्र का आलिंगन किया। बहुत प्यार से उसके हाथ पकड़कर ऊपर ले गए और लक्ष्मी के पलंग पर उसको बिठाया। उसके बाद अपने पवित्र हाथों से उसके पैर धोये तब लक्ष्मी ने अहंकार छोड़कर पानी डाला। एक बूँद भी नीचे गिराए बिना सारा पानी एक बर्तन में एकत्रित किया और पवित्र मानकर अपने और वहाँ उपस्थित सभी के ऊपर छिड़काया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण-सुदामा का संपूर्ण कथानक इस काव्य में चित्रित है। कथानक चाहे जो कुछ भी हो इसके गाने का ढ़ंग एक ही है। आगे कुछ फुटकल गीतों का विश्लेषण करेंगे। ये गीत आम लोगों के बीच बहुप्रचलित हैं-

"किषक्कन कायलिलोळम् तल्लुंपम्
ओर्क्कुम् ञानेन्टे मारने
मारने, वीरने, एन्टंपिट्टामणिमारने।
(किषक्कन कायलि...)

कार्रु वन्नु कतकु तल्लुंपम्
ओर्क्कुम् ञानेन्टे मारने
मारने, वीरने, एन्टंपिट्टामणिमारने (किषक्कन......)

ओरुमुरि तेड्ड़ा ञान
आरुमासमरच्चल्लो
एन्निट्टुम् काणुन्निल्लेन्टंपिट्टामणिमारने
मारने, वीरने, एन्टंपिट्टामणिमारने (किषक्कन....)

कोषिक्कोट्टु पळ्ळिक्कोरु
कोषिकुञ्ञिने नेर्न्नल्लो

1. रामपुरत्तु वार्यर, कुचेलवृत्तम् पृ. 49-50

एन्निट्टुम् काणुन्निल्लेन्टंपिट्टामणिमारने
मारने, वीरने, एन्टंपिट्टामणिमारने (किषक्कन....)

परुमलप्पळ्ळिक्कोरु
परुंतुम् कुञ्ञिने नेर्न्नल्लो
एन्निट्टुम् काणुन्निल्लेन्टंपिट्टामणिमारने
मारने, वीरने, एन्टंपिट्टामणिमारने (किषक्कन....)"[1]

अर्थात् - एक विरहणी पत्नी अपने पति के इन्तज़ार में बैठी हुई है। उसका पति विदेश गया हुआ है और बहुत दिन बीत जाने पर भी घर वापस आने का नाम ही नहीं लेता। वह कहती है - पूर्वी झील में लहरें उठते समय मुझे अपने वीर एवं सुन्दर पति की याद आती है। हवा का झोंका दरवाज़े पर पडते समय मुझे अपने पति की याद आती है। एक नारियल के आधे हिस्से से छः महीनों तक रसोई चलाई, फिर भी अपना प्रिय दिखाई नहीं दिया। कोषिक्कोटु मस्जिद को एक मुर्गा अर्पित की, फिर भी मेरा पति घर वापस नहीं आया। 'परुमला' गिरिजाघर को एक चील अर्पित किया फिर भी मेरा पति घर वापस नहीं आया। बीच बीच में 'किषक्कन कायलिलोळम् तळ्ळुंपोल ओर्क्कुम् ञानेन्टे मारने' कई बार दुहराकर गाने से गीत की मनमोहकता और बढ़ जाती है। केरल के बच्चे-बच्चे यह गुनगुनाते हैं।

दूसरा गीत देखिए

"तेय्तिमित्तिमितोम् तेय्यंतोम्
तोम् तिमित्तिमितोम्

तुष़ वलिक्कण कूट्टरे
नीटिट्टु नीट्टि तुष़युमो
पटिञ्ञारन कार्रटिक्कण
कात्तिरिक्काते (तुष़वलिक्कण.........)

अलरिवरण मलकणक्किनुं
तिरयटिक्कण नेरत्तुं
करुत्तिरुंट करिमुकिलिलुं
मिन्नलु मिन्नण नेरत्तुं (तुष़वलिक्कण.........)

1. जी कमलम्मा, पष़मयुटे अर्थतलङ्ङळ- पृ.144

दूरे दूरे पच्चवच्च
करयट्टुक्कण नेरत्तु
अविटे नम्मुटे कण्मणिकळुँ
कात्तिरक्कण नेरत्तुं (तुषवलिक्कण.........)

तुषयेट्टुत्तु, नयंपटेत्तुं
कै कोषञ्ञोरे
अलकटलिलुँ वलयेरिञ्ञुँ
मीन पिटिप्पोरे (तुषवलिक्कण.........)"[1]

अर्थात् हे नाव खेनेवाले मित्रो, ज़रा जल्दी-जल्दी पतवार चलाओ, पश्चिमी हवा के आने की प्रतीक्षा में मत बैठो। पहाड़ों जैसी भयानक लहरें उठते समय, काले-काले बादलों से बिजली चमकते समय जल्दी जल्दी पतवार चलाओ। दूर के हरियाली भरे किनारे पहुँचते समय, वहाँ हमारी प्रियायें हमारी प्रतीक्षा में बैठते समय जल्दी-जल्दी पतवार चलाओ। पतवार चलाकर थके हुए हाथोंवालो, गहरे समन्दर में जाल डालकर मछली पकड़नेवाले ज़रा जल्दी पतवार चलाओ पश्चिमी हवा की प्रताक्षा में मत बैठो।

इस प्रकार के सुन्दर गीतों का भरमार है इस साहित्यिक विधा में। केरल की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थिति की वजह से ही इसप्रकार के गीतों का सृजन यहाँ हुआ है।

4.18.6 हिन्दी प्रदेश के लोकगीत

"लोकगीत सामान्य जनजीवन के बीच गूँजनेलाली बाँसुरी की तान है, उसके अंदर की धड़कन है, उसके सुख-दुख, हर्ष-विषाद तथा संस्कृति की एक साफ-सुथरी तस्वीर। यदि किसी समुदाय, वर्ग या जाति की भावनाओं, आस्थाओं एवं संस्कारों को जानना हो तो उसके लोकगीतों का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि लोकजीवन की वास्तविक भावनाओं की वास्तविक तस्वीर लोकगीतों में ही मिलती है।"[2] इस दृष्टि से हिन्दी प्रदेश के लोकगीतों का विवेचन करें तो निम्नलिखित प्रकार के लोकगीत पाए जाते हैं-

1. संस्कार संबंधी लोकगीत
2. ऋतु संबंधी लोकगीत
3. व्रत-त्योहार संबंधी लोकगीत

---

1. जी कमलम्मा, पषमयुटे अर्थतलङ्ङळ -पृ. 145
2. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 09

4. व्यवसाय संबंधी लोकगीत/जातिगीत
5. देवी-देवताओं से संबंधित लोकगीत
6. विविध लोकगीत।

4.18.6.1 संस्कार संबंधी लोकगीत

संस्कार जीवन के विभिन्न अवसरों को महत्त्व एवं पवित्रता प्रदान करते हैं। वे इस बात पर ज़ोर डालते हैं कि जीवन के विकास का प्रत्येक चरण केवल एक जैविक प्रक्रिया नहीं है बल्कि इसका संबंध कहीं न कहीं धार्मिक आस्था, बुद्धि, भावना तथा मनुष्य की आत्मिक अभिव्यक्ति से भी है। इसकी उपेक्षा किसी भी दशा में नहीं की जा सकती। "संस्कारों के अभाव में जीवन की घटनाएँ शरीर की दैनिक आवश्यकताओं और आर्थिक व्यापारों के समान अनाकर्षक, चमत्कारहीन और जीवन के भावुक संगीत से रहित हो जाती है।"[1] संस्कार संबंधी लोकगीतों की श्रेणी में निम्नप्रकार के लोकगीत पाए जाते हैं।

(क) सोहर के गीत
(ख) मुंडन के गीत
(ग) यज्ञोपवीत के गीत
(घ) विवाह के गीत
(ड़) गवना के गीत
(च) मृत्यु संबंधी गीत[2]

(क) सोहर के गीत

पुत्र जन्म के अवसर पर गाए जानेवाले गीत हिन्दी क्षेत्र में सामान्यतः सोहर कहे जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में इन्हें "सोहिला" भी कहा जाता है। "सोहरों का प्रधान विषय शृंगार है। इसमें स्त्री-पुरुष की रति-क्रीडा, गर्भाधान, गर्भिनी की शरीर-यष्टि, प्रसव पीड़ा, दोहद धाय का बुलाना और पुत्र जन्म का वर्णन पाया जाता है।"[3] सोहर के गीतों में पति-पत्नी विरह तथा मिलन का मार्मिक अभिव्यक्ति दर्शनीय है। पति-पत्नी मिलन के बाद पत्नी गर्भवती हो जाती है और उसके गर्भधारण करने के बाद प्रथम महीने से सातवें महीने तक की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में होनेवाले परिवर्तन को निम्नलिखित सोहर में दिखाया गया है

प्रथम गणेश पद बान्दे अरज सुनाइले हो।
ललना विघ्न हरण गणनायक मंगलदायक हो।

1. डॉ सम्पत्ति आर्याणी, मगही भाषा और लोकसाहित्य पृ. 155
2. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 35-115
3. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका - पृ. 44

चढ़ि गेले प्रथम महीना सो मन भरियाइल हो।
ललना, नहीं भावे सुख के सेजरिया सो रतिया नीद आवे हो।
दूसर हो चढ़ले महिनवाँ, अन्न नहीं रुचेला हो।
चढ़ि गइले तीसरे महिनवाँ, ना दिल कहीं लागेला हो।
चउथहि चढ़िले महिनवाँ जम्हाई रहि-रहि आवे हो।
ललना, नहिं भावे घर के अँगनवाँ सो मनघबरावेला हो।
पाँच-छव बितले महिनवाँ सो देहिया पहाड़ भईले हो।
ललना, नाहिं तनु होखेला सम्हार स दुखवा सतावेला हो।
सातवाँ तो बितले महिनवाँ सो आठवाँ पुरन भइले हो।
ललना दिनवाँ न परेला चैनवाँ सो रतिया भयावनि हो।
महादेव सिंह यह गावत, गाई सुनावत हो।
ललना, काहु विधि नहिं तन सुख जो जियरा बेहाल भईले हो।[1]

यह वह काल है, जब शरीर के स्तर पर नारी को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। मन भारी रहता है, भोजन रुचता नहीं है, शरीर दिन-व-रात भारी होता जाता है जिससे उसे संभालना कठिन हो जाता है, न दिन में चैन मिलता है न रात में। नौ महीने पूरे होने के बाद प्रसव काल आता है। प्रसव की पीड़ा क्या होती है यह कोई संतानवाली नारी ही जान सकती है। प्रसववेदना प्रारंभ होते ही उसके व्यवहार का वर्णन निम्नलिखित है

"सुन्दरी लट छिलकाओल, वयसहु के थोर छति रे
ललना रे रहली-देहरी समाय, दरह कोना सहब रे।
एखन पिया यदि आवतथि,झट उठि धरितों रे
ललना रे झुलफी पकडि घिसियाबितों कि दरद बुझाबितों रे
सुन्दरी.....।
भरिहों रे बाबा पंडितवा कि हाथ देलनि रे
ललना रे रहितों गौं बारि-कुंवारि, दरद नहिं जानितों रे।
सुन्दरी............।
राति जखन यह फाटल कि होरिला जनम लेल रे ।

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 42

ललना रे घर-घर बाजे बधाई कि बौआ जनम लेल रे ।
सुन्दरी............।
जीविहौं रे बाबा पंडितवा कि भल हाथ देलनि रे,
ललना रे रहितौं जँ वारि-कुमारी तँ बौआ कहाँ पाबितौं रे।
ललना रे रस-रस बेनिया डोलावितौं कि बौआक नाम राखि थिन्ह रे।
सुन्दरी........................।"[1]

इस गीत में प्रसव पीडा को असह्य मानकर पति पर क्रोध प्रकट किया है। पत्नी कहती है कि अभी वे आ जाते तो उनको बाल बाल पकड़कर घसीटती। पिता और पंडित पर भी क्रोध प्रकट किया गया है चूँकि उन्हीं लोगों ने उसका विवाह करवाया था जिसे आज यह दुख भोगना पड़ रहा है। कुमारी रहती तो प्रसव का प्रश्न ही नहीं उठता और तब यह कष्ट भोगना ही नहीं पडता। लेकिन पुत्र प्राप्ति के बाद खुशी व्यक्त की गयी है। एक तो सन्तानोत्पत्ति के बाद पीड़ा समाप्त हो गई है, दूसरे पुत्र को प्राप्त करने के बाद मातृत्व जग पड़ा है। इसलिए पिता तथा पंडित को दीर्घायु होने की कामना की गई है क्योंकि यदि वे विवाह न करते तो आज यह पुत्र कैसे प्राप्त होता ? इसलिए वह ममता के कारण बेटे को धीरे-धीरे पंखे की हवा करने का आग्रह करती है।

भारतीय समाज ने धार्मिक संस्कार की धारा अविच्छिन्न रूप से बहती रही है। यही कारण है कि यहाँ पैदा होनेवाला हर बालक राम या कृष्ण ही होता है। इसलिए, पुत्र जन्म के बाद जो सोहर गाया जाता है,उसमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा कृष्ण के जन्म की कहानी दुहराई जाती हैं। एक उदाहरण नीचे दिया गया है

"राम के जनम चैत शुभ दिनवाँ हो राम, राम के जनम ।।
चैत शुक्ल पक्ष दिन तिथि रामनवमी,
जनमल राम चारो ललनवां हो राम,
किनका से जनमल राम ललनवाँ
किनका से भरत ललनाँ हो राम, राम के जनम।।
कौशल्या से जनमल राम ललनवाँ
कैकेयी से भरत ललनवाँ हो राम, राम के जनम।।
किनका से जनमल लखन-शत्रुघ्नवाँ
आनन्द छाये तीनो भुवनवाँ हो राम, राम के जनम।।
सुमित्रा से जनमल लखन-शत्रुघ्नवाँ

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 43-44

श्रीधर तीनहुँ मगनवाँ हो राम, राम के जनम ।।"[1]

इसी प्रकार नवजात शिशु के जन्म के अवसर पर श्रीकृष्ण के जन्म की गाथा भी गायी जाती है मानो वह शिशु भगवान कृष्ण का ही दूसरा रूप हो। इस मंगलवेला में स्त्रियाँ एकत्र होकर उपर्युक्त गीत गाती हैं। ऐसे गीतों में एक ओर शृंगारिकता रहती है तो दूसरी ओर आध्यात्मिकता भी। चूँकि संतानोत्पत्ति एक भौतिक क्रिया है, इसलिए इसमें शृंगारिकता का होना स्वाभाविक है। साथ ही, नवजात शिशु के दीर्घायु होने तथा उज्ज्वल भविष्य की कामना प्रकट की जाती है, इसलिए आध्यात्मिकता का आ जाना भी युक्ति संगत है।

(ख) मुंडन के गीत

"बालक का मुंडन भी क महत्त्वपूर्ण संस्कार है जो भोजपुरी और अवधी क्षेत्रों में धूमधाम के साथ संपन्न किया जाता है। मुंडन संस्कार जन्म के पश्चात् पहले तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष में किया जाता है। प्रायः मुंडन के लिए कोई तीर्थ स्थान देवालय या गंगातट ही उपयुक्त समझा जाता है, जहाँ स्त्रियाँ समूहवद्ध होकर बालक को लेकर जाती हैं और किसी नाई से विधिपूर्वक बालक का मुंडन कराती है।"[2] जब तक मुंडन संस्कार नहीं होता, तब तक बालक-बालिका का बाल कभी काटा नही जाता। इस संस्कार को पूरी निष्ठा के साथ करने के बाद बाल काटने का रिवाज़ है। मुंडन के गीत का एक उदाहरण निम्नलिखित है

"समवा बइठस राजा दशरथ, कोसिला अरज करे हो।
राजा राम के कर जग मूडन ए हो सुख देखबि हो।
अरहिल बन केरे खरहिल कठइबो वृंदावन केरे बाँस हो।
से हो पहिले छबइयो गजमोति चडक पुरइयो हो।"[3]

इस मुंडन-गीत में कौशल्या के रूप में एक पुत्रवती माता के हृदय का सहज प्रेमानन्द प्रकट हो रहा है जो अपने पुत्र के मुण्डन के लिए आतुर है। इसके लिए पहले मुंडन बनाने का कार्यक्रम बनाया जा रहा है। अरहिल जंगल की लकडी और वृंदावन का बाँस लेकर मंडप बनेगा और उसमें गजमोती से चौक पुरेगी।

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - पृ. 45-46
2. डॉ गोपालकृष्ण अग्रवाल, समाजशास्त्र -पृ. 18
3. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - पृ. 54

निम्नलिखित गीत में बालक के प्रति अथोर ममता माँ-दादी के मन को विचलित कर देती है कहीं नाई के अस्तूरे से बच्चे को कष्ट न हो और वह रोने न लगे। इसलिए वे नाई को उपहार देने की बात कहते हुए उसे धीरे-धीरे अस्तूरा चलाने का निर्देश देती है

"हजमा धीरे-धीरे छुरिया चलावहिं
ललना के कनांविहें नहिं।
देबो ललना देहक गंजी, देबो ललना देहक कमीज़,
हजमा हँसा-खुशी से घर चलि जइहें
ललना के लनावहिं नहिं।"[1]

इस तरह के लोकगीतों में सामाजिकता का अटूट भाव तो रहता ही है, साथ ही परोक्ष रूप से मनोरंजन भी होता है। अतएव इसप्रकार के मुंडन-गीत भारतीय हिन्दू समाज की संस्कृति के अटूट अंग हैं क्योंकि संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की देन नहीं होती वरन् संपूर्ण समाज की देन है।

(ग) यज्ञोपवीत के गीत [2]

यज्ञोपवीत-संस्कार को ही बोलचाल की भाषा में उपनयन संस्कार या जनेऊ कहते है। यज्ञोपवीत धारण करने का उद्देश्य आयु-बल और तेज की वृद्धि द्वारा मानव धर्म का अनुपालन करना है। शिक्षा प्राप्त करने हेतु गुरु के पास जाने के पहले इस संस्कार का पूर्ण होना आवश्यक है। विद्यार्थी द्वारा गुरु सामीप्य प्राप्त करना ही उपनयन कहलाते हैं। मनुष्यों में केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के लिए जनेऊ विधान हैं, शूद्रों के लिए नहीं। ब्राह्मणों में यह संस्कार काफी खर्चीला है और बहुत धूमधाम से मनाया जाता है।

निम्नलिखित गीत में बालक द्वारा जनेऊ की विधियों को जानने की उत्सुकता व्यक्त की गई है। प्रत्युत्तर स्वरूप जिन विधियों का वर्णन किया जाता है -

"आरे बइठ कवन बाबा कवन जंघा जोरी।
आरे तहवाँ कवन बरुआ रोदना पसारे।।
भाई हमारे जनेउवा रे बाबा कवन विधि होई है

---

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 57
2. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन - पृ. 127-128

आरे पहिले पहिरे मूँज के डांडा, तब मिरगछाला
तब पहिरे बरुआ रतन जनेउवा।।"

इस गीत में पिता अपने पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार करने के लिए चौक पर जांघ जोडकर बैठा हुआ है, वहाँ बालक मचलकर जनेऊ की विधियों को पूछता है। उसकी माता उत्तर देती है कि पहले मूँज की करघनी पहनायी जाएगी, तत्पश्चात् मृगछाला पहनायी जाएगी, इसके बाद जनेऊ दिया जाएगा।

एक दूसरे यज्ञोपवीत गीत में इसके विधिपूर्वक संपन्न होने का सिलसिलेवार वर्णन है
"कौन बाबा जयताह निकुंज वन
लौताह पलाश दंड हे।
ओहे कौने मैया कटतीह जनेऊ आसूत,
चरखा रन-रन बाजए हे।
'फलना' बाबा जयताह निकुंज वन
लौताह पलाश दंड हे।
'फलनी' अम्मा कटतीह जनेऊआ सूत
चरखा रन-रन बाजए हे।
पाँच रुपैया के चरखा और पैसा धुनाउनि हे।
धन्य-धन्य भाग तोहें 'फलना' बाबा
कि वउआ जनम लेल हे।
वऊआक जन्म सुफल भेल हे
अँगना माड़व भेल हे।
ताहि मड़वा चढ़ि बैसलाह फलना बाबा
कि वउआ जनम लेल है।
बउआक जन्म सुफल भेल हे
अँगना माड़व भेल हे।
ताहि मड़वा चढ़ि बैसलाह फलना बाबा हे

जाँघ जोड़ि रहब अम्मा हे।
कोरा चढ़ि बैसलाह 'फलना' बउआ हे
बाबा हमरो जनउवा दियअ हे।
रहू बाबू, रहू बाबू 'फलना' बउआ हे
हैत सुदिन दिन हे।
मड़वहि घृत ढराय गेल,
स्वर्ग पितर आनन्द भेल हे
बाबू आब कुल बढ़त है।"[1]

इस गीत में पहले पलाश-दण्ड लाने की बात कही गई है। कौन बाबा निकुंज-वन में जाकर पलाश दण्ड लाएँगे और कौन माँ जनेऊ का सूत कातेंगी ? फिर गीत में ही 'बाबा' और 'माँ' का नाम लिया जाता है और बताया जाता है कि वे दोनों पलाश-दण्ड लाने तथा सूत कातने का काम करेंगे। पाँच रुपये के चरखे पर रूई धुनाई में पैसा खर्च कर जनेऊ का सूत काता जाएगा। बाबा को धन्यवाद है कि बालक पैदा हुआ जिससे आज आँगन में यज्ञोपवीत के लिए मंडप बनाया गया है। उस मंडप पर बाबा बैठे और दोनों जाँघों को जोड़कर माँ बैठी। गोद में बालक भी बैठ गया। अब बालक जनेऊ की माँग करता है तो उसे शुभ घड़ी आने की बात कहकर प्रतीक्षा करने को कहा जाता है। इसे देखकर स्वर्ग में पुरखे प्रसन्न होते हैं क्योंकि इसके बाद ही बालक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी होता है। गृहस्थाश्रम में जाने के बाद ही वंश-वृद्धि होती है।

यज्ञोपवीत संस्कार धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है। इन गीतों में हमारे भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति तो होती ही है। हमारे आचरण, सोच, विश्वास की अभिव्यंजना होती है। इसलिए इसप्रकार के अनुष्ठान और लोकगीत सामाजिकता, सामूहिकता और सबके बीच समन्वय सूत्र कायम करने में काफी हद तक सफल होते हैं।

(घ) विवाह के गीत

भारत में प्रचलित विभिन्न प्रकार के विवाहों में हिन्दू-विवाह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृति की भिन्नता के कारण विभिन्न समाजों में विवाह की अवधारणा भी अलग अलग होती है। विवाह संबंधी लोकगीत भोजपुरी के हों, अवधी के हों या मैथिली के हो - सब में लगभग एक ही प्रकार के रीति-

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - पृ. 67

रिवाज़, धार्मिक अनुष्ठान एवं भावों की अभिव्यक्ति की गई है। विवाह में निम्नांकित रीति-रिवाज़ों का अनुपालन किया जाता है।

सर्वप्रथम कन्या के पिता योग्य वर का चुनाव करते हैं। चुनाव हो जाने पर वर के हाथ में कुछ रुपया दे दिया जाता है जिसे 'वरीक्षा' कहते हैं। इसके बाद तिलक होता है। उस दिन कन्या के घर सगुन के गीत गाए जाते हैं। विवाह की निश्चित तिथि के पूर्व हल्दी-धान भेजा जाता है तथा मंडप बनाया जाता है। मंडप बनाते और सजाते समय मंडप-गीत गाए जाते हैं। कन्या के घर माटी-कोड़ाई होती है जिसमें किसी कुआँ-तालाब की मिट्टी खोदने के लिए जाया जाता है। इस अवसर पर भी औरतें गीत गाती हैं। इसके बाद कन्या को तेल और हल्दी लगाई जाती है।'हल्दी-चढ़ाई' की यह विधि गीतों के साथ संपन्न हो जाती है। इसके बाद लावा-भुजाई एवं मातृपूजन होता है। कन्यापक्ष में इतनी विधि संपन्न होने के बाद बारात आगमन की प्रतीक्षा होने लगती है।

जब बारात कन्या के घर पहुँचती है तो सर्वप्रथम द्वार-पूजा होती है तथा समधी एवं बारातियों का स्वागत किया जाता है। उसके बाद भोज दिया जाता है। फिर, 'गृहस्थी' होती है जिसमें वधू को आभूषण एवं वस्त्र दिया जाता है। तब विवाह की विधि प्रारंभ होती है। कन्या के माता-पिता शास्त्रीय विधि से कन्यादान करते हैं। तत्पश्चात् वर कन्या को सिंदूर देता है जिसे 'सुमंगली' कहते हैं। विवाहोपरांत वर-वधू को एक सजाए हुए कमरे में ले जाया जाता है जिसे 'कोहवर' कहा जाता है। तत्पश्चात् वर का कलेऊ होता है कि दूसरे दिन विदाई हो जाती है। विवाह के इन समस्त विधि-विधानों के समय लोकगीत गाए जाते हैं। इस तरह विवाह संबंधी लोकगीतों के दो भागों में बाँटा जा सकता है - कन्या पक्ष के गीत तथा वर पक्ष के गीत। कन्यापक्षीय गीतों में करुण की लहर तरंगित होती रहती है किन्तु वरपक्षीय गीतों में हर्ष का सुमधुर झंकार रहती है। नमूने के तौर पर विवाह के कुछ लोकगीत निम्नांकित है।

इन लोकगीतों में वर के रूप में सदा भगवान राम तथा कन्या के रूप में माँ सीता की कल्पना की गई है। धनुष तोडकर जब श्रीराम को पति के रूप में चयन होता है तब उसका तिलक होता है। निम्नलिखित गीत में इसका वर्णन है।

"छोट नाट देखि जुनि भूलब बाबा, श्याम बरन भगवान यो।
राजा दशरथ जी के चार पुत्र छथि, जेठहिं छथि वीरवान यो।।

राजा दशरथजी के चारि बालक छथिन, जेठ के तिलक चढ़ायब यो।
कँहमा राखत आजन-बाजन, कहाँ राखब बरियात यो।
कँहमा राखत राम-सीता के, कँहवा होयत विवाह यो।
कुर खेत राखब आजन-बाजन, द्वारे राखब बरियात यो।
मड़वा राखब राम-सीता के, कोहबर होयत विवाह यो।
भले विवाह, राम चलल कोहबर, सीता ले अंगुरी लगाई यो ।।"[1]

अर्थात् हे बाबा, बालक जानकर गलती नहीं कीजिएगा, श्याम रंग के भगवान हैं। राजा दशरथ के चार पुत्रों में बड़े हैं और वीर हैं। इन्हीं को तिलक चढ़ाना है। तिलक के बाद विवाह की तैयारियाँ होती हैं। इसलिए, आगे इसी की ओर संकेत है। कहाँ पर बाजे रहेंगे, कहाँ बारात ठहरेगी, कहाँ राम-सीता रहेंगे और कहाँ विवाह होगा? परती खेत पर बाजेवाले रहेंगे, दरवाज़े पर बाराती रहेंगे, मंडप पर राम-सीता को रखा जाएगा और कोहबर में शादी होगी। शादी हो गयी। इसके बाद राम सीता को अंगुली पकड़कर कोहबर की ओर चले।

निम्नलिखित गीत बारात प्रस्थान से जुडा है

"अवध नगरिया से चलल बरतिया आहो रंग पियरे-पियरे।
जनक नगिया भइले शोर, आहो रंग पियरे-पियरे।
विश्वामित्र मुनि संग अइले दोनों भइया, अहो रंग पियरे-पियरे।
एक साँवर, एक गोर, अहो रंग पियरे-पियरे।
सभवा में आके राम तोड़लनि धनुषिया, अहो रंग पियरे-पियरे।
सिया देलनिजयमाल, अहो रंग पियरे-पियरे।
डोलिया के चारो ओर लाले ओहरिया, आहो रंग पियरे-पियरे।
राम संग सिया सुकुमारी, आहो रंग पियरे-पियरे।"[2]

अवध नगरी से बारात चली। जनक नगरी में शोर हो गया। विश्वामित्र मुनि के साथ दोनों भाई आए-एक साँवले और दूसरे गोरे। सभा में आकर धनुष तोड़ा। सीता ने राम के गले में जयमाला पहनाई। फिर ड़ोली पर चढ़कर राम के साथ विदा हो गयी। इस समस्त वैवाहिक उत्सव में हर जगह पीला-पीला ही दिखाई पड़ता था यानी समस्त नर-नारी पीला वस्त्र ही धारण किए हुए थे।

विवाह में सर्वाधिक महत्त्व सिंदूरदान का है। निम्नांकित विवाह-गीत में इसी का वर्णन है -

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 85
2. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 87

"प्रिय पाहुन सिंदूर दान करू.....
लग्न मुहूर्त्त सुमंगल एहिखन
अब न बिलम्ब महान करू।
प्रिय पाहुन.........
लिआ सिंदूर कर कमल मुदित-चित्त,
अखन न किछु हठमान करू।
प्रिय पाहुन........
गावधि अलिगण गान मधुर सुर
शुभ-शुभ मंगल गान करू।
प्रिय पाहुन........."

अर्थात् हे प्रिय पाहुन, शुभ मुहूर्त्त और लग्न आ गया है, अब विलम्ब मत कीजिए और सिंदूरदान कीजिए। अपने कमल जैसे सुन्दर हाथ में सिंदूर लीजिए और अभी किसी प्रकार का हठ मत कीजिए। सखियाँ मीठे स्वर में गीत गायें, मंगल कामना के शुभ गीत गाएँ।

विवाह का अवसर खुशी एवं हास-परिहास का होता है, इसलिए निम्नांकित लोकगीत में नारियाँ दुल्हे पर टीका-टिप्पणी कर भरपूर मनोरंजन कर रही है

"माई हे मड़वा पर दुल्हा खडा छै कोना,
जेना सखुआ के खूँटा खड़ा छै तेना।
सखि हे मड़वा पर दुल्हा घुमै छै कोना,
जेना केल्हुआ में बरद घुमै छै तेना।
सखि हे मंडप पर दुल्हा बोलै छै कोना,
जेना बकरी से बकड़ा बोलै छै तेना।"

अर्थात् आश्चर्य करती हुई एक लड़की कहती है - हे माँ, मंडप पर लड़का कैसे खडा है ? फिर उत्तर भी स्वयं देती है - जैसे सखुए का खूँटा खड़ा रहता है। हे सखि, मंडप पर दुल्हा घूम कैसा रहा है जैसे कोल्हू का बैल घूमता है। हे सखि, मंडप पर दुल्हा बोलता कैसे है? जैसे बकरी से बकरा बोलता है। इस तरह मजाकिया गीत वातावरण को मनोरंजक एवं सरस बना देते हैं।

इस प्रकार हम देख सकते है कि विवाह संबंधी लोकगीतों में विविधता ही विविधता है। डॉ स्वर्णलता के शब्दों में -"हिन्दू शास्त्रों में वर्णित मनुष्य के जन्म से मृत्युपर्यंत सोलह संस्कारों में से चार

प्रमुख माने जाते हैं - जन्म, उपनयन,विवाह और मृत्यु। इन सभी अवसरों पर गाए जानेवाले गीतों में जन्म और विवाह संबंधी गीत अत्यधिक संख्या में मिलते हैं और विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।"[1]

(ड़) गवना के गीत

गवना के गीत वस्तुतः विदाई गीत ही होते हैं। कुछ दशक पहले तक हिन्दुओं में बाल विवाह की प्रथा थी। शायद भविष्य में बढ़नेवाले दहेज की रकम के भय से या लड़की के बड़े हो जाने पर वर ढूँढना कठिन होगा, इस आशंका से लड़के-लड़की का विवाह छोटी उम्र में ही कर दिया जाता था। यह वह उम्र होती थी जब न लड़की विवाह का अर्थ जानती थी और न लड़का। इसलिए जब दोनों जवान होते थे, तब उनका गवना या गौना किया जाता था। ऐसे अवसर पर दुल्हन की माता-पिता की ओर से गृहस्थी की अनेक सामग्री यथाः वस्त्र, बर्त्तन, पलंग-कुर्सी आदि देने की प्रथा है।

निम्नलिखित विदाई गीत में कन्या को पार्वती के सदृश्य मानकर पार्वती की विदाई दृश्य अंकित किया है

"घर भरि गौरी घर से बाहर गेली,
ठाढ़ भेली ओसरा आवी।
आय गे माई पर गे परोसिनी,
कहिओन शिव के बुझाय ।।
हमर धिया के आश पुरावथि
झट दे दिहथि बहुराय।
आय गे माई, पर हे परोसिनो
मनाइन के दियौ नै बुझाय।
सब के धिया बेटी सासुर जाय थथि
माय बैसथि हिया हारि।।"

अर्थात् घर से गौरी निकलकर ओसरे पर आकर खड़ी हो गयी। व्यथित माँ पड़ोसिनों से कहती है कि आप लोग शिव को समझाकर कहें कि हमारी पुत्री की इच्छाओं का ख्याल रखें और झट उनकी पूर्त्ति कर दें। हे पड़ोसिनों, शिव को समझाकर मनावें (कि वे गौरी को न ले जाएँ) लेकिन पड़ोसिनें माँ को ही समझाती हैं कि वे चुप हो जाएँ क्योंकि एक दिन सभी की पुत्री ससुराल जाती है। यह सुनकर माँ हृदय हारकर बैठ जाती है।

निम्नलिखित लोकगीत मिथिला में बहुत ही लोकप्रिय और प्रचलित है। वस्तुतः इस गीत में इतनी करुणा है कि कोई भी वज्रहृदय इसे सुनकर द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता।

1. लोकसाहित्य विमर्श - पृ. 51

"बड़ा रे जतन से सिया धियाहे पोसलों,

सेहो रघुवंशी नेने हे जाय।

हाथी-हथिसारे रोवै, घोड़ा-घोडसारे रोवै

रानीजी रोवथि रनिवास।

जनक नगरिया में रोदना उठैयै,

अयोध्या में बाजैय बधाय।"

बड़ा यत्न से सीता बेटी को पोसा था जिसे आज रघुवंशी राम लिए जा रहे हैं। उनके जाने से हाथी और हथसार तथा घोड़ा और घोड़सार रो रहे हैं, महल में रानी भी रो रही है। इधर जनक की नगरी में रोदन हो रहा है और उधर अयोध्या में बधैया बज रहा है।

एक सामान्य गृहस्थपरिवार की लड़की जब गवना के बाद ससुराल जाती है तो उसके माता-पिता की चिंता कुछ दूसरे प्रकार की होती है

"अबके फुलवा में पनियाँ पटैती,

मोर बेटी जाइए ससुराल

की तोर खेलौं हो बाबा, की रे पहिरलौं

कथी लए भेलहूँ वीरान।

खीर-खाड़ खैले बेटी, चीर पहिरले

सिंदूर ले जे भेलै वीरान।

सोना-रूपा रहितौं बाबा फेर से गढ़वितों

सिन्दूरा ते फेर लो नै जाय।"

अर्थात् अब फूलों को कौन सींचेगी ? बेटी तो आज ससुराल जा रही है। बेटी पूछती है - हे पिताजी, मैंने आपका क्या खाया और क्या पहना? पता नहीं क्यों मैं आज दूसरे की हो गयी। पिता उत्तर देते हैं 'खीर और शक्कर तुमने खाया और वस्त्र पहना। केवल सिंदूर के लिए तुम परायी हो गई।' तब बेटी उत्तर देती है -'सोना-चाँदी होती तो जेवर की तरह तोड़वाकर फिर से बनवाती लेकिन सिंदूर को तो वापस भी नहीं किया जा सकता।'

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सभी गवना गीतों में जिस समाज का वर्णन है वह समाज पारंपरिक भारतीय समाज है। बेटी या बहन के प्रति में अगाध अनुराग है। इसलिए उनकी विदाई के करुण क्षण में माता, पिता तथा भाई का हृदय टूक-टूक हो जाता है। भारतीय संस्कृति में विवाह को एक अटूट

बंधन माना गया है। एक बार विवाह हो गया वह पत्नी बन गई तो उसे अब पूरा जीवन उसी पति के साथ उसी के घर में गुज़ारना है। इसप्रकार गवना गीतों में भारतीय हिन्दू समाज की अनेक विशेषताएँ वर्णित हैं। चूँकि इन गीतों में करुणा और वियोग के आँसू होते हैं, अतएव ऐसे गीतों में हास्य या मनोरंजन का तत्त्व नहीं होता।

(च) मृत्यु संबंधी गीत

"मृत्यु संस्कार मानव जीवन का अंतिम संस्कार है। प्रत्येक जाति के व्यक्तियों में मृत्यु संस्कार को किसी न किसी रूप में संपन्न किया जाता है।"[1] जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। इसलिए, हर जाति और धर्म में जन्म के समय खुशियाँ मनाई जाती हैं और मृत्यु के समय दुख और शोक। मृत्यु के बाद जो शोक और दुख होता है, इन गीतों में उसी की अभिव्यक्ति होती है। ऐसे गीतों में मृतक के गुणों को गाया जाता है और स्थायी जुदाई के दुखों की अभिव्यक्ति होती है।

मरे हुए व्यक्ति की लाश का धार्मिक रीति के अनुसार या उस धर्म में प्रचलित रिवाज़ के अनुसार अंतिम संस्कार किया जाता है। यह अब एक लोकाचार बन गया है और 'साधारणतया सभी लोकाचार समाज के मूल्यों और नैतिकता की धारणा से संबंधित होते हैं।'[2]

भारत में मृत्यु के बाद स्त्रियों के द्वारा विलाप किए जाने के दृश्य सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं। ऐसे गीतों में परिवार की स्त्रियाँ मृत व्यक्ति के गुणों के साथ-साथ उसके नहीं रहने से परिवार की शोचनीय स्थिति का वर्णन करती है। उनका रुदन लयात्मक होता है लेकिन उसमें कोई छन्द या राग नहीं होता। वस्तुतः ऐसा कृत्रिम या सोचा हुआ नहीं होता बल्कि हृदय के भावों की सच्ची अभिव्यक्ति होती है। भोजपुरी प्रदेश में एक मृत्यु गीत निम्नलिखित है

"आई के मउवतिया गइल बा नियराई।
हमरे सइयाँ के करम त गइल फूटि।।
फूटि गइल करम परीत भइल खटिया,
हमह रोवेनी-सिरहान धइके पटिया।।
कबहुँ ना छुवले बालम दूबिओ के सटिया,
कबहुँ ना भइल हमरो बालम से संघतिया।

1. डॉ विद्या चौहान, लोकसाहित्य - पृ. 166
2. डॉ गोपालकृष्ण अग्रवाल,समाजशास्त्र - पृ. 139

हमरे सइयां के करम त गइले फूटि

एहि बीच आइ के अम्मु त लिहले लूटि ।।"[1]

अर्थात् एक पुरुष की मृत्यु हो गयी है। उसकी पत्नी उसके बगल में बैठकर रोती हुई यह गीत गा रही है हमारे पति की मौत हो गयी है। उनका भाग्य फूट गया है। वे खाट पर मृत पडे हैं और हम सिहराने बैठकर रो रही हैं। कभी हमारा ठीक से मिलन नहीं हुआ और न कभी उन्होंने मुझे प्रताड़ित किया, इसी बीच मृत्यु ने उन्हें निगल लिया।

पति की मृत्यु के बाद औरत के जीवन में एकदम अंधकार छा जाता है। उसे अपना भविष्य का कोई रूप नहीं दिखाई पड़ता। बेचारी बेचैन होकर इस प्रकार गाती है -

"के मोरा नइया के पार लगइहे ए रामा।

अब कैसे दिनमा काटबि ऐ रामा।

आताना आरामवा हमरा के दिहले,

अब कवन दूर दसवा होये हे रामा।

हम नहीं जनली विदेशवा में मरिहें,

नाहिं तँ जाये ना दिहिति ए रामा।

अब के हमार दिनवा पार लगाई ए रामा।

कवन घाटवा हम लागबि ऐ रामा।।"[2]

अर्थात् हे राम, मेरी नाव को कौन पार लगावेगा? हे राम, अब कैसे दिन काटूँगा? मुझे इतना आराम दिया इन्होंने, अब इनकी मृत्यु के बाद पता नहीं मेरी क्या दुर्दशा होगी। मुझे पता नहीं था कि ये परदेश जाकर मर जाएँगे अन्यथा मैं इन्हें जाने ही नहीं देती। हे राम, अब कौन हमारे भविष्य को पार लगावेगा? पता नहीं अब मैं किस घाट में लगूँगी।

इस तरह के निर्गुण गीत जिनमें आत्मा को एक सुग्गा या हंस माना गया है और जो पता नहीं कब इस शरीर रूपी पिंजड़े को छोड़कर उड़ जाए, मृत्यु के समय गाए जाते हैं

"बड़ा रे यतन से सुगना एक पोसलों,

माखन दुधवा पिलाय।

सोहो सुगना विरीछ चढ़ि बईसल,

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 109

2. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 110

पिंजड़ा रे धरती लोटाय।

ऐते हिन सुतलहुँ मखमल सोजिया पे,

सेहो आज सपनेहु भेल।"

अर्थात् बड़े यत्न से, मक्खन और दूध खिलाकर एक सुग्गे को पोसा था। वही सुग्गा पेड़ पर जाकर बैठ गया और खाली पिंजड़ा धरती पर पड़ा है। इतने दिनों तक मखमल की सेज पर अब वह स्वप्न बन गया। स्पष्ट है कि आत्मा को सुग्गा और शरीर को पिंजड़ा माना गया है। मृत्यु होते ही आत्मा रूपी सुग्गा इस शरीर रूपी पिंजड़े को छोड़कर बाहर चला गया है।

इस प्रकार के संस्कार गीत जीवन के विभिन्न आयामों एवं अवसरों को महत्त्व एवं पवित्रता प्रदान करते हैं।

4.18.6.2 ऋतु संबंधी लोकगीत

प्रकृति अनेक माध्यमों से मानव के स्वभाव और व्यवहार को प्रभावित करती है, उन माध्यमों में से एक माध्यम ऋतुएँ हैं। ऋतु-विशेष पर गाए जानेवाले गीतों को ऋतु गीतों की श्रेणी में खा जा सकता है। ऋतुओं से संबंधित ये गीत ऋतुओं के अनुरूप हो ढले हैं। शास्त्रीय परंपरा के अनुसार भारतवर्ष का पूरा एक वर्ष बारह महीनों (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन) और छः ऋतुओं (बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर) में बँटा हुआ है, किन्तु सामान्य मानव तीन विशेष ऋतुओं (बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा) से ही परिचित है।[1]

ऋतु संबंधी गीत भारत के प्रत्येक राज्य में किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं। ऋतु के अनुसार न केवल गीत के कथ्य बदलते हैं, बल्कि उनके शिल्प में भी परिवर्तन आता है। विविध ऋतुओं में भिन्न भिन्न प्रकार के गीत गाए जाते हैं। इनमें तदनुरूप भाव-परिवर्तन भी पाया जाता है। डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय इसी बात को विस्तार देते हुए कहते हैं - "यदि वर्षा के दिनों में किसान आल्हा गा-गाकर अपना मनोरंजन करता है तो सावन में कजली गाकर अपने दर्द को दूर करता है। यदि फागुन के महीने में होली या फगुआ के गीतों के द्वारा वह अपने हृदयगत उल्लास को प्रकट करता है तो चैत में चैता या घांटो गाकर वह आत्मविभोर हो जाता है।"[2]

अ) वर्षा ऋतु संबंधी गीत

वर्षा ऋतु से संबंधित सावन, कजरी, बारहमासा, मल्हार आदि गीत सावन-भादों महीनों में गाए जाते हैं।

---

1. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन पृ. 138

2. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका पृ. 93

क) सावन गीत

सावन के गीत शृंगार एवं करुणा से भरे पडे हैं क्योंकि सावन के महीनों में लोक मानस ही नहीं वरन् संपूर्ण प्रकृति ही रसमय हो जाती है। सावन मास आते ही जन-जन का हृदय उमंग और उल्लास से भर जाता है और जन-जन के कण्ठ पर लोक-गीत मुखरित हो उठते हैं। काले-कजरारे मेघों से आच्छादित आसमान, गर्भिणी की तरह मंद-मंद चलती शीतल हवा, पति-वियोग में विरहिणी के आँसुओं-सी झड़तीवर्षा की बूँदें, पति-दर्शन के समय प्रसन्नता के साथ निकलनेवाले स्वर के समान कोयल की मधुर कुहुक, नवोढ़ा के समान हरे वस्त्र धारण किए हुए प्रफुल्लित धरती - ये समस्त उद्दीपन नारी हृदय को उमंग और उल्लास से सराबोर कर देते है। उमंग और उल्लास से भरा हृदय गा उठता है। फलस्वरूप नारी-कण्ठों से निसृत यही गीत सावन-गीतों का नाम लेता हैं। सावन मास के प्रथम दिन से ही घर-घर में एवं घर से बाहर वृक्षों पर झूले पड़ जाते हैं। लड़कियाँ अपने मायके आ जाती हैं। सावन का महीना वे सखियों के साथ हँस-बोलकर, झूला-झूलकर मायके में ही बिताती हैं। एक सावन गीत देखिए, जिसमें वह झूला झूल भी नहीं पाती है कि उसके पति द्वारा भेजे हुए कहार उसे बुलाने आ जाते हैं-

"निबिया तरे डोला रख दे मुसाफिर
आई सावन की बहार,
अपने महल में मैं गुड़िया खिलत थी
सइयाँ ने भेजे कहार,
मेरे सखी गुड़िया खिलने न पायी
सइयाँ के आये कहार
अपने महल में मैं झूला झुलत थी
सइयाँ ने भेजे कहार।"[1]

उपर्युक्त गीत में जीवन की नश्वरता की बहुत ही व्यंजक अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार निमिनलिखित सावन-गीत में प्रकृति के मनोरम चित्र को देखिए

"डाला है हिण्डोला कन्हैयाजी के बाग में जी
एजी कोई डाली है रेशम डोर,
नन्हीं-नन्हीं बूँदें ये देखो कइसी पड़ रही जी

1. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन - पृ. 138

एजी कोई घटा उठी है घनघोर,
अंबुआ की डाली पे देखो कोयल बोलती जी
एजी कोई बन में ये नाचत मोर....।"[1]

एक अन्य गीत में सावन के आने पर प्रिय के विरह में तड़पती प्रिया का वर्णन देखिए
"आज सघन बुन्द बरसे बढ़रवा।
पवन बहत जोर, पपीहा करत शोर,
जियरा जलत मोर, कुहकत मोरवा।। आज सघन......
कासे ने कहा जात, निन्दिया न आवे रात,
बिरहा सतावै गात, श्याम न घरबा।। आज सघन......
संगदिल संग घायन, मोरी सुधि बिसराय
मधुवर रहे घायल, निठूर पियरवा।। आज सघन......
द्विजदेतो बिन श्याम, विधना भयो बाम,
व्याकुल ब्रजमान, हेरे डगरवा।। आज सघन"[2]

अर्थात् आज बड़ी-बड़ी बूँदों में बादल बरस रहा है। पवन ज़ोर-ज़ोर से बह रहा है, पपीहा आवाज़ कर रहा है, मोर कूक रहा है। इन सब चीज़ों को देख-देखकर मेरा हृदय जल रहा है। किसी से कहा भी नहीं जाता कि मुझे रात में नींद नहीं आती, पिया के विरह में रात भर बेचैन रहती हूँ क्योंकि मेरे श्याम घर में नहीं हैं। मैं तो अपने प्रिय के प्रेम से घायल हूँ और वे मुझे भूल गए हैं। हमारे निष्ठूर पिया मधुबन में धूम मचाये हुए हैं। बिना श्याम के विधाता भी वाम नज़र आता है। ऐसे में व्याकुल बृज की बालाएँ कृष्ण की राह देख रहीं हैं।

ऐसे अनेक सावन गीत हैं जिनमें नायिका और नायक या पत्नी और पति को राधा और कृष्ण के प्रतीक के रूप में दिखाया गया है।

ख) बारहमासा गीत (विरहा गीत)

जहाँ सावन-गीत पूरे सावन मास-भर स्त्रियाँ गाती हैं, वहीं बारहमासा पूरी वर्षा ऋतु भर स्त्रियों और पुरुषों द्वारा गाया जाता है। खेत पर या घर की चौपाल पर पुरुष फुरसत के समय में बारहमासा गाने लगते हैं। स्त्रियाँ भी बड़ी तन्मयता से बारहमासा गाती हैं। बारहमासा में बारहों महीनों का सुन्दर चित्रण उपस्थित होता है। वर्ष में कुछ न कुछ परिवर्तन होता है। कभी प्रचंड गर्मी पड़ने लगती है तो कभी

1. डॉ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन पृ. 139

2. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - पृ. 119

देह को ठिठुरानेवाला जाड़ा आ जाता है। कभी घनघोर वृष्टि होती है तो कभी सारा आकाश बादल रहित दिखाई पड़ता है। इस बदलते मौसम के साथ मानव-मन में भी भावात्मक परिवर्तन होता है और उसकी देह भी इसके अनुसार अपनी माँग बदलती है। बारहमासा गीतों में इन्हीं बारह महीनों में होनेवाले ऋतु संबंधी तथा मानव के तन-मन संबंधी परिवर्तनों का वर्णन होता है। कुछ उदाहरण देखिए -

"सुरु जब से आसाढ़ आली,
घटा छायी काली-काली,
पिया परदेस उमर बारी,
महल मयँ पडी सेज खाली,
उमड़-धुमड़ गरजन लगे
घन घुँमड़ चहुँ ओर
दादुर हंस चकोर
कोकिला मोर मचा मैं सोर,
झिनक झर लगा बरसने नीर,
रही मयँ तरस न आये तीर
पिया बिन उठै बिरहा की पीर।"

उपर्युक्त गीत में आषाढ़ महीने के आने पर विरहणी नायिका पर बदलते प्राकृतिक परिवेशों से उत्पन्न पीड़ा का मनोरम एवं मार्मिक चित्रण हुआ है।

दूसरे गीत में विरहिणी नायिका कहती है - पति के अभाव में मुझे बसन्त ऋतु अच्छी नहीं लगती है। मालिन को जाकर समझा दो कि मेरे घर बसन्त न लाए। चलो सखी पलाश की डार से कूदकर प्राण दे दें -

"माइ ऋतु बसन्त की आयी,
कंत बिन हमें ना भायी,
जाये कोई मालिन समझायी,
मेरे घर बसन्त न लायी
चलौ सखी गिर मरैं
चढ़ पलास की डार ।"

पूस महीने में नायिका की हालत देखिए -

"पूस हे सखी ओस परी गेले,

भीजि गेल लाम्ब-लाम्ब केश है,
सारी जे भीजि गेल, चोली जे भीजि गेल,
भीजि गेल चोलीबंद चीर है।"

पूस महीने में ओसकण पड़ने लगे जिससे मेरे लम्बे-लम्बे बाल, साड़ी, चोली और चोलीबंद सभी भीग गए।

वैशाख महीने में गर्मी इतनी बढ़ जाती है कि साधारण व्यक्ति का जीना भी मुश्किल हो जाता है तो विरहिणी की क्या हालत होगी

"वैशाख हे सखि ज्वाला पड़तु है,
घाम से भीजतु शरीर है,
नदी, तालाब सब सुखि गेल,
सुखि गेल हमरो शरीर है।"

वह कहती है - हे सखी, वैशाख के महीने में तो आग बरसती है जिससे पसीने से सारा शरीर भीग गया। जैसे भीषण ताप से नदी तालाब सूख गए हैं, उसी प्रकार मेरा शरीर भी सूख गया है।

इस प्रकार बारह मासों के वृत्तांत से युक्त गीतों से एक बारहमासा पूरा होता है।

आ) बसन्त ऋतु संबंधी गीत

क) फाग या होली-गीत

बसन्त-ऋतु उल्लास की सूचक है। शिशिर ऋतु के समाप्त होते ही बसन्त ऋतु शनैः शनैः प्रकृति में मादकता को घोलने लगती है। शिशिर ऋतु से कंपित वृक्ष और पौधे, बसन्त ऋतु के स्वागत में अंगड़ाई लेने लगते हैं। पशु-पक्षी स्वागत गान के रूप में कलरव करने लगते हैं। जब संपूर्ण प्रकृति वसन्त ऋतु के रँग जाती है, तब लोक-मानव पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। लोकमानव अपने इस हर्षोल्लास को नाच-नाचकर और गा-गाकर व्यक्त करता है। स्त्रियों और पुरुषों के कण्ठों से गीत निःसृत होने लगते हैं। यही गीत 'फाग' या 'फगुआ' कहलाते हैं। खेतों में पकी फसलें लहलहाने लगती हैं। अपने श्रम के मूल्य के रूप में लहलहाती फसलों को देखकर उसका हृदय आनंदित हो उठता है। खेतों में काम नहीं होता है, इसलिए सामूहिक रूप से झूम-झूमकर वे फाग गाने लगते हैं। ये गीत फाल्गुन मास में गाएजाने के कारण 'फाग' कहलाते हैं। इस महीने में ही होली का पर्व होने के कारण तथा होली के अवसर पर गाए जाने के कारण, ये होली या होरी-गीत भी कहलाते हैं। ये गीत फालगुन से प्रारंभ होकर चैत्र की रामनवमी तक गाए जाते हैं, इसलिए इन्हें चैता भी कहते हैं। होली-गीत स्त्रियों एवं पुरुषों, दोनों के द्वारा ही गाए जाते हैं।

पुरुषों के होली गीत

होली गीत सामूहिक गान होते हैं। गाँव के अनेक नव-युवक एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। इनमें कुछ व्यक्ति लोक-वाद्य बजानेवाले होते हैं और कुछ होली गीत गानेवाले। लोक वाद्यों में प्रमुख रूप से ढपले, हारमोनियम, चिमटा, खंजड़ी आदि होती है। गानेवाले प्रायः दो वर्गों में बँट जाते हैं। एक वर्ग गीत की एक पंक्ति को धीरे-धीरे गाता है, दूसरा वर्ग उसी पंक्ति को कुछ ज़ोर से गाता है। इस प्रकार फिर जोर-शोर से गाना आगे बढता है।

सर्वप्रथम गायी जानेवाली होली 'सुमरनी' कहलाती है, इसमें विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति होती है। यथा -

"देवी सुभीरौं शारदा माँय
गुरु गन्नेश मनाय

नदियन में गंगा बड़ी और तीरथ बडे प्रयाण
गुरु गन्नेश मनाय।"[1]

इन गीतों में वर्ण्यविषय संबंधी वैविध्य देखने को मिलता है। धार्मिक पात्रों से संबंधित इन होली गीतों में राम और कृष्ण की जीवन से संबंधित अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है। राम द्वारा सीता का त्याग करने का वर्णन प्रस्तुत है

"रथ बैठ सिया बिलखाय, हमारो राम बिना बिछुड़ने भओ।"

इसी प्रकार -

सिया सँग राम चले वनवास,
भेजन सबै अवध गओ।

श्रीकृष्ण से संबंधित एक होली गीत प्रस्तुत है -

"यमुना तट श्याम खेले होरी
सब सखियन मिलि यमुना नहाये,
चीर चुराय लियो हमरी। यमुना तट......
सब सखियन मिलि अरजि करतु हैं,
चीर दियो हमरी । यमुना तट..........

---

1. डॉ महेश गुप्त, लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन - पृ. 143

किनके हाथ रंग-पिचकारी,
बोरि दियो किनकी चुनरी। यमुना तट.....
श्याम के हाथ रंग पिचकारी,
बोरि दियो हमरी चुनरी। यमुना तट........"[1]

अर्थात् - श्रीकृष्ण यमुना के किनारे होली खेल रहे हैं। सभी सखियों ने यमुना में स्नान किया पर श्रीकृष्ण ने उनके वसंत्र चुरा लिए। सारी सखियाँ उनसे आग्रह कर रही हैं कि हमारे वस्त्र वापस दे दो। किनके हाथ में रंग-पिचकारी है और किनकी चुनरी रंग में बोर दी गई है। श्याम के हाथ में रंगभरी पिचकारी है और उन्होंने मेरी चुनरी को रंग में डुबो दिया है।

शृंगार रस से संबंधित अनेक होली गीत गाये जाते हैं। वसन्त कामोद्दीपक के रूप में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रेमी-प्रेमिका को रंगों से रंगकर तथा गुलाल मलकर अपनी इच्छा पूर्ति करता है, प्रेम प्रदर्शन करता है। बदले में प्रेमिका भी प्रेमी को इसप्रकार उपकृत करती है। यह प्रेम-प्रदर्शन पति-पत्नी, देवर-भाभी आदि के बीच भी होता है।

महिलाओं के होली-गीत

पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी होली गाती हैं। नृत्य एवं लोकवाद्यों को बजाने का विधान नहीं होता है। गाँव की स्त्रियाँ एक स्थान पर एकत्रित होकर होली गाती हुई गाँव में विभिन्न जगहों एवं दूसरे गाँवों को जाती हैं। पुरुषों के होली-गीतों के समान ही इनमें भी विविधता के दर्शन होते हैं एक होली-गीत में ब्रज की होली-गीत का चित्रण देखिए

"आज बिरज में होरी रे रसिया...होरी रे,
रसिया बरजोरी रे रसिया...आज बिरज में।
अपने-अपने महल सो निकसो
कोई श्यामल कोई गोरी रे रसिया......
आज बिरज में
X X X X X
कउन के हाथ पिचकारी सोहे
कउन के हाथ कमोरी रे रसिया....
आज बिरज में

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - पृ. 127

कान्हा के हाथ पिचकारी सोहे
राधाजी के हाथ कमोरी रे रसिया
आज बिरज में होरी रे रसिया।"

स्त्री का स्वर्ग उसका परिवार है। उसका कार्यक्षेत्र घर ही है, इसलिए उसकी समस्याएँ भी घर-गृहस्थी संबंधी ही होती हैं। निम्न लोकगीतों में पति द्वारा बाजरा लाने पर स्त्री बाजरा को जी का जंजाल बताती हुई कहती है

"मेरे जिय को करो जंजाल बाजरा लइके धरो,
जबहिं बाजरा सूखन डालो
कउआ भर-भर खाये
जबहिं बाजरा कूटन बैठे
उखरी धस-धस जाये,
जबहिं बाजरा पउँन बैठे
रोटी फट-फट जाये,
जबहिं रोटी खान बैठे
कौरा फँस-फँस जाये
बाजरा लइके धरो।"

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ऋतु संबंधी गीतों में विविधता ही विविधता है। ये गीत किसी धार्मिक अनुष्ठान या सांस्कारादि अवसर पर नहीं गाये जाते और न इसका संबंध सीधे तौर पर किसी व्यवसाय से रहता है। ये गीत तो मनुष्य के अंदर उठनेवाली भाव-तरंगों की स्वतः स्फूर्त्त अभिव्यक्ति है।

4.18.6.3 व्रत-त्योहार संबंधी लोकगीत

भारतीय संस्कृति आद्योपान्त प्रकृति से जुडी हुई है। इसके प्रत्येक क्रिया-व्यापार में प्रकृति का संस्पर्श आवश्यक है। संपूर्ण वर्ष के त्योहार तथा पर्व भी प्रकृति के अनुसार ही निर्धारित है। प्रत्येक ऋतु-परिवर्तन के साथ कोई न कोई त्योहार या पर्व जुडा हुआ है। दूसरी बात "हमारा जीवन धर्ममय है। प्रत्येक मास में कोई-न-कोई पर्व या त्योहार आकर हमारी धार्मिक चेतना को जागृत करता रहता है।"[1] ये व्रत या त्योहार समाज में रहनेवाले सारे स्त्री-पुरुष मनाते हैं क्योंकि धर्म भी संस्कृति का एक अंग है। "धर्म सामान्य मूल्यों का निर्माण करता है, उसके स्वरूप को स्पष्ट करता है, प्रतीकों के रूप में उन्हें स्थायी बनाता है और अंत में संपूर्ण समाज में लागू रहता है।"[2] वस्तुतः व्रत और त्योहार मनुष्य की धार्मिक

1. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका - पृ. 100
2. डॉ एम एम लवानिया, सैद्धाँतिक समाजशास्त्र - पृ. 326

आस्था का प्रतीक है। त्योहारों, व्रतों एवं पर्वों के अवसर पर गाये जानेवाले गीतों का उल्लेख नीचे किया जाएगा।

राम और कृष्ण हिन्दू धर्मों के आदर्श नायक हैं। लोकगीतों में अधिकांश गीत राम और कृष्ण से संबंधित है।

क. रामनवमी

इस त्योहार के अवसर पर घर-घर में पूड़ी और पकवान बनते हैं। कुछ स्त्रियाँ रामनवमी के अवसर पर व्रत भी रखती है। जन्म के पश्चात् पूजन आदि करके अपना व्रत खोलती हैं। ढ़ोलक बजाकर राम संबंधी गीत गाती हैं। शाम को भगवान राम की शोभायात्रा निकलती है जिसमें राम के जीवन से संबंधित विभिन्न झाँकियाँ तथा अनेक सिंहासन होते हैं जिनमें भगवान राम और सीता की छोटी-छोटी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित होती हैं। इस शोभायात्रा में अनेक चौपाई भी होती हैं, जो विभिन्न लोकवाद्यों को बजाकर झूम-झूमकर गीत गाती हैं। इन गीतों राम के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर आधारित प्रसंग होते हैं। जैसे

"अवध में जल्मे सलोना,
रानी कौशल्या ने लालनु जाए
राजा दशरथ के छौना,
अवध में जल्में राम सलोना।"

इसी प्रकार

"सिया सँग राम चले वनवास,
भेजन सबै अवध गओ।"

ख) जन्माष्टमी

भाद्र मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी को इस त्योहार का आयोजन होता है स्त्री-पुरुष तथा बच्चे भी जन्माष्टमी पर उपवास रखते हैं। घर में तरह-तरह के पकवान बनते हैं। रात्रि में कृष्ण संबंधी गीत स्त्रियाँ गाती हैं। अनेक कीर्तन मंडलियाँ भी इस त्योहार के अवसर पर लोक-वाद्यों के साथ कृष्ण संबंधी भजन गाती हैं। रात्रि में बारह बजे के लगभग कृष्णजन्म होता है। कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर मंदिरों एवं घरों में झाँकियाँ भी सजायी जाती हैं। कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों के नमूने देखिए

"बिजली चमकै कौंधा होय,
कन्हैया जन्में आधी रात।"
"कन्हैया तेरो कारो मयँ नायँ करिहौं ब्याह"

ग) महाशिवरात्रि

माघ मास में त्रयोदशी को भगवान शिव पूजन एवं व्रत किया जाता है। जनपद में इसे 'शिव-तेरस' कहते हैं। शिवरात्रि पर शिव-मंदिरों में भक्तों की भीड़ देखते ही बनती है। मंदिरों को सजाया जाता है। विभिन्न कीर्तन मंडलियाँ इस अवसर पर शिवजी के गीत व भजन गाती हैं। जैसे

"शिव शंकर चले कैलास बुंदियाँ परने लगीं
कौने लगाई हरी-हरी मेंहदी
कौने है घोटी भाँग
गौरा ने राची हरी-हरी मेंहदी
भोले ने घोटी भाँग
शिवसंकर चले कैलास बुँदियाँ परने लगीं।"

घ) नाग-पंचमी

श्रावण शुक्ल पंचमी को नाग की पूजा की जाती है इसलिए इसे 'नागपंचमी' या 'नागपचैया' कहते हैं। इस दिन प्रातःकाल ही घर की लड़कियाँ मकान की बाहरी भित्ति पर चारों ओर से गोबर की रेखाएँ खींचती हैं तथा घर के प्रधान द्वार पर सर्प के दो चित्र गोबर से अंकित करती हैं। फिर कटोरे में दूध और धान की खीर-लावा भरकर एकाँत स्थान में रख दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि इस दिन नाग देवता आते हैं और दूध पीते हैं। जो इस दिन नाग की पूजा करते हैं, उन्हें फिर सर्प-दंश का भय नहीं रहता।[1]

आदिकाल से ही, मनुष्य जिन-जिन चीज़ों से भयभीत होता रहा, उनकी पूजा प्रारंभ कर दी। सर्प पूजा भी उसी भय के कारण की जाती है क्योंकि इसका दंश जान लेवा साबित होता रहा है। नागदेवता प्रसन्न रहें और परिवार के किसी सदस्य को कभी न डँसे, इसी उद्देश्य से उनकी अभ्यर्थना की जाती है। नीचे कुछ 'नाग-पंचमी' गीतों का उल्लेख किया जा रहा है

"जे मेरा नाम के भिखिया ना दीहैं,
दुनु बेकति जडिइ हैं हो, मोर नाग दुलरुवा
जे मोरा नाग के भीखि उठि दी हैं,
दूनु बेकति सुखी रहि हैं हो, मोर नाग दुलरुवा।"[2]

अर्थात् जो मेरे नाग को भिक्षा नहीं देते उनको जल्दी बहुत कष्ट होगा और जो मेरे नाग को भिक्षा देंगे, वे दोनों सुखी रहेंगे। स्पष्ट है कि इस गीत में नाग के प्रति श्रद्धा और विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है। दूसरा

1. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका - पृ. 100
2. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - पृ. 160

एक गीत देखिए –

"जेहो गलिया हम कबहु ना देखली,
ओहो गलिया देखवेलह हो मोर नाग दुलरुवा।
जो मोरा नाग के गेहूँ भीखि दीहैं,
लाले-लाले बेटवा पायल हो, मोर नाग दुलरुवा।
जो मोरा नाग के कोढ़ो भीखि दीहैं,
करिया-करिया मुसरी पायत हो, मोर नाग दुलरुवा।
जो मोरा नाग के भीखि नहिं दीहैं,
वोकरो बड़ पाप लागत हो, मोर नाग दुलरुवा।"

हे मेरे प्रिय नाग, जिस गली को मैं ने पहले कभी नहीं देखा था, तुमने मुझे वह गली भी दिखला दी। जो मेरे नाग को भिक्षा में गेहूँ देंगे उन्हें लाल-लाल पुत्र की प्राप्ति होगी। जो मेरे नाग को भिक्षा में कोदो देंगे उन्हें चूहे का काला-काला बच्चा ही मिलेगा। जो मरे नागदेवता को भिक्षा ही नहीं देंगे उन्हें तो बडा पाप लगेगा। इसप्रकार इस लोकगीत में भी नाग को उचित आदर देने की प्रेरणा दी गई है।

ड़) तीज के गीत

तीज सुहागिन स्त्रियों का अत्यंत प्रसिद्ध व्रत है जो भाद्र मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया के दिन रखा जाता है। गीतों के माधुर्य से युक्त इस व्रत पर एकमात्र नारियों का ही अधिकार है। इस व्रत के मुख्य उपासक भगवान शिव हैं। इसलिए तीज गीतों में शिव-पार्वती के विवाह की गाथा गाई जाती है। भाद्र मास शुक्लपक्ष तृतीया के दिन पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उसे मनोवांछित वर दिया। इस तरह यह व्रत स्त्रियाँ अपने अखंड सौभाग्य के लिए करती है तथा पुनः उसी व्यक्ति को दूसरे जन्म में भी पति के रूप में प्राप्त करने के लिए करती है। यह व्रत तृतीया के दिन मनाया जाता है, इसलिए इसका नाम 'तीज' पड़ा है। निम्नलिखित गीत में पार्वती के साथ विवाह करने हेतु प्रस्तुत भगवान शिव का वर्णन इसप्रकार किया गया है

"गौरी वियाहन आये भोला अब गौरी वियाहन आये।
आजन-बाजन एकौ न देखौं, डमरू बजाई चले आये।
नलकी पलकी एकौ न देखौं, बसह बरद चढ़ि आये।
गहना-गुरिया एकौ न देखौं, रुद्रमाल पहिन आये।
मौरा औ कलंगा एकौ न देखौ, जटा-जूट धरि आये।"

अर्थात् शिवजी गौरी से विवाह करने आये। साथ में कोई बाजा नहीं है, बस डमरू बजाते चले आये हैं। साथ में पालकी भी नहीं लाये हैं, बसहा बैल पर चढ़कर आ गये हैं। कोई जेवर-जेवरात भो पहनकर नहीं

आये हैं, गले में रुद्रमाला पहनकर आये हैं। सिर के ऊपर मुकुट भी नहीं है, केवल जटा-जूट बाँधकर चले आए हैं।

इस प्रकार दीपावली, गंगास्नान, अमवस्या आदि के अवसरों पर भी तरह-तरह के गीत गाए जाते हैं।

4.18.6.4 जातिपरक गीत

कुछ गीत ऐसे भी हैं, जोकि जातिविशेष की धरोहर होती है। ये परंपरागत रूप से चलते चले आते हैं। इनके गाने की अलग अलग विशिष्ट शैलियाँ होती हैं। विशिष्ट जाति के लोगों के द्वारा गाए जाने के कारण ये उन्हीं जाति विशेष के नाम से जाना जाता है। आगे ऐसे कुछ गीतों का विश्लेषण किया जा रहा है।

क) अहीरों के गीत

अहीर जाति के व्यक्ति गाय और भैंस पालते हैं तथा दूध और खोये का व्यापार करते हैं। इस [illegible] 'जस' गीत बड़ी तन्मयता से गाया जाता है। 'जस' को गाने का ढंग एकदम अलग है। इसमें एक-एक शब्द बहुत ही धीरे गाया जाता है। 'जस' बहुत ही मस्त राग है, इसे गाते समय व्यक्ति मस्त होकर झूमने लगता है। इसके संबंध में प्रसिद्ध है कि सर्प द्वारा काटा हुआ मूर्च्छित व्यक्ति भी 'जस' लोकगीत को सुनकर मस्त हो जाता है। 'जस' प्रायः अहीरों के कुलदेवता (जखई-देवता) की पूजा के समय गाया जाता है। नीचे एक 'जस' गीत प्रस्तुत है

"झलरी भइ रे निविया झलरी
थानन पे निविया झलरी राहे,
अरे कउन लगाय दओ निविया पेड़ु,
थानन पे निविया झलरी राहे,
अरे कउन बँधाय दओ अछुआ थान
थानन पे निविया झलरी राहे,
अरे भगतु लगाय दओ निवुआ पेड़ु,
थानन पे निविया झलरी राहे,
अरेभगतु बँधाय दओ अछुआ थान
थानन पे निविया झलरी राहे,
अरे काहे लगाय दओ निविया पेड़ु,

थानन पे निविया झलरी राहे,
अरे छाँई बैठन को लगाय दओ निवुआ पेड़,
थानन पे निविया झलरी राहे,
अरे पूजा करन को बँधाय दओ थान
थानन पे निविया झलरी राहे।"[1]

ख) कहारों के गीत

कहार जाति के लोगों को धीमर भी कहा जाता है। धीमर जाति के लौग संपन्न घरों में कुएँ से पानी आदि लाने का कार्य करते हैं। विवाह के समय वर या वधू की पालकी को धीमर जाति व्यक्ति ही ढोते हैं। धीमर जाति की स्त्रियाँ बर्तन माँजने का काम भी करती हैं। फुरसत के क्षणों में ये लोग एकत्रित होकर मृदंग आदि वाद्य-यंत्र बजाकर गीत गाते हैं। अब कहारों द्वारा गीत गाने की प्रथा बहुत ही कम हो गयी है। इनके द्वारा गाए जानेवाले गीतों की विषयवस्तु विविधता से युक्त होती हैं। निम्नलिखित गीत में इनके द्वारा किए जानेवाले पेशे का वर्णन प्रस्तुत है-

"डारउ डारउ पुरबिया बेलि सिंघाड़े कीड़ा खाय गये,
जब रे बेलि भइ दुइ पतउअन
मइने ससुरा करे रखवारे,
पहिली उगाई ससुर मेरे पकरे
सासुइया भयी नीलाम,
डारउ डारउ पुरबिया बेलि सिंघाड़े कीड़ा खाय गये।"

ग) धोबियों के गीत

घाट पर कपड़ा धोते समय जब धोबी स्वर से स्वर मिलाकर गीत गाते हैं, तो एक अजीब-सा समा बँध जाता है। उनकी स्वर-लहरी को सुनकर पथिक रुक जाते हैं। गीत गाते समय, ये धोबी प्रायः अपने गीतों में 'छिओ राम छिओ' जोड़ देते हैं। धोबी जाति के लोग प्रायः श्रम करते समय ही गीत गाते हैं, किंतु फुरसत के क्षणों में भी इन्हें गीत गाते हुए देखा जा सकता हे। जब भी इस जाति के चार-छः लोग अपने कार्य से निवृत्त होकर किसी स्थान पर एकत्रित होते हैं, गीत इनके कंठों से फूट पड़ते हैं

"छिओ राम छिओ, छिओ राम छिओ
अँगिया चुलिया मइली रे हुई गई
बिन धोबिन को गाँऊँ,

1. डॉ महेश गुप्त, लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन - पृ. 149

कइ धुबिया पिया लाइ बसावउ
कइ धुबिया के जाऊँ
छिओ राम छिओ, छिओ राम छिओ,
ना बिरहिन को खेती पाती ना बिरहिन को बंज,
जाइ पेट से बिरहा उपजइँ गाऊँ दिना अउ राति,
छिओ राम छिओ, छिओ राम छिओ।"

घ) चमारों के गीत

चमार जाति निम्नतम जातियों की श्रेणी में आती है। जनपद में इन्हें अछूत जाति माना गया है। चमारों के द्वारा गाया जानेवाला राग 'चमर राग' कहलाता है। किसी पर्व या त्योहार के अवसर पर या फुरसत के समय चमार जाति के व्यक्ति खिंजड़ी या धातिंगा (मृदंग की तरह का चर्मवाद्य) बजा-बजाकर गाते हैं। इनके द्वारा गाया जानेवाला राग अन्य सभी जातियों से भिन्न होता है। अनेक अश्लील शब्द भी इनके गीतों में प्रयुक्त होते हैं। इनके राग में कोई विशेष आकर्षण नहीं होता। तभी किसी व्यक्ति को अव्यवस्थित रूप से गाते हुए देखकर प्रायः यह कह दिया जाता है कि 'का चमर राग सो गउत।' नीचे चमारों द्वारा गाया जानेवाला एक गीत प्रस्तुत है।

"कथा उचारन होत है सुनो वीर हनुमान,
आसन आनके लीजिऔ पवनपुत्र तुम अंजन के नंदलाल,
सरे जागउ जागउ मेरी सुन्दर माँई
अरे मैं ने मारी टेर तुमने सुनो है कि नाहों,
धरनुधान मेरे धरनुधान मेरे रखले मान
मेरे सनमुख रहो दुर्गा माँइ,
जोई जोई अक्षर भुलों सदा मैं
कंठ बैठ मोय बतलाइए,
जन तेरे की करै निंदा
सीस काट सनमुख लइओ जी,
अरे मात मेरी सीस काट सनमुख लइओ जी।"[1]

1. डॉ महेश गुप्त, लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन पृ. 151

4.18.6.5 देवी-देवताओं से संबंधित लोकगीत

धर्म का सामाजिक जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। डॉ एम.एस लवानिया के अनुसार "परंपराओं को सार्थकता का समर्थन भी धर्म के द्वारा संभव हो पाता है। सामाजिक आदर्शों के पीछे भी धर्म की मान्यता छिपी होती है। यही कारण है कि सामाजिक जीवन एक मर्यादित ढंग से नियंत्रित होता चलता है।"[1] इसलिए धर्म के बिना भारतीय समाज की कल्पना करना कठिन है। भारतीय समाज मूलतः धर्म प्रधान है। यहाँ की सभी संस्थाओं, उनके आदर्शों, व्यक्ति के व्यवहारों, सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं आदि पर धर्म की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। इसी धार्मिक मनोवृत्ति के कारण लोकगीतों में अनेक देवी-देवताओं की उपासना का उल्लेख मिलता है। राम-भक्त हनुमान, गंगा-माता, दोवाधिदेव महादेव एवं शीतला माता संबंधी गीत मुख्य रूप से मिलते हैं। इनमें अपनी मनोवांछित कामना की पूर्ति के लिए उपर्युक्त देवी-देवताओं से प्रार्थना की जाती हैं।

देवी-देवताओं की स्तुति कई रूपों में की जाती है। कहीं देवता के दिव्य रूप एवं गुणों की प्रशंसा की जाती है तो कहीं देव-मंदिर के सौंदर्य का बखान होता है। कहीं देवता की अवज्ञा करने से जीव दंडित होते हुए देखे जाते हैं, कहीं उनकी भक्ति, पूजा, अर्चना आदि से सुख-समृद्धि पाते हुए दीख पड़ते हैं और कहीं देवपीठ की रक्षा एवं स्वच्छता में संलग्न दीख पड़ते हैं। पूजार्चन की मूल में भगवान से भगवान से सुख-संपत्ति तथा पारिवारिक वृद्धि पाने की आकांक्षा रहती है। इन आकांक्षाओं की सुन्दर व्यंजना इन देवी गीतों में होती है।[2]

क) हनुमान के गीत

भगवान राम के महान् भक्त हनुमान मुख्यतः शक्ति एवं स्वास्थ्य के देवता के रूप में पूजित होते हैं। कहा जाता है कि हनुमान से प्रार्थना करने के बाद महाकवि तुलसी की बाँह की पीड़ा दूर हो गयी थी। तब से वे महान उद्धारक तथा कष्ट निवारक के रूप में जाने जाते हैं। इसलिए, जब कभी किसी के ऊपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है, दैहिक, दैविक या भौतिक कष्ट हो जाता है, तब रक्षार्थ उनको गुहार की जाती है। लोकगीतों में हनुमान की उसी शक्ति संपन्नता, भक्त वत्सलता तथा महानता का वर्णन रहता है। जैसे

"हमारा केवल भरोसा बजरंग बली के,
बजरंग बली के हो, पवन सुत के।
हमरा केवल

1. डॉ एम एम लवानिया, सैद्धाँतिक समाजशास्त्र - पृ. 327
2. डॉ संपत्ति आर्याणी, मगही लोक साहित्य - पृ. 22-23

मता अंजना के पुत्र पिता पवन मारुत,
प्रिय भक्त श्री राम, जनकलली के।
हमरा केवल..........
गदाधारी हनुमान, बल-बुद्धि के निधान,
दयावान, क्षमावान, विध्वंस कलि के।
हमरा केवल
लंका सोने के जलाए, लाए लखन जिलाए,
मारे खेलाये-खेलाये कानेमि छली के।
हमरा केवल..........
कितने पतितों को तारे, कितने अधम उबारे,
राखो अपनी शरण में स्नेह भरि के।
हमरा केवल.........."[1]

यहाँ हनुमान की क्षमताओं एवं महिमाओं के वर्णन करने के बाद उसके शरण को माँग की गई है। दूसरे गीत में कलियुग के बेईमान लोगों से अपनी रक्षा करने की प्रार्थना करते हुए भक्त कहता है

"दौडू-दौडू यौ हनुमान, मारेया जान कलियुग के बैमान
दौडू-दौडू यौ..............
किनकर अहाँ पुत्र पवनसुत, की अहाँ के नाम
किनकर अहाँ सेवक थिकों, कहाँ स्थान....
दौडू-दौडू यौ..............
अंजलि के पुत्र थिकौं, पवनसुत नाम,
राम लक्ष्मण के सेवक थिकौं, अयोध्या स्थान।
दौडू-दौडू यौ..............
बाड़ी लेलनि, झाड़ी लेलनि, लेलनि खेत खलिहान,
बाग बगीचा सेहो सब लेलनि, लेवे चाहै छथि जान।
दौडू-दौडू यौ............."[2]

1. डॉ छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ. 208
2. वही पृ -210

अर्थात् - हे हनुमान, दौड़कर आइए और मेरी रक्षा कीजिए क्योंकि कलियुग के बेइमान लोग मेरी जान लेने पर तुले हैं। हे पवनसुत, आप किनके पुत्र हैं,आपका क्या नाम है, आप किनके सेवक है और आपका निवास कहाँ है ? आप अंजना के पुत्र हैं, पवनसुत आपका नाम है। आप राम लक्ष्मण के सेवक है और अयोध्या आपका निवास-स्थल है। कलियुग के बेईमानों ने मेरा बाग-बगीचा, खेत-खलिहान, बाड़ी-झाड़ी सब कुछ हड़प लिया और अब मेरी जान लेना चाहते हैं। इसलिए आप शीघ्र आकर मेरी रक्षा कीजिए। इस प्रकार के बहुत गीत बहुप्रचलित हैं।

ख) गंगामाता के गीत

गंगा नदी देवी मानी जाती है। इसलिए, भारतवासियों का गंगा के साथ सदा अविच्छिन्न आध्यात्मिक संबंध रहा है। हिन्दुओं के लिए गंगा का बहुत बडा धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व है। अतएव, गंगा के तट पर हिन्दुओं के अनेक तीर्थस्थल बन गए हैं। उनकी यह हार्दिक कामना रहती है कि गंगा के पवित्रजल में स्नान करें तथा गंगा तट पर अवस्थित तीर्थों पर जाकर भक्ति एवं श्रद्धा के पुष्प चढ़ायें।

गंगा माता के प्रति इस प्रकार की जो आस्था और भक्ति रहती होगी, उसी के फलस्वरूप लोकगीतों का निर्माण हुआ होगा। राह चलते हुए या गंगा-स्नान करते हुए जो भक्ति एवं श्रद्धा से पूरित गीत गाये गये होंगे, वे ही 'गंगा माता' के गीत के नाम से जाने जाते हैं। एक गीत देखिए-

"मिलहु सखिया रे मिलहु सहेलिया,
आहे सुनु सखिया चलु देखे गंगाजी के लहरिया।
गंगा नहैले से पाप कटित होइ हैं, निर्मल होइहैं देहिया।
आहे सुनु सखिया चलु देखे गंगा जी के लहरिया।"

अर्थात् हे सखी-सहेली, आओ, मिलो। हम सभी मिलकर गंगाजी की लहर देखने जाएँगे। वहाँ गंगाजी में स्नान भी करेंगे क्योंकि गंगा स्नान से सारे पाप समाप्त हो जाएँगे और देह निर्मल हो जायेगी। चलो, गंगा जी में उठनेवाली लहरों को देखें।

"चलु-चलु दाय-माय, चलु गंगा नहाय।
गंग, यमुन, सरसुती संगम पर
नर पामर मन डुबकी लगाय। चलु चलु.......
जनम-जनम के मैली चादर,
विषयन दगिया लियो छुड़ाय। चलु चलु.......

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, तजु,
प्रेम संग मन दियौ बहाय। चलु चलु.......
बिन बाती बिन तेल के दिया,
निसि वासर केयो रहत जराय। चलु चलु.......
पाँच-पचीस-तीन छाड़ि चलु मन
भरत नगरिया अनुपम माया। चलु चलु.......”

अर्थात् हे माँ-बहनो, सभी गंगा-स्नान के लिए चलो। गंगा-यमुना और सरस्वती के संगम-स्थल पर मनुष्य का भयभीत मन डुबकी लगाता है। जन्म-जन्मान्तर से यह शरीर रूपी चादर विषय-भोग के कारण दागदार हो गई है, उस दाग को इस गंगा जल में छुड़ा लो। काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह का परित्याग कर प्रेम रूपी गंगा में मन की भोगवृत्ति को बहा दो। कोई बिना तेल और बत्ती के ही दिन-रात दीपक जला रहा है। तुम भी पाँच-पच्चीस आदि जैसी संग्रहवृत्ति को छोड़कर भारत की नगरी में वास करो क्योंकि यह बहुत अच्छी लगती है।

उपर्युक्त गीत में गंगा माता के प्रति असीम भक्ति और श्रद्धा अभिव्यक्त हुई है। यहाँ भारतीयों की गंगा संबंधी आस्था का भी वर्णन हुआ है। ऐसे बहुत सारे लोकगीत उत्तरभारत में प्रचलित हैं।

ग) शिव के गीत

त्रिवेदों में एक तथा देवीधिदेव की महिमा से मंडित ‘महादेव’ बडे ही शक्तिशाली देवता माने जाते हैं। वैसे, उनका स्वभाव औढ़ड़दानी का है। वे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं और मुँहमाँगा वर देते हैं। किन्तु क्रोध आने पर अपने तीसरे नेत्र को खोलकर आततायी और पापियों को भस्म कर डालते हैं। अतएव, लोकगीतों में उनकी अभ्यर्थना से संबंधित अनेक प्रसंग हैं जिनमें उनके इस मस्तमैला रूप का वर्णन किया गया है। उनका औढ़ड़पन तथा उन्मुक्त रहन-सहन के साथ-साथ उनका दानी स्वभाव का भी विस्तृत वर्णन रहता है। जब–जब किसी को आर्थिक या शारीरिक कष्ट होता है, तब-तब शंकरजी की अभ्यर्थना की जाती है। इन गीतों में शंकरजी के साथ-साथ माता पार्वती के प्रति भी भक्ति-भाव व्यक्त किया जाता है। वे अशरण को शरण देनेवाले, पापी का उद्धार करनेवाले देव है। इसलिए, उनकी भक्ति के लोकगीत अत्यंत ही लोकप्रिय है। नीचे कुछ इसी प्रकार के गीत दिए जा रहे हैं-

“तेरे लिये मैं भरके लाया गंगाजी का पानी हौ
शंकरदानी, हर-हर शंकर दानी।
कितने पापियों को तुमने तारा है, जिसने नाम तुम्हारा पुकारा है,

छोड़ चले कैलासपति संग में लेकर गिरजा रानी हौ
शंकरदानी, हर-हर शंकर दानी।
मैं ढूँढा तुझे हर घर में, काशी हिमगिरि के हर मंदिर में,
छोड चले बसहा बरद को लेकर संग मशानी हो
शंकरदानी, हर-हर शंकर दानी।''

अर्थात्, हे शंकरदानी, पकी पूजा के लिए मैं गंगा का जल भरकर लाया हूँ। जिस पापी ने भी आपका नाम पुकारा, आपने उसका उद्धार किया है। उसके उद्धार हेतु आप हाथ में पार्वती जी को लेकर कैलास पर्वत से चल पड़े हैं। मैं ने आपको हर घर में ढूँढा, पर आप तो अपने बसहा बैल नन्दी को भी छोड़कर और साथ में भूत-प्रेत को लेकर कहीं चले गये हैं। निम्नलिखित गीत में शिव का रूप वर्णन है -

''तू काशी कैलास के बासी, माथे चाँद सवारी,
हाथ में त्रिशूल धारी, बसहा पै सवारी,
सुन के कहानी सो न जाना, खाके भांग का गोला
ओ बम भोला, ओ बम भोला।''

अर्थात् हे भोले बाबाजी, तुम काशी और कैलास के वासी हो, तुम्हारे सिर पर चाँद शोभता है, तुम्हारे हाथ में त्रिशूल है और तुम बसहा बैल की सवारी करते हो। हे भोले बाबा, मेरी व्यथा-कथा सुनकर तुम भांग का गोला खाकर सो नहीं जाना।

शिव की प्राप्ति के लिए तपस्या करनेवाली पार्वती शिव के मिलने पर क्रोध एवं पीड़ा से तटपती हुई कहती है

''गैरी बोले रिसिआय।
जप कईनी, तप कईनी, तजि बाप-माय,
शिव के स्नेह अब, छोडलो न जाय । गौरी बोले......
प्रेमी के कठिन टेक-मेटे न मेटाय,
शिव के बरब न त मरब विष खाय। गौरी बोले.....''

अर्थात् - गौरी फिर कहती है - शिव को पाने के लिए मैं ने माता-पिता को छोड़कर जप और तप किया। अब इतना होने पर शिव का मोह कैसे छोड़ दूँ ? यह तो एक प्रेम करनेवाली की जिद्द है। मैं या तो शिव से विवाह करूँगी या विष खाकर प्राण-त्याग कर दूँगी।

ऐसे, शिव-पार्वती से संबंधित बहुत सारे लोकगीत इस कोटि के अंतर्गत आ जाते हैं।

घ) चेचक मैया के गीत या शीतला माँ के गीत

'शीतला' एक भयानक रोग है जिसमें संपूर्ण शरीर में छोटी-बड़ी गोटियाँ निकल आती हैं। इससे कभी-कभी मृत्यु तक हो जाती है। विज्ञान इस रोग को चेचक नाम से जानती है लेकिन ग्रामीण लोगों में ऐसा प्राचीन विश्वास है कि यह 'मैया' या 'शीतला' माता का प्रकोप है। शीतला माता जिसपर कुपित होती है, उसके शरीर में यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसलिए शीतला माता को प्रसन्न करने के लिए वर्ष में अनेक बार निश्चित विधि-विधान के साथ इनकी पूजा-आराधना की जाती है। यह पूजा बहुत मनोयोग के साथ किया जाता है।

शीतला माता से संबंधित गीतों में मुख्य रूप से माता के निवास-स्थल पलास का पेड़ तथा उनके कोप एवं उससे मुक्ति का वर्णन रहता है। इनमें कहीं देवी को भेंट-स्वरूप दी जानेवाली वस्तुओं का उल्लेख रहता है, कहीं देवी की भीषण ज्वाला एवं प्यास का वर्णन है, कहीं भक्त देवी से अपना कोप समेटने की प्रार्थना करता है, कहीं उन्हें मनोवांछित वस्तु भेंट देने का वचन देता है। शीतला देवी से संबंधित सभी गीतों में उनके क्रोधी एवं दयालु दोनों रूपों का वर्णन रहता है। भक्त हमेशा भयत्रस्त एवं आतुर भाव से प्रार्थना में संलग्न दीख पडता हैं।[1] शीतला माता की आराधना चैत्र शुक्ल अष्टमी को विशेष रूप से की जाती है। नीचे शीतला माता से संबंधित कुछ गीतों का उल्लेख किया जा रहा है

"रून्नू-झूनू माता ऐली, फुलगेनवा लागली केशिया हे,
कहाँ शोभे बाजूबन, कहाँ जयमाल हे,
बाँह शोभे बाजूबन, गले जयमाल हे,
पाँव शोभे नेपुरा बाजे ला झ‌ेनकार हे।
कहाँ माता के आसन-बासन, कहाँ निज धाम हे,
कहाँ माता जगतारिणी मैया ललनि विश्राम हे,
तिरहुत माय के आसन-बासन, धरही में निज धाम हे
बालक भाया गोमाता मैया, ललखिन विश्राम हे
रून्नू-झूनू माता ऐली, फुलगेनवा लागली केशिया हे।"

अर्थात् - माँ रुनझुन की आवाज़ करती आयीं। उनके केश में गेंदे का फूल लगा हुआ है। उनका बाजूबन्द कहाँ शोभता है और जयमाला कहाँ शोभती है ? बाजूबन्द बाँह में और जयमाला गले में शोभती है। पाँव में उन्होंने जो पैंजनी पहन रखी है, उससे झंनकार पैदा हो रही है। माँ की बैठकी कहाँ है और कहाँ उनका अपना घर है? कहाँ जाकर यह जगतारिणी माँ विश्राम करती हैं ? माँ की बैठकी तिरहुत में तथा अपने घर में ही उनका वास है। कोई बालक या गोमाता उन्हें पसंद आ जाती है तो वहीं विश्राम ले लेती है।

1. डॉ गायत्री देवी, अंगिका लोकगीत पृ. 172

रुनझुन की आवास करती माँ आई जिनके बाल में गेंदे का फूल लगा हुआ है।

अगले गीत में भिन्न प्रकार के संवाद का वर्णन है

"हम तोरा पुछिलौ महारानो मैया और शीतला मैया हे,
मैया सबसे चुनरिया हरिअर लाल
अँचरवा काहे धूमिल भेल हे।
गेलियै हम गेलियो बबुआ, माली फुलवारिया हे,
बबुआ वहाँ बसे माली के रे मऊरवा, मऊरवा रस लेलक हे।
पूछ के देहू बहिनी ढाल-तलरवा हे, बहिनी हम
जयिबे मऊरवा के उदेश, मऊरवा हत लायिबे हे।
जनि बबुआ मारहु, जनि मरिया बहु रे,
बबुआ तोहरो से प्यारे मोर मऊरवा,
मऊरवा में मोर प्राण बसे हैं।"

अर्थात् हे शीतला मैया, मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारी चुनरी तो सबसे हरी और लाल है पर आँचल क्यों धूमिल है? हे माई, मैं माली की फुलवारी गई थी जहाँ माली का मयूर रहता है, उसी मयूर ने सारा रस ले लिया। हे बहन, तुम मुझे ढाल और तलवार दो। मैं अभी उस मयूर को खोज में जाऊँगा और उसे मारकर तुम्हारे पास लाऊँगा। ना, ना तुम उसे न मारना, न गाली देना। वह मयूर तो मुझे तुमसे भी ज़्यादा प्यारा है, उसमें मेरे प्राण बसते हैं। इस प्रकार, लेकगीत में एक ओर माता कहकर शीतला महारानी को आदर भी दिया गया है और आश्चर्यजनक रूप से उनके शृंगारिक चेष्टाओं का भी वर्णन किया गया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देवी देवताओं से संबंधित इन गीतों में किसी देवी-देवता की स्तुति होती है। किसी उत्सव या किसी भी अवसर पर गाये जानेवाले भजन भी इसी क्रम में आते हैं जिनमें देवी-देवताओं के ऐश्वर्य, दयालुता और महानता का वर्णन भी होता है।

4.18.6.6 विविध गीत

वे गीत जोकि उपर्युक्त पाँचों वर्गों में स्थान नहीं पा सके हैं, उन समस्त गीतों को 'विविध गीतों' के उपवर्ग में रखा गया है जैसे श्रमगीत, बालगीत, देशभक्ति संबंधी गीत, उपदेशात्मक गीत, लाचारी गीत, लावनियाँ आदि। इन सभी गीतों पर चर्चा करना आसान नहीं है इसलिए बालगीत तथा श्रमगीत पर थोड़ा विचार करना ज़रूरी मानता हूँ।

श्रमगीत

श्रमगीत से तात्पर्य उन गीतों से है जो काम करते वक्त गाये जाते हैं। संभवतः मन बहलाव के लिए उन गीतों का सहारा लिया जाता है जिससे शारीरिक श्रम की थकावट कम महसूस हो। काम करते रहने के कारण मन और शरीर बोझिल हो जाता है, उसी बोझ एवं दुरूहता को कम करने के लिए जो गीत गाए जाते हैं, वे काम करनेवालों के तन और मन में स्फूर्ति का संचार करते हैं। चक्की पीसते समय, धान कूटते समय, चर्खा कातते समय अपने शरीर-श्रम को हल्का करने के लिए स्त्रियाँ गीत गाती हैं। इन गीतों का मुख्य देय मनोरंजन के द्वारा श्रम-कार्य के प्रति उत्साह पैदा करना होता है, क्योंकि इन गीतों के कारण उनका अवधान श्रम में केन्द्रित नहीं होने पाता और वे अपने कार्य को यंत्रवत् करते चले जाते हैं। अतः श्रमगीत एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जोकि स्वाभाविक रूप से श्रमकर्ता को मानसिक तनाव, श्रमजन्य थकान बनी रहती है। स्फूर्ति बने रहने के कारण कार्य अपेक्षाकृत अधिक होता है और कम समय में संपन्न हो जाता है। इन श्रमगीतों को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया गया है (क) पुरुषों के श्रमगीत, (ख) स्त्रियों के श्रमगीत।

क) पुरुषों के श्रमगीत

पुरुषों द्वारा गाए जानेवाले गीतों में प्रायः नियमबद्धता के दर्शन नहीं होते। कहने का तात्पर्य यह है कि ये गीत श्रमिक द्वारा क्रमबद्ध रूप में नहीं गाए जाते, अपितु किसी भी क्षण श्रम करते समय गाए जाते हैं। कभी ये श्रमिक निमग्न होकर ढ़ोला या आल्हा की ही कुछ पंक्तियाँ गाने लगते हैं, तो कभी किसी अन्य जाति से संबंधित गीत या कोई धर्मपरक गीत गाते हैं। कभी-कभी तो ये स्त्रियों द्वारा गाया जानेवाले गीत ही गुनगुनाते हैं। इन गीतों की भावभूमि विविधता से सिंचित होती है, यद्यपि ऐसे गीतों की संख्या बहुत ही कम है जिन्हें श्रम-गीतों में रखा जा सके। एक गीत प्रस्तुत है

"अंधे आँख जडरा तो खोलौ
मत पर परिआ पथरिया नाँय,
तरा तरा के छोड़उ पदरथ
खावु मांस मछरिया नाँय
अंधे मुर्दा धरत पेट मँय
हौ तुम निपट अनड़िया नाँय ।

एक पुत्र जो मरै तुम्हारो

रोवौं फोड़ौ खुपडिया नाँय,
लाखन जीव उतर कर डारे
तिनको तुम्हें खबरिया नाँय।

जइसो पुत्र आपने समझो
तइसो भेड बकरिया नाँय
उसकौ मारि के खाल निकारौ
काटौ गुरिया जुरिया नाँय

अन्धे आँख ज़रा तौ खोलौ
मत पर परीउ पथरिया नाँय।"

ख) स्त्रियों के श्रमगीत

नित्य एक-सा कार्य करते-करते मानव-मन ऊब न जाये और उस कार्य के प्रति अरुचि न उत्पन्न हो जाए, इस ध्येय की पूर्ति करने में श्रमगीत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से श्रमगीत भी विविधता से युक्त हैं। मात्र किसी साधारण घटना का वर्णन भी इनमें देखा जा सकता है। वास्तविकता यह है कि कार्य-शीघ्रता की भावभूमि पर आधारित ये गीत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कार्य को शीघ्रता से करवाने में सहायक होते हैं। शाम को भैंस द्वारा बच्चा दिया जाना, आधी रात को उसके दूध का दही जमाना और सुबह को मट्ठा बनाना। इसी प्रकार शाम को पुत्र को जन्म देना, आधी रात में नामकरण हो जाना और सुबह को ही उसे पढ़ने भेजना, ये सब कार्य-व्यापार कार्य-शीघ्रता की मनोवृत्ति पर ही आधारित है-

"सहीअ साँझ मेरी भँइस बिआनी
अधि रतियन दही जमाओ,
सवेरे राजा मट्ठा फिराये जइऔ।

सहीअ साँझ मैंने ललुआ जनमो
अधि रतियन भओ दस्ठौन,
सवेरे राजा पढ़न लिबाय जइऔ।"

निम्नलिखित गीत धान को खेत में रोपते समय स्त्रियोंके द्वारा गाया जाता है-

"बढ़ेगी उपज मेरी खाद पटाने से,
मिटेगी गरीबी मेरी अन्न उपजाने से। बढ़ेगी उपज............
पहला तरीका छोडो, बदली जमाना रे,
बोने के पहले भैया, टोवा गिराना रे।
इससे भी अच्छा होगा, लाइन में बोने से। बढ़ेगी.............
धान रोपनी भैया बिलकुल आसान रे,
सीधी कतार रोपो, ढंग जापानी रे,
सीधी कतारें होंगी, रस्सी गिराने से। मिटेगी गरीबी.........
कृषि विभाग के पदाधिकारी रे,
उनसे समझना प्यारे, फसलों की बीमारी रे
दवाई छिडकनी होगी कीड़े लग जाने से। मिटेगी.........
मिल का कपड़ा छोड़ो, बडी बरबादी रे,
खादी का कपड़ा पहनो, आयी आज़ादी रे।
खादी मिलेगी भैया, चरखा चलाने से। मिटेगी.........."

गाँव के लोगों में शिक्षा का अभाव है लेकिन एक इस लोकगीत में उनके जागृत होने की प्रेरणा दी गयी है। इस गीत में ही खेती से अधिक अन्न उपजाने हेतु नई वैज्ञानिक विधि के प्रयोग का भी वर्णन है। विस्तार भय से श्रमगीतों का सिर्फ नामोल्लेख ही किया गया है।

बालगीत

युवकों और वृद्धों के समान ही बालकों का भी अपना लोक साहित्य है। उनके अपने गीत हैं, जिन्हें वे विभिन्न अवसरों पर, विशेषकर खेल के समय गाते हैं। बालक-बालिकाओं को ये गीत बाल-समाज के माध्यम से कंठस्थ हो जाते हैं। उनके गीतों में भाषागत सरलता एवं सरसता होती है। जब उनके माता-पिता, बड़ी बहन, भाई आदि विभिन्न अवसरों पर गीत गाते हैं, तो वे क्यों न गायें गीत? उनके गीतों में उन्हीं की आस्था एवं बुद्धि के अनुसार ही भाव होते हैं। उनमें सोचने-समझने की शक्ति न होने के कारण, वे उचित-अनुचित न जानते हुए किसी भी स्थूलकाय व्यक्ति को देखकर गाना शुरू कर देते हैं-

"मोटे लाला पिलपिले
बहु को लइके गिर पड़े।
बहु गयी पाखाने में

लालाजी गये थाने में।"

बालक-बालिकाओं के गीत उनके सरल और कोमल हृदय के ही समान कोमल और सरल होते हैं। उन्हें चाहे क-ख-ग-घ न आता हो, किन्तु गीत उन्हें इस तरह कंठस्थ होते हैं कि अवसर पड़ते ही टेप-रिकार्डर की तरह शुरू हो जाते हैं। घर में चना-पटावर (रस भरी फल) आए और बच्चों ने गाना शुरू कर दिया

"चना पटावर दानेदार,
भउजी को लइ गए थानेदार।"

इसी प्रकार घर में शकरकंदी आते ही बच्चे गाना शुरू कर देते हैं -

"आलू की आई बारात,
शकरकन्दी नाचन को आयी।"

इस प्रकार अनेक वस्तुओं, अनेक अवसरों और अनेक खेलों से संबंधित गीत बाल मस्तिष्कों में सुरक्षित होते हैं, जिन्हें वे बडी तन्मयता के साथ गाते हैं। बालगीतों को मुख्य रूप से दो वर्गों में बाँटा गया है (क) बालकों के गीत (ख) बालिकाओं के गीत

(क) बालकों के गीत

बालकों के गीतों के पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - 1. खेल से संबंधित गीत इनमें बालकों के उन गीतों को सम्मिलित किया गया है, जो खेल से संबंधित है और खेल-विशेष के खेलते समय भी गाए जाते हैं। 2. खेल से असंबंधित गीत - इनमें उन गीतों को स्थान दिया गया है, जोकि खेल के समय न गाये जाकर अन्य अवसरों पर गाये जाते हैं, या किसी वस्तु से संबंधित होते हैं।

खेल से संबंधित गीत

1. कबड्डी -

उत्तर भारत में कबड्डी बच्चों का सबसे प्रिय खेल है। इस लोकप्रिय खेल से समस्त लोक-समाज परिचित है। इस खेल से संबंधित गीत इस प्रकार है -

"बड्ड कबड्डी आल ताल,
मेरी मूछें लाल-लाल,
मर गए बिहारी लाल।"

इस गीत को ऊँचे स्वर में गाता हुआ बच्चा दूसरे के पाले में जाता है।

2. लंगड़ -

इस खेल में डोर से गिट्टी बाँधकर दो बच्चे आपस में पेंच लड़ाते हैं, गाते हैं -

"लंगड़ साथी मरे बिसाती।"

इसमें गिट्टी खुलकर या कटकर किसी के भी शरीर पर लगने की संभावना रहती है, इसलिए बच्चे निम्न गीत गाकर चोट-चपेट लगने की जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं -

"लगै लगावै मैं न जानउँ
मेरे कान में लीलो डोरा।"

लंगड़ काटने के बाद विजयी बालक कहता है -

"लंगड़ लड़ाउन वाले सब मर गये,
उनहीं के बाप हम रह गये।"

3. पतंगबाजी -

जाडे का मौसम प्रारंभ होते ही उत्तर भारत में पतंगबाजी प्रारंभ हो जाती है। पतंग उड़ाने के साथ ही साथ उन्हें डोर मंझा और पतंग लूटने में भी विशेष आनन्द प्राप्त होता है। पेंच लडाते समय एक के पास कई-कई बालक उत्सुकता से पेंच देखते हैं और पेंच लड़ानेवाले बालक को 'अब खींच लगाओ' या'ढील देओ' बताते हुए उसको निर्देशन भी दे जाते हैं। पेंच लड़ानेवाला बालक उनकी बात सुने या न सुने, किन्तु पेंच काटते ही सब बच्चे एक साथ चिल्ला उठते हैं - 'वो काट्टा है' और विपक्ष के बच्चे जिनकी पतंग कट जाती है, खिसियाते हुए उत्तर देते हैं - 'मैंने हगा तूने चाट्टा है'। इसके अतिरिक्त पतंगबाजी से संबंधित अनेक गीत भी बाल समाज में प्रचलित हैं।

बालक छुआ-छुअंबर, विष-अमृत, आती-पाती (आइस-पाइस) आदि 'खेलों के लिए' किसी बालक को चोर बनाने के लिए निम्न गीत गाते हैं -

"अक्कड़ बक्कड़ बम्बे बौ,
अस्सी नब्बे पूरे सौ,
सौ में लागा तागा,
चोर निकल के भागा।"

दूसरे खेल में बच्चे अपनी मुट्ठी बंद करके एक के ऊपर रखकर बैठ जाते हैं और दूसरा बच्चा कहता है -

"बुढ़िया बुढ़िया आम दे,"

दूसरा बच्चा - आम हैं सरकारी,

पहला बच्चा हम भी हैं दरबारी

दूसरा बच्चा आम खाने का अभिनय करता है और कहता है -

"थू-थू आम तौ खट्टो है।"

एक खेल में बच्चा ज़मीन पर कुछ ढूँढने का अभिनय करता है, दूसरा उससे पूछता है -

बुढिया-बुढिया का ढूँढती ?

पहला कहता सुई।

दूसरा बच्चा सुई को का करौगी ?

पहला - थैली सिअउँगी।

दूसरा थैली को का करौगी ?

पहला रुपइया धरौंगी।

दूसरा रुपइया को का करौगी ?

पहला भईंस लेउँगो।

दूसरा भईंस को का करौगी ?

पहला दूध पिअउँगी।

दूसरा दूध के बदले मूत न पो ले।

बुढ़िया बना हुआ बच्चा दूसरे बच्चे को मारने दौड़ता है।

इनके अतिरिक्त भी अनेक गीत अनेक खेल बच्चों के प्रचलित हैं, जिन्हें खेलते समय बच्चे कुछ न कुछ गीत के रूप में गुनगुनाते रहते हैं।

खेल से असंबंधित गीत

बाल बुद्धि अवसर या स्थान नहीं देखती। बालक खड़े-खड़े, बैठे-बैठे, लेटे-लेटे यकायक कोई भी गीत गाना शुरू कर देते हैं। ऐसे गीत खेलों से जुड़े नहीं होते। इन गीतों में बालबुद्धि जैसी ही सरलता होती है-

"धनी धनी धमधूसर से
उनके लड़का मूसर से
धनी रपट गये धानन मयँ
गिल गिलिया मूतै कानन मयँ।"

एक अन्य बाल-गीत देखिए -

"कल्लू-मटल्लू बेर खाइगो,
भंगिन की डलिया में सोय राहिगो,
भंगिन ने लाय मारी रोय जाइगो।"

कुछ बालगीत ऐसे भी होते है, जिनको उनकी माँ गाकर सुनाती है-

"चंदा मामा दूर के,
पुए पकाये बूर के,
आप खायें थाली में,
मुन्ने को दें प्याली में।"

बच्चे का मुँह धोते उनकी माँ निम्न गीत गाती है -

"किच्ची किच्ची कउआ खाए,
दूध भात मेरो मुनुआ खाए।"

आ) बालिकाओं के गीत

बाल स्वभाव की सरलता के कारण आठ-नौ वर्ष तक की बालिकाएँ प्रायः बालकों के साथ साथ ही खेलती हैं, इसलिए यहाँ प्रचलित बाल-गीतों को बालिकाएँ भी बालकों के समान ही एक समूह में एकत्र होकर गाती हैं। एक-दो खेल अवश्य ऐसे हैं, जिन्हें बालिकाएँ ही खेलती हैं। बालिकाओं के मुख्य रूप से 'गुड्डा-गुडिया के खेल' 'गुट्टा और रस्सी कूद' ही ऐसे खेल है जिन्हें बालिकाओं के खेल की संज्ञा दी जा सकती है। झूला-झूलते समय भी बालिकाओं द्वारा कुछ गीत गाए जाते है जैसे-

"डाला है हिण्डोला कन्हैयाजी के बाग में जो
एजी कोई डाली है रेशम डोर,
नन्हीं नन्हीं बूँदें ये देखो कइसी पड़ रहीं जो
एजी कोई घटा उठी है घनघोर,
अंबुआ को डाली पे देखो कोयल बोलतीजी
एजी कोई बन में ये नाचत मोर"

इस प्रकार देख सकते हैं कि हिन्दी भाषा, लोकगीतों का अक्षय भण्डार है। चूँकि लोकगीत एक कला है, इसलिए यह एक ओर समाज के लोगों की भावना, सोच, मान्यता, रूढ़ि, परंपरा तथा विश्वास को प्रतिबिंबित करता है तो दूसरी ओर उनके अन्दर आनेवाले परिवर्तन एवं उनकी धारणा के बदले स्वरूप को रूपायित करता है।

4.19 मलयालम-हिन्दी लोकगीतों की तुलना

प्रत्येक प्रांत की प्राचीन परंपरा, संस्कृति धर्म आदि का स्पष्ट स्वरूप लोकसाहित्य में प्रतिबिंबित होता है। कला, साहित्य एवं संस्कृति के मूल में पहुँचने का एकमात्र साधन लोकसाहित्य है। लोक साहित्य का अभिन्न अंग है लोकगीत। जहाँ तक केरल और हिन्दी प्रदेशों के लोकगीतों का सवाल है, दोनों का अध्ययन विश्लेषण कई बातों को सामने रखकर किया गया है। क्षेत्र एवं सीमा की दृष्टि से केरल भारत के सबसे छोटे राज्यों में एक है और मलयालम बोलनेवालों की संख्या ज़्यादा है फलतः लोकगीतों की बहुलता यहाँ होना स्वाभाविक है। भौगोलिक विभिन्नता के कारण भी इन लोकगीतों में पर्याप्त अंतर पाये जाते हैं। केरल की सुखद जलवायु एवं हरियाली का प्रभाव यहाँ के लोकगीतों में देखा जा सकता है। इसी दृष्टि से हिन्दी प्रदेशों के लोकगीतों की विवेचना करें तो उनमें भी प्रांतीय भिन्नता का असर देखने को मिलता है। ऐसी तुलना से दोनों भाषाओं के लोकगीतों का सच्चा स्वरूप सामने नहीं आएगा इसलिए वर्गीकरण के आधार पर इनकी तुलना अधिक समीचीन होगा।

मलयालम और हिन्दी भाषाओं में धर्मपरक गीतों का भरमार है। हिन्दी प्रदेश के धर्मपरक लोकगीतों में राम, कृष्ण, शिव, हनुमान तथा देवी माँ आदि से संबंधित बहुत सारे लोकगीत हैं तो मलयालम में इनके अलावा 'अय्यप्पन' 'गंधर्वन' 'नागदेवता' आदि से संबंधित गीत भी काफी मात्रा में प्रचलित हैं। दूसरी बात है केरल के धर्मपरक गीत अनुष्ठान प्रधान हैं। देवी-देवता की पूजा के लिए ज़्यादातर गीतों की प्रस्तुति होती है। हिन्दी के धर्मपरक लोकगीत भक्ति से संबंधित होते हुए भी अनुष्ठान के रूप में गाए नहीं जाते। हिन्दी लोकगीतों की प्रस्तुति में जाति परक भिन्नता नहीं है। हिन्दू धर्म को माननेवाले लोग समान रूप से गायन में भाग लेते हैं लेकिन मलयालम धर्मपरक लोकगीतों की प्रस्तुति जातिपरक होती है। खासकर 'तोऱ्ऱम्' गीतों की प्रस्तुति में केरल की निम्नजातियों के लोगों का ही हक है और अनुष्ठानों का पालन करने में ऐसे लोगों का उपस्थित होना ज़रूरी भी मानते हैं।

हिन्दी में संस्कार संबंधी लोकगीतों की बहुलता है। जन्म से मृत्यु पर्यंत प्रत्येक हिन्दू को अनेक संस्कार करने होते हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार कुल 16 संस्कारों का अनुपालन करना है। लेकिन लोकगीतों में प्रमुखतः जन्म, उपनयन, विवाह और मृत्यु से संबंधित गीतों की संख्या कबसे ज़्यादा है। मलयालम में संस्कार संबंधी गीतों की संख्या बहुत कम है। यहाँ की सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति के प्रभाव से ही होगा संस्कार संबंधी गीतों का गायन यहाँ न के बराबर है। मुसलमानों के 'ओप्पना गीत'

तथा ईसाइयों के 'मार्गमकळि गीत' विवाह संबंधी गीत अवश्य हैं किन्तु इन्हें संस्कार संबंधी गीतों की श्रेणी में रखने के बजाय जाति गीतों के अंतर्गत रखा गया है। उत्तर केरल के कुछ इलाकों में गाए जानेवाले 'मंगलप्पाट्टु' या 'कल्याणप्पाट्टु' को इस कोटि में रखा जा सकता है। हिन्दी संस्कार गीतों में जो विविधता है वह मलयालम में नहीं है।

जाती गीत किसी जाति विशेष की अपनी निजी संपत्ति है। जाति गीतों की तुलना करते समय यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि केरल के जाति गीत बहुधा अनुष्ठान प्रधान हैं किन्तु हिन्दी के जातिगीत व्यवसाय से जुटे हुए होते हैं। वहाँ काम करते समय या फुरसत के क्षणों में इन गीतों का गायन होता है। केरल में 'पुलयर गीतों' को छोड़कर ज़्यादातर गीत अनुष्ठान प्रधान है। किसी दैवीय इच्छा की पूर्ति हेतु इनकी प्रस्तुति की जाती है। इसलिए भक्तिपरक गीतों की श्रेणी में भी इन्हें रखा जा सकता है। मलयालम के 'माप्पिळा गीत' केरल के मुसलमानों के जीवन और संस्कृति का जीता जागता चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करते है। हिन्दी इस्लाम संस्कृति से जुटे हुए गीतों की संख्या बहुत कम है। इसके समान हिन्दी प्रदेशों में ईसाई धर्म से संबंधित लोकगीत न के बराबर है जबकि मलयालम के 'मार्गमकळि गीत' केरल में ईसाई धर्म के प्रचार की ओर इशारा करनेवाले होते हैं।

हिन्दी प्रदेश, व्रत, त्योहार एवं पर्वों से संपन्न है। प्रत्येक व्रत, त्योहार एवं पर्व से संबंधित बहुत सारे लोकगीत हिन्दी में पाए जाते हैं और इनकी प्रस्तुति भी स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर ही करते हैं। मलयालम में 'ओणम्','विषु' तथा 'तिरुवातिरा' को छोड़कर अन्य प्रकार के त्योहार-पर्व संबंधी लोकगीत बहुत कम देखने को मिलते हैं। स्त्री-पुरुष अलग-अलग होकर इनका गायन करते हैं। इसीसे केरल में स्त्री-पुरुष का जो भेदभाव है, स्पष्ट नज़र आता है। आजकल इसी प्रकार के गीतों की प्रस्तुति बहुत होती है। हिन्दी में ऐसे गीतों की जो विविधता एवं विपुलता है, मलयालम में नहीं है।

दोनों भाषाओं के श्रमगीतों में, खासकर कृषि-संबंधी गीतों बहुत अधिक समानता पायी जाती है। ये गीत दोनों प्रांतों की कृषक संस्कृति के परिचायक हैं। रोपनी, सिंचाई एवं सोहनी से संबंधित गीत हमारी कृषि संस्कृति को उजागर करनेवाले होते हैं। इनके गायन का लक्ष्य भी मनोरंजन तथा शरीर की थकान को दूर करना होता है। दोनों भाषाओं में स्त्रियों द्वारा गाये जानेवाले गीत पुरुषों की तुलना में ज़्यादा है।

सुखद एवं शांत जलवायु के कारण ही होगा केरल में ऋतु-संबंधी गीतों का प्रचार बहुत कम है। बालगीतों के अंतर्गत कुछ ऋतु संबंधी गीत देखने को मिलता है, अन्यत्र नहीं। हिन्दी लोकगीतों में

ऋतु संबंधी गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छः ऋतुओं से संबंधित बहुत सारे सुन्दर गीत हिन्दी की अपनी विरासत है। ऋतु परिवर्तन के साथ मानव कंठ से स्वयमेव फूटनेवाले ऐसे गीत प्रकृति के बदलते परिवेश की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। सावन के गीत, बारहमासा गीत तथा वसंत ऋतु से संबंधित गीत इसके उदाहरण हैं। बारह महीनों में समान रूप से दिखाई पड़नेवाली हरियाली, अति वृष्टि या आनावृष्टि के बीच की सुखद वर्षा, न ठंड-न गर्मी जैसा मौसम इन सबों ने यहाँ के लोगों के जीवन को काफी प्रभावित किया है। इसलिए ही होगा ऋतु-गीतों का यहाँ नितांत अभाव है।

कथ्य और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी और मलयालम बालगीतों में काफी समानताएँ पायी जाती हैं। बच्चों के लिए गीतों का निर्माण करते समय भाषा का सहज, सुन्दर, शुद्ध तथा प्रभावात्मक होना स्वाभाविक है। दोनों भाषाओं में बालगीतों की शब्दावली सरल, मधुर और गेयात्मक होती है। इन गीतों का लक्ष्य बच्चों का सर्वांगीण विकास है। इसके अनुकूल ही दोनों भाषाओं में बालगीतों की रचना की गयी है। प्रांत विशेष के अनुसार थोड़ा कुछ अन्तर होते हुए भी बालमनोविज्ञान पर आधारित इन गीतों में समानता का पुट ज़्यादा है।

विविध गीतों की श्रेणी में मलयालम में आनेवाले 'वटक्कन पाट्टु' (उत्तर के गीत) तथा 'वंचिप्पाट्टु'(नौका गीत) केरल की अपनी संपत्ति है। उत्तर केरल के जनजीवन को अत्यंत सहज-स्वाभाविक रूप से वटक्कन गीतों में चित्रित किया गया है। यहाँ की संस्कृति एवं 'कळरि पयर्रु' संबंधी बहुत अधिक जानकारी इन गीतों से प्राप्त है। केरल की जल समृद्धि की ओर इशारा करनेवाले लोकगीत है 'वंचिप्पाट्टुं' । स्वच्छ जल से भरपूर यहाँ की नदियों और झीलों में आयोजित नौका खेल तथा इससे जुडे हुए नौका-गीत देश-विदेश के लोग आश्चर्यचकित होकर देखते और सुनते हैं। एक साहित्यिक विधा के रूप में भी इसको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हिन्दी प्रदेशों में नौका-गीतों का प्रचार न के बराबर है।

हिन्दी प्रदेश की सैकड़ों बोलियों-उपबोलियों के सारे लोकगीतों को हिन्दी लेकगीत की संज्ञा दी जाती है। इसलिए हिन्दी लोकगीतों में संख्या की दृष्टि से बहुलता और शैली की दृष्टि से विविधता देखनो को मिलती है। एक छोटा-सा प्रांत होने के नाते केरल में भाषा के प्रयोग की दृष्टि बोलियों जैसा अंतर नहीं है। प्रयोग की दृष्टि से शैलीपरक भिन्नता दक्षिण, मध्य और उत्तर केरल की मलयालम में नज़र आती है किंतु बोली-उपबोली जैसा अलगाव नहीं है। फलतः यहाँ के लोकगीतों को समझना या आस्वादन करना केरलवासियों के लिए कठिन कार्य नहीं है। जाति, धर्म, कला, संस्कृति, रहन-सहन और आचार-विचार की विशेषताओं की विश्ष्टताओं को अपने-आपमें समेटे हुए ये गीत आनेवाली पाढ़ियों के लिए ज्ञान-विज्ञान के धरोहर अवश्य है साथ ही साथ लोक संस्कृति संबंधी जानकारियां का अक्षय भंडार भी।

4.20 लोकगीतों के अनुवाद संबंधी समस्याएँ

केरल तथा हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोकगीतों के विश्लेषण और तुलना के बाद अनुवाद संबंधी समस्याओं के बारे में विचार करना है। जैसे लोकगीत लोकसाहित्य का अभिन्न अंग है वैसे साहित्य का भी। साहित्य की दो विधाएँ है गद्य और पद्य। फलतः लोकगीत पद्य या काव्य का एक अंग बन जाता है। इसलिए लोकगीतों का अनुवाद करते समय काव्यानुवाद संबंधी सारी जटिलताएँ अनुवादक के सामने आजाती है। लेकिन काव्य या कविता की तुलना में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परंपराओं का प्रभाव लोकगीतों में ज़्यादा दृढ़ होने के कारण अनुवाद और जटिल होता है।

यहाँ लोकगीतों के अनुवाद के संबंध में सामान्य तौर पर उठनेवाली समस्याओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

पहले ही बताया जा चुका है कि केरल के ज़्यादातर लोकगीतों का संबंध यहाँ की अनुष्ठान प्रधान लोक कलाओं से है। अनुष्ठान प्रधान कलाओं की प्रस्तुति में प्रभावोत्पादकता बढ़ाने तथा कथ्य को भली भाँति संप्रेषित करने के लिए इन गीतों का गायन होता है। इसलिए अनुवादक को प्रत्येक गीत से संबंधित अनुष्ठानों से सबसे पहले परिचित होना है। उदाहरण के लिए केरल में 'तोऱ्ऱम्' गीत कई प्रकार के होते हैं, जैसे 'भद्रकाळी तोऱ्ऱम्','भगवती तोऱ्ऱम्','कण्णकीत्तोऱ्ऱम्','शास्ताम् तोऱ्ऱम्', 'कळमेषुत्तु तोऱ्ऱम्' तथा विभिन्न प्रकार के 'तेय्यम्' के दौरान गानेवाले अनेक 'तोऱ्ऱम्' गीत आदि। यद्यपि ये सब 'तोऱ्ऱम्' गीतों के अंतर्गत आते हैं तथापि इनसे जुड़े हुए अनुष्ठानों एवं अनुष्ठानों का पालन करनेवाले लोगों की जाति तथा धार्मिक विचारधाराओं में बहुत अन्तर है। इन गीतों में वर्णित विषयों में भी विविधता है। अनुवादक को ऐसी भिन्नताओं को ध्यान में रखकर ही अनुवाद करना चाहिए।

केरल के जातिपरक गीत भी अनुवादक के लिए काफी कठिन समस्या उत्पन्न करते हैं। उत्तर भारत के जाति गीत पेशे संबंधी गीत के रूप में गिने जाते हैं लेकिन केरल के जातिपरक गीतों में धार्मिक भावना का पुट ज़्यादा है। इतना हो नहीं विभिन्न जाति गीतों की गायन शैली भी अलग-अलग है। साधारण गीतों की तुलना में जातिपरक गीतों की रचना शैली में भिन्नता नज़र आती है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से यह एक गंभीर समस्या है।

त्योहार-पर्व संबंधी गीतों की संख्या मलयालम में बहुत कम है। लेकिन जितने उपलब्ध हैं उनका अनुवाद भी आसान नहीं है। उदाहरण के लिए 'ओणम्' से संबंधित गीतों को ले। 'ओणम्' के अनुष्ठानों

से जुडे हुए कई गीत हैं और इनका अनुवाद कठिन है। इसका कारण यह है कि उत्तर भारत के 'ओणम्' से संबंधित पौराणिक बातों तथा आचार-अनुष्ठानों से बिलकुल अवगत नहीं है। आर्द्र नक्षत्र (तिरुवातिरा) के अवसर पर प्रस्तुत 'तिरुवातिर कळि' या 'कैकोट्टिक्कळि' के दौरान गाए जानेवाले 'तिरुवातिरा' गीत दूसरा उदाहरण है। लेकिन इनमें वर्णित ज़्यादातर बातें हिन्दु धर्म या पुराणों से संबंधित है। इसलिए अनुवाद थोड़ा सरल होगा।

विविध गीतों के अंतर्गत 'वटक्कन पाट्टुकळ' (उत्तर के गीत) तथा 'वंचिप्पाट्टुकळ' (नौका गीत) का परिचय दिया गया था। 'वटक्कन पाट्टुकळ' वास्तव में उत्तर केरल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के दस्तावेज़ हैं। उत्तर केरल की भाषा शैली का परिचय भी इन गीतों से मिलता है। अतः इन गीतों का अनुवाद करते समय उस समय की सामंती व्यवस्था, लोगों की वीरता एवं युद्ध संबंधी विचार धारा, सैनिकों की मनोदशा, 'कळरि' संस्कृति तथा भाषाई विशेषताओं की विभिन्न पहलुओं को जानना ज़रूरी होता है। उसी प्रकार नौका गीतों का अनुवाद भी बाएँ हाथ का खेल नहीं। इन गीतों के विशिष्ट छन्दों में लिखे जाने तथा निराली गायन शैली के होने के कारण अनुवाद की जटिलता बढ़ जाती है। द्रविड छन्दें का हिन्दी में पुनःसृजन या हिन्दी के अनुकूल रूपांतरित करना एक वैयाक्करणिक समस्या भी है।

कुछ ऐसे लोकगीत हैं जिनका दोनों प्रदेशों में समान रूप से प्रचलन है। उदाहरण के लिए कृषि संबंधी गीत। यद्यपि दोनों प्रदेशों खेती की जानेवाली फसलें विभिन्न प्रकार की हो, तौर-तरीके अलग-अलग हो, फिर भी अखिल भारतीय कृषक संस्कृति तथा श्रम को देनेवाले महत्त्व का परिचय इन गीतों में सहज रूप से प्राप्त होता हैं।

व्रत, कर्मकांड एवं ऋतु संबंधी गीतों पर विचार करते समय अनुवाद संबंधी समस्या उतनी गंभीर नहीं दिखाई देती। ऐसे गीतों का हिन्दी प्रदेशों में काफी प्रचार है लेकिन केरल में इनकी संख्या बहुत कम या न के बराबर है। इसलिए मलयालम-हिन्दी अनुवाद का सवाल ही नहीं उठता।

यहाँ अनुवाद संबंधी कुछ व्यावहारिक समस्याओं का उल्लेख किया गया है। लोकगीतों के अनुवाद से जुडी हुई भाषावैज्ञानिक एवं व्याकरणिक समस्याओं के बारे में अंतिम अध्याय में विस्तृत चर्चा की जाएगी।

निष्कर्ष

केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद की समस्याएँ नामक दो खंडों में विभाजितइस बृहत् अध्याय में केरल तथा हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित लोकनृत्य, लोकनाट्य, मुहावरे, कहावत, पहेलियों एवं लोकगीतों की विवेचना तथा तुलना के साथ अनुवाद संबंधी समस्याओं का उल्लेख भी हुआ है। केरल के ज़्यादातर लोकनृत्य धार्मिक अनुष्ठान पर आधारित होने के कारण तत्संबंधी शब्दावली का अनुवाद इसी बात को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। हिन्दी प्रदेश के कुछ इने-गिने लोकनृत्यों को छोड़कर बाकी सब में धार्मिक विचार से बढ़कर सामाजिक तालमेल एवं सहयोग का भाव ज़्यादा है। फलतः अनुवाद करते समय उपर्युक्त बातों पर ध्यान देना अनिवार्यतः आवश्यक हो जाता है। लोकनाट्यों में ऐसी समस्या कम है। ग्रामीण जीवन की सरलता, सरसता एवं सहजता दोनों प्रदेशों के लोकनाट्यों में समान रूप से विद्यमान हैं। सिर्फ सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कुछ अंशों में अन्तर है। मुहावरे, कहावत एवं पहेलियों के सन्दर्भ में भी दोनों भाषाओं की धाराएँ एक ही दिशा में बहती नज़र आती है। मुहावरे एवं कहावत के संदर्भ में संस्कृत भाषा का प्रभाव हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप से परिलक्षित होता है।

मलयालम तथा हिन्दी के लोकगीत जीवन के समस्त तत्त्वों को उभारने में समर्थ हैं। ये गीत लोकजीवन की सीधी, सत्य एवं सरल भावनाओं पर प्रकाश डालते हैं। जितना ही हम इनकी तह में जाते हैं उतना ही इनका मूल्य स्पष्ट होता जाता है। लोक संस्कृति-समाज, इतिहास-दर्शन एवं साहित्यिक प्रदेय की दृष्टि से हिन्दी-मलयालम लोकगीतों का विशेष महत्त्व एवं स्थान है। दोनों में साहित्यिकता, रसमयता, विचारात्मकता एवं मार्मिकता है। प्रांतीय भिन्नता, सांस्कृतिक विविधता एवं भाषापरक जटिलताओं को नज़रअंदाज़ करते हुए अनुवाद असंभव है। शब्दावली का आदान-प्रदान ही अनुवाद नहीं है बल्कि शब्दावली के साथ जुडे हुए सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक प्रतीकों का हस्तांतरण भी है। समाज एवं संस्कृति की दृष्टि से मलयालम लोकगीतों ने अपनी संस्कृति को समाहित किया है। अतः अनुवाद भी इसी पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए।

पाँचवाँ अध्याय

मलयालम-हिन्दी अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ

पाँचवाँ अध्याय

मलयालम-हिन्दी अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ

शब्द संस्कृति के संवाहक होते हैं। एक देश का संबंध जब दूसरे देश से होता है तो उसके फलस्वरूप विचारों, वस्तुओं, भावों आदि का भी आदान-प्रदान होता है। यही बात एक देश में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के मध्य आदान-प्रदान में भी होती है।[1] कोई भी भाषा अपने में संपूर्ण नहीं होती, निरंतर विकसित रहती है। भारत जैसे बहुभाषी देश में भिन्न-भिन्न भाषाओं के बीच लेन-देन की प्रवृत्ति निरंतर गतिशील रहती है।

प्रत्येक संस्कृति में रहन-सहन, रीति-रिवाज़, खान-पान, आचार-विचार, जाति-कुल, धर्म-उपासना विधि आदि की विशिष्ट शब्दावली होती है। जब ऐसी शब्दावली का अभाव दूसरी संस्कृति को महसूस होने लगती है तब सहज रूप से अनुवाद का शरण लिया जाता है। हिन्दी और मलयालम के बीच इसप्रकार के आदान-प्रदान की बात आती है तब भी अनुवाद संबंधी विभिन्न समस्याएँ साकार होने लगती हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में मलयालम-हिन्दी अनुवाद परंपरा पर विचार करना अधिक उचित होगा।

5.1 मलयालम-हिन्दी अनुवाद परंपरा

केरल यद्यपि हिन्दी क्षेत्र से दूर स्थित मलयालम भाषा-भाषी प्रदेश है तथापि हिन्दी का प्रयोग सदियों से यहाँ पर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होता रहा है। मध्ययुग में हिन्दी केरल में कई नामों से जानी जाती थी। हिन्दी के लिए प्रमुखतः 'गोसायि भाषा' 'तुलुक्क भाषा' 'पट्टाणि भाषा' 'दक्किनी' (दक्खिनी), 'हिन्दुस्तानी' 'इन्दुस्तानी' आदि शब्द प्रयुक्त होते थे।[2] यद्यपि इनमें से प्रत्येक शब्द केरल में हिन्दी के आगमन के इतिहास को अपने में समेटे हुए हैं, तो भी सामान्यतः इनका संकेत हिन्दी के प्राचीन अखिल भारतीय रूप से है। उपर्युक्त प्रत्येक शब्द का विश्लेषण इस दिशा में पर्याप्त प्रकाश डाल सकता है।

'गोसायि' शब्द केरल में उत्तर भारत से आनेवाले संत लोगों के अर्थ में विशेष रूप से और तीर्थ यात्री के अर्थ में सामान्य रूप से व्यवहृत होता था। इसलिए 'गोसायि' भाषा उत्तरी भारत के संतों अथवा तीर्थयात्रियों द्वारा प्रयुक्त हिन्दी की बोलियों के लिए व्यवहृत शब्द बन गया।

'तुलुक्क' या 'तुलुक्कन'[3] शब्द सामान्य रूप से मुसलमानों के लिए प्रयुक्त शब्द था। 'तुलुक्क'भाषा से तात्पर्य उत्तर के मुसलमानों की भाषा अर्थात् हिन्दी से था। मलिक काफ़ूर और उसके

1. डॉ कैलाश चन्द्र भाटिया, अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग -पृ. 25
2. डॉ जी गोपीनाथन, केरलीयों की हिन्दी भाषा को देन -पृ. 12-14
3. तुलुक्क - तुर्क शब्द से व्युत्पन्न

बाद के मुगल आक्रमणकारियों की भाषा दिल्ली और उसके आसपास की खड़ीबोली थी। इससे स्पष्ट है कि चौदहवीं शताब्दी से लेकर मुसलमानों की बोली अर्थात् हिन्दी के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता था।

'पट्टाणि' शब्द पठान का विकृत रूप है। केरल में पट्टाणि शब्द दक्कन के मुसलमानों के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होता था। पट्टाणि भाषा से तात्पर्य दक्खिनी मुसलमानों की भाषा अर्थात् दक्खिनी हिन्दी से था।

'दक्किनी' या 'दक्खिनी' दक्कन के मुसलमान और उनकी भाषा के अर्थ में पुराने समय से ही प्रयुक्त शब्द था। दक्कन के मुस्लिम राज्यों में दिल्ली की खड़ीबोली तथा मध्यदेश की अन्य बोलियों के मिश्रण से दक्खिनी का विकास हुआ था।

हिन्दुस्तानी शब्द मूलतः मध्यदेश की, विशेषकर दिल्ली और आगरे की बोलियों से विकसित, दक्खिनी मुसलमानों की भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होता था। केरल में भी दक्खिनी मुसलमानों की बोली के विशेष अर्थ में हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग होता था। बोली में 'इन्दुस्तानी' शब्द भी प्रचलित था।

उपर्युक्त सभी शब्द वस्तुतः केरल में हिन्दी के व्यापक प्रसार की ओर संकेत करते हैं। मध्ययुग से लेकर फारसी के साथ-साथ हिन्दी भी अन्तरप्रांतीय वैचारिक आदान-प्रदान की भाषा रही है। केरल में इसके लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम वस्तुतः जनजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी के प्रतीक हैं। केरल जैसे सुदूर दक्षिण के अहिन्दी भाषी प्रदेश में हिन्दी को महत्त्व मिला था, इसके पीछे एक सुदृढ़ सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, व्यापारिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि है।[1]

केरल सदियों से धर्म और संस्कृति का केन्द्र रहा है। शेष भारत से सदैव उसका सांस्कृतिक विनिमय चलता रहा। प्राचीन काल में संस्कृति के केन्द्र तीर्थस्थान और मंदिर थे। केरल के साधु और भक्त उत्तर के मथुरा, वृन्दावन, काशी, बदरीनाथ आदि तीर्थस्थानों में जाते थे। उसी प्रकार उत्तर से भी भक्त लोग कन्याकुमारी, शुचीन्द्रम, गुरुवायूर आदि केरल के तीर्थों और मंदिरों में आया करते थे। सत्रहवीं और अठारहवीं सदियों में उत्तर भारत के गोसाई साधुओं की कई टोलियाँ केरल में घूमती थी। विभिन्न धार्मिक संप्रदाय के अनुयायियों ने भी हिन्दी को व्यापक बनाया। शंकराचार्य की जन्मभूमि होने के कारण केरल अद्वैतवादी साधुओं के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा। वल्लभ संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय,

1. डॉ जी गोपीनाथन, केरलीयों की हिन्दी भाषा को देन -पृ. 14

रामानुज संप्रदाय आदि के अनुयायियों ने भी केरल में हिन्दी को लोकप्रिय बनाया। इसी प्रकार जैन और सिद्धों के द्वारा भी केरल में हिन्दी पहूँच गई थी। भक्तों के आगमन के साथ-साथ हिन्दी के भक्तिमय संगीत का भी प्रचार केरल में होने लगा था। केरल में पुराने समय से भजन गाने की परिपाटी थी (जिसको भजना कहते हैं) भजन में संस्कृत और मलयालम के अतिरिक्त हिन्दी के भजन भी बड़ी चाव से गाए जाते थे। यह परिपाटि महाराष्ट्र से केरल में आई थी। इस प्रकार के धार्मिक संगीत ने केरल में हिन्दी के प्रसार के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया।

मध्ययुग से लेकर उत्तर-दक्षिण के बीच व्यापार का प्रमुख माध्यम हिन्दी ही था। केरल के सुगंध-द्रव्यों, मसालों और कलाशिल्पों केलिए प्रसिद्ध होने के कारण हिन्दी-भाषी व्यापारियों का आगमन भी केरल में निरंतर होता था। इसके लिए केरलीयों को हिन्दी के अध्ययन की आवश्यकता भी पड़ती थी। साहित्य के क्षेत्र में भी इसका प्रभाव होने लगा। फलतः केरल में भी हिन्दी साहित्य सृजन की परंपरा शुरू हुई। वस्तुतः हिन्दी साहित्य सृजन की यह महती परंपरा समस्त दक्षिण भारत में विद्यमान थी। सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संबंधों के कारण केरल में यह परंपरा आगे बढ़ती गई।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि केरल में हिन्दी का काफी प्रचार हुआ था इसलिए भाषाई आदान-प्रदान की आवश्यकता बढ़ती गयी। फलतः हिन्दी मलयालम या मलयालम-हिन्दी शब्द कोशों या पाठमालाओं का निर्माण अनिवार्य महसूस होने लगा। साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे पुराने कोश और पाठमालाएँ भी केरल में प्राप्त हुई हैं जो कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। केरलीय विद्वानों द्वारा रचित दो हिन्दुस्तानी पाठमालाएँ प्राप्त हुई हैं और दोनों के लेखक भी अज्ञात हैं। पहली पाठमाला बड़ी विस्तृत किंतु हिन्दुस्तानी के व्याकरणिक रूपों का अध्ययन करने के लिए मलयालम भाषा-भाषियों के लिए काफी सहायक है। भाषा.के स्वरूप को सिखाने का वैज्ञानिक क्रम इसमें अपनाया गया है। शब्द-रूप, क्रियाओं के विभिन्न प्रयोग, वार्तालाप का स्वरूप एवं परिनिष्ठित गद्य का स्वरूप द्विभाषा-विवरण के साथ प्रस्तुत किए जाने के कारण भाषा के अध्येता को भाषा की गठन समग्र रूप से समझने का अवसर मिलता हैं।[1]

दूसरी पाठमाला अधिक विस्तृत न होने पर भी हिन्दी भाषा के रूपों के अध्ययन की दिशा में बहुत उपयोगी है। मलयालम में रचित हिन्दुस्तानी (हिन्दी) के एक पुराने, अज्ञात व्याकरण ग्रंथ के रूप में यह विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करती है।[2]

1. डॉ जी गोपीनाथन, केरलीयों की हिन्दी भाषा को देन -पृ. 58-59
2. वही -पृ. 62

कोश निर्माण या पाठ माला निर्माण भाषा अध्ययन के लिए अति आवश्यक है लेकिन भाषा के विकास के लिए साहित्य सृजन अति आवश्यक है। जब साहित्य का अनुवाद किया जाता है तब शब्द भण्डार के विकास के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक विशिष्टताओं का आदान-प्रदान भी होता है। इसलिए अनुवाद का संस्कृतिपरक महत्त्व भी है। आगे मलयालम-हिन्दी साहित्यानुवाद का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

5.2 मलयालम साहित्य का हिन्दी अनुवाद

जब अनुवाद की दृष्टि से हम मलयालम वाङ्मय का मूल्यांकन करना चाहते है तब उसका विचार क्रम भी विचारणीय हो जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की तरह मलयालम साहित्य का इतिहास भी अपने वाङ्मय का विवेचन, प्राचीन, मध्यकाल तथा आधुनिक के तीन स्तरों पर करता है। प्राचीन व मध्यकालीन मलयालम साहित्य को मिलाकर हम अनुवाद के क्षेत्र में 'प्राचीन' संज्ञा दे सकते हैं। इस काल में दोनों भाषाओं में छन्द बद्ध कविता का ही रूप दिखाई पड़ता है। विवेचन भी पुराने क्रम का है। आधुनिक युग में साहित्य के अनेक रूप उभरे हैं। इनमें प्रत्येक विधा के अनुवादक को अपनी भाषा, शिल्प आदि का उचित निर्वाह करना पड़ता है, इसलिए आधुनिक साहित्य की प्रत्येक धारा का स्वतंत्र निरीक्षण-परीक्षण आवश्यक है।[1] आगे साहित्यिक विधाओं के आधार पर मलयालम-हिन्दी साहित्यानुवाद के इतिहास का विश्लेषण किया जाएगा।

5.2.1 केरल में हिन्दी लेखन का आधुनिक युग

हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन के साथ ही केरल में हिन्दी के अध्ययन एवं लेखन की दिशा में एक नया मोड़ आ जाता है। सन् 1922 में जब केरल में सार्वजनिक रूप से हिन्दी का प्रचार आरंभ हुआ, तब से यह नया दौर शुरू हो जाता है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के तत्त्वावधान में सन् 1923 जनवरी से 'हिन्दी-प्रचारक' नाम पत्रिका निकाली गयी जिसके माध्यम से दक्षिण भारत के हिन्दी लेखकों को अपनी मौलिक रचनाएँ प्रकाश में लाने का अवसर मिला। इसके बन्द हो जाने के बाद सभा की ओर से सन् 1938 से लेकर 'दक्षिण भारत' और 'हिन्दी प्रचार समाचार' नामक पत्रिकाएँ निकलने लगीं। किन्तु 'हिन्दी प्रचारक' की अपेक्षा उक्त दोनों पत्रिकाओं में केरलीयों की हिन्दी रचनाएँ बहुत कम प्रकाशित हुई हैं। [2]

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी में अनुवाद एवं मौलिक रचनाओं का प्रकाशन करने के साधन बढ़े। एक तो केरल से ही 'हिन्दी मित्र', 'ललकार','आर्य केरली','विश्वभारती','प्रताप','राष्ट्रवाणी', 'युग

1. डॉ एन ई विश्वनाथ अय्यर, अनुवाद : भाषाएँ-समस्याएँ -पृ. 272

2. डॉ जी गोपीनाथन, केरलीयों की हिन्दी भाषा को देन -पृ. 81

प्रभात' 'केरल ग्रंथलोकम्','केरल भारती' 'केरल ज्योति' आदि पत्रिकाएँ निकलने लगीं। इसके अतिरिक्त उत्तर को पत्रिकाओं में पहले की अपेक्षा अधिक परिमाण में मौलिक एवं अनूदित हिन्दी रचनाएँ छापने लगीं।[1] केरल में हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि बढ़ाने में मौलिक रचनाओं के साथ अनुवादों का भी विशेष योगदान रहा है इसलिए इनकी विवेचना महत्त्वपूर्ण है।

5.2.2 मलयालम से हिन्दी में काव्यानुवाद

मलयालम से हिन्दी में अनुवाद का क्रम स्वातंत्र्योत्तर काल में ही शुरू हो जाता है। उत्तर और दक्षिण की हिन्दी पत्रिकाओं के द्वारा अब तक अनेक अनूदित कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। केरल के अनेक लोकप्रिय कवियों की रचनाओं के अनुवाद अब तक 'आजकल' 'धर्मयुग' 'माध्यम' 'युगप्रभात' 'राष्ट्रवाणी'(वर्धा), केरल ज्योति (तिरुवनन्तपुरम), 'केरल भारती' आदि हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। साहित्य अकादमी, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति आदि संस्थाओं तथा कई प्रकाशकों को ओर अनूदित मलयालम रचनाएँ पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए हैं।

पहले की अनूदित रचनाओं में कविता का लिप्यंतरण कर उसका गद्यानुवाद देने की रीति अपनाई थी। इसप्रकार के अनुवाद के अंतर्गत वळ्ळत्तोल, कुमारनाशान, जी शंकरकुरुपुं, पाला नारायणन नायर आदि मलयालम के प्रसिद्ध कवियों की काव्य रचनाएँ अनूदित होकर प्रकाशित हुई। बाद में कई अनुवादकों ने पद्यानुवाद को ही अपनाया। मलयालम-हिन्दी अनुवादकों में श्रीमती रत्नमयी देवी दीक्षित, श्री एम श्रीधरमेनोन, श्री जी नारायण पिल्लै, लक्ष्मी चन्द्र जैन, श्री वी के मूत्तत्, श्री माधवन पिल्लै, श्री के चात्तुक्कुट्टि, पं.नारायण देव, डॉ विश्वनाथ अय्यर, श्री चन्द्रशेखरन नायर आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

मलयालम कविता का पर्याप्त अनुवाद हिन्दी में सन् 1980 तक नहीं हो सका है, इसका प्रमुख कारण काव्यानुवाद की कठिनाई ही लगता है। अनुवाद में भी लय, छन्द आदि को बनाए रखने की समस्या अनुवादक के सामने आती है। हिन्दी के छन्दों में मलयालम कविताओं का अनुवाद अक्सर कठिन ही दीखता है। लेकिन सन् 1980 के बाद मलयालम के कई आधुनिक कवियों की रचनाएँ हिन्दी में अनूदित होकर आई हैं। युवा पीढ़ि के अनुवादकों के द्वारा इस क्षेत्र में सफलता पूर्वक प्रयास ज़ारी है।

5.2.3 मलयालम से हिन्दी में कहानी अनुवाद

मलयालम साहित्य अपने कहानी-वाङ्मय के बहुमुखी विकास के लिए विख्यात है। मलयालम

1. डॉ जी गोपीनाथन, केरलीयों की हिन्दी भाषा को देन -पृ. 81

की अनेक कहानियों का अनुवाद अब तक हिन्दी में हो चुका है। स्वातंत्र्योत्तर काल में यह अनुवाद-प्रक्रिया शीघ्र गति से होने लगी। उत्तर की 'धर्मयुग' 'आजकल' 'सारिका' आदि पत्रिकाओं ने अनेक मलयालम कहानियों के अनुवाद प्रकाशित किए हैं। श्री के रवि वर्मा, पी जी वासुदेव, एस लक्ष्मण शास्त्री, एम एन सत्यार्थी, वी डी कृष्णन नंप्यार आदि लोगों ने प्रमुख रूप से अनुवाद प्रकाशित किए हैं। केरल की हिन्दी पत्रिकाओं में 'केरल-भारती' एवं 'युग-प्रभात' में मलयालम कहानियों के अनुवाद विशेष रूप से छपे हैं।

पुरानी पीढ़ि के मलयालम कहानीकारों में श्री तकषी शिवशंकर पिल्लै की कहानियाँ हिन्दी में ज़्यादा अनूदित हुई है। तकषी के अतिरिक्त एस के पोऱ्ऱक्काट्टु, पी केशवदेव, ललितांबिका अन्तर्जनम्, मलयाऱ्ऱूर रामकृष्णन, टी.पद्मनाभन, के टी मुहम्मद,एम टी वासुदेवन नायर, कोविलन, काक्कनाटन आदि कहानीकारों की कहानियाँ भी हिन्दी साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। लेकिन हिन्दी में अनूदित मलयालम कहानियों के संग्रह पुस्तकाकार रूप में कम छपे हैं। नाशनल बुक ट्रस्ट की ओर से कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन अनुवादों में केरलीय जीवन की विशेष स्थिति तथा हिन्दी और मलयालम भाषाओं की प्रकृति के अन्तर के कारण कई समस्याएँ अनुवादक के सम्मुख उपस्थित हुई हैं। सन् 1960 के बाद मलयालम कहानी के क्षेत्र में कई अधुनातन प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हुई हैं और कहानी लेखन मात्रा एवं विविधता की दृष्टि से समृद्ध बन गया है फिर भी अनुवाद की दृष्टि उतना बड़ा परिवर्तन नज़र नहीं आता।

5.2.4 मलयालम से हिन्दी में उपन्यासों का अनुवाद

कहानी की अपेक्षा हिन्दी में अनूदित मलयालम उपन्यासों की संख्या ज़्यादा है। मलयालम के कई बहुचर्चित उपन्यासों का अनुवाद व्यक्तियों तथा संस्थाओं के प्रयत्न से हिन्दी में हो पाया है। सर्वश्री तकषी शिवशंकर पिल्लै, कारूर माधवपणिक्कर, वैक्कम मुहम्मद बशीर, पी.केशवदेव, वेट्टूर रामन नायर, मलयाऱ्ऱूर रामकृष्णन, पाऱप्पुऱत्तु, एस के पोऱ्ऱक्काट्टु, एम टी वासुदेवन नायर आदि उपन्यासकारों की रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में हुआ है।

उपन्यासों के अनुवाद में अनेक समस्याएँ अन्तर्लयित हैं। स्थानीय रंग से युक्त प्रांतीय प्रयोग व मुहावरों के अनुवाद की समस्या तथा विशिष्ट परिवेश द्वारा प्रस्तुत जीवन-चेतना के सफल संप्रेषण की समस्या इनमें से प्रमुख हैं। वस्तुतः मूल्यांकन के अधिकाँश उपन्यासों की स्थिति यह है कि उनमें स्थानीय रंग ज़्यादा रहता है और बोलीगत रूपों का प्रयोग अधिक रहता है। हिन्दी में उनका सफल अनुवाद कर पाना अनुवादकों के लिए हमेशा एक पहेली-सा रहा है।

मलयालम से हिन्दी में उपन्यासों का अनुवाद करनेवालों में श्रीमती भारती विद्यार्थी, श्रीमती रत्नमयी दीक्षित, श्री के रवि वर्मा, एस लक्ष्मण शास्त्री, श्री अभयदेव, सुधांशु चतुर्वेदी, पी.कृष्णन आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आजकल पुरस्कार प्राप्त उपन्यासकारों के उपन्यासों का अनुवाद करने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

5.2.5 मलयालम नाटकों का हिन्दी में अनुवाद

मलायलम का नाटक-साहित्य बहुत ही समृद्ध है। लेकिन मलयालम नाटकों का अनुवाद बहुत कम हुआ है। नाटकों का अनुवाद वैसे ही कठिन कार्य है क्योंकि इसमें वार्तालाप की सहजता और भाषा की स्वाभाविकता लानी पड़ती है। मलयालम के ऐसे अनेक बोलचाल के प्रयोग है जिनके लिए हिन्दी में समान प्रयोग मिलना मुश्किल है। इस कारण से नाटकों का अनुवाद दूसरी साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा अधिक दुष्कर हो जाता है। मलयालम के समस्या प्रधान नाटकों में अक्सर प्रांतीय अथवा स्थानीय महत्त्व की समस्याएँ ज़्यादा रहने के कारण अनुवाद में कभी-कभी मूल की समस्याओं का महत्त्व कम हो जाता है। नाटकों का ऐतिहासिक तथा सामाजिक दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

हिन्दी में अनूदित ऐतिहासिक नाटकों में श्री के पद्मनाभन नायर द्वारा लिखित 'कुञ्ञालि मरक्कार' तथा श्री कप्पन कृष्ण मेनोन द्वारा रचित 'पषशिराजा' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अनूदित सामाजिक नाटकों में 'चाबियाँ' (के टी मुहम्मद),'निङ्ङळेन्ने कम्यूनिष्टाक्कि' 'मूलधनम्'(तोप्पिल भासी),'अवन वीटुंम् वरुन्नु'(सी जे थामस), 'मण्णुम् पेण्णुम्'(उरूब),'कन्यका' (एन कृष्णपिल्लै), 'मृगम्','प्रतिध्वनि' 'परीक्षा'(टी एन गोपीनाथन नायर), 'कूट्टुकृषि' (इटश्शेरी गोविंदन नायर) आदि प्रमुख है। अनुवादकों में सुधांशु चतुर्वेदी, के रवि वर्मा, लक्ष्मण शास्त्री, पी जी वासुदेव आदि का योगदान महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक नाटककारों की कई रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में हुआ है।

5.2.6. गद्य की अन्य विधाओं का अनुवाद

निबंध, एकांकी, यात्रावृत्त, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, इतिहास, आलोचना आदि अन्य साहित्यिक विधाओं का मलयालम से हिन्दी में अनुवाद हुआ है। हिन्दी की साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में मलयालियों का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मलयालम-हिन्दी तुलनात्मक अध्ययन भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। हिन्दी तथा मलयालम के प्रसिद्ध साहित्यकारों व रचनाओं की तुलना के साथ-साथ विभिन्न साहित्यिक प्रवर्तियों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया। तुलनात्मक अध्ययन की कुछ सीमाएँ भी होती है, दोनों भाषाओं की शैलीगत विभिन्नता, काव्य-रूपों का भेद, वातावरण का अन्तर आदि तुलनात्मक अध्ययन करनेवालों के सामने कठिनाइयाँ बनकर उपस्थित होते हैं। कोश निर्माण भी भाषा

के विकास के लिए आवश्यक है। यद्यपि हिन्दी-मलयालम शब्द कोशों की संख्या काफी है तथापि मलयालम-हिन्दी कोशों के निर्माण न के बराबर है। इस क्षेत्र में एक मात्र उल्लेखनीय कार्य डॉ एम ई विश्वनाथ अय्यर का मलयालम-हिन्दी व्यावहारिक कोश है। इसके बाद भी कई ऐसे कोश निकले हैं लेकिन स्तरीयता की दृष्टि से इनकी गणना नहीं की जा सकती।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मलयालम-हिन्दी अनुवाद ने स्वातंत्र्योत्तर युग में ज़ोर पकडी है। लेकिन आज की माँग के अनुसार अनुवाद के क्षेत्र में प्रगति नहीं हुई है। साहित्यिक विधाओं का अनुवाद यत्र-तत्र होता रहता है किन्तु संस्कृति के क्षेत्र में ऐसा प्रयास न के बराबर है।

5.3. स्थानीय शब्दावली का अनुवाद

स्थानीयता तब रूपायित होती है जब अन्य स्थान या प्रदेश से भिन्न एक विशिष्ट प्रकार की भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक कला एवं साहित्यिक तथा भाषिक परिस्थिति का विकास हो। स्थानीयता शब्द अपने आप में सीमित लगता है किन्तु इसका दायरा बहुत विस्तृत है, तो इससे संबंधित शब्दावली का सीमांकन असंभव सा लगता है। जन जीवन से संबंधित सारी गतिविधियाँ जैसे, रहन-सहन, खान-पान, कपड़ा-पहनावा, आचार-विचार, उत्सव-त्योहार, कला-साहित्य एवं कर्मकांड से जुडे हुए सारे शब्द स्थानीय शब्दावली के अन्तर्गत आते हैं।

केरल की स्थानीय शब्दावली नामक दूसरे अध्याय में स्थानीयता को रूपायित करनेवाले तत्त्वों के अंतर्गत भूगोल, इतिहास, धार्मिक विचारधारा, खान-पान, वेश-भूषा, कर्मकांड, त्योहार-पर्व, कलाएँ एवं लोककलाएँ, अंधविश्वास एवं अनाचार, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ आदि पर संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। इनमें से कलाओं, लोकनृत्यों, लोकनाट्यों, मुहावरों, कहावतों, पहेलियों तथा लोकगीतों से संबंधित शब्दावली का विस्तृत विश्लेषण तथा अनुवाद संबंधी समस्याओं पर विचार-विमर्श पूर्व के अध्यायों में किया गया है। इसलिए स्थानीयता के उन छूटे हुए पक्षों का विश्लेषण ही यहाँ अनिवार्य है जैसे भूगोल, इतिहास, धार्मिक विचारधारा,खान-पान, वेशभूषा, कर्मकांड, उत्सव-त्योहार आदि।

5.3.1. भूगोल

एक विशिष्ट स्थानीयता को रूपायित करने में केरल की भौगोलिक परिस्थितियों की अहम भूमिका रही है। यहाँ के सुखद मौसम, हरियाली, पहाड़, नदियाँ एवं झील तथा सागर की निकटता ने उत्तर भारत से भिन्न एक भौगोलिक वातावरण को जन्म दिया है। यहाँ के पेड़-पौधे एवं पशु-पक्षी भी हिन्दी प्रदेश के लोगों को एक निराली अनुभव प्रदान करनेवाले हैं। अनुवाद करते समय अनुवादक को बीच

बीच में इनसे जुडे हुए शब्दों से मिलना पडता है तब हिन्दी में अनुवाद एक समस्या बन जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यहाँ के स्थान विशेष में उत्पन्न ऐसी चीज़ों के लिए हिन्दी में शब्द उपलब्ध नहीं है। इतना ही नहीं यहाँ की प्राकृतिक विशेषताओं से हिन्दी प्रदेश के लोग बिलकुल अनभिज्ञ हैं। इसलिए यहाँ का प्राकृतिक वातावरण पूरी तरह परिचित हुए बिना अनुवाद कार्य संपन्न नहीं कर पाएगा। अतः अनुवादक को पूरी सतर्कता से भौगोलिक विशेषताओं का आकलन करना होगा ताकि अनावश्यक त्रुटियों से बच सके।

5.3.2. इतिहास

प्रत्येक प्रांत या प्रदेश के लोगों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विकासयात्रा का परिचय हमें इतिहास से ही मिल सकता है। इतना ही नहीं भाषा के विकास का उल्लेख भी हमें इतिहास के पन्नों से प्राप्त होता है। इसलिए अनुवाद का इतिहास से भी गहरा संबंध है। समय-समय पर समाज में होनेवाले परिवर्तनों का प्रभाव संस्कृति पर पड़ता है। अतः प्रत्येक काल सीमा के अंतर्गत दिखाई पडनेवाली प्रवृत्तियाँ उसके पहले या बाद के समय में दिखाई नहीं देतीं। इसलिए अनुवादक को अनुवाद सामग्री की कालसीमा को यथावत् परखकर ही अनुवाद करना होगा। मलयालम-हिन्दी अनुवाद के प्रसंग में सबसे बडी समस्या यह है कि मलयालम इतिहास ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद न के बराबर है। इसलिए केरल के इतिहास को जानने के लिए हिन्दी भाषा भाषी या अनुवादक को मलयालम या अंग्रेज़ी भाषा का ही सहारा लेना पडता है।

5.3.3. धार्मिक विचारधारा

किसी भी प्रांत की संस्कृति को रूपायित करने में धार्मिक विचारधारा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक जीवन में ही नहीं कला और साहित्य के सृजन एवं प्रस्तुति में भी धर्म का गहरा प्रभाव देख सकते हैं। केरल की अनोखी जाति व्यवस्था के रूपायन में भी धार्मिक विचारधारा ही कार्यरत है। यद्यपि हिन्दू, ईसाई, इस्लाम जैसे सामान्य विभाजन संभव है किन्तु हिन्दू धर्म के अंतर्गत आनेवाली कई जातियाँ और उपजातियाँ तथा उनसे जुडे हुए आचार-अनुष्ठान संबंधी शब्दावली अनुवादक के लिए परेशानी उत्पन्न करती है। केरल के धार्मिक अनुष्ठानों तथा कलाओं की प्रस्तुति में यहाँ की जातिव्यवस्था की भूमिका इस अध्ययन के दौरान स्पष्ट हो गया है। यहाँ के त्योहार-पर्व भी धर्म के खेरे के बाहर नहीं है तो आचार-अनुष्ठानों पर इसके प्रभाव के बारे में अधिक बखान करने की आवश्यकता नहीं। इसलिए अनुवादक केरल की स्थानीय शब्दावली के अनुवाद करते समय धार्मिक विचारधारा के महत्त्वपूर्ण पक्षों को अनदेखा नहीं कर सकता।

5.3.4. खान-पान

खान-पान संबंधी शब्दावली का अनुवाद एक गंभीर समस्या है। प्रत्येक प्रांत में उत्पादित खाद्यों की अपनी अलग पहचान एवं विशिष्टता होती हैं। प्रांत विशेष में सुलभ वस्तुओं से इनको तैयार किया जाता है इसलिए इनका संबंध वहाँ की कृषक संस्कृति से भी जुडता है। वस्तुतः किसी भी भाषा-भाषी समाज के किसी भी काल शब्द-भण्डार में से खान-पान विषयक शब्दों के आधार पर यह जाना जा सकता है कि उस संस्कृति के लोग क्या कुछ खाते पीते थे। दूसरी ओर किसी भी समाज के खान-पान के आधार पर यह अनुमान सॅरलता से लगाया जा सकता है उनकी भाषा के शब्द-भण्डार में किन-किन खाद्यों और पेयों के लिए कौन से नाम या शब्द रहे होंगे। केरल में प्रचलित खाद्यों के नाम सुनते ही अन्य भाषा के लोग हैरान हो जाएँगे। लिप्यंतरण के ज़रिए सिर्फ नाम बताने से इन खाद्यों को बनाने की विधि तथा उनकी स्वादगत विशेषताओं का सही ज्ञान अन्य भाषा-भाषी को प्राप्त नहीं होता। उदाहरण के लिए केरल में सामान्य रूप से प्रचलित'चोरुँ' 'कञ्जि' 'पुषुक्कुँ' 'पुट्टुँ' 'अप्पम्' ,'अवियल' 'तोरन' 'मेषुक्कु पुरट्टि' '.सम्मंति'या 'चम्मंति' 'शर्करवरट्टि' जैसे खाद्यों का परिचय हिन्दी भाषी को देना कठिन कार्य होता है। इतना ही नहीं मुहावरे तथा कहावतों में भी खान-पान संबंधी शब्दों का खूब प्रयोग होता है। यदि अनुवादक को खाद्यों की सही जानकारी नहीं है तो वह पाठक को क्या समझाएँ, यह ध्यान देने की बात है।

5.3.5. वेश-भूषा

प्रत्येक प्रांत की वेशभूषा वहाँ की संस्कृति के आधार पर बनायी जाती है। भारत के विभिन्न प्रांतों की विविधता का प्रत्यक्ष प्रमाण यदि पाना हैं तो यहाँ के भिन्न-भिन्न प्रांतों की वेश-भूषा का अवलोकन करें। केरल के लोग यहाँ की भौगोलिक स्थिति एवं मौसम को दृष्टि में रखकर ही अपने लिए वस्त्र चुनते थे। इस चुनाव में भी जातिगत भिन्नता देखी जा सकती है। पुराने ज़माने में वेश भूषा देखकर ही किसी भी व्यक्ति की जाति की पहचान आसानी से हो जाती थी। लेकिन आज पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से एक प्रकार की समानता केरल के लोगों की वेशभूषा में देखी जा सकती है। यह आम आदमी के पहनावे से संबंधित बात है। कलाओं से संबंधित वेशभूषा का विश्लेषण अनुवादक के लिए काफी कठिन साबित हो सकता है। ऐसी शब्दावली के संबंध में विचार-विमर्श हुआ है। पुराने समय के साहित्य में केरल की परंपरगत वेश भूषा से संबंधित बहुत सारे शब्द आजाते हैं जिनका अनुवाद करते समय अनुवादक को सावधानी से तत्संबंधी सूचना पाठकों को देनी होगी। केरल में प्रचलित विशिष्ट प्रकार के आभूषणों के नाम भी अनुवादक के लिए टेढी खीर है।

5.3.6 कर्मकांड

संस्कृति और कर्मकांडों का गहरा संबंध है। व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक तरह-तरह के कर्मकांडों का आचरण करना पड़ता है। इसलिए पूजा, अर्चना, धार्मिक अनुष्ठान आदि से संबद्ध काफी बड़ी शब्दावली कर्मकांडों की ही देन है। जाति और धर्म के आधार पर इन अनुष्ठानों पर काफी अंतर देख सकते हैं। केरल की विशिष्ट धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने ऐसे अनेक आचार-अनुष्ठानों को जन्म दिया जिनके अंतर्गत हज़ारों ऐसे शब्द हैं जिनसे हिन्दी भाषी अनभिज्ञ हैं। मानव धर्म-भीरू होता है इसलिए इन कर्मकांडों के अलावा यहाँ प्रचलित अंधविश्वासों एवं अनाचारों से जुडे हुए ऐसे अनेक शब्द भी अनुवादक के सामने समस्या बनकर खडे हैं। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान, उसके करने का उद्देश्य, करने की विधि, उसके लिए आवश्यक वस्तुएँ आदि का पूरा ज्ञान अनुवादक को होना चाहिए।

5.3.7 त्योहार-पर्व

त्योहार या पर्व प्रत्येक प्रांत की संस्कृति की खिड़कियाँ होते हैं। उनके माध्यम से किसी भी संस्कृति के संबंध में बहुत सारी बातें जानी-पहचानी जा सकती है। त्योहारों के सामाजिक, सांस्कृतिक,धार्मिक एवं वैयक्तिक महत्त्व निर्विवाद है। केरल में ही नहीं भारत के सभी प्रांतों में ऐसे कई धार्मिक एवं सांस्कृतिक पर्वो का आयोजन होता है। यद्यपि इनके बाहरी अनुष्ठानों एवं सजावटों में कई अंतर तो पाये जाते हैं किंतु इनके भीतर प्रवाहित भावात्मक एवं विचारात्मक समानता की निर्मल धारा एक ही है।

केरल में प्रचलित त्योहार पर्वो में 'ओणम्','विषु' 'तिरुवातिरा' 'पूरम्'आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा मंदिरों का'उत्सवम्'तथा गिरिजाघरों का 'पेरुन्नाळ' केरल की विशिष्ट संस्कृति के नमूने पेश करते हैं। उपर्युक्त त्योहार-पर्वो से संबंधित काफी बडी शब्दावली मलयालम में उपलब्ध है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि त्योहार-पर्व संबंधी शब्दावली में प्रांतगत भिन्नता नज़र आती है। इतना ही नहीं प्रत्येक त्योहार के मनाने की विधि में भी प्रांतगत अन्तर दिखाई देता है। अतः अनुवादक को इन बातों की ओर भी ध्यान देना पड़ता है।

इनसे परे स्थानीय शब्दावली को रूपायित करनेवाले अन्य तत्त्वों की विवेचना इस अध्ययन के दौरान विस्तृत रूप से की गयी है। इसलिए ऐसे पक्षों को दुहराने की आवश्यकता नहीं।

5.4 कला संबंधी शब्दावली का अनुवाद

जैसे कि तीसरे अध्याय में बताया गया है, केरल में प्रचलित कलाओं को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, जैसे

(क) शास्त्रीय कलाएँ या मंदिर से जुडी हुई कलाएँ

(ख) अनुष्ठान प्रधान कलाएँ

(ग) लोकनृत्य

(घ) लोकनाट्य

यहाँ कलासंबंधी शब्दावली के अंतर्गत शास्त्रीय कलाओं या मंदिर से जुडी हुई कलाओं तथा अनुष्ठान प्रधान कलाओं से संबंधित शब्दावली का विवेचन किया जाएगा। लोकनृत्य और लोकनाट्य संबंधी शब्दावली का विश्लेषण अलग से किया जाएगा।

तीसरे अध्याय में केरल के मंदिरों से जुड़ी हुई कलाओं तथा अनुष्ठान प्रधान कलाओं से संबंधित शब्दावली के विवेचन के बाद निम्नलिखित तथ्य उभरकर सामने आते हैं:-

(क) शब्दावली किसी एक कलाविशेष तक सीमित न होकर विभिन्न कलाओं के साथ संबद्ध होती है।

(ख) भाषा वैज्ञानिक स्तर पर शब्दावली का विश्लेषण असंगत है।

(ग) सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं प्रादेशिक विशेषताओं का आंकन ज़रूरी है।

(घ) शब्दावली के रूपायन में जातिगत एवं धर्मपरक परंपराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

(ङ) शब्दावलीके अंतर्गत कलाओं से जुडे हुए साहित्य या गीतों को भी स्थान देकर उनकी विवेचना करना आवश्यक है।

(च) कलाओं की वेशभूषा एवं साज-सज्जा तथा प्रस्तुति के विभिन्न पटाओं के संबंध में भी ध्यान देना होगा।

उपर्युक्त तथ्यों पर ध्यान देते हुए शब्दावली का वर्गीकरण यों कर सकते हैं-

(1) कलाओं की प्रस्तुति संबंधी शब्दावली

(2) धर्मगत/जातिगत शब्दावली

(3) साहित्य और गीत संबंधी शब्दावली

(4) वेश-भूषा, साज-सज्जा एवं रंग-सज्जा संबंधी शब्दावली

(5) वाद्यों से संबंधित शब्दावली

आगे उपर्युक्त वर्गों से संबंधित शब्दावली से जुडी हुई अनुवाद परक समस्याओं का संक्षिप्त विश्लेषण किया जाएगा।

5.4.1 कलाओं की प्रस्तुति संबंधी शब्दावली

इस वर्ग के अंतर्गत ऐसी शब्दावली आती है जिसका संबंध कला की प्रस्तुति से है। यह ऐसी शब्दावली है जिससे अवगत हुए बिना कलाओं का आस्वादन बहुत कठिन हो जाता है। तीसरे अध्याय में किए गए कला संबंधी शब्दावली के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि केरल की कलाओं से जुडे हुए ऐसे बहुत कम समान शब्द ही हिन्दी में प्रयुक्त एवं व्यवहृत होते हैं जैसे - 'रंगवंदनम'(रंग पूजा) 'विदूषकन्' (विदूषक) 'सूत्रधारन्' (सूत्रधार) 'कैमुद्रा' (हस्तमुद्रा) 'आशान'(गुरु)

'रंगालंकारम्' (रंग-मंच की सजावट) 'मुखमेषुत्तुं' (मुखलेपन) अन्य शब्दों का गठन केरल की विशिष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि में किए जाने के कारण इनका समानार्थी शब्द हिन्दी में ढूँढ पाना बहुत कठिन है। सामान्य मलयालम शब्दों का समानार्थी शब्द कोश ग्रंथों में उपलभ्ध है लेकिन केरल की विशिष्ट कलाओं से संबंधित शब्द कोश ग्रंथों में उपलब्ध भी नहीं है। उदाहरणार्थ देखिए 'चारी' 'पुरप्पाटुं' 'निर्वहणम्','विवादम्', 'विनोदम्' 'अशनम' 'राजसेवा' 'अक्कित्तम्' 'क्रिया-चविट्टुं' 'अरङ्ङु तळि' 'अंकम् मूटल' आदि 'कूटियाट्टम्' प्रस्तुत करने के विविध चरणों से संबंधित शब्द हैं। इनके स्थान पर कौन से शब्द रखें, यही अनुवादक की समस्या है।

इसी प्रकार 'कथकळि' 'कूत्तुं' 'रामनाट्टम्', 'कृष्णनाट्टम्', 'तुळ्ळल' जैसी मंदिर से जुड़ी हुई कलाओं से संबंधित शब्दावली में बहुत सारे ऐसे शब्द हैं जिनका अनुवाद असंभव सा लगता है। ऐसे शब्दों के लिए हिन्दी में सूचना या संकेत देकर काम आसान कर सकते हैं लेकिन सिर्फ सूचना या संकेत देने से अनुवादक का काम पूरा नहीं हो जाता।

अनुष्ठान प्रधान कलाओं से जुड़ी हुई शब्दावली का अनुवाद भी गंभीर समस्या उपस्थित करता है। ऐसी कलाओं की प्रस्तुति किसी देवता की प्रीति पाने के लिए या किसी माँग की पूर्ति के लिए की जाती है। इन अनुष्ठानों में जातिगत एवं प्रांतगत विभिन्नताएँ भी देखी जा सकती हैं। उदाहरणतया एक ही अनुष्ठान की प्रस्तुति उत्तर, मध्य या दक्षिण केरल में भिन्न-भिन्न ढंग से की जाती है। इतना ही नहीं कई कलाएँ ऐसी हैं जो प्रांतविशेष की विरासत होती हैं जिनका मंचन दूसरे प्रांत में नहीं होता, यदि होता भी है तो अलग ढंग से। इसलिए अनुवादक को इन बातों की ओर भी ध्यान देना पड़ता हैं। उदाहरण के लिए देखिए -'तेय्यम्'उत्तर केरल की एक अनुष्ठान कला है। लगभग 400 से अधिक प्रकार 'तेय्यम्' खेले जाते हैं। इनकी वेश-भूषा, साज-सज्जा एवं प्रस्तुति भी अलग-अलग ढंग की होती है। 'तेय्यम्' प्रस्तुत करनेवाले लोगों की जाति का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'तेय्यम्' पुरुष पात्र है या स्त्री, देवी-देवता है या कोई वीर पुरुष या महिला, ये भी ध्यान देने की बातें हैं। इसकी प्रस्तुति के चरण भी पात्र के अनुसार बदलते रहते हैं। हर 'तेय्यम्' का अपना अलग इतिहास होता है इसलिए इसकी प्रस्तुति का उद्देश्य भी बदलता रहता है। इसलिए अनुवाद टेढ़ी खीर बन जाता है।

'तेय्यम्' के समान 'भगवतिप्पाट्टुं' 'मुटियेट्टुं' 'पटयणि' 'अय्यप्पन तीयाट्टुं' 'पांपुम् तुळ्ळल' 'पान तुळ्ळल' आदि अनुष्ठान प्रधान कलाओं के संबंध में भी उपर्युक्त समस्याएँ आ सकती हैं। इन्हें निपटाना बाएँ हाथ का खेल नहीं है।

5.4.2 धर्मगत और जातिगत शब्दावली का अनुवाद

हर प्रांत में रहनेवाले लोगों के धर्मगत या जातिगत आचार-विचार अलग-अलग होते हैं। केरल में कलाओं की प्रस्तुति के पीछे भी जातिगत विचारधारा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दूसरी बात यह है कि ज़्यादातर जातियाँ भिन्न-भिन्न प्रांतों में अलग-अलग नामों से पुकारी जाती है। पुराने ज़माने में पेशे के आधार पर लोग जातियों में बंट गए थे लेकिन आजकल पेशे के आधार पर जाति को पहचाना नहीं जा सकता। फिर भी कलाओं की प्रस्तुति में जातिगत विचारधाराओं का अनिवार्य रूप परखना पड़ता है। उदाहरणार्थ, 'वण्णान' 'मलयन' 'माविलन' 'चिंकत्तान' 'वेलन' 'मून्नूट्टान' 'अञ्ञूरान' कोप्पालन', 'पुलयन' 'परवन' 'पंपत्तर' आदि अवर्ण जाति के लोग ही 'तेय्यम्' प्रस्तुत करते हैं। यह भी देख सकते हैं कि प्रत्येक जाति के लोगों के लिए विशेष प्रकार के 'तेय्यम्' भी रखे गए है जिनकी प्रस्तुति अन्य जाति के लोगों के लिए त्याज्य मानी जाती है। इसके बारे में विस्तृत जानकारी तीसरे अध्याय में दी गयी है। इसके समान दक्षिण केरल में प्रचलित 'कलमेषुत्तु पाट्टु' का आयोजन 'वेलन' 'मारार' 'कुरुप्पुं' 'वात्ति' 'कोल्लन' और 'मलयरयन' जाति के लोगों के द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार 'पुळ्ळुवनप्पाट्टुं' प्रस्तुत करने के लिए 'पुळ्ळुव' जाति के लोगों को ही बुलाते हैं।

आज के इस प्रगतिवादि ज़माने में जातिपरक भेद-भाव को कोई स्थान नहीं है। लेकिन धार्मिक अनुष्ठान के अवसर पर जातिगत मर्यादाओं को जो स्थान दिया जाता है उसको अनदेखा भी नहीं कर सकते। इसलिए अनुवादक को प्रत्येक अनुष्ठान एवं कलारूपों के तहत निहित धार्मिक मनोभावों को पर्याप्त आदर देकर ही स्वीकारना पड़ता है।

5.4.3 साहित्य और गीत संबंधी शब्दावली का अनुवाद

शास्त्रीय एवं मंदिर से जुडी हुई कलाओं के साथ अनुष्ठान प्रधान कलाओं की प्रस्तुति में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह संगीत कभी वाद्यों के द्वारा सृजित होता है, कभी राग-रागिणियों में बंधे हुए गीतों के द्वारा। शास्त्रीय कलाओं के लिए पंडित लोगों के द्वारा रचे गए शुद्ध एवं सात्विक साहित्य का सहारा मिलता है तो अन्य कलाओं के लिए आम लोगों के कंठों से निकली स्वाभाविक अभिव्यक्ति का संबल प्राप्त हो जाता है। जैसे भी हो कलाओं का प्रभावशाली मंचन के लिए इन गीतों का होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए इनका अनुवाद भी ज़रूरी बन जाता है।

कलाओं के साहित्य व गीतों से संबंधित भाषापरक एवं संस्कृतिपरक भिन्नता पर नज़र रखते समय यह बात विदित हो जाती है कि उपर्युक्त शब्दावली का अनुवाद भाषावैज्ञानिक तत्त्वों के आधार

पर पूर्ण रूप से नहीं कर सकते, किन्तु सहारा अवश्य ले सकते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि ऐसी कलाओं का संबंध आम जनता से हैं, भाषावैज्ञानिकों या भाषाविदों से नहीं है। इसलिए ऐसी शब्दावली का अनुवाद भाषावैज्ञानिक एवं व्याकरणिक तत्त्वों का सहारा लेकर व्यावहारिक स्तर पर किया जाना चाहिए। कला संबंधी साहित्य एवं लोक गीतों के अनुवाद से संबंधित समस्याओं में समानता - कथ्य एवं शैली की दृष्टि से - होने के कारण इसके संबंध में लोकगीतों के अनुवाद नामक प्रकरण में विस्तृत चर्चा की जाएगी।

5.4.4. वेश-भूषा, साज-सज्जा एवं रंगसज्जा संबंधी शब्दावली का अनुवाद

कलाओं की प्रभावोत्पादकता बढ़ाने में वेश-भूषा एवं साज-सज्जा को महत्त्वपूर्ण भूमिका है। केरल की सभी कलाओं की वेश-भूषा एवं साज-सज्जा अत्यंत सुन्दर एवं निराली होती है। कई सालों के निरंतर अनुसंधान एवं अनुप्रयोग के बाद ही ऐसी सामग्रियाँ तैयार की गयी हैं। 'कथकळि' 'तेय्यम्', 'कूत्तुं' 'पटयणि' जैसी कलाओं के लिए प्रयुक्त होनेवाली वेश-भूषा एवं साज-सज्जा संबंधी चीज़ों के नामों की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है। ऐसे साधन केरल की विशिष्ट सामाजिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि में तैयार किए जाते हैं और इनके लिए आवश्यक सामग्रियाँ यहाँ सुलभ होती हैं। लेकिन उत्तर भारत में ऐसी चीज़ें ढूँढने से कोई फायदा नहीं है। उदाहरण के लिए विभिन्न कलाओं रंग सज्जा के लिए 'निल विळक्कुं' (भद्रदीप),'निऱ परा'(चावल से भरा पैमाना), 'कुरुत्तोला' (नारियल के कोमल पत्ते),'पूक्कुला' (नारियल या सुपारी का किसलय),'कुलवाऴ़ा' (केले का फलदार पौधा) आदि इस्तेमाल किए जाते हैं। ये सब उत्तर भारत में सुलभ ही नहीं बल्कि वहाँ के लोग इनसे बिलकुल अनभिज्ञ भी हैं।

साज-सज्जा एवं आभूषण के संबंध में भी यही समस्या है। कुछ आभूषणों की सूची नीचे दी जा रही है जो केरल की विशिष्ट कारीगरी के परिचायक है।

कटकम	हाथ में पहननेवाले विशेष आकारवाला आभूषण
वासुकीयम्	सिर में पहननेवाला आभूषण
चिलंबुं	पैर में पहननेवाला आभूषण जिसके अन्दर झंकार के लिए मोति भरे रहते हैं।
कोडा	शीतंकन तुळ्ळल के लिए सिर में बाँधनेवाला आभूषण
तोड़ा	कान की बुंदि
नागपटत्तालि	नागफन के आकार में बनायी गयी माला
मारवट्टम	वक्ष में पहननेवाला आभूषण

कालत्तळा पैर के आभूषण

पटियरञ्ञाणम चौड़ा कमरबंध

ऐसे शब्दों के लिए समानार्थक हिन्दी शब्द न मिले तो अनुवादक को संकेत के साथ लिप्यंतरण प्रणाली को अपनाना पड़ेगा।

केरल की ज़्यादातर कलाओं के लिए मुखलेपन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके लिए 'चुटिटकुत्तल' या 'चुट्टियेषुत्तुँ' शब्द मलयालम में प्रचलित हैं। प्रत्येक कला रूप के अनुसार मुखलेपन की शैलियाँ बदल जाती हैं। उदाहरण के लिए 'तेय्यम्' के भेद के अनुसार 'चुटिट्कुत्तल' कई प्रकार के हैं जैसे 'प्राक्केषुत्तुँ, 'अंचुपळिळयिट्टेषुत्तुँ' 'वट्टक्कण्णिट्टेषुत्तुँ' 'प्राक्चुरुल' 'पुळिळयिट्टेषुत्तुँ' 'तोप्पिपूविट्टेषुत्तुँ' 'अंचुपुळिळयुम्-आनक्कालुम्', 'पालोट्टे दैवम् मुखमेषुत्तुँ' 'शंखिट्टेषुत्तुँ' 'हनुमान कण्णिट्टेषुत्तुँ' आदि सैकड़ों भेद हैं। कथकळि या 'कूटियाट्टम्' की प्रस्तुति में इस प्रकार के भिन्न वेष देख सकते हैं, जैसे 'पच्चा' 'कत्ति' 'दाढ़ी' 'करि' आदि। सिर में रखनेवाले मुकुटों के लिए भी आकार और इस्तेमाल करनेवाले साधन के अनुसार भिन्न भिन्न नाम प्रचलित हैं जैसे 'पीलिमुटि' (मुटि-मुकुट),'पाळ मुटि' 'वट्ट मुटि' 'ओंकार मुटि' 'इलमुटि' 'पुरत्तट्टुँ' 'वलियमुटि' 'चट्टमुटि','पूक्कट्टि मुटि' 'कोतच्च मुटि' 'नीळ मुटि' 'कूँपुँ मुटि' 'ओल मुटि' आदि। ये भी अनुवाद के समय कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

पटयणि के लिए तैयार किए जानेवाले 'कोलम्' तथा 'भगवतिप्पाट्टुँ','तीयाट्टुँ' और 'पांपुम् तुळळल' के दौरान बनानेवाले 'कळम्' में भी भिन्नता ही भिन्नता है। इनके अलग-अलग नामों से लक्ष्य भाषा के लोगों को अवगत कराना भी आसान नहीं है। ऐसी भिन्नताओं को भली-भाँति समझे बिना यदि अनुवादक अनुवाद करने का प्रयास करें तो इन कलाओं के खिलाफ़ अन्याय ही होगा।

5.4.5. वाद्यों से संबंधित शब्दावली का अनुवाद

कलाओं की प्रस्तुति में वाद्यों की मुख्य भूमिका है। केरल तथा हिंदी प्रदेश में प्रयुक्त वाद्यों का परिचय दिलाते समय यह स्पष्ट हुआ कि कुछ इने-गिने वाद्यों को छोड़कर अन्य वाद्यों के संबंध में दोनों प्रदेशों के लोग अनभिज्ञ या अल्पज्ञान रखे हुए हैं। प्रत्येक कला के लिए जिस प्रकार वेश-भूषा, साज-सज्जा, संगीत का अलग-अलग चयन है उसी प्रकार प्रत्येक कला के लिए वाद्य भी निर्धारित है। जैसे कथकळि के लिए 'मद्दलम्', 'चेंडा' 'चेंङ्ङ्ला' 'इलत्तालम्' और 'श्रुतिपेटी' अनिवार्य है वैसे अन्य कलाओं के लिए जो वाद्य निर्धारित हैं उन्हें बदला भी नहीं जा सकता। इसलिए ऐसे वाद्यों के नामों का लिप्यंतरण आवश्यक सूचनाओं के साथ हिन्दी में प्रस्तुत करना चाहिए।

कला संबंधी शब्दावली का अनुवाद करते समय अनुवादक के सबसे बड़ी समस्या संदर्भ ग्रंथों का अभाव है। अभी तक कला एवं संस्कृति संबंधी किसी कोश ग्रंथ का गठन नहीं हुआ है। इसलिए अनुवादक को स्रोत भाषा से ही आवश्यक सामग्री एकत्रित करना पड़ता है। यह अनुवाद कार्य को और भी जटिल बनाता है। कलाओं से जुडी हुई सांस्कृतिक एवं धार्मिक विशेषताओं का हिन्दी में जैसे के वैसे पुनःगठन या पुनःसृजन भी आसान कार्य नहीं हैं।

5.5 लोकनृत्यों व लोकनाट्यों से संबंधित शब्दावली का अनुवाद

केरल में लोकनृत्यों की एक विशेष परंपरा रही है। पुराने ज़माने से लेकर केरल में लोकनृत्यों का काफी प्रचार था। इन नृत्यों के रूपायन में धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों का पूरा-पूरा प्रभाव दर्शनीय है। इतना ही नहीं केरल की भौगोलिक विशिष्टताओं को समेटने का प्रयास भी इन नृत्यों के द्वारा किया गया है। लोकनृत्यों का सीधा संबंध आम जनता के साथ होने के कारण इनकी प्रस्तुति में एक प्रकार की सादगी का संस्पर्श भी हमें मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि लोकनृत्यों का लक्ष्य मनोरंजन होता है लेकिन केरल के लोकनृत्यों का विश्लेषण करने के बाद एक तथ्य उभरकर सामने आता है कि यहाँ के लोकनृत्यों का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन से बढ़कर धार्मिक आचार-अनुष्ठानों को संपन्न करना है। इसके लिए आवश्यक पृष्ठभूमि इनसे जुडे हुए गीत, वेश-भूषा, रंग-सज्जा एवं वाद्यों के ज़रिए तैयार की जाती है।

लोकनृत्यों के समान लोकजीवन के सहज संस्कार ही लोकनाट्यों के सहज स्रोत है। आपसी हेल मेल, धार्मिक अनुष्ठान, मेले-ठेले, पर्व-त्योहार, फसल का प्रारंभ अथवा समाप्ति की सुखदता आदि लोकरंजन की ऐसी मूलभूत बिंदु हैं जिनसे लोकनाट्यों को अन्तःसलिला प्रस्फुटित होती है। गाना, बजाना, नाचना आदि सामूहिक जीवन की सरलतम प्रवृत्ति रही है, इसलिए जहाँ-कहीं भी कोई जाति, वर्ग अथवा समुदाय एकत्र होता है, वहाँ कई संस्कृतियों की विराट परंपराएँ अपनी चैतन्य को आत्मसात करती हुई अपनी आत्मा का विस्तार पाती हैं। आत्मा का यही विस्तार धीरे-धीरे सामूहिक अभिव्यक्ति का एक ऐसा आडंबरहीन रंगमंच प्रस्तुत कर पाता है, जहाँ जन-संस्कृति और जन-मंगल के समस्त क्रियाकलाप, मान्यताएँ, विश्वास, धर्म और श्रुतियाँ अपने जनपदीय आनन्दोल्लासों का खुलकर प्रदर्शन करती है वहाँ सहज रूप से लोकनाट्यों का सृजन होता है।

लोकनृत्यों व लोकनाट्यों से जुडी हुई शब्दावली के अनुवाद के संबंध में विचार करते समय इनसे जुडे हुए गीत एवं साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके अनुवाद संबंधी समस्याओं पर लोकगीत

के अनुवाद संबंधी समस्याएँ नामक प्रकरण में विस्तृत रूप से विश्लेषण किया जाएगा क्योंकि इन गीतों व साहित्य को भी लोकगीत के अंतर्गत स्थान दिया गया है। इसलिए लोकनृत्य व लोकनाट्यों की प्रस्तुति, वेश-भूषा, साज-सज्जा, रंग-सज्जा तथा पात्र परिचय से जुडी हुई शब्दावली के अनुवाद संबंधी समस्याओं के बारे में यहाँ चर्चा की जाएगी।

इस अध्याय में लोकनृत्यों के अंतर्गत 'कणियान कळि' 'कोल कळि' 'परिचमुट्टु कळि' 'मार्गम् कळि' 'ओप्पना' 'दप्पुमुट्टु कळि' 'तिरुवातिर कळि' आदि लोकनृत्यों को स्थान दिया गया है तथा लोकनाट्यों के अंतर्गत'चविट्टु नाटकम्', 'काक्करशी नाटकम्','तोलप्पावक्कूत्तु' 'कोतमूरियाट्टम्', 'पोराट्टु नाटकम्','यक्षगानम्', 'पुलिकळि' 'कुरत्तियाट्टम्' आदि की विवेचना की गयी है। इनसे संबंधित शब्दावली के अनुवाद की समस्याओं पर विचार करने के लिए शब्दावली के निम्न प्रकार का वर्गीकरण सुविधापूर्ण होगाः-

(1) प्रस्तुति के चरणों से संबंधित शब्दावली
(2) वेश-भूषा एवं साज-सज्जा संबंधी शब्दावली
(3) रंग सज्जा संबंधी शब्दावली
(4) पात्रों के परिचय संबंधी शब्दावली
(5) धार्मिक अनुष्ठानों से संबंधित शब्दावली

(क) प्रस्तुति के चरणों से संबंधित शब्दावली का अनुवाद

प्रत्येक लोकनृत्य व लोकनाट्य की प्रस्तुति के कई चरण या पडाव होते हैं। इन चरणों का परिचय लक्ष्य भाषा-भाषी को देना अनुवादक का प्रथम कर्तव्य होता है। उदाहरणार्थ 'कणियान' कूत्तु शुरू करने से पहले वाद्यों के द्वारा गाँववालों को इसकी सूचना देनेवाले अनुष्ठान को 'कुटियुणर्तल' कहते हैं। यह कथकळि के 'केळिकोट्टु' के समान एक अनुष्ठान है। 'कोलकळि' के कई पडाव होते है जैसे 'वंदनम्' या 'वट्टक्कोल' (गणेश या सुब्रह्मण्य स्तुति), 'चुटिटुक्कोल' 'तेरिरक्कोल' 'इरुन्नुकळि' 'कोटुत्तो-पोन्नो कळि,'तटुत्तुकळि' 'चविट्टि चुररल' 'ताळक्कळि' 'तटुत्तु-तेररिक्कोल' आदि 60 से अधिक पड़ाव 'कोल कळि' के लिए निर्धारित हैं। प्रत्येक चरण के लिए अलग-अलग तालक्रम और पदान्यास होते हैं। मुस्लिम लोगों के 'ओप्पना' में 'चायल' तथा 'मुरुकल' नामक दो पढ़ाव होते हैं। 'चायल' लास्य एवं अभिनय प्रधान पढ़ाव है और उस समय ताली नहीं बजाती है लेकिन 'मुरुकल' में ताली बजाना ज़रूरी है और पदान्यास की गति तेज़ हो जाती है। इतना ही नहीं स्त्री-पुरुषों के ओप्पना में भी काफी अन्तर पाया जाता है। 'दप्पुमुट्टु कळि' भी मुसलमानों का एक धार्मिक अनुष्ठान

प्रधान लोकनृत्य है। सुन्नत, विवाहादि मंगल अवसरों पर इसकी प्रस्तुति होती है। इसका प्रारंभ 'सलात्तुं' (प्रार्थना) से होता है। 'वंपुट्टांऱ्ऱेचोरा' 'चेतमलऱ् चोरा' 'मालेंऱ्ऱे चोरा' 'चेरिय एट्टिन्टे चोरा' 'मालवीञ्ञ चोरा' 'मालच्चोट्टुं चोरा' 'संतोषक्कळि' 'वरंटुळ्ळ कळि,'सेय्तु मुहम्मद कळि' 'सलात्तुळ्ळ -सलामुळ्ळ कळि' 'मुत्तिनबिकळ कळि' आदि कई चरण इसके अंतर्गत आते हैं। अन्य नृत्यों के भी इस प्रकार के पढ़ाव होते हैं और प्रत्येक चरण का अलग-अलग उद्देश्य भी।

लोकनाट्यों में भी चरणों या पढ़ावों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'चविट्टु नाटकम्'में 'विरुत्तम्', 'कवि' 'काप्पुं' 'नूपुरम्','कलित्तुरा' 'इन्नशो चिंत' आदि कई चरण हैं। गीत गाते हुए इन पदान्यासों के अभ्यास को 'चोल्लियाट्टम्' कहते हैं तथा प्रारंभिक गीत 'नांदि और विदूषक' द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावना गीत तथा रसीले अभिनय 'पुऱप्पाटुं' नाम से जाने जाते हैं। लेकिन 'काक्कारशी नाटकम्' के प्रारंभिक कार्यक्रम 'अरङ्ङु वाषत्तल' नाम से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार अन्य लोकनाट्यों की प्रस्तुति के विभिन्न चरणों का परिचय अनुवादक को देना होगा।

लोकनृत्यों व लोकनाट्यों से संबंधित शब्दावली का अनुवाद करते समय अनुवादक को सबसे पहले इन विभिन्न चरणों व पढ़ाओं की सूचना देनी होगी ताकि हिन्दी भाषी इन चरणों की जानकारी प्राप्त करें और इन कला रूपों का आस्वादन यथाविधि करें।

5.5.2 वेश-भूषा एवं साज-सज्जा संबंधी शब्दावली का अनुवाद

नृत्त-नृत्यों की प्रस्तुति में वेश-भूषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक नृत्य की अपनी विशिष्ट वेश-भूषा होती है। ये वेश-भूषा नृत्य की निजी पहचान होती है। इन वेश-भूषाओं से नृत्यों की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि का परिचय भी मिलता है। केरल में प्रचलित लोकनृत्यों में धार्मिक विचारधारा का काफी प्रभाव है। हिन्दू-ईसाई एवं मुस्लिम लोगों के द्वारा आयोजित लोकनृत्यों की वेश-भूषा में पर्याप्त अन्तर देखा जा सकता है। 'कणियान कळि' में नृत्य का नेतृत्व करनेवाला व्यक्ति (आशान) 'वेळ्ळ मुंडुं' (सफेद धोती) और 'पट्टुं' (रेशमी कपडे) बाँधकर आता है और हाथ तथा गले में रुद्राक्ष की मालाएँ पहनता है। 'परिचमुट्टु कळि' के लिए लकड़ी से बने नकली 'वाळ' और'परिच'(तलवार और ढाल) ज़रूरी हैं। सफेद धोती, बनियान तथा सफा (तलेक्केट्टुं) इसके लिए निर्धारित वेशभूषा है। 'मार्गम् कळि में स्त्रियों के लिए 'मुंडुं' (धोती), 'चट्टा' (कमीज़), 'नेर्यत' (उत्तरीय), 'मेक्का मोतिरम्'(कान के ऊपरी भाग में पहननेवाला अंगूठी जैसा आभूषण), 'कालत्तळा' (पैर का आभूषण) आदि ज़रूरी है तो ओप्पना में परंपरागत मुस्लिम वेश-भूषा निर्धारित है। 'तिरुवातिर

कळि' में स्त्रियाँ 'मुंडु और नेर्यत' (धोती और उत्तरीय) बाल में चमेली की माला तथा विभिन्न प्रकार के केरलीय आभूषण पहनकर नृत्य करती हैं।

लोकनाट्यों में वेशभूषा का लोकनृत्य की तुलना में महत्त्व ज़्यादा है। क्योंकि वेशभूषा से ही पात्रों का सही परिचय दर्शक को मिलता है।'चविट्टु नाटकम्' तथा 'यक्षगानम्'में वेशभूषा एवं साज-सज्जा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये अत्यंत रंगीन एवं चमत्कारपूर्ण होती हैं। पात्रानुकूल रंगीन-रेशमी कपड़े, मुकुट, मूंछ या दाढ़ी तथा अन्य आभूषण इनके लिए ज़रूरी माने जाते हैं। लेकिन 'कोतमूरियाट्टम्','काक्करशी नाटकम्' तथा 'कुरत्तियाट्टम्' में वेशभूषा ग्रामीण सादगी से भरपूर है। 'कोतमूरियाट्टम्' की वेशभूषा एवं अन्य आभूषण बनाने में 'कुरुत्तोला' (नारियल के कोमल पत्ते) तथा 'पाळ' (सुपारी के किसलय का आवरण) इस्तेमाल किए जाते हैं। 'पुलिकळि' में बाघों की शरीर-सज्जा एक विशेष कला का रूप धारण किया गया है। 'पोराट्टु नाटकम्' में मंच पर आनेवाले पात्र जैसे दाशि, मण्णान, कुऱवन-कुऱत्ति, चेरुमन (पुलय पुरुष), चेरुमी (पुलय स्त्री), चेक्किलन (पु.)-चेक्किलच्चि (स्त्री), पूक्कारी (फूल बेचनेवाली) आदि ग्रामीण परिवेश के अनुकूल वेश धारण कर आते हैं।

इन लोक नृत्यों व नाट्यों की वेशभूषा के लिए केरल के परंपरागत कपड़े तथा अन्य आभूषण इस्तेमाल किए जाते हैं। इनके लिए रखे हुए नाम भी केरलीय संस्कृति के अनुकूल हैं। कपड़े की सिलाई तथा पहनने की शैली भी नृत्य या नाट्य के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। इसलिए अनुवादक को इन शब्दों का अनुवाद प्रत्येक नृत्य या नाट्य की निजी विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

5.5.3 रंग-सज्जा संबंधी शब्दावली का अनुवाद

नृत्य की सफल एवं प्रभावपूर्ण प्रस्तुति में रंग-सज्जा की भूमिका सर्वोपरि है। 'ओप्पना' और 'दुप्पमुट्टु कळि' को छोड़कर उपर्युक्त सभी नृत्यों में 'निलविळक्कु' (भद्रदीप) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका धार्मिक दृष्टि से भी महत्त्व है।'निलविळक्कु' के स्थान पर कोई दीप, दिया या मशाल जला नहीं सकते। यह भद्रदीप विशेष आकार एवं रूप सैंदर्य के साथ काँसे से बनाया जाता है। रंग सज्जा के लिए 'कुरुत्तोल' (नारियल के कोमल पत्ते), 'निऱपरा' (चावल से भरे केरल का विशिष्ट पैमाना)'पूक्कुला' (नारियल या सुपारी का किसलय)आदि सामान्य रूप से इस्तेमाल किए जाते हैं।

लोकनाट्यों में रंग-सज्जा काफी महत्त्वपूर्ण नहीं है। कुछ लोकनाट्यों के लिए रंग-सज्जा की

कोई ज़रूरत ही नहीं है। 'चविट्टु नाटकम्' में दृश्य के अनुसार मंच के पीछे पर्दे में महल, प्रकृति दृश्य, नदि या पहाड़ के चित्र अंकित होते हैं। कुछ लोकनाट्यों के मंच की ज़रूरत न होने के कारण रंग-सज्जा की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। वहाँ पर अभिनेता तथा दर्शक के बीच का अंतराल न के बराबर है।

केरल के लोकनृत्यों व लोकनाट्यों में रंग-सज्जा के लिए प्रयुक्त चीज़ें केरल की विशिष्ट भौगोलिक परिवेश की उपज हैं। अनुवादक ऐसी चीज़ों का उल्लेख तो दे सकता है लेकिन हिन्दी प्रदेशों में इनकी उपलब्धता संदेहपूर्ण है।

5.5.4 पात्रों के परिचय संबंधी शब्दावली का अनुवाद

लोकनृत्यों से बढ़कर लोकनाट्यों में पात्रों का परिचय देना बहुत ज़रूरी है। प्रत्येक लोकनाट्य के अंतर्गत आनेवाले पात्रों को सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिचय मिलने के बाद ही नाट्यों का रसास्वादन पूर्ण हो जाता है। 'चविट्टु नाटकम्' के गुरु को 'उण्णावि' तथा विदूषक को 'कट्टिक्कारन' कहते हैं। अन्य पात्र कथानक के अनुसार नाम लेकर आते हैं। 'कोतमूरियाट्टम्' में मुख्य भूमिका निभानेवाले को 'कोतमूरित्तेय्यम्' तथा विदूषक को 'मारिप्पनियन तेय्यम्' कहते हैं। 'कुऱत्तियाट्टम्' में कथानक की पुष्टि कुऱवन और कुऱत्ती के बीच के संवाद द्वारा हो जाती है। 'पोराट्टु नाटकम्' में पात्रों की बहुलता होती है इसलिए उन पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि का परिचय देना अनुवादक के लिए कठिन काम होता है।

5.5.5 धार्मिक अनुष्ठानों से संबंधित शब्दावली

पहले ही बताया जा चुका है कि केरल में प्रचलित ज़्यादातर लोकनृत्य किसी न किसी धार्मिक अनुष्ठान के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। तो अनुवादक को इन धार्मिक अनुष्ठानों का सामान्य परिचय देने के बाद ही अनुवाद करना होगा ताकि इनका धार्मिक महत्त्व हिन्दी भाषा-भाषी समझें तथा लोकनृत्यों का भली-भाँति रसास्वादन करें। इसके लिए केरल के लोगों के जातिगत एवं धर्मगत आचार-विचारों से अवगत होना पड़ता है। इन नृत्यों के पीछे कार्यरत सामाजिक पृष्ठभूमि का आकलन भी अनुवादक को करना होगा। उदाहरणार्थ 'मार्गम् कळि' तथा 'ओप्पना' दोनों विवाह नृत्य है। लेकिन इनकी प्रस्तुति ईसाई तथा मुस्लिम लोगों के द्वारा होती है। 'मार्गम् कळि' में ईसाई धर्म से संबंधित गीतों का गायन होता है जबकि ओप्पना में शृंगार प्रधान गीतों का। इसी प्रकार 'कोलकळि' तथा 'दप्पुमुट्टुं कळि' में भी धर्मगत अंतर पर्याप्त मात्रा में है।

लोकनाट्यों में धार्मिक अनुष्ठान बहुत कम है। इनमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का

ही अंकन है। सिर्फ 'चविट्टु नाटकम्' तथा 'यक्षगानम्' में धर्मगत विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। 'चविट्टु नाटकम्'के कथानक में ईसाई धर्म तथा उसके इतिहास से संबंधित कई बातें आ जाती हैं और 'यक्षगानम्'में शिवपुराण से संबंधित कथानक है। अन्य लोकनाट्यों में सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफाश व्यंग्य रूप से करने का प्रयास है। 'कोतमूरियाट्टम्' जैसे लोकनाट्यों में कृषक संस्कृति की ही मनोरंजनात्मक अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार के कई लोकनाट्य हिन्दी में प्रचलित होने के कारण अनुवादक का काम थोड़ा सरल हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद में अनुवादक का काम भाषांतरण तक सीमित न होकर सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक विशेषताओं का विश्लेषण तक विस्तृत हो जाता है। इसलिए एक भाषाविद् से बढ़कर समाजशास्त्री की भूमिका भी अनुवादक को निभाना पड़ता है।

5.6 मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद

मुहावरे तथा कहावतें भाषा की अभिव्यक्तिगत सुन्दरता बढ़ानेवाले ऐसे आभूषण है जिनके अभाव में जितनी भी प्रतिष्ठित एवं प्रचलित कहे जानेवाली भाषा भी बदसूरत दिखाई देने लगती है। ये साहित्य के ऐसे अछूता अंग, जिनमें समग्र मानव जाति के छोटे-छोटे कल्याणकारी तत्त्व निहित हैं, जिनकी अपनी कोई स्थिरता नहीं है, किन्तु ये लोकमानव के अंग-अंग में व्याप्त हैं एवं समाज के पग-पग में बिखरे हुए हैं। संख्या की दृष्टि से इनकी बहुलता, प्रभाव की दृष्टि से गहनता एवं प्रयोग की दृष्टि से विविधता तथा भाषापरक जटिलताओं के कारण इनका अनुवाद काफी कठिन साबित हुआ है। प्रत्येक प्रांत या प्रदेश में प्रचलित एवं प्रयुक्त मुहावरों एवं कहावतों की अपनी भाषिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं, जिनका भाषांतरण एक गंभीर समस्या के रूप में अनुवादक के सामने उपस्थित है।

अनुवाद में जिन विभिन्न प्रकार की समस्याओं से अनुवादक को जूझना पड़ता है, उनमें एक मुहावरों एवं कहावतों के अनुवाद की है। सामान्य शब्दावली के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति की तुलना में मुहावरों के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति जितनी अधिक प्रभावशाली तथा व्यंजक होती है, उसका अनुवाद भी उतना ही कठिन होता है। भाषा के इतिहास में मुहावरों का प्रयोग अति प्राचीन है। एक साधारण मनुष्य से लेकर ज्ञानी मनुष्य तक इनका प्रयोग करता है। इस प्रकार अब वे मानव-जीवन के अभिन्न अंग-से बन गए हैं।

मुहावरों के समान लोकोक्तियों की जड़ें भाषा विशेष के जीवन और संस्कृति में बहुत गहरी होती

हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कुछ विशेष शब्दों को छोड़ दें तो भाषा के सामान्य शब्दों की जड़े कहावतों की तुलना में कम गहरी होती हैं। यही कारण है कि अपनी मातृभाषा को छोड़कर किसी अन्य भाषा के सामान्य शब्दों पर अधिकार पाना जितना सरल है, उसकी कहावतों पर अधिकार पाना प्रायः उतना ही कठिन है। किसी भाषा के मातृभाषियों के जीवन को पूरी तरह जिए बिना, उनकी परंपराओं से परिचित हुए बिना उनकी अनेक कहावतों को ठीक से समझा नहीं जा सकता। दूसरी बड़ी कठिनाई यह है कि एक भाषा से दूसरी भाषा के शब्दकोश तो बहुत मिल जाते हैं किन्तु एक भाषा से दूसरी भाषा के कहावत कोश बहुत मुश्किल से प्राप्त होते है इसलिए अनुवादक को अपनी ही स्तर पर कहावतों का अनुवाद करना पड़ता है।

उपर्युक्त बातों पर ध्यान रखकर मलयालम के मुहावरों तथा कहावतों का अनुवाद करते समय इनका निम्नलिखित वर्गीकरण काफी सुविधापूर्ण होगा।

1. मलयालम के सामान्य मुहावरे एवं कहावतें
2. प्रकृति, भूगोल तथा पशु-पक्षी संबंधी मुहावरे एवं कहावतें
3. जाति या धर्म संबंधी मुहावरे एवं कहावतें
4. कला संबंधी मुहावरे एवं कहावतें
5. दिनचर्या, खान-पान तथा वेशभूषा संबंधी मुहावरे एवं कहावतें
6. त्योहार-पर्व संबंधी मुहावरे एवं कहावतें

5.6.1 मलयालम के सामान्य मुहावरों एवं लोकोक्तियों का अनुवाद

इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे मुहावरों एवं लोकोक्तियों को स्थान दिया गया है कि जिनका प्रयोग मलयालम तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में समान रूप से किया जाता है। ये दो प्रकार के हो सकते है - शब्द तथा अर्थ की दृष्टि से समान तथा सिर्फ अर्थ की दृष्टि से समान। इस समानता के कई कारण हो सकते हैं। इनमें प्रमुख हैं, एक भाषा के ऊपर अन्य भाषाओं का प्रभाव। उदाहरणार्थ हिन्दी तथा मलयालम भाषाएँ संस्कृत तथा अंग्रेज़ी भाषाओं से काफी प्रभावित है। इसलिए संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं के प्रचलित मुहावरे शब्द तथा अर्थ की दृष्टि से या सिर्फ अर्थ की दृष्टि से दोनों भाषाओं में मिल जाते हैं। अतः ऐसे मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद काफी सरल होता है। जैसे -

मुहावरे

मलयालम	**हिन्दी**
करिंचंता	काला बाज़ार

पट्टाप्पकल	दिन दहाड़े
चेकुत्तानुम् कटलिनुम इटयिल	शैतान और खाई के बीच
तनकालिल निल्क्कुक	अपने पैरों पर खड़ा होना
ईच्चयाट्टुक	मक्खी मारना

कहावतों में भी शब्द और अर्थ की दृष्टि से समान कहावतें मिल जाती है लेकिन इनकी संख्या कम है। उदाहरण

मुळ्ळु कोण्टाल मुळ्ळाले	काँटे को काँटे से
कार्यम् काण्णान कषुतक्कालुम् पिटिक्कणम्	काम पड़े बाँका तो गधे को कहे काका
निरकुटम् तुळुंपुकयिल्ला	अधजल गगरी छलकत जाए
आनवायिल अंपषड्ङा	ऊँट के मुँह में जीरा

5.6.2 प्रकृति, भूगोल तथा पशु-पक्षी से संबंधित मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद

हर प्रांत की अपनी प्राकृतिक एवं भौगोलिक विशेषताएँ होती हैं। प्रांत विशेष में पाए जानेवाले पशु-पक्षी भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। इसलिए मुहावरों एवं कहावतों के गठन में इन प्राकृतिक विशेषताओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक मात्र है। प्रांत विशेष से जुडे हुए ऐसे मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद करना मुश्किल होता है। किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि मूलभाषा के ऐसे मुहावरों या कहावतों के समान अर्थवाले किन्तु भिन्न शब्दवाले मुहावरे या कहावत लक्ष्य भाषा में मिलने की संभावना तो बनी रहती है। केरल में प्रचलित ऐसे कुछ मुहावरे एवं कहावतें उदाहरण के लिए दिए जा रहे हैं
मुहावरे

मलयालम	**हिन्दी में भावार्थ**
अत्ति पूत्त पोले	बहुत दुर्लभ
अंबलक्काळ	अपनी मनमानी करना
अरणबुद्धि	मूर्ख
आन कळिप्पिक्कुक	बड़ों को अपने इशारे पर नचाना
ओल पिटिक्कुक	पढ़ाई पूरा करना
आकाशक्कोट्टा	हवाई महल
अज गजान्तरम्	बहुत अंतर

कहावतें:-

अटक्क मटियिल वेक्काम् अटक्का मरम् पर्रुमो	बचपन में नियंत्रण संभव है बडा होने पर नहीं
अटि तेरिर्याल आनयुम् वीषुम्	महान का भी पतन होता है
वीषान् निन्न तेंङ्ङल चाकान् निन्न आळ्ंु केरि	विपत्तियाँ अवश्यंभावी हैं
तेङ्ङा चोरुन्नतर्रियिल्ल एळ्ळु चोरुन्नतर्रियुम्	बड़ी नुक्सान को अनदेखा करके छोटी बातों को पकड़ना
अषकुळ्ळ चक्कयिल चुळयिल्ल	नाम बड़ा दर्शन छोटा

5.6.3 जाति या धर्म संबंधी मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद

मुहावरों एवं कहावतों में जाति एवं धर्म का काफी प्रभाव है। जातिगत एवं धर्मगत अनुष्ठान, व्यवसाय तथा प्रत्येक जाति के लोगों के संबंध में आम जनता की धारणा को आधार बनाकर बहुत सारे मुहावरों एवं कहावतों का गठन मलयालम में हुआ है। ऐसे कहावतों एवं मुहावरों को सही पहचान केरलवासी ही कर पाते हैं क्योंकि ऐसी जातिगत और धर्मगत विशिष्टताओं से वे ही परिचित होते हैं। इस प्रकार के मुहावरों तथा कहावतों का अनुवाद करने से पहले अनुवादक को उनमें निहित रूढ अर्थ को पहचानना होगा। कुछ उदाहरण निम्नलिखित है-

मुहावरे -

अच्चनाकानुम् पेण्णुकेट्टानुम्	दो विपरीत कार्य के लिए तैयार
अच्चिक्कुरुप्पुं	पत्नी का गुलाम
अंबलम् विषुङ्ङि	बड़ा चोर
अंत्यकूदाशा	अंतिम कार्य
कुरिशाकुक	मुसीबत बन जाना
अंपिट्टन पल्लक्केरिय पोले	अयोग्य व्यक्ति का बड़ा बन जाना

कहावतें:-

आशारियुटे कुर्रवुम् तटियुटे वळवुम्	दोनों ओर कमियाँ
कणियानुम् वरुम् कालक्केटुं	ज्योतिषियों का भी बुरा समय आ जाता है
काळि विट्टालुम पूजारी विटिल्ल	मालिक ने छोड़ दिया लेकिन नौकर छोड़ता नहीं

गणपतिक्कु वच्चतुं काक्क कोण्टुपोयि	शुरूवत में ही विघ्न
यागम् चेय्युंपोळ् कै पोळ्ळुम्	अच्छे कार्य में थोडी नुकसान

5.6.4 कला संबंधी मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद

मुहावरों एवं कहावतों के रूपायन में कलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रत्येक प्रदेश में प्रचलित कलाओं से संबंधित मुहावरे एवं कहावतें उस प्रदेश की भाषा की निजी संपत्ति होती हैं। ऐसी कलाओं से परिचित व्यक्ति ही इन कहावतों एवं मुहावरों का अर्थ ठीक से समझ पाते हैं। यदि अनुवादक ऐसी कलाओं से अपरिचित है तो भाषांतरण के समय काफी कठिनाई होगी। केरल में प्रचलित इसप्रकार के कुछ मुहावरे और कहावतें उदाहरण के लिए उद्धृत हैं -

मुहावरेः-

अष्टकलाशम् चविट्टुक	सारे उपायों का एकसाथ प्रयोग
इट्टिक्कंडप्पन	बड़ा होने का बहाना करनेवाला
कत्तिवेषम्	रौद्र रूप
कलाशम् चविट्टुक	अंतिम कार्यक्रम
कूत्तरङ्ङुं	मनमानी करने का स्थान
केळिकोट्टुक	प्रारंभ करना
कूटियाट्टम	सब मिलकर शोरगुल करना

कहावतेंः-

कोलम् केट्टियाल तुळ्ळणम्	किसी कार्य के लिए तैयार हो गए तो करना ही होगा
अटि कोळ्ळान् चेंडयुम् काशु वाङ्ङान् मारारुम्	खेल खिलाड़ीका पैसा मदारी का
कोट्टुन्न ताळत्तिनु तुळ्ळुक	नाच नचाना
कथयरियाते आट्टम् काणुक	बिना समझे देखते रहना

5.6.5 दिनचर्या, खान-पान तथा वेश भूषा संबंधी मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद

प्रांत विशेष के अनुसार दिनचर्या, खान-पान और वेश-भूषा बदलती रहती है। इनसे जुडे हुए बहुत सारे शब्द मुहावरों एवं कहावतों के आधार बन गए हैं। मलयालम में प्रचलित ऐसे मुहावरों एवं कहावतों के समान मुहावरे या लोकोक्तियाँ हिन्दी में बहुत कम मिलते हैं। लेकिन अर्थ की दृष्टि से समान

मुहावरे या कहावतें कभी-कभी प्राप्त होते हैं। वस्तुतः इसप्रकार के मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद एक समस्या ही बना रहता है। नीचे ऐसे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं-

मुहावरेः-

अवियल परुवम्	सब मिलकर खिचड़ी सा
कञ्ञि कुटिक्कुक	सूखी रोटी खाना
कच्च केट्टुक	तैयार होना
चक्कच्चविणि पोले	बेकार
कळ्ळनु कञ्ञि वच्चवन	बडा चोर
करिवेप्पिल पोले	बेकार

कहावतेंः-

आरि्य कञ्ञि पंषकञ्ञि	पुरानी बातों का कम प्रभाव होता है
तेङ्ङा पत्तरच्चालुम् ताळल्ले करि्	बुरी चीज़ों अच्छे साधन मिलाने से कोई फायदा नहीं
उटुत्तु नटन्नाल वंपुं उटुक्काते नटन्नाल भ्रांत	सभी कार्यों में बुराई ढूँढना
अच्चिक्कु कोंचु पक्षम् नायरक्कुँ इंचि पक्षम्	बिलकुल भिन्न स्वभाववाले
अरियेत्र? पयरञ्ञाषि	बिलकुल विपरीत उत्तर देना
उप्पोळम् वरुमो उप्पिलिट्टतुं	असली चीज़ों का महत्व ही अलग

5.6.6 त्योहार-पर्व संबंधी मुहावरों एवं कहावतों का अनुवाद

त्योहार एवं पर्वों से संबंधित बहुत सारे मुहावरे और कहावतें मलयालम में प्रचलित है। इन मुहावरों एवं कहावतों के माध्यम से प्रत्येक त्योहार से संबंधित बहुत सारी बातों की जानकारी हमें मिलती है। हर पर्व एवं त्योहार का अपना इतिहास तथा मनाने का अलग-अलग तरीके होते हैं। केरल का खास त्योहार है 'ओणम्'। इससे संबंधित बहुसंख्यक मुहावरे और कहावतें मलयालम में प्रचलित हैं। ओणम् के समान 'विषु' 'पूरम' 'एकादशी' 'मकर संक्राति' आदि कई पर्व एवं त्योहार संबंधी मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ मलयालम में हैं। इनके समकक्ष रखने योग्य मुहावरे और लोकोक्तियाँ हिन्दी में न के बराबर है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित है-

मुहावरेः-

जाऱुवेल पोले	बहुत धीमी
उत्राटप्पाच्चिल	बहुत अस्त-व्यस्त
एकादशी नोक्कुक	भूखा रहना
ओंपतामुत्सवम्	भाग-दौड
ओणत्तिनुम् संक्रातिक्कुम्	कभी-कभी
अत्तम चतुर्थी	अप्रिय
ओणम केरामूल	बहुत अपरिष्कृत प्रदेश
काणान पोकुन्न पूरम्	आनेवाले कार्य का अभी वर्णन
ओणत्तिनिटक्कु पूट्टु कच्चवटम्	किसी मुख्य कार्य के बीच अप्रधान कार्य का आ जाना

कहावतेंः-

अत्तम करुत्ताल ओणम वेळुक्कुम्	अत्तम के दिन वर्षा है तो ओणम में धूप होगी
काणम् विऱ्रुम् ओणम् उण्णणम्	ज़मीन-जायदाद बेचकर भी ओणम मनाना है
ओणम् वरानोरु मूलम्	किसी कार्य के हो जाने का एककारण
पञ्अत्तुं ओणम् वन्नाल उळ्ळतुकोण्टुं ओणम्	परिस्थिति के अनुसार जीना
उप्पुम्वाङ्ङाम् वावुम् कोळ्ळाम्	एक पंथ से दो काज

उपर्युक्त वर्गीकरण से परे केरल की संस्कृति से जुडे हुए कुछ मुहावरे और कहावतें प्रचलित हैं, जिन्हें केरल की संस्कृति की विशिष्ट देन कह सकते हैं। जैसे केरल के 'कळरि पयऱ्रुं' तथा यहाँ के स्थान विशेष से जुडे हुए कई मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ मलयालम में हैं। इनके समान मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ हिन्दी में प्राप्त नहीं होते। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

मुहावरेः-

अटवु पयऱ्रुका	उपाय करना
अटियुम्-तटयुम्	चालाकी से सामना करना
ओतिरम् मऱियुक	मर्म में प्रहार करना
चावेऱ् पट	मर-मिटने को तैयार

कुरुप्पिल्लाक्कळरि	नेतृत्व हीन
पतिनेट्टटवुम् पयर्रुक	सारे उपाय करना
कोल्लत्तु पोवुक	बात समझे बिना सुनी सुनाई बात करना
वटक्कन् पाट्टु पाटुक	खुशी मनाना
कायंकुळम् वाळ्	अविश्वसनीय
वयनाट्टु मोरुँ	अलभ्य वस्तु

कहावतें -

आशान्टे नेंचत्तुँ अल्लेकिंल कळरिक्कु पुरत्तुँ	विवेकहीन बर्ताव
आशान वीणाल् अतोरटवुँ	चालाक लोग अपनी गलतियों को भी नए उपाय के समान पेश करते हैं।
वंचि पिन्नेयुम् तिरुनक्करे	कोई बदलाव नहीं
अंकवुम् काण्णाम् ताळुयुम् ओटिक्काम्	एक पंथ दो काज
ओरु कळरिक्कु पत्ताशान्	कई नेतृत्व

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा मलयालम मुहावरे तथा कहावतों (लोकोक्तियों) के अनुवाद संबंधी समस्याओं का सामान्य परिचय देनें का प्रयास किया गया है। इससे यह पता चलता है कि मलयालम के ऐसे अनेक मुहावरे तथा कहावतें हैं, जिनका अर्थ बिंब हिन्दी भाषा-भाषी के मन उतारना बहुत कठिन होता है। ऐसी हालत में अनुवादक को भावानुवाद का सहारा लेना पडेगा। लेकिन ऐसे करने से इनकी व्यंजना या चुटीलापन नष्ट होने की संभावना है। तब अनुवादक का दायित्व यह बनता है कि परिस्थिति के अनुसार उचित मार्ग अपनाकर मुहावरों और कहावतों का हिन्दी अनुवाद करने का प्रयास करे।

5.7 पहेलियों का अनुवाद

पहेलियाँ मनोरंजन के प्रमुख साधनों में एक हैं। परंतु पहेलियाँ मात्र मनोरंजन का साधन ही नहीं हैं, वरन लोक मानव के ज्ञान के स्रोत भी हैं क्योंकि वे एक दूसरे से पहेलियाँ पूछकर मनोरंजन के साथ ही ज्ञान भी अर्जित करते हैं। पहेलियाँ स्वभाव से कहावतों की प्रकृति से विपरीत प्रणाली पर रची जाती

है, क्योंकि पहेलियों में एक वस्तु के लिए बहुत से शब्द प्रयोग में आते हैं। भाव से इसका संबंध नहीं होता, प्रकृत को गोप्य करने की चेष्टा रहती है, बुद्धि-कौशल पर निर्भर करती है जबकि कहावत में सूत्र-प्रणाली होती है, भाव की मार्मिकता घनीभूत रहती है, लघुप्रयत्न से विस्तृत अर्थ व्यक्त करने की चेष्टा रहती है। वास्तव में पहेलियाँ वे पद्यमय घुमावतार प्रश्न हैं, जिनमें उत्तर का अस्पष्ट चित्रण रहता है और उस अस्पष्ट चित्रण के माध्यम से स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करना होता है। पहेली में प्रयुक्त चक्करदार रास्ते भी लक्ष्य अर्थात् उत्तर के काफी निकट तक ले जाते हैं। इसके बाद का कार्य व्यक्ति के बुद्धि कौशल पर निर्भर करता है।

पहेलियों की विषय-सीमा नहीं है। इस विश्व की कोई भी चीज़ इसका विषय बनी जा सकती है। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक प्रांत में प्रचलित पहेलियों में वहाँ के विशेष भूगोल, सामाजिक जीवन तथा सांस्कृतिक विशेषताओं की स्पष्ट छाप होगी। इसका मतलब यह नहीं हैं कि प्रांतगत विशेषताएँ ही पहेलियों में झलकती हैं, बल्कि प्रांतगत पहेलियों के साथ-साथ अन्य विषयों से संबंधित पहेलियाँ भी प्रयुक्त होती है।

पहेलियों के वर्गीकरण तथा विश्लेषण के प्रकरण में मलयालम की विभिन्न प्रकार की पहेलियों का विश्लेषण तथा हिन्दी पहेलियों की तुलना की गयी थी। विषय की दृष्टि से समानता दिखानेवाली अनेक पहेलियाँ हिन्दी और मलयालम में हैं लेकिन पूछने की शैली, देनेवाले संकेत तथा भाषागत ध्वन्यात्मकता आदि दोनों भाषाओं में अलग-अलग है। मलयालम पहेलियों के हिन्दी अनुवाद करते समय उत्पन्न होनेवाली सामान्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

(1) भाषापरक ध्वन्यात्मकता का पुनःसृजन

(2) अर्थ बिंबों का पुनःस्थापन

(3) प्रकृति संबंधी पहेलियों के अनुवाद की जटिलता

(4) प्रांतगत सांस्कृतिक विशेषताओं का अनुवाद

5.7.1 भाषापरक ध्वन्यात्मकता का पुनःसृजन

पहेलियाँ मानव की कुतूहलता बढ़ाती हैं। इसलिए स्रोता को इसकी ओर आकर्षित करने के लिए विशेष शब्द-प्रयोग, लय, ताल तथा अनुप्रास युक्त पहेलियाँ पूछी जाती हैं। एक भाषा में ध्वन्यात्मकता उत्पन्न करनेवाले शब्दों का जब अनुवाद करते हैं तब लक्ष्यभाषा में वैसे शब्दों का प्राप्त होना सहज कार्य नहीं है। ऐसे शब्दों के स्थान पर अर्थ की दृष्टि से समान शब्द तो रखे जा सकते हैं लेकिन इससे पहेलियों

का मूल सौंदर्य नष्ट हो जाने की संभावना है। मूलभाषा में जिस प्रकार अनुरणनात्मक शब्दों या वाक्यांशों के सही चयन से जो सौंदर्य उत्पन्न होता है उसके नष्ट होते ही पहेलियों का अस्तित्व ही नष्ट हो जाएगा। उदाहरणार्थ कालीमिर्च के संबंध में मलयालम की एक पहेली है -

"अरिपिरि अरिपिरि अरिपिरि वळ्ळि
वळ्ळियिलोरायिरम् पल्लिमुट्टा।"

अर्थात्, एक ऐसी छोटी बेल है जिसमें हज़ारों छिपकली के अंडे। इसमें जो 'अरिपिरि' शब्द सुनते समय मलयालम भाषी के मन में जो प्रभाव उत्पन्न होता है वह हिन्दी अनुवाद में प्राप्त नहीं होता। इसके समान कुछ अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं-

"अंचोरुम् कुंचोरुम् कूटि गुह काणान पोयि,
अंचोरुँ इङ्ङट्टुम् पोन्नु कुंचोरुँ अङ्ङटुम् पोयि"

यहाँ हाथ से भात का कौर खाने की ओर संकेत है।

"आन केरामल आटुँ केरमल आयिरम् कांतारि पूत्तिरङ्ङि" तारे

अर्थात् ऐसा क पहाड़ है जहाँ न हाथी पहुँचता है न बकरी, वहाँ हज़ारों मिर्च के फूल।

"किक्किलुक्कम् किलुकिलुक्कम्
उत्तरत्तिल चत्तिरिक्कुम् " चाबियों का गुच्छा

अर्थात् , टनटनाहट करनेवाले छत पर मरे पड़े हैं।

"कोच्चिक्काले नाले कालुँ, अविट्टम् विट्टाल रंटेकालुँ
पटिञ्ञारेत्तियाल मून्ने कालुँ ।" बाल्य, यौवन तथा बुढ़ापा

अर्थात् "पाँव हैं चार शुरू में, बाद में बने दो,
उत्तर पहुँचे तो देखो तीन"

"तिरि तिरि तिरि तिरियम्म तिरि
तिरि तिरि तिरि तिरि मोळु तिरि।"- चक्की

अर्थात् "घुमा घुमा घुमा घुमा माँ घुमा
घुमा घुमा घुमा घुमा बेटी घुमा।"

इस प्रकार की बहुत सारी पहेलियाँ मलयालम में है, ध्वन्यात्मकता जिनकी आत्मा होती है।

5.7.2 अर्थबिंबों का पुनःस्थापन

पहेलियों से जो संकेत मिलते हैं उनके आधार पर श्रोता उसके सही उत्तर तक पहुँच पाता है। इसलिए इन संकेतों के अर्थबिंबों का बहुत अधिक महत्त्व है। जैसे पहेलियों में प्रयुक्त शब्दों या वाक्यांशों के अर्थ सही ढंग से श्रोता तक पहुँच जाना बहुत ज़रूरी है। एक भाषा में संकेत देने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग होता है और उनसे उद्‌भूत अर्थ लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त करना कभी-कभी कठिन या नामुमकिन हो जाता है। उदाहरण के लिए नारियल से संबंधित एक पहेली निम्नलिखित है

"तंटुंटतिन्मेल, तटियुंटतिन्मेल काट्टानये
केट्टान कयरुंटतिन्मेल, संध्यक्कु कोळुत्तान
विळक्कुंटतिन्मेल, सुन्दरिप्पेण्णिन्टे अषकुन्टतिन्मेल"

अर्थात्

"डंठल भी है उसमें, लकड़ी भी है उसमें, जंगली हाथी को बाँधने रस्सी भी उसमें, संध्या समय जलाने दिया भी है उसमें, सुन्दर स्त्री के समान सौंदर्य भी है उसमें।"

यहाँ नारियल से प्राप्त लकड़ी, रस्सी, नारियल तेल तथा उसकी खूबसूरती का वर्णन है। इसे सुनकर एक केरलवासी के मन में जिस अर्थ बिंब की स्थापना होती है वैसे हिन्दी भाषी के मन में संभव नहीं है। नारियल के संबंध में दूसरा एक उदाहरण देखिए

"तेक्कु तेक्कोरालुँ आलु निरच्चुम् पंतुँ
पंतु निऱच्चुम मुट्ट, मुट्ट निऱच्चुम् एण्ण ।"

अर्थात्

"दक्षिण दक्षिण में एक बरगद, बरगद भर में गेंद
गेंद भर में अंडे, अंडे भर में तेल।"

केरल का एक वाद्य है ..चेंडा, उससे संबंधित बहुत सारी पहेलियाँ मलयालम में हैं। जो व्यक्ति इससे परिचित नहीं है,उसके सामने पहेली सुनाने से क्या फायदा? जैसे,

"तोळिल तूङ्ङुम्, तल्लु कोळ्ळुम
निलत्तिऱङ्ङुम्, मिंडातिरिक्कुम्"

अर्थात् "कंधे पर लटकेगा, मार खाएगा
नीचे उतरेगा, चुप बैठेगा।"

दूसरा उदाहरण

"तिन्निल्ल, कुटिक्किल्ल, तल्लाते मिंटिल्ल"

अर्थात् न खाता, न पीता, मारे बिना न रोता।

इस प्रकार एक भाषा में व्यक्त अर्थ बिंबों को दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करना अनुवादक के लिए काफी कठिन होता है।

5.7.3 प्रकृति संबंधी पहेलियों के अनुवाद की जटिलता

प्रकृति, पहेलियों के मूलभूत आधारों में प्रमुख है। प्रकृति से संबंधित पहेलियाँ सभी भाषाओं में बहुतायत में मिलती हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे, नदी, आकाश, सागर, पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षी संबंधी पहेलियों की संख्या सीमातीत है। परंतु ध्यान देने की बात यह है कि प्रांत-प्रांत के अनुसार प्राकृतिक उपादानों में बदलाव आता है। वनस्पति तथा पशु-पक्षी संबंधी पहेलियाँ इनमें प्रमुख हैं। उत्तर भारत से बिलकुल भिन्न भौगोलिक वातावरण के होने के कारण मलयालम में प्रयुक्त प्रकृति संबंधी पहेलियों का अनुवाद कठिन लगता है। केरल में सुलभ किन्तु उत्तर भारत में अनुपलब्ध चीज़ों संबंधी पहेलियों का अनुवाद हमेशा समस्या उत्पन्न करता है।

उदाहरण के लिए केरल में नारियल, काजू, कटहल, सुपारी, केले, धुइयाँ, सूरन, हल्दी, अदरक, काली मिर्च जैसी वनस्पतियों से संबंधित बहुत सारी पहेलियाँ उपलब्ध है, जिनका हिन्दी अनुवाद थोडा कठिन लगता है।

नारियल -

"वेळ्ळमुंटु, वेळ्ळियुंटु, कूटुमुंटु, काटुमुंटु"

अर्थात् पानी है, चाँदी है, नीड़ है और कानन भी।

कटहल -

"मुळ्ळुंटु मुरिक्कल्ल, पालुंटु पशुवल्ल, नूलुंटु पट्टमल्ल"

अर्थात् कांटे है सहजन नहीं, दूध है गाय नहीं, धागा है पतंग नहीं।

काजू का फल -

"चिल्लिक्कोंपिल मञ्ञक्किळि"

अर्थात् टहनी में पीली चिडिया।

केला -

"तूशी पोले मुळ वन्नु
पाय पोले इल वन्नु
तूणु पोले तटि वन्नु"

अर्थात् सूई से अंकुर आया, चटाई सा पत्ता
निकला और खंभा सा डंडल आया।

5.7.4 प्रांतगत सांस्कृतिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति

प्रत्येक प्रांत की संस्कृति को रूपायित करने में वहाँ के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, वेशभूषा एवं कला-साहित्य की अहम भूमिका है। इनसे जुडी हुई शब्दावली पहेलियों के लिए अक्षय भंडार है। अनुवाद के संदर्भ में ऐसी पहेलियों से उत्पन्न कठिनाइयाँ सबसे ज़्यादा है। प्रांतगत संस्कृति से संबंधित शब्दावली उस प्रांत के वातावरण में सृजित एवं प्रयुक्त होती है इसलिए तत्समान शब्दावली को दूसरी भाषा में ढूँढ पाना मुश्किल है।

केरल का एक खाद्य है 'दोशा' (dosa) । इससे संबंधित एक पहेली यों है

"शी......शू......रंटोच्चयेटुत्तु, नोक्कि नूरोट्ट "

अर्थात् शी...शू... दो आवाज़ आई, देखा, सौ छेद।

नारियल के खुरचन संबंधी एक पहेली इसप्रकार है

"इलयिल्ला मरत्तिल निन्नुम् पू कोषियुन्नु"

अर्थात् बिना पत्तोंवाले पेड़ से फूल गिरते हैं।

भद्रदीप का केरल की संस्कृति में विशेष स्थान है। इससे संबंधित दो पहेलियाँ निम्नलिखित हैं -

"वालु कंटत्तुं, कषुत्तुं वरंपत्तुं, तल तीयिल"

अर्थात् - पूँछ खेत में, गर्दन मेंड पर, सिर आग में।

"वेळ्ळकाळक्कुँ नेरुकयिल कोंपुँ"

अर्थात् - सफेद बैल की मूर्धा में सींग।

केरल में प्रचलित एक वाद्य है 'इलत्ताळम' । इससे संबंधित एक पहेली इसप्रकार है -

"वट्टमोक्कुम्, वटिवोक्कुम्
तळ्ळयटिक्कुम, पिळ्ळयटिक्कुम्

तळ्ळेम् पिळ्ळेम् तम्मिलटिक्कुम्
इंची-कुंचीयेन्नुविळिक्कुम्''

अर्थात्

गोलाकार सही वृत्ताकार
माँ मारेगी, बेटा मारेगा
आपस में दोनों मारेंगे
इंची-कुंची की आवाज़ करेंगे।

केरल का विशेष खाद्य है 'पुट्टुं'। इसके बनाने की विधि निम्नलिखित पहेली का विषय है -

''अरिपुळिळनायरुम् तेङ्ङाप्पुळिळ नायरुम्
मुळप्पुळिळनायरुटे वीट्टिल विरुन्नु पोयि
कोलप्पुळिळनायर कुत्तिप्पुऱत्ताक्कि।''

केरल में शव को दफनाने के लिए शवपेटिका का इस्तेमाल होता है। इसके संबंध में एक पहेली उदाहरणार्थ प्रस्तुत है

''उंटाक्कुन्नवनुपयोगिक्कुन्निल्ल
उपयोगिक्कुन्नवनतऱियिल्ल।''

अर्थात्

बनानेवाला इस्तेमाल नहीं करता
इस्तेमाल करनेवाले को इसका पता नहीं।

इस प्रकार की बहुत सारी पहेलियाँ केरल में हैं, जिनका अनुवाद काफी कठिन है। उपर्युक्त वर्गीकरण के बाहर आनेवाली विभिन्न विषयों से संबंधित पहेलियों का अनुवाद तुलनात्मक दृष्टि से थोड़ा सरल लगता है।

5.8 मलयालम लोकगीतों का हिन्दी अनुवाद

लोकगीत लोक साहित्य का ऐसा अंग है, जिसने लोक-जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव का इससे अटूट संबंध है। लोकगीत हमारे अपने गीत है। इन पर सबका समान अधिकार है, चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो। लोकगीत सबकी पैतृक संपत्ति है, चाहे वह धनी हो या निर्धन। लोकगीतों में लोक संस्कृति वास्तविक रूप में प्रतिभिंबित होती है। भावुकता युक्त मानव कंठ से मुखरित इन लोकगीतों में कहीं खिले पुष्प सा उल्लास है, तो कहीं नयन-नीर की वेदना टप-टप छूती है। मानव सुख-दुख से आच्छादित अपने हृदय के बोझ को लोकगीतों के माध्यम से ही हल्का करता है।

जहाँ तक केरल के लोकगीतों का सवाल है, विविधता से भरपूर यहाँ के लोकगीतों में केरल की सांस्कृतिक विरासत का जीते-जागते चित्र साकार हो उठते हैं। चौथे अध्याय में विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का सामान्य परिचय देने के साथ हिन्दी प्रदेश के लोकगीतों से उनकी तुलना भी की गयी थी। आगे मलयालम लोकगीतों के हिन्दी अनुवाद के संबंध में थोड़ा विचार करना है। केरल के लोकगीतों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है

1. धर्मपरक गीत
2. जातिपरक गीत
3. श्रमगीत
4. ऋतुगीत
5. बालगीत
6. विविध गीत

उपर्युक्त वर्गीकरण से लोकगीतों की विविधता का परिचय स्वाभाविक रूप से हमें मिल जाता है। केरल की विशिष्ट धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपरा को ध्यान में रखकर धर्मपरक गीत तथा जाति गीतों के अंतर्गत यहाँ के ज़्यादातर लोकगीतों को शामिल किया जा सकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यहाँ के लोकगीत प्रमुख रूप से धार्मिक अनुष्ठानों पर निर्भर होते हैं। इन्हें छोड़कर श्रमगीत, बालगीत तथा विविध गीतों की श्रेणी में आनेवाले कृषि गीत, वटक्कन पाट्टुं (उत्तर के गीत), वंचिप्पाट्टुं (नौका गीत), उत्सव, त्योहार संबंधी गीत भी अपनी अनोखी विशेषताएँ लिए हुए हैं।

मलयालम के लोकगीतों के हिन्दी अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने निम्नलिखित समस्याएँ आ जाती हैं:-

(क) मलयालम के सभी शब्दों के लिए हिन्दी में प्रांत शब्द आंतरिक, बाह्य तथा प्रभाव की दृष्टि से समान नहीं होते।

(ख) सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक शब्दावली का अनुवाद सौफीसदी सफल नहीं होता।

(ग) अलंकारों का अनुवाद काफी कठिन है और कभी कभी असंभव सा हो जाता है।

(घ) मलयालम के छन्दों का अनुवाद हिन्दी में करना काफी जटिल काम होता है।

(ङ) तत्त्वतः एक भाषा के गीतों की रचना अर्थतः, अभिव्यक्तितः और प्रभावतः केवल उसी भाषा में हो सकती है किसी अन्य में नहीं।

(च) केरल के अनुष्ठानों से उत्तर भारत के लोग अनभिज्ञ हैं इसलिए इन गीतों का धार्मिक महत्त्व कम हो जाने की संभावना है।

(छ) मलयालम के लोकगीतों में भाषाई स्तर पर जो प्रांतीय भिन्नता होती है उसे भली भाँति हिन्दी में अभिव्यक्त करना आसान कार्य नही है।

(ज) लाक्षणिक एवं व्यंजनाप्रधान अभिव्यक्तियों का अनुवाद करते समय काव्य सौष्ठव नष्ट हो जाता है।

आगे उपर्युक्त समस्याओं पर विस्तृत चर्चा की जाएगी।
मलयालम के सभी शब्दों के लिए हिन्दी में प्राप्त शब्द आंतरिक, बाह्य तथा प्रभाव की दृष्टि से समान नहीं होते।

केरल के धर्मपरक गीतों में 'तोऱ्ऱम्'गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'तोऱ्ऱम्' गीतों में देवताओं का उद्भव, महिमा, रूप-विशेष, चरित्रगत विशेषताएँ तथा वीरता आदि का वर्णन होता है। आम जनता के मन में देवी-देवता के प्रति भक्ति, आराधना भाव, विश्वास, श्रद्धा आदि जगाने की क्षमता इन गीतों में है। कई गीत ऐसे होते हैं जिनके गाने का समय, शैली एवं प्रस्तुति निश्चित होते हैं और इनके लिए अलग नाम भी रखे हुए हैं जैसे 'परविळित्तोऱ्ऱम्'(देवता को निमंत्रण देकर बुलाना), 'स्तुति' तथा 'अंचटित्तोऱ्ऱम्' (विनय प्रधान गीतों की प्रस्तुति),'पोलिच्चुपाट्टुं' (देवताओं का गुणगान तथा महिमा वर्णन), 'उऱच्चुल तोऱ्ऱम्' (तेय्यम् कलाकार द्वारा तेज़ गति से नृत्य करते समय गानेवाला गीत), 'ताळवृत्तम्'(देवी-देवताओं से संबंधित स्तुतिपरक पद्यखंड), 'अणियऱत्तोऱ्ऱम्' (तेय्यम की साज-सज्जा के समय नेपथ्य में गानेवाला गीत), 'गणपतित्तोऱ्ऱम्' (गणेश स्तुति के गीत) आदि। ऐसे शब्दों के समानार्थ में हिन्दी में शब्द प्राप्त नहीं होते हैं। इसका कारण यह है कि ये शब्द केरल के धार्मिक अनुष्ठानों से संबंधित शब्द हैं जिनके हिन्दी में प्राप्त होना कठिन है।

इसी के समान 'ओणम्', 'तिरुवातिरा' जैसे त्योहारों से संबंधित गीतों में प्रयुक्त शब्दावली के समकक्ष रखने योग्य शब्द हिन्दी में न के बराबर है। केरल में 'मार्गम्कळिप्पाट्टुं' काफी प्रचलित है। इन गीतों का वर्ण्य विषय ईसाई धर्म तथा उससे संबंधित सेन्ट थॉमस जैसे महापुरुषों का इतिहास है। 'मार्गमकळिप्पाट्टुं' के अंतर्गत कई प्रकार के गीत आते है जैसे -

1. मंगलम् गीत	मंगलाचरण के गीत
2. मंगल्यम् वट्टक्कळि	सगाई के गीत
3. अन्तम् या चन्तम् चार्त्तु पाट्टुं	हजामत के गीत
4. मयिलांचिप्पाट्टुं	मेहन्दी का गीत
5. अयनिप्पाट्टुं	विवाह के दिन वर की बहन एक प्रकार का पकवान (अयनि) लेकर गिरिजाघर जाती है, उस अवसर पर गानेवाले गीत।

6. नल्लोरोऱशलेम पाट्टुँ	शादी के बाद दुल्हा और दुल्हन को मंडप में बिठाकर गानेवाला गीत
7 वाटिमनम् वट्टक्कळि पाट्टुँ	”
8. वाष्वु पाट्टुँ	आशीर्वाद का गीत
9. पन्तल पाट्टुँ	शमियान का गीत
10. एण्णप्पाट्टुँ	तेल का गीत
11. कुळिप्पाटटुँ	नहाने का गीत
12. विळक्कुँ तोटील पाट्टुँ	दीप छूने का गीत
13. अटच्चु तुऱप्पाट्टुँ	बंद कमरे को खोलने का गीत

उपर्युक्त सारे गीत ईसाई धर्म के क्नानाय समुदाय के शादी संबंधी अनुष्ठानों से जुडे हुए गीत हैं। केरल में ईसाई धर्म का काफी प्रचार है लेकिन उत्तर भारत के लोग ईसाई धर्म तथा उसके आचार-अनुष्ठानों से उतना परिचित नहीं हैं। इसलिए ऐसे गीतों का अनुवाद हिन्दी में किया भी जाए तो भी वहाँ के लोग इन गीतों को भली भाँति समझ पाएँगे, यह सन्देहास्पद है। सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक शब्दावली का अनुवाद सौफीसदी सफल नहीं होता।

हर भाषा के हर शब्द का अपना अर्थ बिंब होता है, जो सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि से संबद्ध होता है। दूसरी भाषा का उसी का समानार्थी शब्द उस पृष्ठभूमि से युक्त न होने के कारण वैसा अर्थबिंब नहीं उभार सकता। केरल की अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परंपरा होती है, जो उत्तर भारत से बिलकुल भिन्न है। उत्तर भारत में प्रचलित जातिपरक गीत पेशे पर आधारित एवं श्रमगीत की कोटि में आते हैं। लेकिन केरल में प्रचलित जातिगीत धार्मिक अनुष्ठानों पर आधारित तथा एक विशेष प्रकार की तीव्र धार्मिक भावना से ओतप्रोत होते हैं। समाज में निम्न माने जानेवाली जाति के लोगों के द्वारा ही इनकी प्रस्तुति होती है। मलयालम के ‘वेलन् पाट्टुँ’(वेलन् जाति के गीत), ‘पाणन् पाट्टुँ’ (पाणन् जाति के गीत), ‘कुरवऱ पाट्टुँ’ (कुरवऱ जाति के गीत), ‘पुलयऱ पाट्टुँ’ (पुलयऱ जाति के गीत) आदि उदाहरण के रूप में ले सकते हैं।

केरल में ‘वेलन्’ जाति के लोगों के द्वारा भूत-प्रेतादि की बंधन को दूर करने के लिए की जानेवाली क्रिया को ‘वेलन् प्रवृत्ति’ कहते हैं। ‘वेलन्’ गीतों का आयोजन यहाँ के लोगों के अंधविश्वास का परिचायक है। आज भी ऐसा माना जाता है कि वेलन् गीतों की प्रस्तुति से घरवालों का सारा संकट दूर हो जाता है। इसके समान कुरवऱ, पाणन् तथा पुलयऱ के गीतों को भी धार्मिक अनुष्ठान के रूप में

गाया जाता है। ऐसे गीतों के गाने की शैली भी अलग-अलग होती है। इसलिए अनुवादक को यह ध्यान रखना होगा कि प्रत्येक गीत की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि को अच्छी तरह समझे ताकि परंपरागत अनुष्ठानों के महत्त्व को क्षति न आए। अलंकारों का अनुवाद काफी कठिन होता है, कभी-कभी असंभव सा हो जाता है।

गीतों की भाषा प्रायः अलंकार प्रधान होती है। किंतु एक भाषा के अलंकारों को दूसरी भाषा में ठीक-ठीक उतारना कठिन और कभी कभी तो असंभव हो जाता है। केरल के लोकगीतों अर्थालंकारों से बढ़कर शब्दालंकारों की भरमार है। शब्दालंकार के आधार दो हैं - ध्वनि समानता तथा एक शब्द के एकाधिक अर्थ। जहाँ तक ध्वनि समानतावाले अनुप्रास के विविध भेदों का प्रश्न है, इनके अनुवाद के लिए हिन्दी में मलयालम के ऐसे प्रतिशब्दों की खोज आवश्यक है जिनमें ध्वनि साम्य हो। यह खोज काफी कठिन है - कभी-कभी असंभव भी। वस्तुतः केवल ऐसी भाषाओं के स्रोत और लक्ष्य भाषा होने पर ही यमक और श्लेष के अनुवाद संभव है, जिनके शब्द भंडार में समानता हो जैसे संस्कृत-हिन्दी, हिन्दी-पंजाबी, बंगला-उडिया या मलयालम-तमिल। किन्तु इनमें भी अलंकारों को अनुवाद में उतारना तभी संभव होता है, जब ये संज्ञा या विशेषण पर शब्दों का बनावट आधारित हो। सर्वनाम या क्रिया शब्द पर आधारित होने पर इन्हें उतार पाना संभव नहीं। भाषाओं का अलग-अलग अस्तित्व मूलतः इन्हीं के अन्तर पर आधृत होता है। भिन्न भाषा परिवार की होने के कारण मलयालम और हिन्दी में यह समस्या और बढ़ जाती है। भिन्न ताल-लय से युक्त मलयालम लोकगीतों का अनुवाद हिन्दी में करना आसान नहीं है। अनुप्रास तथा ध्वन्यात्मकता से युक्त ओणम का एक गीत देखिए, इसे मलयालम में 'पूप्पोलिप्पाट्टु' कहते हैं -

"तुंपप्पूवे पूत्तिरले
नाळेक्कोरुवट्टि पू तरणे
आक्किल, ईक्किल, इलकोटि पूक्किल
पिन्ने ञानेङ्ङने पू तरेन्टु
पूवे पोलि! पूवे पोलि! पूवे पोलि!

काक्कप्पूवे पूत्तिरले
नालेक्कोरुवट्टि पू तरणे
आक्किल, ईक्किल, इलम्कोटि पूक्किल

पिन्ने ञानेङ्ङने पू तरेन्टु
पूवे पोलि! पूवे पोलि! पूवे पोलि !

इसके कृषि गीतों का एक उदाहरण देखिए

"अरयरयो........ किङ्ङिणियरयो.........
नम्मकंडम्..........कारक्कंडम्..........
कारक्कंडम्...... नट्टोटुवे...........
अरयरयो किङ्ङिणियरयो.........
ओरायिरम्....... काळेम् वन्नु..........
ओरायिरम्........ आळुम् वन्नु........
ओरायिरम् वेऱऱ कोटुत्तु
अरयरयो किङ्ङिणियरयो........"

ऐसे ध्वन्यात्मक गीतों का अनुवाद बहुत कठिन होता है। केरल में प्रचलित बाल गीतों में भी इसी प्रकार के बहुत सारे गीत मिलते हैं जैसे -

"चक्किपरुन्ते कियो-कियो
नीयेन्टे मक्कळे कियो-कियो
नेरम् वेळुत्तोट्टे कियो-कियो
ञानुम् निन्टे मक्कळे कियो-कियो"

दूसरा एक उदाहरण देखिए

"अत्तिक्कत्ति पतिनारु
आरु परञ्ञु पतिनारु
ञान परञ्ञु पतिनारु
पतिनारल्ले एण्णिक्को।"

ऐसे गीतों का अनुवाद करते समय हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल शब्द चयन करके मलयालम गीतों की ध्वन्यात्मकता को कायम रखने का प्रयास अनुवादक की ओर किया जाना चाहिए।

मलयालम छन्दों का अनुवाद हिन्दी में करना काफी जटिल काम होता है।

मलयालम में 'छन्द-बद्ध' तथा 'छन्द मुक्त' दोनों प्रकार के लोकगीत पाए जाते हैं। छन्द बद्ध गीत की अपनी गति होती है, उसका अपना प्रभाव भी होता है। साथ ही उसका एक सीमा तक कविता के भाव से संबंध भी होता है। संस्कृत के कुछ छन्द समान रूप से हिन्दी और मलयालम में प्रचलित हैं। इन्हें छोड़कर दोनों भाषाओं के छन्दों पर भिन्नता ही नज़र आती है। ऐसी हालत में दो ही रास्ते अनुवादक के सामने हैं - या तो वह हिन्दी में प्राप्त उपयुक्त छन्द में अनुवाद करें। पर ऐसा करने से मूल छन्द का सारा प्रभाव समाप्त हो जाएगा या फिर वह मलयालम के छन्द में ही अनुवाद करें। किंतु इसमें भी बात नहीं बनेगी। एक तो उस छन्द को हिन्दी में उतार पानाँ हमेशा आसान नहीं रहेगा। दूसरा यदि उतार भी ले तो मलयालम का छन्द यहाँ के भाषा-भाषियों पर परंपरागत रूप में जो प्रभाव डालता आ रहा है हिन्दी भाषा-भाषी पर अनभ्यस्त होने के कारण वह प्रभाव नहीं डाल पाएगा।

उदाहरणार्थ केरल के नौका गीतों की रचना सामान्य तौर पर 'नतोन्नता छन्द' पर की जाती हैं। नौका गीतों की गायन शैली के लिए यह सबसे उत्तम छन्द माना जाता है। लेकिन इस छन्द से हिन्दी भाषा-भाषी अनभिज्ञ है। यदि किसी दूसरे छन्द में अनुवाद करे तो नौका गीतों का ताल-लय युक्त संगीतात्मकता का नष्ट हो जाने की संभावना है। नौका गीतों के कई उदाहरण चौथे अध्याय में दिए गए हैं। इसके समान समस्याएँ 'माप्पिलप्पाट्टुं' तथा 'वटक्कन पाट्टुं' के अनुवाद के संदर्भ में सामने आ जाती हैं।

तत्त्वतः एक भाषा के गीत अर्थतः, अभिव्यक्तितः और प्रभावतः केवल उसी भाषा में हो सकते हैं, किसी अन्य में नहीं।

प्रत्येक गीत भाषा विशेष का ही हो सकता है। गीत में जो कुछ भी वर्णित है वह केवल उसी भाषा में सहज रूप से अभिव्यक्त हो पाता है। भाषांतरण से वर्णित विषय तथा भाषिक संरचना की स्वाभाविकता के नष्ट हो जाने की संभावना है। लोकगीतों की ऐसी खासियत है कि वे प्रत्येक भाषा तथा प्रांतविशेष की संपत्ति होती हैं। इसलिए ऐसे गीतों में प्रांतीय संस्कृति, स्थानीय भूगोल तथा प्रादेशिक भाषाई विशेषताएँ ही झलकती है और वे अपने आप में पूर्ण होकर। जब अनुवाद करता है तब ऐसी सांस्कृतिक छवियों को जैसे के वैसे दूसरी भाषा में उतार पाना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए केरल में प्रचलित 'ओणम्' को गीतों को लें - केरल की संस्कृति में ओणम के लिए जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, उसका उल्लेख इन गीतों में मिलता है। ओणम से जुडे हुए गीत सुनते समय केरलीयों के मन में जो भाव उत्पन्न होता है वैसा भाव किसी हिन्दी भाषा-भाषी के मन में उत्पन्न होना असंभव सा है। इसका

कारण यह है कि सदियों से केरल की जनता के मन में रूढ़ हुए विश्वासों एवं आचार-अनुष्ठानों की अभिव्यक्ति इन गीतों के द्वारा होती है। महाबली के शासन काल में केरल में जो सुख-समृद्धि तथा शांति एवं समता का वातावरण था, उसका उल्लेख निम्नलिखित गीत में अभिव्यक्त है

"मावेलि नाटु वाणिटुम् कालम्
मानुषरेल्लारुमोन्नुपोले
आमोदत्तोटे वसिक्कुम् कालम्
आपत्तङ्ङार्क्कुमोट्टिल्लतानुम्
कळ्ळवुमिल्ल, चतियुमिल्ल
एळ्ळोळमिल्ल पोळिवचनम्
कळ्ळप्परयुम् चेरु नाषियुम्
कळत्तरङ्ङळ मऱ्ऱोन्नुमिल्ल ।"

इस गीत में वर्णित खुशहाली का अनुभव सिर्फ एक केरलवासी ही समझ पाएगा क्योंकि महाबलि के प्रति उनके मन में जितनी श्रद्धा है वह अन्य किसी के मन में हो ही नहीं सकती।

केरल में चावल की खेती विशेष रूप से की जाती है। इस खेती के दौरान गानेवाला एक लोकगीत निम्नलिखित है। इसमें खेत में काम करनेवाली निम्नजाति के औरतों के क्रियाकलापों का सुन्दर वर्णन है।

"मारी मषकळ् ननन्जे..चेरु
वयलुकळोक्के ननन्जे
पूट्टियोरुक्किप्परन्जे....चेरु
ञारुकळ केट्टियेरिन्जे
ओमल, चेन्तिल, माल...चेरु
कण्णम्म, काळी, करुंपि
चात्त, चटयन्माराया ....चेरु
मच्चिकळेल्लाम् वन्ते
वन्तु निरंतवर निन्टे....केट्टि
ञारेल्लाम् केट्टि पकुत्ते
ओप्पत्तिल नट्टु करेनावर

कुत्तियेट्टुत्तु कुनिञ्ञे"

इस गीत में केरल में चावल की खेती दौरान चावल के पादपों के रोपने का सुन्दर चित्र दर्शनीय है। पुलय जाति की स्त्रियों के नामोल्लेख तथा ध्वन्यात्मकता से जो सौंदर्य इस गीत में है उसका अनुवाद कैसे करे, यह एक समस्या ही है।

केरल के अनुष्ठानों से उत्तर भारत के लोग अनभिज्ञ होते हैं इसलिए अनुवाद करते समय धार्मिक महत्त्व कम हो जाने की संभावना है।

पहले ही बताया जा चुका है कि एकाध प्रकार के लोकगीतों को छोड़कर मलयालम के लोकगीत धार्मिक भावना से ओतप्रोत है। धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान गाए जाने के कारण इनमें देवी-देवता संबंधी भक्तिपरक गीतों का भरमार है। देवी-देवताओं का गुणगान, महिमा वर्णन तथा विनय संबंधी गीतों का सृजन भी यहाँ के धार्मिक आचार-अनुष्ठानों की पृष्ठभूमि में हुआ है। फलतः गीतों में अनेक पक्ष आते हैं जिनका धार्मिक दृष्टि से ज़्यादा महत्त्व होते हैं। यदि एक भी पक्ष छूट गए तो धार्मिक विचारधारा को क्षति पहुँचने की संभावना है।

उदाहरण के लिए केरल के नागगीतों को लें। पुराने ज़माने से लेकर केरल में नागपूजा विशेष रूप से की जाती थी। यहाँ के लोगों में ऐसा विश्वास रूढ़ हो गया था कि सर्प के क्रुद्ध हो जाने से तरह-तरह की बीमारियाँ आ जाएँगी तथा ऐश्वर्य का नाश होगा और संतानों को हानि पहुँचेगी। इतना ही नहीं नाग पूजा से सभी प्रकार के ऐश्वर्य की कामना भी यहाँ के लोग रखते थे। इसी प्रकार के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए 'कळम्' तैयार किया जाता है और स्त्रियाँ गीत गाते हुए नृत्य करके इस 'कळम्' को मिटा देती हैं। इन गीतों में नागजन्म से लेकर नाग देवता संबंधी अनेक प्रसंग होते हैं जिनमें धार्मिक भावना भरी रहती है। इसी के समान 'गंधर्वन तोऱ्ऱम्' तथा 'अय्यप्पन तोऱ्ऱम्'भी केरल जनता की धार्मिक विचारधारा का परिचायक है जिनका अनुवाद भी आसान नहीं लगता।

मलयालम के लोकगीतों में भाषाई स्तर पर जो प्रांतीय भिन्नता होती है इसे भली भाँति हिन्दी में अभिव्यक्त करना आसान कार्य नहीं।

उत्तर, मध्य तथा दक्षिण केरल में प्रचलित लोकगीतों में भाषाई स्तर पर जो भिन्नता दिखाई देती है, यह ध्यान देने की बात है। केरल के जातिपरक गीतों में इसप्रकार की प्रांतीय भिन्नता ज़्यादा नज़र

आती है। इसके समान उत्तर केरल में प्रचलित 'वटक्कन पाट्टुकळ' (उत्तर के गीत) भी उत्तर केरल की भाषा शैली का उत्तम परिचायक है। मध्य केरल में प्रचलित 'पुलय गीतों' में भाषापरक शुद्धता से बढ़कर निम्नवर्ग के अशिक्षित लोगों की स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति के कई नमूने मिलते हैं। जिनको शब्दावली में भाषाई सौष्ठव से बढ़कर आम लोगों के वाङ्मय को सहजता, सरसता एवं सरलता दर्शनीय है:-

"इन्नलयेनोरु चोप्पनम् कन्टे
पाळ् पषुत्तु चणङ्ङोटे वीणे
पेय्यान्टेनिक्कोरु पोयित्तम् पच्ची
पाच्चोरेन्नुम् चोल्लि पयंतीट्टम् तिन्टे
ञानुमेन्टळियनुम् कळि कामान पोये
अविटेवेच्चळियने वेयमूक्कन तोट्टे
अविटुन्नेन्टळियने केयक्कोट्टेटुत्ते
अविटुत्ते वेयवारियविटेयिल्लाञ्ञु
अविटुन्नेन्टळियने तेक्कोट्टेटुत्ते
अविटुत्ते वेयवारियविटेयिल्लाञ्ञु
अवुटुन्नेन्टळियने कुयिक्कोट्टेटुत्ते
तेक्कु वटक्कायि कुयियङ्ङु वेट्टि
अविटुन्नेन्टळियने कुयियिलुम् वच्चे।"

उपर्युक्त गीत में आए ज़्यादातर शब्द शुद्ध मलायलम के नहीं होते तथा वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ भी बहुत हैं। इसलि अनुवादक को उसके सही शब्द ढूँढकर अर्थग्रहण करने के बाद ही यहाँ अनुवाद संभव है।

इसके समान 'माप्पिळ पाट्टुं' (माप्पिल गीत) को भी ले सकते हैं। इसमें अन्य लोकगीतों की तुलना में मुस्लिम संस्कृति का पुट ज़्यादा है। इसलिए भाषा में अरबी, उर्दू तथा फारसी के तत्सम एवं तद्भव शब्दों की बहुलता है। फलस्वरूप अनुवाद करते समय काफी सावधानी बर्तनी पड़ती है। नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो जाने की संभावना है। इसकी गायन शैली भी विशिष्ट होती है इसलिए शब्द विन्यास एवं वाक्य गठन में भी अधिक ध्यान देना पड़ता है। लेकिन नौका गीतों के अनुवाद में ऐसी भाषापरक समस्याएँ कम है। स्तरीय एवं संस्कृत निष्ठ मलयालम भाषा में रचे जाने वाले छन्द बद्ध गीत होने के कारण मलयालम भाषा-भाषी या मलयालम का ज्ञाता इसका अर्थ सहज रूप से समझ पाते हैं। यहाँ अन्य प्रकार के लोकगीतों में निहित भाषापरक विभिन्नता को दर्शाने के लिए नौकागीतों का दृष्टांत

दिया गया है। सांस्कृतिक विशेषताओं के संबंध में नौका गीतों को अलग दृष्टि से देखना और परखना होगा। लाक्षणिक एवं व्यंजनाप्रधान अभिव्यक्तियों का अनुवाद करते समय काव्य सौष्ठव नष्ट हो जाता है।

सामान्य भाषा में कही गयी बात का अनुवाद अपेक्षाकृत सरल होता है किंतु काव्यभाषा अपनी अर्थ संरचना में बहुत जटिल होती है। यह जटिलता ही गीतों के सौंदर्य को जननी है। किंतु साथ ही यही जटिलता गीतों के अनुवाद में सबसे अधिक बाधक होती है। इसलिए जिन पंक्तियों की काव्य भाषा अर्थ-रचना के स्तर पर जितनी जटिल होती है उसका अनुवाद उतना ही कठिन होता है तथा उनके अनुवाद के मूल से उतना ही दूर चले जाने की आशंका भी उतनी ही अधिक होती है। इस तरह जिस साहित्यिक रचना का अभिव्यंजना पक्ष जितना ही स्थूल और सपाट होगा, उसका अनुवाद उतनी ही सरलता से किया जा सकेगा। यही कारण है कि सूक्ष्म और जटिल तथा लाक्षणिक या व्यंजनाप्रधान रचना का अनुवाद सभी के वश का नहीं है, उसको छन्दोबद्ध कर पाना तो और भी कठिन।

उपर्युक्त तथ्यों पर ध्यान देकर मलयालम के लोकगीतों के हिन्दी अनुवाद संबंधी समस्याओं पर विचार करना है। केरल के ज़्यादातर लोकगीत स्थूल से बढ़कर सूक्ष्म अभिव्यक्ति के परिचायक हैं। इसलिए इनका अनुवाद करते समय उपर्युक्त सारी समस्याएँ अनुवादक के सामने आ जाएँगी। फलस्वरूप मूल की स्वाभाविकता एवं सौंदर्य नष्ट हो जाने की आशंका बनी रहती है।

5.9 अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ

अनुवाद एक ऐसी प्रक्रिया है जो दो भाषाओं को आपस में मिलाने के साथ ही साथ दो संस्कृतियों को भी आपस में मिलाती है। एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्दावली का रूपांतर आसान कार्य नहीं। इस कठिनाई को स्पष्ट करते हुए डॉ सुरेश कुमार ने अनुवाद कार्य को इस प्रकार परिभाषित किया है एक भाषा के विशिष्ट भाषा भेद के विशिष्ट पाठ को दूसरी भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत करना अनुवाद है जिससे वह मूल के भाषिक अर्थ, प्रयोग के वैशिष्ट्य से निष्पन्न अर्थ, प्रयुक्ति और शैली की विशिष्टता, विषय-वस्तु तथा संबद्ध सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को यथासंभव सुरक्षित रखते हुए दूसरी भाषा के पाठक को स्वाभाविक रूप से ग्राह्य प्रतीत हो।[1]

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर केरल की स्थानीय शब्दावली के हिन्दी अनुवाद पर विचार करे

1. डॉ सुरेशकुमार, अनुवाद सिद्धांत और स्वरूप -पृ. 28

तो यह स्पष्ट हो जाता है कि स्रोत भाषा यानि, मलयालम शब्दावली का सामान्य अर्थ, प्रयोग वैशिष्ट्य से उद्भूत विशेष अर्थ, प्रयोग एवं शैली की विशेषता, विषयवस्तु तथा उससे जुडे हुए केरल प्रदेश के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य आदि को सुरक्षित रखते हुए ही हिन्दी में अनुवाद किया जाना चाहिए। तो कई प्रकार की व्यावहारिक समस्याएँ अनुवादक के सामने आ जाती हैं। इस प्रकरण अनुवाद संबंधी ऐसी व्यावहारिक समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत है।

5.9.1 भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नताएँ

भारत एक ऐसा विशाल देश है जहाँ के हर प्रांत भौगोलिक भिन्नता के परिचायक होते हैं। कश्मीर की हिमाच्छादित धवल चोटियाँ, राजस्थान के सुनहरे रेतीले पठार, उत्तर पूर्वी राज्यों के पहाड़ और सब कहीं व्याप्त हरियाली मध्य राज्यों की विशिष्ट प्रकृति तथा दक्षिणतम राज्यों की सागर से निकटता आदि साफ नज़र आती है। प्रत्येक प्रांत में विद्यमान इस भौगोलिक भिन्नता ने ही भारत की प्राकृतिक सुन्दरता में चार चाँद लगाई है।

केरल और उत्तर भारत की भौगोलिक विशेषताओं का विश्लेषण करने से पता चलता है कि दोनों प्रदेशों में आसमान ज़मीन का फरक है। पहाड़, मैदान, नदियाँ, झील एवं सागर आदि केरल की भौगोलिक विशिष्टता के परिचायक हैं। यहाँ का वनस्पति संपदा हमेशा उत्तर भारत से भिन्न रहा है। वनस्पतियों की विविधता एवं बहुलता से केरल हर मौसम में हरिताभ दिखाई देता है। यहाँ के मसाले तथा अन्य बगानी फसलें दुनिया भर में मशहूर हैं। यहाँ का मौसम भी अधिक सुखदायी है। उत्तर भारत से बिलकुल भिन्न मौसम केरल में होता है। यहाँ धरती को तपानेवाली अधिक गर्मी या अस्थियों को ठिठुरनेवाला भीषण ठंड भी नहीं है। बारिश का ज़रूरत से ज़्यादा मिल जाने से केरल जल से समृद्ध राज्यों में एक है। इस प्रकार की भौगोलिक विशेषताओं की शब्दभण्डार के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। पेड़-पौधों, जडीबूटियों तथा लताओं से जुडे हुए शब्दों से भाषा की श्रीवृद्धि हुई है। इस प्रकार दोनों भाषाओं की भूगोल संबंधी शब्दावली में बहुत अंतर दिखाई देता है। यही भिन्नता अनुवादक के लिए गंभीर समस्या साबित हुई है।

केरल तथा उत्तरभारत के सामाजिक जीवन एक दूसरे का पूरक न होकर आपसी भिन्नता का दृष्टांत होता है। उत्तर भारत की जैसी कृषक संस्कृति यहां नहीं है। मीलों दूर फैले लह-लहाते खेत, बीच-बीच में आनेवाले छोटे-छोटे गाँव तथा ग्रामीण लोगों का सीधा-सादा जीवन हम केरल में नहीं देख पाते।

वेश-भूषा, खान-पान आदि में भी पर्याप्त अन्तर है। जाति व्यवस्था के संबंध में विचार करते समय यह बात स्पष्ट होता है कि यद्यपि केरल में विभिन्न धर्म को माननेवाले, भिन्न-भिन्न जाति के लोग रहते हैं। उत्तर भारत के सामाजिक जीवन में जाति-व्यवस्था का जो गहरा प्रभाव है वैसी स्थिति केरल में नहीं है। धार्मिक सहिष्णुता यहाँ के लोगों को आपस में मिलानेवाले सबसे अच्छा गुण है। वेश-भूषा एवं खान-पान आदि के संबंध में पहले ही परिचय दिया जा चुका है लेकिन आधुनीकरण एवं वैश्वीकरण की इस विलक्षण दौर में दोनों प्रांतों के सामाजिक जीवन में दिखाई पड़नेवाली आपसी भिन्नता गायब होती नज़र आ रही है। अनुवाद के संदर्भ में सामाजिक जीवन से जुडी हुई इस शब्दावली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक भाषा से दूसरी भाषा में प्रांतगत सामाजिक झांकियाँ प्रस्तुत करना कठिन कार्य होता है। इसलिए प्रांतगत विशेषताओं से अवगत हुए बिना अनुवाद कार्य असंभव सा लगता है। अतः अनुवादक को सबसे पहले इसकी जड़े ढूँढनी होंगी।

स्थानीयता का संबंध समाज और संस्कृति से है इसलिए सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को पृथक करके विश्लेषण संभव नहीं है। अतएव समाज और संस्कृति के बीच एक सीमा रेखा खींचे बिना इन परिस्थितियों का विश्लेषण करना होगा। सामाजिक जीवन में संस्कृति का रूपायन होता है। इसलिए सामाजिक जीवन के सारे क्रिया-कलापों को संस्कृति के अंतर्गत स्थान देना पड़ता है। जिस प्रकार सामाजिक जीवन बदलता रहता है उसी प्रकार सांस्कृतिक विशेषताओं एवं परंपराओं में बदलाव आने लगता है। एक ही प्रांत का सांस्कृतिक जीवन कालानुसार बदलता रहता है तो दो भिन्न प्रांतों के सांस्कृतिक जीवन में कितना अंतर होगा ? केरल और हिन्दी प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन और उसकी परंपराएँ एकदम भिन्न हैं। संस्कृति के प्रमुख पक्ष जैसे, रहन-सहन, आचार-विचार, धार्मिक अनुष्ठान व कर्मकांड, कला एवं लोककलाएँ तथा लोकसाहित्य आदि के विश्लेषण से भिन्नता का यथार्थ चित्र हमारे सामने आने लगता है। एकाध बातों को छोड़कर संस्कृति के ज़्यादातर पक्षों में केरल तथा हिन्दी प्रदेशों में भिन्नता ही नज़र आती है। सांस्कृतिक जीवन जितना भिन्न होता है उसी प्रकार सांस्कृतिक शब्दावली की धाराएँ भी अलग-अलग दिशाओं में प्रवाहित होने लगती हैं। विपरीत दिशाओं में बहनेवाली इन धाराओं को समेटकर एक ही दिशा में प्रवाहित कराने का दायित्व अनुवादक का है। यदि कोई केरलवासी उत्तर भारत पहुँचता है या कोई हिन्दी भाषी केरल पहुँचता है तो दोनों के लिए सांस्कृतिक वातावरण अपरिचित सा लगेगा और एक दूसरे को सांस्कृतिक विशेषताओं से परिचित होने के लिए काफी समय लगता है। तब अनुवादक ही ऐसा मार्गदर्शक है जो दोनों के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है।

5.9.2 व्याकरण की दृष्टि से भाषापरक भिन्नताएँ

व्याकरणिक साँचा भाषा की प्रमुख प्रवृत्तिगत विशेषता है। व्याकरण ही भाषा के अस्तित्व का मूलाधार है। इसलिए भाषा को जीवंत रखने के लिए व्याकरणिक नियमों का पालन करना अनिवार्य बन जाता है। विभिन्न भाषाओं के व्याकरणिक नियम अलग-अलग होते हैं इसलिए अनुवादक को मूल तथा लक्ष्य भाषा के व्याकरणिक नियमों पर अच्छी पकड़ होनी चाहिए। मूल भाषा में बताई गई बात को लक्ष्य भाषा के व्याकरणिक ढाँचे में ढ़ालना अनुवादक का कर्तव्य है लेकिन ऐसे करते समय मूल आशय या भाव, काल, लिंग, वचन या वाच्य में बदलाव वांछनीय नहीं है।

प्रथम अध्याय में मलयालम और हिन्दी की भाषागत एवं व्याकरणिक विशेषताओं का विस्तृत विश्लेषण किया गया था इसलिए अनुवाद के संदर्भ में उठनेवाली व्याकरणिक समस्याओं को ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। दो भिन्न भाषा परिवार की भाषाएँ होने के नाते अनुवाद के संदर्भ में प्रमुख रूप से लिंग, वचन, कारक, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया एवं वाच्य आदि से संबंधित समस्याएँ सामने आ जाती हैं।

(क) लिंग संबंधी समस्याएँ

मलयालम में संज्ञा शब्दों की लिंग व्यवस्था अर्थ पर आधारित है और लिंग तीन हैं - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग। जड़ प्राणी का नाम नपुंसक में रखा जाता है क्योंकि उसमें विवेक-बुद्धि नहीं है। मानव दृष्टि में छोटे प्राणी भी अचेतनवत होते हैं इसलिए उनके स्त्री-पुरुष भेद की बात नहीं की जाती।

हिन्दी में दो ही लिंग होते हैं - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। इसलिए मलयालम नपुंसक लिंगों को किस वर्ग में रखना है, यह अनुवादक के लिए एक समस्या है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि मलयालम के पुल्लिंग शब्द कभी हिन्दी में स्त्रीलिंग बन जाते है कभी उल्टा भी।

हिन्दी और मलयालम के सर्वनामों में भी लिंग का प्रयोग होता है लेकिन अंतर इतना है कि हिन्दी में क्रिया को देखकर सर्वनाम के लिंग की पहचान होती है। मलयालम के सर्वनाम देखने से ही लिंग की पहचान होती है। विशेषण के लिंग संबंधी दो नियम मलयालम में हैं विशेषण के लिंग से अन्वय रखनेवाले और लिंग व्यवस्था के परे या स्वतंत्र।

अनुवादक को मलयालम में आए विदेशी शब्दों के लिंग निर्णय की ओर भी ध्यान देना है। इनका लिंग निर्णय मलयालम में मूल शाब्द के अर्थ की समानता या रूप में सादृश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। हिन्दी में भी वैसी प्रवृत्ति होने के कारण अनुवादक को थोड़ी सुविधा मिलेगी।

मलयालम में क्रिया के ऊपर लिंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हिन्दी में क्रिया प्रसंगानुसार कहीं कर्ता का अनुसरण करती है, कहीं कर्म का तो कहीं स्वतंत्र है। मलयालम-हिन्दी अनुवादक को क्रिया पदों की लिंग व्यवस्था को लेकर कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इनमें एक है 'ने' का प्रयोग। मलयालम के सभी क्रिया पद कर्ता और कर्म के लिए समान है।

मलयालम तथा हिन्दी की लिंगगत विशेषताएँ बनी रहेंगी और अनुवादक को इसे बदलने का अधिकार नहीं है। इसलिए मलयालम से अनुवाद करते समय हिन्दी के अनुकूल मलयालम की लिंग योजना को बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए।

(ख) वचन संबंधी समस्याएँ

संज्ञा (और दूसरे विकारी शब्दों) के जिस रूप से संख्या का बोध होता है उसे वचन कहते हैं। हिन्दी तथा मलयालम में दो ही वचन प्रयुक्त हैं एकवचन और बहुवचन। मलयालम में वचन व्यवस्था को लिंग से जोड़ने से तीन प्रकार के वचन पाए जाते हैं - (1) सलिंग बहुवचन (2) अलिंग बहुवचन (3) पूजक बहुवचन। एक ही लिंग के बहुवचन रूप सलिंग बहुवचन होता है। जब स्त्रीलिंग और पुल्लिंग मिलकर बहुवचन बनता है, उसे अलिंग बहुवचन कहते है और आदर को सूचित करने के लिए पूजक बहुवचन का प्रयोग होता है। पूजक बहुवचन संज्ञा और सर्वनामों के प्रसंग में विभिन्न तरीकों से बनाए जाते हैं। हिन्दी में बहुवचन बनाने की प्रणाली मलयालम से बिलकुल भिन्न है। इसलिए अनुवादक को दोनों भाषाओं की वचन व्यवस्था की पूरी जानकारी आवश्यक है।

(ग) कारक और विभक्तियों के प्रयोग संबंधी समस्याएँ

संज्ञा या सर्वनामों के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित उस रूप को कारक कहते है। हिन्दी में आठ प्रकार के कारक है तो मलयालम में सात विभक्तियाँ प्रयुक्त हैं। मलयालम द्रविड परिवार की भाषा है इसलिए उसके संज्ञा शब्द तथा अन्य शब्दों के साथ लगनेवाले प्रत्यय आदि द्रविड प्रवृत्ति के है। हिन्दी और मलयालम के कारक तथा विभक्तियों का सामान्य परिचय निम्नलिखित तालिका से प्राप्त हो जाएगा।

हिन्दी		मलयालम	
कारक का नाम	प्रत्यय	विभक्ति का नाम	प्रत्यय
1. कर्ता	०, ने	निर्देशिका	०

2. कर्म	को	प्रतिग्राहिका	ए
3. करण	से	संयोजिका	ओटुॅ
4. संप्रदान	को		(हेतुवायि, कोण्टुॅ, आल, ओटुॅ)
5. अपादान	से	उद्देशिका	क्कु, उ
6. संबंध	का, के, की	प्रायोजिका	आल
7 अधिकरण	में, पर	संबंधिका	उटे, ऱ्ऱे
8. संबोधन	हे, अजी, अहो, अरे	आधारिक	इल, कल

मलयालम में विभक्तियों के प्रयोग करते समय ध्यान देने की बात यह है कि कुछ विभक्ति प्रत्यय सभी संज्ञा शब्दों के साथ नहीं लगते। अन्य विभक्ति प्रत्ययों में प्रत्यय लुप्त होते हैं, केवल अंग रह जाते हैं। अन्यत्र एक विभक्ति प्रत्यय के अतिरिक्त और एक विभक्ति प्रत्यय होता है। इसके कई उदाहरण प्रथम अध्याय में दिए गए हैं। इसलिए दुहराने की आवश्यकता नहीं है। अनुवादक को प्रसंगानुकूल विभक्ति का सही प्रयोग समझकर ही अनुवाद करना चाहिए ।

(घ) सर्वनाम संबंधी समस्याएँ

मलयालम तथा हिन्दी के सर्वनामों के विश्लेषण से मलयालम-हिन्दी अनुवाद के सामने उठनेवाली प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित है

(1) उत्तम पुरुष बहुवचन में मलयालम में श्रोता से रहित और श्रोता सहित अर्थ में अलग - अलग सर्वनाम हे, पर हिन्दी में एक ही है।

(2) मध्यम पुरुष में शब्दार्थ की दृष्टि से तू, तुम और आप के पर्यायवाची शब्द 'नी' 'निङ्ङळ' और 'तांकळ' है। लेकिन प्रसंगों के अनुसार स्थानीय परंपरा तथा सामाजिक रूढ़ि के अनुसार मुहावरेदार प्रयोग भी होता है। उसकी ओर अनुवादक को ध्यान देना होगा।

(3) अन्य पुरुष में मलयालम में तीन-तीन लिंगों के अलग-अलग सर्वनाम है - 'अवन्'(पु), 'अवळ'(स्त्री), 'अतुं' (नपु)। स्थानीय उच्चारण भेद के अनुसार ओन, ओळ् जैसे प्रादेशिक भेद भी प्रचलित है। आदरसूचक बहुवचन में सामान्य बहुवचन से भिन्न 'इद्देहम्', 'अद्देहम्' शब्द प्रयुक्त है। इनके समान प्रयोग हिन्दी में नहीं है।

सर्वनामों के कारकीय रूप बनाते समय भी अनुवादक को अधिक सतर्क रहना पड़ता है।

(ङ) विशेषणों से संबंधित समस्याएँ

भाषा की सबसे छोटी व्याकरणिक इकाई वाक्य है। इसलिए वाक्यों का अनुवाद किया जाता है। वाक्य के कई अंग होते है जैसे कर्ता, कर्म, क्रिया आदि। इसीप्रकार कर्ता और कर्म की विशेषता को

सूचित करनेवाले विशेषण भी वाक्य के अंग होते है। अतः संज्ञा शब्दो के अनुवाद के समान विशेषणों का अनुवाद भी महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक भाषा में प्रयुक्त विसेषणों की सांस्कृतिक एवं संरचनात्मक विशेषताएँ होती हैं। इनका निर्वाह अनुवाद में होना बहुत ज़रूरी है। विशेषणों के अनुवाद के संदर्भ में निम्नलिखित समस्याएँ अनुवादक के सामने आ जाती हैं -

(क) यदि मूलभाषा के विशेष्य शब्द लक्ष्य भाषा में नहीं है तो विशेषणों का अनुवाद असंगत लगेगा।

(ख) स्रोत भाषा जलवायु, खान-पान, खास-खास रंगों के नाम, सांस्कृतिक पहलुओं आदि से संबंधित शब्दों के लिए लक्ष्य भाषा में विशेषण चुनना कठिन कार्य होता है।

(ग) अनुवाद करते समय कोश से प्राप्त सारे विशेषण एक ही प्रसंग पर लागू नहीं हो सकते, अनुवादक को सबसे पहले उसके प्रसंग को पहचानकर विशेषण को चुनना होगा।

(घ) हिन्दी तथा मलयालम में प्रयुक्त तत्सम विशेषण शब्दों का अर्थ बोध एक सा लगता है किंतु इनकी कई अर्थच्छवियाँ हो सकती हैं। इनमें एक अर्थच्छवि पर एकभाषा ज़ोर देती है तो दूसरी भाषा उसी शब्द की दूसरी अर्थच्छवि पर ज़ोर डालती है। इसलिए अनुवादक में सही को चुनने की क्षमता होनी चाहिए।

(ङ) कुछ विशेषण ऐसे होते है जिनका कुछ विशेष शब्दों से जुडने से मुहावरों के समान अर्थ परिवर्तन होता है, इसकी ओर ध्यान देना ज़रूरी है।

(च) एक ही विशेषण के प्रयोग के आधार पर भिन्न-भिन्न अर्थ परिलक्षित होता है तब अनुवादक लक्ष्य भाषा में सही विशेषण का प्रतिस्थापन करना पड़ता है।

(छ) विशेषणों के मुहावरेदार प्रयोग हमेशा समस्या उत्पन्न कराते हैं।

(ज) मलयालम में प्रचलित माप-तौल तथा नाप आदि हिन्दी में प्रचलित नहीं होते तब अनुवादक को शब्दार्थ की जगह लाक्षणिक अर्थ को महत्व देकर काम करना होगा।

(झ) दोनों भाषाओं में आए तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी विशेषणों का अनुवाद सतर्कता से करना होगा।

इन्हें छोड़कर विशेषणों के शब्द गठन से संबंधित समस्याओं को ओर भी अनुवादक के ध्यान देना होगा।

इनके अलावा क्रिया, सहायक क्रिया, प्रेरणार्थक क्रिया, संयुक्त क्रिया, वाच्य और प्रयोग आदि से संबंधित बहुत सारी समस्याओं का अनुवादक को सामना करना पड़ता है। इनका सामान्य परिचय प्रथम अध्याय में दिए जाने के कारण यहाँ उनकी चर्चा असमीचीन है। एक सफल अनुवादक बनने के लिए दोनों भाषाओं के व्याकरण संबंधी छोटी-छोटी बातों का भी ध्यान रखना अनिवार्यतः आवश्यक है।

5.9.3 सांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद का अभाव

मलयालम-हिन्दी भाषाओं की अनुवाद परंपरा पर विचार करते समय यह स्पष्ट हो गया था कि मलयालम की कविता, कथा साहित्य, नाटक, उपन्यास तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के हिन्दी अनुवाद के लिए कम या ज़्यादा मात्रा में प्रयास किया गया है और कोशिशें जारी है। लेकिन सांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद करने का प्रयास न मलयालम की ओर से हुआ और न हिन्दी की ओर से। सांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद से जुडी हुई जटिल समस्याओं के कारण ही होगा इस प्रकार की कोशिश अभी तक नहीं हुई है। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि अनुवाद करते समय अनुवादक के मन में यह भय बना रहता है, यदि अनुवाद सौ फीसदी सही न निकले तो हास्यास्पद बन जाएगा और इससे अपनी श्री नष्ट हो जाएगी। इससे बेहतर है अनुवाद के लिए प्रयास ही नहीं करना।

दूसरा एक कारण है, अभी तक एक मलयालम-हिन्दी सांस्कृतिक शब्दावली कोश का गठन नहीं हुआ है इसलिए आवश्यकता पडने पर संदर्भ लेने के लिए अनुवादक के पास कोई स्रोत ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है। फलस्वरूप अनुवाद बिना किसी सहारे के अकेले होकर करना पड़ता है। तब अनुवादक के मन में क्या सही है क्या गलत, किसे लेना है किसे छोडना ऐसी दुविधापूर्ण स्थिति बनी रहती है।

तीसरा कारण है, भारत के दक्षिणतम् देश होने के कारण केरल की कलाओं एवं संस्कृति से परिचित होने का अवसर हिन्दी भाषा-भाषी को नहीं मिला। इसलिए यहाँ की सांस्कृतिक विशेषताओं से वे सदैव अनभिज्ञ रहे। लेकिन रेडियो, दूरदर्शन, इन्टरनेट आदि इलक्ट्रॉनिक माध्यमों के बढ़ते प्रचार के कारण हिन्दी भाषी भी केरल की सांस्कृतिक विशेषताओं से अवगत होने लगे और तत्संबंधी जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा भी रखने लगे।

हिन्दी भाषा की विशेष प्रवृत्ति अगला कारण हो सकता है। हिन्दी की ऐसी प्रवृत्ति है कि वह पचनेवाली बातों को ही आत्मसात करती है। अन्य भाषाओं के जितने भी शब्द हिन्दी में आए हैं वे सब हिन्दी के अनुकूल ही है। कभी-कभी थोड़ा कुछ बदलाकर या रूपांतरित करके अन्य भाषा शब्दों को स्वीकार करने की कोशिश हिन्दी की ओर से हुई है। यदि वह भी असंभव है तो ऐसे शब्दों को स्वयमेव छोड़ देती है। भिन्न परिवारवाली भाषाएँ होने के कारण मलयालम शब्दों को हिन्दी के अनुकूल बनाना आसान नहीं है। ऐसी भाषापरक भिन्नता सामान्य शब्दों के ग्रहण में समस्या उत्पन्न करती है तो सांस्कृतिक शब्दावली के संदर्भ में यह कितनी जटिल होगी, यह सोचने की बात है। किन्तु हिन्दी को अखिल भारतीय स्तर प्रदान करने के लिए इसी ओर प्रयास करना अनिवार्यतः आवश्यक है।

हिन्दी भाषा-भाषी हमेशा यही चाहता है कि सभी भारतीय हिन्दी बोले और समझे। लेकिन वे भारत सरकार की त्रिभाषा नीति का खुलकर तिरस्कार करते हैं। जितनी चाव से अहिन्दी भाषी हिन्दी पढ़ने का प्रयास करते हैं उसी चाव से हिन्दी भाषी किसी अन्य भारतीय भाषा सीखने का प्रयास नहीं करते।भाषा एक सेतु के समान है इसलिए आदान-प्रदान की भावना दोनों ओर आनी चाहिए। लेकिन इसको रोकनेवाला एक कारण भी है, हिन्दी में अन्य भाषा संबंधी सामग्रियों का अभाव। इसलिए विभिन्न संस्थाओं या व्यक्तियों की ओर से इस दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए।

5.9.4 लिप्यंतरण की समस्या

अनुवाद में लिप्यंतरण का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। लिप्यंतरण से तात्पर्य है स्रोत भाषा के शब्दों को लक्ष्य भाषा में लिपिबद्ध करना। लक्ष्य भाषा में उपयुक्त शब्द न मिलने पर अनुवादक को लिप्यंतरण की सहायता लेनी पड़ती है। मलयालम-हिन्दी अनुवाद में केरलीय वस्तुओं, व्यक्तियों, संस्कृतिपरक शब्दों, स्थानों तथा अन्य प्रसंगों के उल्लेख करते समय अनुवादक ऐसी स्थिति में आ जाता है कि लिप्यंतरण के सिवा दूसरा कोई उपाय ही नज़र नहीं आता।

किसी भाषा से दूसरी भाषा में लिप्यंतरण आसान नहीं है। वर्णों एवं शब्दों की बनावट, उनका उच्चारण, विशेष ध्वनि चिह्न आदि से संबंधित कई जटिलताएँ लिप्यंतरण से जुडी हैं। यहाँ मलयालम-हिन्दी लिप्यंतरण की समस्याओं का विश्लेषण किया जा रहा है।

सबसे पहले मलयालम और हिन्दी की वर्णमालाओं का विश्लेषण करें। दोनों भाषाओं की वर्णमालाओं में ज़्यादातर वर्ण समान रूप से प्राप्त हैं किन्तु द्रविड परिवार की भाषा होने के कारण कुछ विशिष्ट वर्ण मलयालम में पाए जाते हैं।

मलायलम तथा हिन्दी वर्णमालाओं में समान रूप से प्राप्त वर्ण निम्नलिखित हैं-

स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए,ऐ, ओ, औ

व्यंजन - कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग,तवर्ग, पवर्ग

य, र, ल, व, श, ष, स, ह

मलयालम के विशिष्ट स्वर -

(ऍ) ऐ (ऑ) ओ

मलयालम के विशिष्ट व्यंजन -

(ळ) ....(ष़) (ऱ) ....(ऱऱ)

'न' का उच्चारण दो प्रकार से होता है वर्त्स्य और दंत्य ।

दोनों भाषाओं में समान रूप से उपलब्ध स्वर और व्यंजनों का लिफ्यंतरण आसान है। लेकिन कभी-कभी मलयालम के ह्रस्व या दीर्घ को हिन्दी में दीर्घ या ह्रस्व बनाने की प्रवत्ति देखी जा सकती है। इसे भाषापरक विशेषता मानकर अनदेखा करना ही बेहतर है।

5.9.5 ह्रस्व स्वर संबंधी समस्या

'ए' को दो रूप मलयालम में खूब प्रचलित है (ऎ) तथा (ए) (ऒ) तथा (ओ)। ये स्वर द्राविडी भाषा की विशेषता है। हिन्दी में 'ए' का ही प्रयोग है लेकिन प्रसंगानुसार उच्चारण में इसका ह्रस्व या दीर्घ बनाया जाता है। मलयालम में 'ऎ' और 'ए' के प्रयोग में बहुत अंतर है और ह्रस्व एकार बहुत चलता है। जैसे ऎविटे (कहाँ) ऎन्ने (मुझे) ऎतिनुँ (क्यों) ऎलि (चूहा) ऎरुमा (भैंसा) ऎप्पोषुम (सदैव) ऎषुत्तुँ(खत) ऎळ्ळुँ (तिल) आदि।

ह्रस्व ओकार (ऒ) भी ह्रस्व एकार (ऎ) के समान मलयालम में बहुप्रचलित है। उदा 'ऒन्नुँ'(एक),'ऒरुम'(एकता), 'ऒच्च'(आवाज़), 'ऒट्टकम्'(ऊँट), 'ऒप्पुँ' (हस्ताक्षर) 'ऒष़िञ्ञ' (खाली) आदि। यद्यपि हिन्दी में उच्चारण करते समय ह्रस्व ओकार का प्रयोग होता है लेकिन लिखते समय ऐसा अंतर दिखाई नहीं देता। मलयालम से हिन्दी में लिप्यंतरण करते समय ह्रस्व ओकार की अनिवार्यता महसूस होती है। इसलिए अनुवादक को इसकी ओर ध्यान देना होगा।

5.9.6 व्यंजन संबंधी समस्याएँ

व्यंजनमाला में हिन्दी के सारे व्यंजन मलयालम में भी उपलब्ध हैं इसलिए उपलब्ध व्यंजनों के लिप्यंतरण संबंधी समस्याएँ बहुत कम हैं। हिन्दी में ङ' और 'ञ' से बचने की प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई देती है। जहाँ तक हो सके 'ङ' और 'ञ' के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग होता है। इसका कारण यह हो सकता है कि इन व्यंजनों के उच्चारण करने में हिन्दी भाषियों को कठिनाई महसूस होती होगी। मलयालम के 'कञ्ञि' (चावल की मांड)'पञ्ञि' (रूई) 'ञाञ्ञूऴ (Earthworm) 'ञावल' (जामुन)'तेङ्ङा' (नारियल) 'चिङ्ङम्' (स्नावन)'अङ्ङाटि' (बाजार) आदि शब्दों का उच्चारण हिन्दी भाषियों के लिए कठिन है।

'न' का प्रयोग हिन्दी तथा मलयालम में समान रूप से होता है। लेकिन मलयालम में 'न' का उच्चारण दो प्रकार से होता है - दंत्य और वर्त्स्य। चन्दनम् (चंदन) आन (हाथी) कान (नाली) पन (ताड़) जैसे शब्दों में 'न' का दंत्य उच्चारण है जबकि 'नम्मळ्' (हम), 'निङ्ङळ्' (तुम लोग)'नखम्' (नाखून), 'नडन' (नट), 'नटुक' (रोपना) आदि वर्त्स्य उच्चारण होता है। कभी-कभी 'ट' के उच्चारण

को लेकर भी थोड़ी कठिनाई है। शब्द के बीच में और अंत में आनेवाले 'ट' को मलयालम भी 'ड' के रूप उच्चरित करते हैं जैसे - 'नडन' (नट), 'इडुक्की' (स्थान का नाम)'मडियन' (आलसी)'तडियन' (मोटा)'तडि'(लकड़ो) आदि।

5.9.6 मलयालम के विशेष व्यंजन

आगे मलयालम के विशेष व्यंजनों का विश्लेषण करें। जैसे सूचित किया है कि द्रविड भाषा होने के कारण यहाँ 'ळ' 'ष़' 'ऱ' और 'ऱऱ' का खूब प्रयोग होता है। 'ळ'नागरी लिपि में होने के कारण इसका लिप्यंतरण आसान है। 'ष़' बडी कोमल ध्वनि है इसलिए इसका लिप्यंतरण थोड़ा कठिन है। रोमन लिपि 'ZH' के रूप में इसका उच्चारण होता है किंतु इसे 'ष़' का सही उच्चारण नहीं मान सकते किंतु कामचलाऊ रूप से इसका ही प्रयोग होता है। (ऱ) का उच्चारण हिन्दी भाषी केलिए कठिन नहीं है क्योंकि कई शब्दों में 'र' का उच्चारण 'ऱ'के समान ही होता है जैसे मोहर, हराम, प्रहार, अनार, सुनार आदि। इन शब्दों में र का उच्चारण ही मलयालम 'ऱ' का होता है। दोहरे ऱ का ऱऱ हिन्दी भाषियों के लिए नई है। अंग्रेज़ी के 'Letter','Attack','Better' आदि शब्दों में 'tt' का उच्चारण ऱऱ का होता है। मलयालम में 'ऱऱ' का प्रयोग बहुतायत में है जैसे 'मुऱ्ऱम' (आंगन) 'ईऱ्ऱ' (बाँस)'तोऱ्ऱम्'(तोऱ्ऱम् गीत) 'चिऱ्ऱ' (चाची) 'कुऱ्ऱम्' (अपराध) आदि।

आगे हिन्दी में प्रयुक्त सवृत अकार की तरह मलयालम में प्रयुक्त चिह्न पर भी विचार करना है। इसका उच्चारण खुले स्वर और हल् के बीच में होता है। इसे मलयालम व्याकरण में चिल्लॅु कहते हैं। उदा - 'पाट्टॅु' (गीत)'आट्टॅु' (बकरा) 'नेरुॅ' (सच) 'कटवॅु' (घाट)'कोलॅु' (डंडा) आदि। हिन्दी में भी इस प्रकार का उच्चारण होता है लेकिन विशेष चिह्न नहीं लगाते हैं।

मलयालम संस्कृत के समान संयोगात्मक भाषा होने के कारण भी लिप्यंतरण कठिन हो जाता है। मलयालम में कारक विभक्तियाँ शब्दों के साथ जुडकर आने के कारण इसमें बडे-बडे पदों एवं वाक्यांशों की भरमार है। इसलिए ध्यानपूर्वक लिप्यंतरण करना होगा। यद्यपि मलयालम शब्दों का लिप्यंतरण नागरी लिपि में संभव है तथापि इसके सही उच्चारण संबंधी समस्या जैसी की वैसी बनी रहेगी और प्रयोग एवं अभ्यास इसमें सुधार लाया जा सकता है।

5.10 अनुवादक के दायित्व

यदि अनुवाद दो भाषाओं के बीच बनी सेतु है तो अनुवादक इस सेतु को बनानेवाला इंजिनीयर है। सेतु जितनी सुन्दर, मज़बूत एवं टिकाऊ होगी इंजिनीयर को उतनी ही तारीफ मिलेगी। इसलिए अनुवादक के लिए कुछ ऐसे विशेष गुणों की आवश्यकता होती है। कला एवं सांस्कृतिक शब्दावली के

अनुवाद के संदर्भ में उसका दायित्व और बढ़ जाता है।

डॉ भोलानाथ तिवारी के अनुसार अनुवादक के तीन गुण होने चाहिए, वे हैं -(1) स्रोत भाषा का ज्ञान, (2) लक्ष्य भाषा का विषय के अनुरूप समुचित ज्ञान तथा (3) विषय ज्ञान।[1]

पहली बात है स्रोत भाषा का ज्ञान। यहाँ तो वह मलयालम भाषा का ज्ञान होता है। मलयालम भाषा का अच्छा खासा ज्ञान सांस्कृतिक शब्दावली के लिए अनिवार्य गुण है। मलयालम के काम चलाऊ ज्ञान से ऐसी शब्दावली का अनुवाद संभव नहीं है। संस्कृति से जुड़ी हुई सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं को परखने, समझने तथा विश्लेषण करने की भाषापरक क्षमता अनुवादक को होनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि उसे मूल सामग्री के स्तर का वैसा ज्ञान होना चाहिए जैसा कि उसे पढ़कर रसास्वादन करनेवाले मलयालम भाषी को हो। मलयालम भाषा का ज्ञान जितना कम होगा अनुवाद का स्तर गिर जाने की संभावना उतनी ही बढ़ जाएगी।

अनुवादक की दूसरी आवश्यकता है हिन्दी भाषा का उतना ही ज्ञान, जितना हिन्दी भाषा-भाषी के उस विषय में सही अभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित है। कहने का मतलब है, मलयालम से जितनी ही बातें उसने समझो और ग्रहण की हैं उन्हें यथानुसार हिन्दी भाषा में पुनःसृजित करने तक का ज्ञान उसे होना चाहिए ताकि हिन्दी भाषी भी अनूदित सामग्री को मूल सामग्री के समान समझें और आस्वादन करें।

अनुवादक की तीसरी आवश्यकता है विषय ज्ञान। यहाँ इससे तात्पर्य है, केरल की कला और संस्कृति का विशेष ज्ञान। केरल की कला और संस्कृति की विशिष्ट परंपराओं और विशेषताओं को समझे बिना सफल अनुवाद संभव नहीं है। इतना ही नहीं ऐसी हालत में अर्थ का अनर्थ होने तथा त्रुटियाँ बढ़ जाने की आशंका बनी रहती है।

पहले ही बताया जा चुका है कि मलयालम-हिन्दी सांस्कृतिक शब्दावली कोश उपलभ्ध नहीं है इसलिए अनुवादक को यहाँ के लोगों तथा कला विशेषज्ञों से संपर्क करके आवश्यक जानकारी एवं सूचनाएँ प्राप्त करना पडेगा। ध्यान देने की दूसरी बात यह है कि यह सिर्फ भाषान्तरण न होकर संस्कृतियों का आदान-प्रदान भी है। यदि अनुवाद के ज़रिए यहाँ की संस्कृति को ठेस पहुँची तो वह क्षम्य नहीं होगा।

1. डॉ भोलानाथ तिवारी,अनुवाद विज्ञान -पृ. 22

इसलिए अनुवाद के दौरान या पूरा होने के बाद भाषाविद् या विषय विशेषज्ञ या दोनों के पुनरीक्षण तथा सलाहों का सहारा लिया जाना ही बेहतर है ताकि अनूदित सामग्री अपने आप में पूर्ण तथा अन्य लोगों के लिए आदर्श बन जाए।

मलयालम की कला और संस्कृति से जुडी हुई शब्दावली के हिन्दी अनुवाद द्वारा मलयालम की श्री तो बढ़ेगी ही साथ ही साथ हिन्दी के शब्द भण्डार को और संपन्न बनाने का गरिमापूर्ण कार्य भी अनुवादक के द्वारा किया जाता है। इससे केरल की विशिष्ट सांस्कृतिक पहलुओं को जानने-पहचानने का सुअवसर हिन्दी भाषी को अनुवादक द्वारा प्रदान किया जाता है। अतः अनुवादक की अमिट छाप दोनों भाषाओं में हमेशा बनी रहेगी।

निष्कर्ष

भाषा का विकास शब्दावली के आदान-प्रदान से होता है। इस प्रक्रिया में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आम तौर पर यह विचार रूढ़ हो गया है कि भाषान्तरण का कार्य उबाऊ और बोझीला होता है। इसका प्रमुख कारण अनुवाद से जुडी हुई जटिलताएँ ही हैं। सामान्य अनुवाद इतना जटिल है तो सांस्कृतिक शब्दावली के संदर्भ में अत्यंत गहन और गंभीर समस्याएँ उभरकर आना स्वाभाविक मात्र है। केरल की स्थानीय शब्दावली के अनुवाद संबंधी समस्याओं के विश्लेषण से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि अभी तक इस क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ है। सांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद से जुडी हुई समस्याओं के समाधान ढूँढने के लिए मलयालम तथा हिन्दी के भाषाविदों, विषय विशेषज्ञों, समाजशास्त्रियों तथा विभिन्न संस्थानों का मिला-जुला प्रयत्न अनिवार्य है। हिन्दी को अखिल भारतीय स्तर प्रदान करने के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करना बहुत आवश्यक है। अनुवाद से इस लक्ष्य की पूर्ति हो जाती है। साथ ही साथ अन्य भाषाओं और संस्कृतियों से परिचित होने का अवसर भी हिन्दी भाषा-भाषी को मिलता है। इसलिए अनुवादक को स्रोत भाषा की भाषापरक एवं संस्कृतिपरक विशिष्टताओं का आकलन पूरी निष्ठा एवं सतर्कता से करके लक्ष्य भाषा की विशेषताओं के अनुकूल उन्हें रूपायित करना होगा।

उपसंहार

उपसंहार

केरल की स्थानीय शब्दावली के हिन्दी अनुवाद की समस्याओं पर विचार करते समय दोनों भाषाओं की विकासयात्रा, भाषापरक विशेषताओं एवं प्रयोगात्मक भिन्नताओं की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है। किसी भी भाषा को व्याकरणिक ढाँचे से परिचित हुए बिना उस भाषा में व्यक्त भावों और विचारों को दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करना आसान कार्य नहीं है। इसलिए मलयालम भाषा को भली-भाँति समझना तथा समझी हुई बातों को यथावत् हिन्दी में पुनःसृजन करने की क्षमता अनुवादक के लिए वांछनीय गुण हैं। जहाँ तक हिन्दी और मलयालम की वाक्य संरचना का सवाल है दोनों में पर्याप्त समानता पायी जाती है। लेकिन सर्वनाम, विशेषण, लिंग, कारक और क्रियाओं के प्रयोग में भिन्नता कुछ ज़्यादा ही दिखाई देती है। फिर भी विदेशी भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने जितनी समस्याएँ आने की संभावना है उतनी समस्याएँ मलयालम से हिन्दी में अनुवाद करते समय अनुवादक को महसूस नहीं होंगी। दोनों भाषाओं की प्रांतगत एवं भाषागत समानताओं व असमानताओं से अवगत होने के बाद यदि अनुवाद करें तो निश्चय ही सफलता हासिल होगी।

किसी भी प्रदेश की स्थानीयता एवं प्रांतगत विशेषताओं को जानने के लिए यह ज़रूरी है कि व्यक्ति उस स्थान विशेष के भीतर तक उतरे, विभिन्न व्यक्तियों, वर्गों, संप्रदायों, धर्मों, संस्कृतियों के संपूर्ण स्वरूप को जानने के लिए अन्दर तक झाँके। विश्लेषण की दृष्टि से समाज को देखने का अर्थ अपनी परंपराओं, इतिहास, रीति-रिवाज़, लोकाचार, कला, लोकनृत्य एवं लोकनाट्य, लोक साहित्य, धार्मिक विचारधारा और सांस्कृतिक विशेषताओं को सही रूप में जानना पहचानना है। उपर्युक्त बिंदुओं को आधार बनाकर केरल की स्थानीय शब्दावली के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर भारत से बिलकुल भिन्न एक विशिष्ट प्रकार की स्थानीय शब्दावली का रूपायन केरल में हुआ है।

केरल की विशिष्ट स्थानीयता के रूपायन में भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, कला एवं साहित्यिक तथा भाषिक परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसलिए इनसे जुडी हुई स्थानीय विशेषताओं से हिन्दी भाषा-भाषी लोगों को अवगत कराना अनुवादक का सबसे बडा दायित्व बन जाता है। नहीं तो अनुवाद की लक्ष्य-प्राप्ति से अनुवादक सदा वंचित रह जाएगा। अधिक गहराई एवं विस्तार से देखें तो एक ओर स्थानीयता भाषा, कला, साहित्य और विज्ञान से संबंद्ध है तो दूसरी ओर परिवेश से संबंद्ध है जिसमें समाज, वनस्पति, भूगोल आदि आते हैं। तीसरी ओर धर्म, दर्शन, अंधविश्वास, टोना-

टोटका तथा पौराणिक मान्यताएँ आदि स्थानीयता से जुड़े हैं। चौथी ओर परंपरा, इतिहास, रीति-रिवाज़, खान-पान, कपड़े-लत्ते आदि। यों कुछ अन्य संबंद्ध बातें भी इन्हीं में से एक में या दूसरी में या एकाधिक में आती हैं।

किसी भी भाषा का अस्तित्व उस क्षेत्र की संस्कृति से जुडा हुआ है, जहाँ वह पनपी और बोली जाती है। वहाँ की जनता के जीवन और संस्कार की अतल गहराइयों तक भाषा की जड़ें फैली हुई हैं। भाषा को सशक्त बनानेवाले खाद के रूप में कलाओं को मान लेना चाहिए क्योंकि कलाओं से जुड़ी हुई शब्दावली का हरेक भाषा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। केरल की कलाओं से संबंधित शब्दावली को पाँच वर्गों में विभाजित करके उनका विश्लेषण किया गया है जैसे कलाओं की प्रस्तुति संबंधी शब्दावली, धर्मगत या जातिगत शब्दावली, साहित्य या गीत संबंधी शब्दावली, वेश-भूषा, साज-सज्जा एवं रंग-सज्जा संबंधी शब्दावली तथा वाद्यों से संबंधित शब्दावली आदि। कला संबंधी शब्दावली का अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने सबसे बड़ी समस्या संदर्भ ग्रंथों का अभाव है। अभी तक कला और संस्कृति संबंधी किसी कोश ग्रंथ का गठन नहीं हुआ है। इसलिए अनुवादक को स्रोत भाषा से ही आवश्यक सामग्री एकत्र करना पड़ता है। इतना ही नहीं कला का मुख्य प्रदेय आस्वादन के स्तर पर हिन्दी भाषा-भाषियों को पहुँचाना भी आसान कार्य नहीं है। कलाओं से जुडी हुई सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावनाओं का हिन्दी में जैसे के वैसे पुनःगठन या पुनःसृजन भी आसान कार्य नहीं।

केरल की लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अन्तर्गत लोकनृत्य एवं लोकनाट्य से संबंधित शब्दावली के विश्लेषण से पता चलता है कि इसके अनुवाद के संदर्भ में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का आकलन, सामाजिक विशेषताओं का हिन्दी में प्रस्तुतीकरण, धार्मिक विचारधारा की यथासंभव परिचयात्मक प्रस्तुति, व्याकरणिक एवं भाषावैज्ञानिक जटिलताएँ तथा रंगमंच एवं साज-सज्जा संबंधी शब्दावली का भाषान्तरण आदि समस्याएँ सामने आ जाती हैं। लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अन्य पक्ष मुहावरों, कहावतों तथा पहेलियों का अनुवाद करते समय प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता के कारण शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से समान मुहावरों कहावतों तथा पहेलियों का दोनों भाषाओं में मिल जाना आसान नहीं है। अनुवाद करते समय अनुवादक को यह ध्यान रखना होगा कि इनसे जुडी हुई सांस्कृतिक विशिष्टता को ठेस नहीं पहुँचना चाहिए। इसलिए लोकसांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद में अनुवादक का काम भाषान्तरण तक सीमित न होकर सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषिक एवं धार्मिक विशेषताओं का विश्लेषण तक विस्तृत हो जाता है। इसलिए एक भाषाविद् से बढ़कर समाजशास्त्री की भूमिका भी अनुवादक को निभाना पड़ता है।

लोकगीत लोकसाहित्य का ऐसा अंग हैं, जिसने लोकजीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव का इससे अटूट संबंध है। लोकगीत हमारे अपने गीत हैं इन पर सबका समान अधिकार है, चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो। जहाँ तक केरल के लोकगीतों का सवाल है, विविधता से भरपूर यहाँ के लोकगीतों में केरल की सांस्कृतिक विरासत का जीते-जागते चित्र साकार हो उठते हैं। इसलिए ऐसे गीत स्थूल से बढ़कर सूक्ष्म अभिव्यक्ति के परिचायक हैं। फलतः भाषापरक समस्याओं के साथ-साथ सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक पहलुओं की ओर भी अनुवादक को ध्यान देना पडेगा।

इस अध्ययन के दौरान यह स्पष्ट साबित हो चुका है कि इससे पूर्व मलयालम से हिन्दी में सांस्कृतिक शब्दावली के अनुवाद करने का प्रयास न के बराबर है इसलिए अनुवादक को उपयुक्त संदर्भ ग्रंथों की सहायता नहीं मिलती। अतः सरकार तथा अन्य भाषाई संस्थानों की ओर से एक सांस्कृतिक शब्दावली कोश गठित करने का प्रयास अवश्य किया जाना चाहिए। इसमें भाषाविदों, वैयाकरणों, भाषा वैज्ञानिकों, कलाविशेषज्ञों, समाजशास्त्रियों तथा अनुवादकों का मिला जुला प्रयत्न एवं सहयोग अनिवार्य है।

हिन्दी को अखिल भारतीय स्तर प्रदान करने के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करना होगा। अनुवाद से ही इस लक्ष्य की प्राप्ति होती है। अनुवाद के सन्दर्भ में लिप्यंतरण प्रणाली की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अन्य भाषाई शब्दों का लिप्यंतरण करके उनके शब्दार्थ या भावों को हिन्दी में समझाने से एक हद तक समस्या समाधान हो जाता है। भाषांतरण संबंधी अन्य समस्याओं का समाधान ढूँढने के लिए मलयालम और हिन्दी के भाषाविदों, विषय-विशेषज्ञों तथा समाजशास्त्रियों की सलाह-मशविरा अवश्य लेनी चाहिए। अनुवाद के ज़रिए अन्य भाषाओं और संस्कृतियों से परिचित होने का अवसर भी हिन्दी भाषा-भाषी को मिलता है। तब प्रांतीय भेदभाव रहित अपनापन की भावना सारे देश में व्याप्त हो जाएगी, फलतः भारतीय संस्कृति दिन ब दिन परिमार्जित एवं परिवर्द्धित होती जाएगी।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

केरल की स्थानीय शब्दावली

कूत्तंबलम्	मंदिरों से संबद्ध नाट्य गृह जहाँ कूत्तु सरीखे कलारूपों का प्रदर्शन होता है।
रंग वंदनम्	प्रारंभिक मंच वन्दना।
चारी	कूत्तु से संबंधित प्रारंभिक अनुष्ठान नृत्य
किरीटम	मुकुट
पीलिप्पट्टम्	मोर पंखों से वृत्ताकार में बनाई गई सजावट जिसे मुकुट में बाँधते हैं।
कुटुमा	शिखा
कटिसूत्रम्	रंगीन और विस्तृत कमरबंध
वासुकीयम्	सिर में धारण करनेवाला आभूषण
चुट्टि कुत्तु/ चुट्टियेषुत्तु	कूत्तु, कूटियाट्टम व कथकळि कलाकारों के चेहरे पर की जानेवाली सजावट या 'मेक अप'
विदूषकन	विदूषक
सूत्रधारन	सूत्रधार
पूरप्पाटुं व निर्वहणम्	कूटिपाट्टम शुरू होने से पहले विदूषक द्वारा प्रस्तुत प्राक्कथन व अभिनय
विवादम्, विनोदम्, अशनम्, राजसेवा	कूटियाट्टम प्रस्तुत करने के चार पढ़ाव (पुरुषार्थ चतुष्टय)
रंगालंकारम्	रंगमंच की सजावट
कुरुत्तोला	नारियल के कोमल पत्ते
पट्टुं	रेशमी कपडा
कुलवाषा	केले का फलदार पोधा

अक्कित्तम्	कूटियाट्टम शुरू करने से पहले प्रस्तुत गणेश, सरस्वती व शिव का स्तुति गीत।
क्रिया चविट्टुँ	'अक्कित्तम्'के बाद सूत्रधार द्वारा प्रस्तुत नृत्य व अभिनय
अरङ्ङुँ तळि	नंपियार द्वारा 'मिषावुँ'के सामने कूटियाट्टम् का कथासार प्रस्तुत करने की क्रिया।
निर्वहणम्	नायक का अभिनय
अंकम्	कूटियाट्टम् की समाप्ति की सूचना देने के लिए प्रस्तुत नंगियार का गीत और चाक्यार का नृत्य।
कूत्तुँ	नृत्त (नृत्य)
चारी	कूत्तुँ की शुरूआत करनेवाला अनुष्ठान नृत्य।
रंग वंदनम्	प्रारंभिक रंगपूजा
कूटि	सम्मलित, संघटित
आट्टम्	नाट्य, अभिनय
अंकम् मूटल	कूटियाट्टम् की समाप्ति की सूचना देने के लिए प्रस्तुत गीत और नृत्य
अष्टपदियाट्टम्	अष्टपदि गीत के अनुसार किए जानेवाला नृत्य
रामनाट्टम्	रामकथा पर आधारित नृत्य व अभिनय
कृष्णनाट्टम्	कृष्णकथा पर आधारित नृत्य व अभिनय
कथकळि	मशहूर शास्त्रीय नृत्य
कैमुद्रा	हस्तमुद्रा
केळिकोट्टुँ	कथकळि अभिनय/प्रस्तुति देनेवाला वाद्यघोष
तोटयम्	पूर्वरंग या अभिनय की शुरूआत के पहले ईश्वर वंदना
पुऱप्पाटुँ	प्रस्थान या आविर्भाव
निलपदम्	प्रस्थान का गीत
तिरनोट्टम्	नर्तक के दर्शक के सामने धीरे धीरे प्रत्यक्ष होना।
कलाशम्	कथकळि का तांडवप्रधान नृत्य जिसके साथ नर्तक का निष्क्रमण होता है।

तुळ्ळल	नृत्य विशेष
परयन तुळ्ळल, शीतंकन तुळ्ळल ओट्टन तुळ्ळल	तुळ्ळल के भेद
चेलकेट्टुॅ,जातिवर्णम्, वर्णम् , तिल्लाना	मोहिनियाट्टम् के पढ़ाव
मोहिनियाट्टम्	लास्यप्रधान शास्त्रीय नृत्य
अटवुॅ	मोहिनियाट्टम् के पदान्यास
उद्घाटिता, सामा, अग्रतला संचारम् साममंडलम्, अरमंडलम्, मुषुमंडलम्	पदान्यास
मुक्काल मंडलम्, काल् मंडलम्	मोहिनियाट्टम् में घुटनों को स्थिति के आधार पर पाँच पढाव
वायत्तारी	गीत
तगणम्, जगणम्, धगणम्, सम्मिश्रम्	अटवुॅ
तेय्यम्	केरल की अनुष्ठान प्रधान कला
कावुॅ	देवताओं का निवास स्थान
कोलम्	साज-सजावट के साथ आनेवाला तेय्यम् कलाकार
कोमरम्/वेळिच्चप्पाटुॅ	ईश्वर/देवता का प्रतिपुरुष
अटयाळम्	तेय्यम् की प्रस्तुति की सूचना देनेवाला अनुष्ठान
मुंड्या/मुंडिया	अवर्ण लोगों का आराधना स्थल
कोट्टम्	देवता स्वरूप वीर पुरुषों का आराधना स्थल
तानम्	पूजा करने का स्थान
कळियाट्टम्	प्रत्येक साल में किए जानेवाले तेय्यम् का आयोजन
पेरुम्कळियाट्टम्	कई सालों के अन्तराल में कळियाट्टम् की प्रस्तुति
तोऱ्ऱम्	तेय्यम् कलाकार का प्रस्थान
वेळ्ळाट्टम्	तेय्यम् की प्रस्तुति की दूसरा चरण
तो	आग
मेलरी	अंगारों का ढ़ेर
मणियाणि	जाति विशेष
तीयर	जाति विशेष
मुक्कुवऱ	मछुवारे

आशारी	बढ़ई
मूशारी	जाति विशेष
पुळ्ळुवर	अवर्ण जाति जो पुळ्ळुव गीत प्रस्तुत करती है।
तट्टान	सुनार
कोल्लन	लोहार
तीयाटि नंपियार	अय्यप्पन तीयाट्टुँ प्रस्तुत करनेवाले।
मेलरी	अंगारों का ढ़ेर
कोलक्कारन	तेय्यम् प्रस्तुत करनेवाला कलाकार
कळम्	विभिन्न अनुष्ठानों के लिए पाँच प्रकार के रंगों से बनानेवाली रंगोली।
काप्पुकेट्टल	कोमरम का वेशभूषा धारण कर तैयार होना।
मुटियेऱ्रुँ	अनुष्ठान प्रधान कला
मुटियेऱ्रुँक	मुकुट धारण करना।
तिरुवुऴिच्चिल	मशाल लेकर कळम् की आरति उतारने का अनुष्ठान।
पटयणि	अनुष्ठान कला जिसका शाब्दिक अर्थ है सेना का प्रस्थान
काच्चिकेट्टुँ	गाँववालों को पटयणि की सूचना देनेवाला कार्यक्रम
कोप्पोलि	पटयणि का दूसरा चरण
तावटि तुळ्ळल	पटयणि का तीसरा चरण
चूट्टुँ	मशाल जो नारियल के पत्तों से बनाए जाते हैं।
चूट्टुँ वय्पुँ	पटयणि की शुरुआत में कोमरम् द्वारा मशाल जलाना।
अयय्यप्पन तीयाट्टुँ	शबरिमला अय्यप्पन की आराधना के लिए किए जानेवाला अनुष्ठान
कूऱयिटल	अय्यप्पन तीयाट्टुँ के लिए रेशमी कपड़ों से शमियान को अलंकृत करने की प्रथा
उच्चपूजा	दुपहर की पूजा
संध्या कोट्टुँ	संध्या पूजा व गायन
कळत्तिलाट्टम्	कळम् में प्रस्तुत नृत्य
अरुळप्पाटुँ	देववाणी या देवाज्ञा
कनलाट्टम्	अंगारों के ऊपर किए जानेवाला नृत्य-नृत्त

पांपुम् तुळ्ळल/सर्पम् तुळ्ळल	नाग नृत्य
नूरुम् पालुम्	नाग देवताओं को दूध पिलानेवाला अनुष्ठान
पान तुळ्ळल	देवी प्रीति के लिए आयोजित नृत्य
भद्रकाळी तट्टकम्	पान तुळ्ळल के लिए तैयार किए जानेवाला मंडप
आशान	पाना कलाकारों का नेता व प्रशिक्षक
पानपिटुत्तम्	पाल वृक्ष/सुपारी का किसलय आदि हाथ में लेने का कार्यक्रम
पूरक्कळि	अनुष्ठान नृत्य
पंतल प्रवेशम्	पूरक्कळि कलाकारों का मंच पर प्रस्थान
पणिक्कर	पूरक्कळि कलाकारों का नेता एवं प्रशिक्षक
अंकम्, पटा, चायल, पांपाट्टम्,	पूरक्कळि के विभिन्न चरण
चाक्यार	जाति का नाम (कूत्तु प्रस्तुत करनेवाला)
नङ्ङ्यार	चाक्यार स्त्री
नंपियार	जाति का नाम (मिषावु जैसे वाद्य बजानेवाला)
परयर	अवर्ण जाति
पुलयर	अवर्ण जाति
नायर	सवर्ण जाति
तेविडिच्चि	देवदासी स्त्री
वण्णान, मलयन, माविलन, चिंकत्तान, वेलन, मुन्नूट्टान, अञ्जूरान, कोप्पाळन, पुलयन, परवर, पंपत्तर	तेय्यम् प्रस्तुत करनेवाली अवर्ण जातियाँ
वेलन, मारार, कुरुप्पु, वात्ति, कोल्लन, मलयरयन	कळमेषुत्तु पाट्टु/भगवतिप्पाट्टु प्रस्तुत करनेवाली जातियाँ
गणकन	गणक जाति का व्यक्ति जो पटयणि में कोलम तैयार करता है।
चोवन	एक जाति विशेष
पुळ्ळुव पणिक्कर	पुळ्ळुव पूजारी
मणियाणि	जाति विशेष
कोल्लन	लोहार

तीयाटि नंपियार	अय्यप्पन तीयाट्टुं प्रस्तुत करनेवाले।
आशारी	बढ़ई
मूशारी	जाति विशेष
पुळ्ळुवर	अवर्ण जाति जो पुळ्ळुव गीत प्रस्तुत करती है।
तट्टान	सुनार
कोल्लन	लोहार
तीयाटि नंपियार	अय्यप्पन तीयाट्टुं प्रस्तुत करनेवाले।
मणियाणि	जाति विशेष
तीयर	जाति विशेष
मुक्कुवर	मछुवारे
आशारी	बढ़ई
मूशारी	जाति विशेष
पुळ्ळुवर	अवर्ण जाति जो पुळ्ळुव गीत प्रस्तुत करती है।
तट्टान	सुनार
कोल्लन	लोहार
तीयाटि नंपियार	अय्यप्पन तीयाट्टुं प्रस्तुत करनेवाले।
पाट्टुं	गीत
आट्टक्कथा	कथकळि साहित्य
कथकळि पदम्	कथकळि के गीत
अष्टपदि पदम्	अष्टपदि के गीत
कृष्णगीति	कृष्णाष्टक (कृष्णनाट्टम् की आधार रचना)
तोऱरम् पाट्टुं	तेय्यम्, कळमेषुत्तुं, पाना आदि के दौरान गानेवाले गीत
पुलवृत्तम	पटयणि में प्रस्तुत गीत
आस्तिकम्	पांपुम् तुळ्ळल के द्वारा गानेवाले गीत
गणेश तोऱरम्	गणेश से संबंधित गीत
शास्ता तोऱरम्	शास्तावुं (अय्यप्पन) से संबंधित गीत
दारिक तोऱरम्	दारिक से संबंधित गीत
काळी तोऱरम्	काळी से संबंधित गीत
तोषुन्न पाट्टुं	पूरक्कळि का वंदना गीत

अरिप्पोटि	चावल के चूर्ण/चूरा
कुंडलम्	कुंडल
मुटि	शिखा, मुकुट
अरप्पट्टा	कटिबंध
कटकम्	हाथ में पहननेवाले विशेष आकारवाला कंकण
मयिल पीलि	मोर पंख
किरीटम्	मुकुट, ताज
पीलिप्पट्टम्	मोर पंखों से वृत्ताकार में बनायी गयी सजावट जिसे मुकुट में बांधते हैं।
मुखंमूटि	मुखौटा
मिनुक्कुं वेष	कथकळि में मुनि, ब्राह्मण, दूत नारी पात्र की सजावट
पच्चा वेष	सात्विक प्रकृतिवाले पात्रों की सजावट
दाढ़ी वेष	निषाद, अखेटक, शकुनि जैसे रजोगुण प्रधान पात्रों की सजावट
करिवेष (काला)	आसुरी वृत्तियोंवाले पात्रों की सजावट
कत्ति वेष	धीरोदात्त पात्रों की सजावट
कत्ति वेष	धीरोदात्त पात्रों की सजावट
चिलंबुं	पैर में पहननेवालाआभूषण जिसके अन्दर झंकार के लिए मोती भरे रहते हैं।
कोडा	शीतंकन तुळ्ळल में सिर में बाँधनेवाला आभूषण
चिलंका	घूँघरू
नेऱ्ऱि चुट्टि	माथे का आभूषण
सूर्य, चन्द्र	बाल के आभूषण
तोडा	कान को बुंदि
मूक्कुत्ति	नाक का आभूषण
नागपटत्तालि	नाग के फन के आकार में बनायी गयी एक प्रकार की माला
पवनमाला	सोने के सिक्कों की माला
वेऱ्ऱिला	पान के पत्ते

नीळ मुटि, वट्ट मुटि, चट्ट मुटि, पीलि मुटि, कूँपुँ मुटि, पूक्कट्टि मुटि,ऑंकार मुटि, पाळ मुटि, ओल मुटि,इल मुटि, तोप्पिच्चमयम्, कोटुमुटि,तोङ्ङल मुटि, तिरुमुटि, कोंपन मुटि,कोतच्च मुटि	तेय्यम के विभिन्न आकारवाले मुकुट
कॅरि	कोयला
मञ्ञळ	हल्दी
मुखमेषुत्तुं	मुखलेपन
प्राक्केषुत्तुं, अंचुपुळ्ळियिट्टेषुत्तुं, वट्टक्कण्णिट्टेषुत्तुं, पुळ्ळियिट्टेषुत्तुं, प्राक्चुरुळ, तोप्पिपूविट्टेषुत्तुं, अंचुपुळ्ळियुम् आनक्कालुम्, पालोट्टे दैवम् मुखमेषुत्तुं, शंखिट्टेषुत्तुं, हनुमान कण्णिट्टेषुत्तुं, मानकण्णिट्टेषुत्तुं, नागत्तालम्, नागोम् कुरियुम्, कुक्कुरि वालुम्-चुरुळुम्, कोडुंपिरियन	तेय्यम् की विभिन्न मुखलेपन शैलियाँ
पत्रिमूक्कुं, परुंतुवाल, पुळ्ळि	शरीर लेपन के प्रकार
मारवट्टम्	वक्ष में पहननेवाला आभूषण
अरमणि	कमरघंटी
कालत्तळा	पैर के आभूषण
वाळुम्-परिचयुम्	तलवार व ढाल
अंपुम्-विल्लुम्	बाण और धनुष
वेळ्ळिक्किण्णम्	चाँदी का फलक
चूल	झाडू
मुऱम	सरई
उलक्का	मूसल
नवतालम्	कळम बनाने के परंपरागत ढाँचा

गणपतिक्कोलम्	गणेश का कोलम्
यक्षिक्कोलम्	यक्षि का कोलम्
पक्षिक्कोलम्	पक्षी का कोलम्
कालनकोलम्	शिव का कोलम्
पिशाचुकोलम्	पिशाच का कोलम्
माटनकोलम्	माटन (पैशाचो शक्ति) का कोलम्
मरुताक्कोलम्	मरुता का कोलम्
भैरविक्कोलम्	भैरवि का कोलम्
गंधर्वनकोलम्	गंधर्व का कोलम्
मुकिलनकोलम्	मुकिलन का कोलम्
कुतिरक्कोलम्	घोड़े का कोलम्
पतियम्	अय्यप्पन तीयाट्टुं के लिए प्रयुक्त छोटा मुकुट
कोरलारम्	अय्यप्पन तीयाट्टुं के लिए प्रयुक्त आभूषण
चेविप्पूवुं	कर्णाभरण
पटियरञ्ञाणम्	चौडा कमरबंध
ओऱ्ऱक्कळम्, इरट्टक्कळम्, ओऱ्ऱक्कळम्, इरट्टक्कळम्, किरीटक्केट्टुं, भस्मक्केट्टु, उरिक्केट्टु, तूक्कुं, कोट्टक्केट्टुं, पवित्रक्केट्टुं,शिवलिंग पद्मम्, पवित्र कळम्, नागयक्षिक्कळम्, अष्टनागक्कळम्, पक्षिक्कळम्	नागनृत्य में बनानेवाले विभिन्न प्रकार के कळम्
कच्चिला और चुरा	पूरक्कळि को वेशभूषा

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ - सूची

हिन्दी

1.	लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन	डॉ. महेश गुप्त जवाहर पुस्तकालय मथुरा प्रथम संस्करण-2001
2.	हिन्दी और भारतीय भाषाएँ	सं. डॉ.भोलानाथ तिवारी कमल सिंह प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली-6 प्रथम संस्करण
3	हिन्दी भाषा की संरचना	डॉ. भोलानाथ तिवारी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1988
4.	हिन्दी व्याकरण	पं. कामताप्रसाद गुरु नागरी प्रचारणी सभा वारणासी 16 वाँ संस्करण
5.	हिन्दी भाषा की रूप संरचना	डॉ. भोलानाथ तिवारी साहित्य सहकार दिल्ली-2, 1999
6.	हिन्दी शब्द संपत्ति का अध्ययन	डॉ. मीनाक्षी खाडिलकर विद्या प्रकाशन 125/64 -के, गोविन्द नगर कानपुर-6, 1993.
7	हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण	डॉ. भोलानाथ तिवारी शब्दकार तुर्कमान गेट, दिल्ली-6, 1973.

8.	भाषा और संस्कृति	डॉ. भोलानाथ तिवारी प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 1984.
9.	हिन्दी भाषा	डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया साहित्य भवन प्रा.लि. इलहाबाद -3, 1995.
10.	हिन्दी भाषा का विकास	गोपाल राय अनुपम प्रकाशन पटना-4, 1995.
11.	लोक साहित्य और संस्कृति	दिनेश्वर प्रसाद लोकभारती प्रकाशन इलहाबाद,1973.
12.	कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी समिति, सूचना विभाग लखनऊ उत्तर प्रदेश, 1963.
13.	भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश भाग 1 & 2	रामविलास वर्मा किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण
14.	भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास	जगदीश प्रसाद कौशिक अपोलो प्रकाशन जयपुर -3 प्रथम संस्करण
15.	सरल हिन्दी व्याकरण	तनसुख राम गुप्त ओमप्रकाश शर्मा हिन्दी पुस्तक भवन नई दिल्ली-1, 1989.

16.	अनुवाद भाषाएँ- समस्यायें	डॉ. एन ई विश्वनाथ अय्यर स्वाति प्रकाशन तिरुवनंतपुरम, 1986.
17.	भारतीय भाषाएँ और हिन्दी अनुवाद समस्या समाधान	डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया वाणी प्रकाशन 2 ए दरिया गंज नई दिल्ली प्रथम संस्करण
18.	केरल की संस्कृति पर केरल के लोकगीतों का प्रभाव	डॉ. एन आर एलेटम जवाहर पुस्तकालय सदर बाज़ार मथुरा-1 प्रथम संस्करण -1991.
19..	भाषा विज्ञान	डॉ. भोलानाथ तिवारी किताब महल इलहाबाद, 1991.
20.	केरल	डॉ. एन ई विश्वनाथ अय्यर अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1992.
21.	भाषा, शब्द और उसकी संस्कृति	डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन वासंती प्रकाशन, ए-46 विवेक नगर दिल्ली रोड़, सहारनपुर प्रथम संस्करण -1989.
22.	भारतीय भाषाओं के हिन्दी में अनुवाद की समस्याएँ	सं. भोलाथ तिवारी व किरण बाला शब्दाकार, तुर्कमान गेट दिल्ली-6, प्र.सं. 1984.

23.	संस्कृति के स्वर	डॉ. तंकमणि अम्मा लेखिका द्वारा प्रकाशिक प्रथम संस्करण - 1986.
24.	कथकळि -कलात्मक साहित्यक मूल्यांकन	डॉ. रामचन्द्र देव कोणार्क पब्लिशर्स, प्रा.लि. ए-149 मेन विकास मार्ग दिल्ली -95, प्र.सं.1990.
25.	केरल की सांस्कृतिक विरासत	सं. जी गोपीनाथन वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1998.
26.	अनुवाद की सामाजिक भूमिका	डॉ. रीतारानी पालीवाल हिन्दी बुक सेंटर नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 2003.
27.	व्यावहारिक अनुवाद	डॉ. एन ई विश्वनाथ अय्यर प्रतिभा प्रतिष्ठान नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1999.
28.	केरलीयों को हिन्दी भाषा को देन	डॉ. जी गोपीनाथन राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1973.
29.	अनुवाद विज्ञान	डॉ. भोलानाथ तिवारी शब्दाकार नई दिल्ली, 1976.
30.	अनुवाद सिद्धाँत की रूपरेखा	डॉ. सुरेशकुमार वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण- 1986.

31.	काव्यानुवाद की समस्याएँ	सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी महेन्द्र चतुर्वेदी शब्दाकार, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1993.
32.	हिन्दी अनुवाद एवं भाषिक संरचना	डॉ. शकुंतला पांचाल अभय प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण 2005.
33.	अनुवाद कला सिद्धाँत और प्रयोग	डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली -1 प्रथम संस्करण - 1991.
34.	भोजपुरी लोकगीत	कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलहाबाद द्वितीय संस्करण 1966.
35.	भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन	कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय प्रथम संस्करण -1960.
36.	लोक साहित्य की भूमिका	कृष्णदेव उपाध्याय साहित्य भवन प्रा.लि. इलहाबाद प्रथम संस्करण - 1957.
37.	लोकगीतों के समाज	पूर्णिमा श्रीवास्तव मंगल प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण - 1991.

38.	ब्रज लोकसाहित्य	मधुर उप्रेती इंदु प्रकाशन अचर मार्ग, अलिगढ़ प्रथम संस्करण 1984.
39.	हिन्दी प्रदेश के लोकगीत	कृष्णदेव उपाध्याय साहित्य भवन प्रा.लि. इलहाबाद प्रथम संस्करण - 1990.
40.	हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह भूमिका प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1991.
41.	लोकसंस्कृति	वसन्त निर्गुणे मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी प्रथम संस्करण 1997.
42.	लोक साहित्य	विद्या चौहान हिन्दुस्थानी अकादमी इलहाबाद प्रथम संस्करण - 1965.
43.	मालवी लोक साहित्य एक अध्ययन	श्याम परमार हिन्दुस्थानी अकादमी इलहाबाद प्रथम संस्करण -1969.
44.	लोकसाहित्य विज्ञान	सत्येन्द्र शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनि लि. दिल्ली प्रथम संस्करण - 1962.

45..	अनुवाद कला	डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री अशोक प्रकाशन नई सडक, दिल्ली प्रथम संस्करण 2002.
46.	कुमाऊ का लोकसाहित्य	डॉ. त्रिलोचन पांडेय अलोक बुक डिप्पो अलमोडा प्रथम संस्करण 1962.
47.	खड़ीबोली का लोकसाहित्य	सत्या गुप्त हिन्दुस्थानी अकादमी इलहाबाद प्रथम संस्करण 1965.
48.	हिन्दी और मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली - व्यतिरेकी अध्ययन	डॉ. टी के नारायणन पिल्लै केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा प्रथम संस्करण 1984.
49.	भारतीय भाषाएँ	डॉ.कैलाश चन्द्र भाटिया प्रभात प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण -1989.
50.	भाषा और समाज	डॉ.रामविलास शर्मा पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि. दिल्ली प्रथम संस्करण -1961.
51.	भारतीय भाषाओं का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	सं.डॉ.ब्रजेश्वर वर्मा विनोद पुस्तक मंदिर आगरा प्रथम संस्करण - 1965.

52.	केरल के हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास	डॉ.एन.चन्द्रशेखरन नायर केरल हिन्दी साहित्य अकादमी तिरुवनंतपुरम प्रथम संस्करण 1989.
53.	केरल में हिन्दी और साहित्य का विकास	डॉ. एन ई विश्वनाथ अय्यर विश्वविद्यालय प्रकाशन वारणासी प्रथम संस्करण 1996.
54.	लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ.छोटेलाल बहरलाल भारती प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2000.
55.	अनुवाद अवधारणा और अनुप्रयोग	सं. डॉ.चन्द्रभानु रावत डॉ.दिलीप सिंह नाशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली प्रथम संस्करण -1988.
56.	अवधी का लोकसाहित्य	सरोजनी रोहतगी नाशनल पब्लिशिंग हाऊस दरियागंज, दिल्ली प्रथम संस्करण 1972.
57.	**राधा कहाँ है**	**डॉ एन जी देवकी** केरल हिन्दी प्रचार सभा तिरुवनन्तपुरम 14 प्रथम संस्करण -1996

मलयालम

1. शैली पुराणम् — प्रो.एन.पी.रामचन्द्रन नायर, नैशनल बुक स्टॉल, कोट्टयम्, 1995.
2. द्राविड भाषा व्याकरणम् — डॉ.रोबर्ट कॉल्डवेल, अनु.एस.के.नायर, केरल भाषा इंस्टिट्यूट, तिरुवनंतपुरम्, 1994.
3. आयिरत्तोनु कटंकथकळ — संपा. बाल साहिती प्रकाशन, कोषिक्कोड् -2, संस्करण -1989.
4. कुचेलवृत्तम वंचिप्पाट्टु — रामपुरत्तु वारियर, साहित्य प्रवृत्तक संघम्, कोट्टयम् , 1971.
5. कला पठनम् — वेलूर परमेश्वरन नंपूतिरि, विद्यार्थी मित्रम् बुक डिपो, कोट्टयम्, 2000.
6. केरल भाषा गानङ्ङळ -भाग I — संपा. चिरक्कल बालकृष्णन नायर, केरल साहित्य अकादमी, तृश्शूर 20, 2005
7. केरल भाषा गानङ्ङळ भाग - II — संपा. प्रो.वी आनन्दकुट्टन नायर, केरल साहित्य अकादमी, तृश्शूर-20, 2005.

8.	नम्मुटे पंटत्ते पाट्टुकळ	डॉ.एम.वीयविष्णु नंपूतिरि डी.सी.बुक्स कोट्टयम् प्रथम संस्करण 2005.
9.	उत्तर केरलत्तिले तोऱ्ऱम् पाट्टुकळ	संपा. डॉ.एम.वी.विष्णु नंपीतिरि केरल साहित्य अकादमी तृश्शूर 20. प्रथम संस्करण -1981.
10.	कथकळि	जी रामकृष्ण पिल्लै युनिवर्सिटी ऑफ ट्रावनकोर तिरुवनंतपुरम प्रथम संस्करण 1957.
11.	केरलत्तिल	पूत्तेष़त्तु रामन मोनोन मंगळोदयम् प्रा.लि. तृश्शूर, प्र.सं.1989.
12.	केरलत्तिटे सांस्कारिक चरित्रम्	पी.के.गोपाल कृष्णन केरल भाषा इंस्टिट्यूट ततिरुवनंतपुरम् प्रथम संस्करण 1974.
13.	केरल चरित्रम्	ए. श्रीधर मेनोन साहित्य प्रवृत्तक सहकरण संघम् नैशनल बुक स्टॉल कोट्टयम प्रथम संस्करण 1986.
14.	केरल पाणिनीयम्	ए.आर राजराजवर्मा साहित्य सहकरण संघम् कोट्टयम्, 1970.

15.	चविट्टु नाटकम्	सेबीना राफी नैशनल बुक स्टॉल कोट्टयम् प्रथम संस्करण -1980.
16.	भाषा गद्य साहित्य चरित्रम्	टी एम चुम्मार नैशनल बुक स्टॉल कोट्टयम् प्रथम संस्करण 1964.
17.	मोहिनियाट्टम् चरित्रवुम् आट्टप्रकारवुम्	कलामंडलम् कल्याणीक्कुट्टियम्मा डो.सी.बुक्स कोट्टयम् प्रथम संस्करण 1998.
18.	पोराट्टु नाटकवुम् मऱ्ऱुम्	जी भार्गवन पिल्लै साहित्य प्रवृत्तक सहकरण संघम् कोट्टयम् प्रथम संस्करण - 1999.
19.	तेय्यम्	डॉ.एम.वी.विष्णु नंपूतिरि केरल भाषा इंस्टिट्यूट तृश्शूर प्रथम संस्करण - 1998.
20.	फोकलोर	राघवन पय्यनाट्टु केरलभाषा इंस्टिट्यूट तृश्शूर प्रथम संस्करण -1997.
21.	केरल फोकलोर	संपा. राघवन पय्यनाट्टु फोकलोर फेलोस ऑफ मलबार पय्यन्नूर

		प्रथम संस्कारण -1997.
22.	पूरक्कळि	डॉ.एम.वी.विष्णु नंपूतिरि लेखक द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण 1998.
23.	वटक्कन पाट्टुकळिलूटे	पणिक्कोट्टि.एम.के. साहित्य प्रवत्तर्क संघम् कोट्टयम् प्रथम संस्करण- 1999.
24.	कळरिप्पयऱ्रुँ केरलत्तिन्टे तनतु आयोधन कला	वासुदेवन गुरुक्कळ डी.सी.बुक्स कोषिक्कोडुँ प्रथम संस्करण 1995.
25.	केरल संस्कारम्	इटमरुकुँ विद्यार्थी मित्रम बुक डिपो कोट्टयम् प्रथम संस्करण -1995.
26.	केरल चरित्रम् भाग -I & II	केरल हिस्टरी एसोसियेशन एरणाकुलम प्रथम संस्करण 1973.
27.	केरलत्तिले नाटोटि संस्कारम्	कावालम नारायण पणिक्कर नशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया दिल्ली, प्र.स्. 1994.
28.	वळ्ळुवनाट्टिले नाटन पाट्टुकळ	संपा. एम शिवशंकरन करन्ट बुक्स कोट्टयम् प्रथम संस्करण - 2005.
29.	पषमयुटे अर्थतलङ्ङळ	जी.कमलम्मा करन्ट बुक्स कोट्टयम्

		प्रथम संस्करण - 2007.
30.	भरतमुनियुटे नाट्य शास्त्रम्	अनु.के.पी.नारायण पिषारटि केरल साहित्य अकादमी तृश्शूर प्रथम संस्करण -1997.
31.	केरल साहित्य चरित्रम्	उळ्ळूर एस.परमेश्वरन तिरुवनंतपुरम् द्वितीय संस्करण 2000.
32.	कटंकथकळ	स्करिया सखरियास करन्ट बुक्स कोट्टयम् प्रथम संस्करण 1997.
33.	नोटोटि विज्ञानीयम्	एम.वी विष्णु नंपीतिरि डी.सीयबुक्स कोट्टयम् प्रथम संस्करण - 1997.
34.	कटम कथकळ ओरु पठनम्	एम.वी.विष्णु नंपूतिरि करन्ट बुक्स कोट्टयम् प्रथम संस्करण -1994.
35.	1001 कटम्कथकळ	जोबी जोस एच एण्ड सी पब्लिशिंग हाऊस तृश्शूर प्रथम संस्करण- 2000.
36.	501 अक्षय गानङ्ङळ	वर्गीस पॉल केरल शास्त्र साहित्य परिषद कोच्ची प्रथम संस्करण 2002.

37. केरल भाषयुटे विकास परिणामङ्ङळ — इळम् कुळम् कुञ्जन पिल्लै
नाशनल बुक स्टॉल
कोट्टयम्
प्रथम संस्करण - 1959.

38. व्याकरण मित्रम् — शेषगिरि प्रभु
कैनरीस मिशन प्रेस एण्ड बुक डिपो
मैंगलूर, प्रथम संस्करण 1922.

39. नाट्टरङ्ङु विकासवुम् परिणामवुम् — जी.भार्गवन पिल्लै
केरल भाषा इंस्टिट्यूट
तिरुवनंतपुरम
प्रथम संस्करण - 2000.

40. मलयाल साहित्यम् कालघट्टङ्ङळिलूटे — एरुमेलि परमेश्वरन पिल्लै
करन्ट बुक्स
कोट्टयम्
प्रथम संस्करण

41. कथकळि रंगम् — के.पी.एस.मेनोन
मातृभूमि
कोषिक्कोड़
प्रथम संस्करण - 1957.

42. बल्लाड्स ऑफ नोर्तमलबार भाग-I — श्री अच्युत मेनोन
यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास
द्वितीय संस्करण 1956.

43. वटक्कन पाट्टुकळ — डॉ.एस.के.नायर
यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास
प्रथम संस्करण 1957..

44. भाषा गद्य साहित्य चरित्रम् — टी.एम.चुम्मार
नाशनल बुक स्टॉल
कोट्टयम्
द्वितीय संस्करण 1964.

45. आधुनिक मलयाल व्याकरणम् — के.एस.नारायण पिल्लै
केरल भाषा इंस्टिट्यूट
तिरुवनंतपुरम
प्रथम संस्करण 1995.

46. साहित्य चरित्रम प्रस्थानङ्ङळिलूटे — सं. डॉ.के.एम.जोर्ज
साहित्य प्रवत्तर्क सहकरण संघम्
कोट्टयम्
चतुर्थ संस्करण -1998.

47. **लोगन्टे मलबार मानुअल** — **विल्यम् लोगन**
अनु. टी वी कृष्णन
मातृभूमि बुक्स
कोषिक्कोड्
पाँचवीं संस्करण - 2004.

48. **नाटन पाट्टुकळ** — **केरला पब्लिकेशन ट्रस्ट**
तिरुवनन्तपुरम
प्रथम संस्करण - 1987.

English

1. Mohiniyattom The Lasya Dance — G.Venu
Nirmala Panicker
Natana Kairali
Trichur, 1995.

2. Performing Arts of Kerala — Pankaj Shah
Mallike Sarabhai

3. A Survey of Kerala History — A.Sreedhara Menon
S.Viswanathan (Printer and Publisher) Pvt.Ltd
38, Nicholas Road
Chetput, Madras
Revised Edition - 1996.

4. Evolution of Indian Culture — B.N.Lemia
Lakshmi Narain Agarwal
Agra-3
15th Edition 1997.

5.	Theory and History of Folklore	Vladmir Propp University of Minnesota Press Minneapollis Ist Edition 1998.
6.	A Lingnestin Theory of Translation: An essay in applier Linguistics	Oxford University Press London Ist Edition 1965.
7	Theory and Practices of Translation	E.A.Nida & Charles Taber E.J.Brill Lieden Ist Edition 1969.
8.	Approaches to Translation	Peter Newmark Pergamon Press Oxford Ist Edition 1972.
9.	Social and Cultural History of Kerala	Ramachandran Nair Kersls Bhasha Institute Thiruvananthapuram Ist Edition

कोशग्रंथ

1.	लोकोक्ति कोश	सं. हरिवंशराय शर्मा राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट प्रथम संस्करण 1997.
2.	मुहावरा कोश	सं. डॉ.बदरीनाथ कपूर लोकभारती प्रकाशन महात्मागाँधी रोड इलहाबाद प्रथम संस्करण- 1989.
3.	मानक हिन्दी मुहावरा कोश भाग-1 & 2	सं. शोभाराम शर्मा तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1989.

4.	हिन्दी कहावत कोश	सं. श्रीगणेश प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली -6 प्रथम संस्करण 1989.
5.	हिन्दी मलयालम निघंटु	अभयदेव साहित्य प्रवर्तक संघम् कोट्टयम् चतुर्थ सं.1999.
6.	मलयालम-हिन्दी विद्यार्थी निघंटु	एम.डी.जोण एन.ई.विश्वनाथअय्यर संस्थान बाल साहित्य इंस्टिट्यूट तिरुवनंतपुरम प्रथम संस्करण - 1996.
7.	फोकलोर निघंटु	डॉ. एम.वी विष्णु नंपूतिरि केरल भाषा इंस्टिट्यूट तिरुवनंतपुरम द्वितीय संस्करण 2000.
8.	मानक अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश	सं. सत्यप्रकाश और बलभद्र प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्रथम संस्करण 1993.
9.	शब्दतारावली	सं. श्रीकण्ठेश्वरम् जी. पद्मनाभ पिल्लै साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघम् नाशनल बुक स्टॉल कोट्टयम्, ग्यारहवीं संस्करण 1987.
10.	भारतीय संस्कृति कोश	सं. लीलाधर शर्मा पर्वतीय राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण

11.	Encyclopaedia Britanica	Inc. London 15th Edition 2007.
12.	The Random House of Dictionary of the English language	Random house 201 East 50th street Newyork. 3rd Edition 1966
13.	TheWaverley Encyclopedia	Edited Gorden Stowell The Waverly Book company Ltd Farringdon street London

पत्रिकाएँ

1. सम्मेलन पत्रिका लोकभारती विशेषांक 1995.
2. भाषापोषिणि दिसंबर 1999 (मल.)
3. आजकल (बालसाहित्य विशेषांक) नवंबर 1976.
4. गगनांचल अंक 2, 1992.
5. भाषा सितंबर 1970.
6. अकम् (फोकलोर विशेषांक) 1987 (मल.)
7. अनुवाद (मलयालम विशेषांक) 1993.